प्रस्तावना

ये सब संगृहीत भाषण, केवल चार के अतिरिक्त, भारत द्वारा स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद डेढ़ वर्ष से कुछ अधिक अवधि में दिये गए थे। इनका संकलन विषय-क्रम तथा समय-क्रम के अनुसार किया गया है। माननीय प्रधान मंत्री की अभिरुचि की व्यापकता के कारण केवल प्रत्येक विभाग ही अधिक विस्तृत नही हो गया है, वरन् वह विभाग भी, जिसे 'प्रकीर्ण प्रकरण' कहा गया है। इस कारण किसी एक सिद्धान्त के आधार पर इन भाषणो का चुनाव निर्धारित नही है। इनमें से कुछेक भाषण, विशेषतः काश्मीर संबंधी भाषण, संबंधित ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं दूसरे भाषणो में नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया गया है, और कुछेक भाषणों में भावनाओं का संचार है, जो राष्ट्र को अत्यधिक उद्योग करने के लिये अनुप्रेरित करती है। दूसरी ओर, व्याख्याता के अनुपम व्यक्तित्व ने उन्हें एक आधारभूत एकता प्रदान कर दी है। नैतिक मूल्यों के लिये उनके आग्रह, उनकी सरलता तथा निष्कपटता तथा उनकी स्वभावगत सचाई ने उनके वचन में स्थायी महत्व का समावेश कर दिया है।

इसके साथ ही माननीय प्रधान मंत्री की अभिरुचियो की विचित्रता एवं विविधता और तथ्यों तथा प्रवृत्तियों को हृदयगम करने की उनकी सतर्क जागरूकता ने उनके भाषणो को तात्कालिक प्रयोजन से परिपूर्ण कर दिया है। उन्हें अपने "काल के सूक्ष्म इतिवृत्त एवं सक्षिप्त संग्रह" ठीक तौर से कहा जा सकता है। उनमें उन घटनाओ तथा संकटो को रेखाकित किया गया है, जिनका स्वाधीनता के प्रभात काल से ही इस देश ने मुकावला किया है और जिनका अव भी मुकावला करना पड रहा है। जैसा कि माननीय प्रधान मंत्री ने कहा है "इस पीढ़ी को कठिन श्रम का दंड मिला है।" अपनी महानता के श्रेष्ठतम प्रासाद को पूर्ण करने से पूर्व आगे आनेवाले वर्षों में भारत को श्रम और शोक में ही जीवन-यापन करना है।

इन भाषणो में खतरों तथा संकटो पर प्राप्त विजय तथा गौरवपूर्ण सफलताओ का भी स्थान है। प्रधान मंत्री इस पर जोर देते अपने को तनिक भी श्रान्त अनुभव नही करते कि आशा और भविष्य की किरण तब तक जगमगाती रहेगी, जब तक कि जनता अपने स्वामी के उपदेश को नही भूल जाती। जब तक वह अपने

साध्यो का साधनो के साथ समन्वय करती रहेगी, यह पुरातन राष्ट्र फिर अपनी गरिमा को प्राप्त करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय समाज में अपना समुचित स्थान प्राप्त करेगा ।

इस सकलन के सभी भाषण, केवल एक भाषण को छोड़कर, अंग्रेजी मे दिये गये थे । "अतिम यात्रा" भाषण हिन्दी में ही दिया गया था । अतः वह मौलिक रूप में हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है, शेष भाषणों का हिन्दी में रूपान्तर किया गया है ।

विषय-सूची

स्वाधीनता

महात्मा गांधी

साम्प्रदायिकता

काश्मीर

हैदराबाद

शिक्षा

उद्योग

भारत की वैदेशिक नीति

भारत और राष्ट्रमंडल

भारत और विश्व

प्रकीर्ण प्रकरण

चित्र-सूची

नई दिल्ली में सिचाई क केन्द्रीय बोर्ड के उन्नीसवे वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए

नई दिल्ली मे फेडरेशन आफ इडियन चेम्बर्स आफ कामर्स ऐण्ड इन्डस्ट्री के वार्षिक अधिवेशन मे भाषण देते हुए

'जल उषा' को समुद्र मे उतारते समय

पृष्ठ २५७ पर

अपने निवास स्थान पर अपनी पुत्री तथा पौत्र के साथ

पृष्ठ ३४४-३४५ पर

पेरिस में ३ नवम्बर, १९४८ को संयुक्त राष्ट्रसघ की साधारण सभा के विशेपाधिवेशन मे भाषण देते हुए

उटकमड (दक्षिण भारत) मे जून १९४८ मे सुदूरपूर्व तथा एशिया के लिए सयुक्त राष्ट्रसघ के आर्थिक कमीशन के अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री नेहरू

मार्च १९४७ मे, नई दिल्ली मे प्रथम एशियायी संबंध सम्मेलन मे

नई दिल्ली-मे, नवम्बर १९४८ मे, अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान सघ की एशियायी प्रादेशिक कान्फ्रेन्स का उद्घाटन करत हुए

पृष्ठ ३९२-३९३ पर

विस्थापित व्यक्तियो के बीच

नई दिल्ली में, भारत मे अमेरिकन राजदूत डा० हेनरी ग्रेडी व श्रीमती ग्रेडी को विदाई देते समय

गवर्नमेंट हाउस के स्टाफ द्वारा लार्ड माउंटबेटेन को दिये गये एक विदाई भोज के समय

दिल्ली के निकट मेहरौली ईदगाह मे मुस्लिम बालिकाओ के साथ बातचीत करते हुए

स्वाधीनता
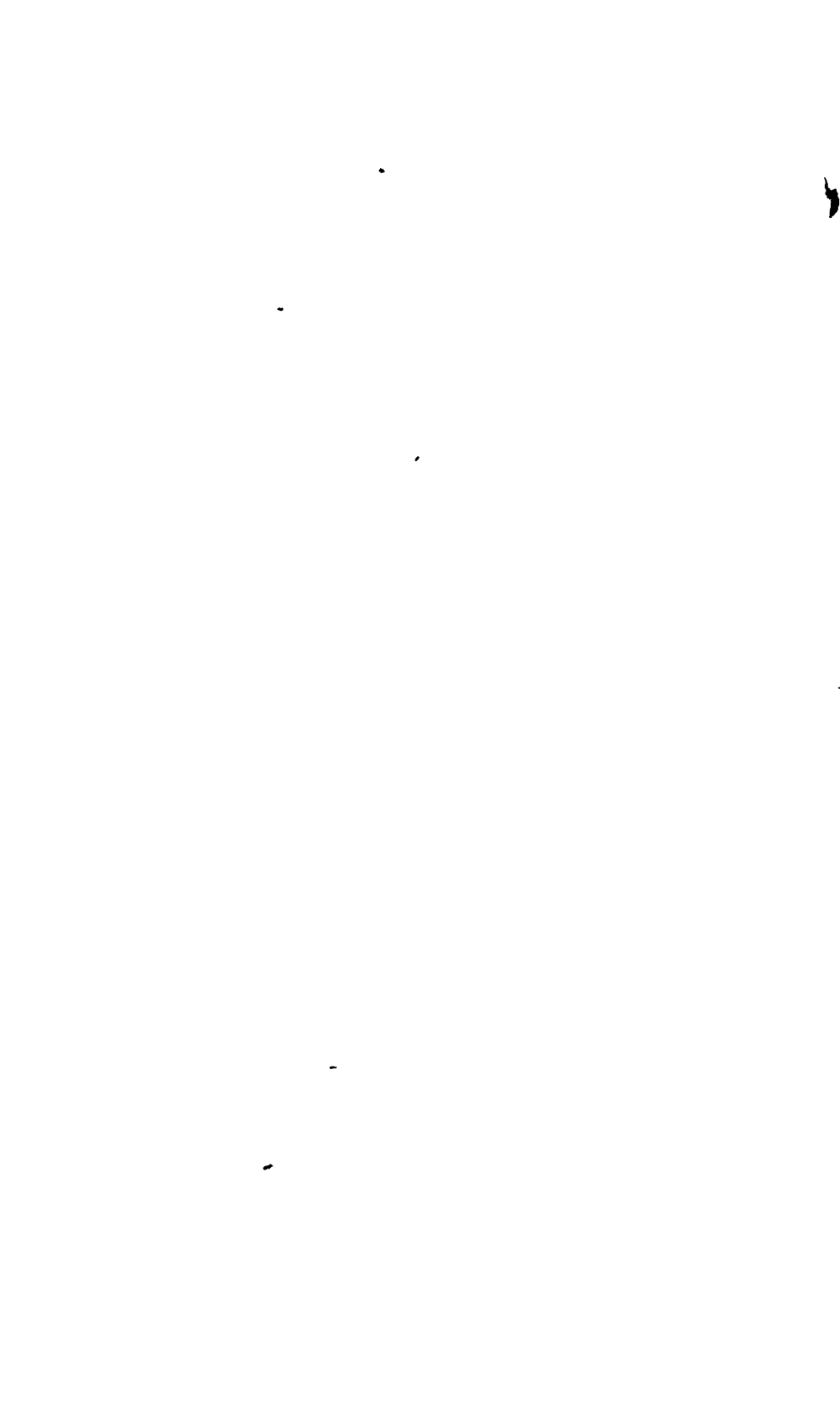
भाग्य से सौदा

बहुत वर्ष हुए हमने भाग्य से एक सौदा किया था, और अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है—पूरी तौर पर या जितनी चाहिए उतनी तो नही, फिर भी काफी हद तक। जब आधी रात के घंटे बजेंगे, जबकि सारी दुनिया सोती होगी, उस समय भारत जगकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। एक ऐसा क्षण आता है, जो कि इतिहास में कम ही आता है, जबकि हम पुराने को छोड़कर नए जीवन में पग धरते है, जबकि एक युग का अन्त होता है, जबकि राष्ट्र की चिर दलित आत्मा उद्धार प्राप्त करती है। यह उचित है कि इस गंभीर क्षण में हम भारत और उसके लोगो और उससे भी बढ़कर मानवता के हित के लिए सेवा अर्पण करने की शपथ लें।

इतिहास के उषाकाल में भारत ने अपनी अनंत खोज आरंभ की। दुर्गम सदियां उसके उद्योग, उसकी विशाल सफलता और उसकी असफलताओ से भरी मिलेंगी। चाहे अच्छे दिन आएं हों, चाहे बुरे, उसने इस खोज को आंखो से ओझल नहीं होने दिया, न उन आदर्शों को ही भुलाया जिनसे उसे शक्ति प्राप्त हुई। आज हम दुर्भाग्य की एक अवधि पूरी करते है, और भारत अपने आपको फिर पहचानता है। जिस कीर्ति पर हम आज आनन्द मना रहे है, वह और भी बड़ी कीर्ति और आनेवाली विजयों की दिशा में केवल एक पग है, और आगे के लिए अवसर देने वाली है। इस अवसर को ग्रहण करने और भविष्य की चुनौती स्वीकार करने के लिए क्या हममें काफी साहस और काफी बुद्धि है?

स्वतंत्रता और शक्ति जिम्मेदारी लाती है। वह जिम्मेदारी इस सभा पर है, जो कि भारत के सपूर्ण सत्ताधारी लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली सपूर्ण सत्ताधारी सभा है। स्वतंत्रता के जन्म से पहले हमने प्रसव की सारी पीड़ाएँ सहन की है और हमारे हृदय इस दुख की स्मृति से भरे हुए है। इनमें मे कुछ पीड़ाएँ अब भी चल रही है। फिर भी, अतीत समाप्त हो चुका है और अब भविष्य ही हमारा आवाहन कर रहा है।

यह भविष्य आराम करने और दम लेने के लिए नही है बल्कि निरतर प्रयत्न करने के लिए है, जिससे कि हम उन प्रतिज्ञाओ को, जो हमने इतनी बार

संविधान परिषद, नई दिल्ली में १४ अगस्त १९४७ को दिया गया एक भाषण।

की है और उसे जो आज कर रहे है, पूरा कर सकें। भारत की सेवा का अर्थ करोड़ों पीड़ितों की सेवा है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञान और अवसर की विषमता का अन्त करना है। हमारी पीढी के सब से बड़े आदमी की यह आकांक्षा रही है कि प्रत्येक आँख के प्रत्येक आसू को पोछ दिया जाय। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आँसू है और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नही होगा।

इसलिए हमें काम करना है और परिश्रम करना है और कठिन परिश्रम करना है जिससे कि हमारे स्वप्न पूरे हों। ये स्वप्न भारत के लिए है, लेकिन ये संसार के लिए भी है, क्योकि आज सभी राष्ट्र और लोग आपस में एक दूसरे से इस तरह गुँथे हुए है कि कोई भी बिल्कुल अलग होकर रहने की कल्पना नही कर सकता। शाति के लिए कहा गया है कि वह अविभाज्य है; स्वतत्रता भी ऐसी ही है, और अब समृद्धि भी ऐसी है, और इस एक संसार में, जिसका कि अलग अलग टुकड़ो में अब विभाजन संभव नही, संकट भी ऐसा ही है।

भारत के लोगों से, जिनके हम प्रतिनिधि है, हम अनुरोध करते है कि विश्वास और निश्चय के साथ वे हमारा साथ दें। यह क्षुद्र और विनाशक आलोचना का समय नही है; असद्भावना या दूसरो पर आरोप का भी समय नही है। हमें स्वतंत्र भारत की विशाल इमारत का निर्माण करना है, जिसमें कि उसकी संतान रह सकें।

महोदय, मै यह प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा चाहता हूँ :

"यह निश्चय हो कि :

(१) आधी रात के अंतिम घंटे के बाद, इस अवसर पर उपस्थित संविधान सभा के सभी सदस्य यह शपथ लें:—

> 'इस पवित्र क्षण में, जबकि भारत के लोगों ने दुःख झेल कर और त्याग करके स्वतंत्रता प्राप्त की है, मै, जो कि भारत की संविधान सभा का सदस्य हूँ, पूर्ण विनयपूर्वक भारत और उसके निवासियों की सेवा के प्रति, अपने को इस उद्देश्य से अर्पित करता हूं कि यह प्राचीन भूमि संसार में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे और संसारव्यापी शांति और मनुष्य मात्र के कल्याण के निमित्त अपना पूरा और इच्छापूर्ण अनुदान प्रस्तुत करे।'

(२) जो सदस्य इस अवसर पर उपस्थित नही है वे यह शपथ (ऐसे शाब्दिक परिवर्तनों के साथ जो कि सभापति निश्चित करें) उस समय लें जब कि वे अगली बार इस सभा के अधिवेशन में उपस्थित हो।"

नियत दिवस

नियत दिवस आ गया है, वह नियत दिवस जिसे कि भाग्य ने निश्चित किया था और भारत आज फिर लंबी नीद और कोशिशो के बाद जागा है और शक्तिशाली, मुक्त और स्वतंत्र हुआ है। कुछ अंशो में अतीत हमसे अब भी मिला हुआ है, और जो प्रतिज्ञाएं हमने इतनी बार की है उन्हे पूरा करने के लिए हमें बहुत कुछ करना बाकी है। फिर भी हम मोड़ पार कर चुके है। हमारे लिए नया इतिहास शुरू होता है, वह इतिहास जो हमारे जीवन और कार्यों से रचा जायगा और जिसके बारे में दूसरे लोग लिखेंगे।

भारत में हमारे लिए, सारे एशिया के लिए और संसार के लिए, यह एक महान क्षण है। एक नये नक्षत्र का उदय होता है, प्राच्य की स्वतंत्रता के नक्षत्र का, एक नई आशा उत्पन्न होती है, एक चिर अभिलषित कल्पना साकार होती है। यह नक्षत्र कभी न डूबे और यह आशा कभी विफल न हो।

हमें इस स्वतंत्रता से आनन्द है, यद्यपि हमारे चारो ओर बादल घिरे हुए है और अपने लोगो में से बहुत से दुख के मारे है, और कठिन समस्याएं हमारे चारों ओर है। लेकिन स्वतंत्रता अपनी जिम्मेदारियां और बोझ लाती है और हमें स्वतंत्र और अनुशासनपूर्ण लोगों की भाँति उनका सामना करना है।

आज के दिन सबसे पहले हमें इस स्वतंत्रता के निर्माता, राष्ट्रपिता, का ध्यान आता है, जो भारत की पुरानी भावना के मूर्त रूप होकर स्वतंत्रता की मशाल ऊंची किए हुए थे और जिन्होंने हमारे चारो ओर फैले हुए अंधकार को दूर किया था। हम अकसर उनके अयोग्य अनुयायी रहे हैं और उनके संदेश से विलग हो गए है। लेकिन हम ही नही, आनेवाली पीढ़ियां इस संदेश को याद रक्खेंगी और अपने दिलो पर भारत के इस बड़े बेटे की छाप को धारण करेंगी, जो कि अपने विश्वास और शक्ति और साहस और विनय में इतना महान था। हम स्वतंत्रता की इस मशाल को, चाहे जैसी आंधी और तूफान आवें, कभी बुझने न देंगे।

इसके बाद हमें उन अज्ञात स्वयसेवको का और स्वतंत्रता के सैनिको का ध्यान आना चाहिए-जिन्होंने बिना प्रशंसा या पुरस्कार पाए, भारत की सेवा में अपनी जानें दी है।

हमें अपने उन भाइयो और बहनों का भी ध्यान आता है जो राजनैतिक सीमाओ के कारण हमसे जुदा हो गए है और जो दुर्भाग्यवश उस स्वतंत्रता में, जो हमें प्राप्त हुई है, भाग नही ले सकते। वे हमारे है, और चाहे जो हो, हमारे ही

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४७ को समाचार-पत्रों को दिया हुआ संदेश।

बने रहेंगे, और हम उनके अच्छे और बुरे भाग्य के बराबर ही साझीदार होंगे।

भविष्य हमें बुला रहा है। हम कहां जायेंगे और हमारा क्या प्रयत्न होगा? हमारा प्रयत्न होगा साधारण मनुष्य को, भारत के किसानो और मजदूरो को स्वतंत्रता और अवसर दिलाना; गरीबी और अज्ञान और रोग से लड़कर उनका अन्त करना; एक समृद्ध, जनसत्तात्मक और प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना; और ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संस्थाओं की रचना करना, जिनसे कि प्रत्येक पुरुष और स्त्री को न्याय और जीवन की परिपूर्णता प्राप्त हो सके।

हमारे सामने कठिन काम करने को है। जब तक हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी नही करते, जब तक हम भारत के सभी लोगों को वैसा नही बना लेते जैसा कि भाग्य ने नियत किया है, तब तक हममें से किसी के लिए दम लेने का समय नही है। हम एक ऐसे बड़े देश के नागरिक है जो कि विशाल उन्नति के पथ पर अग्रसर है और हमें उस ऊँचे आदर्श के अनुकूल अपना जीवन बनाना है। हम सभी, चाहे हम किसी धर्म के हो, समान रूप से भारत की संतान है, और हमारे अधिकार, विशेषाधिकार और दायित्व बराबर-बराबर है। हम सांप्रदायिकता या संकीर्णता को उत्साहित नहीं कर सकते, क्योकि कोई राष्ट्र, जिसके लोग विचार अथवा कार्य में संकीर्ण हों, बड़ा नही हो सकता।

संसार के राष्ट्रो तथा लोगो का हम अभिवादन करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते है कि शाति, स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को अग्रसर करने में हम उनके साथ सहयोग करेंगे।

भारत के लिए, अपनी अत्यन्त प्रिय मातृभूमि के लिए, जो कि प्राचीन और सनातन और चिर-नवीन है, हम अपनी भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि भेंट करते है, और अपने को उसकी सेवा के लिए पुनः प्रतिज्ञाबद्ध करते है। जय हिंद!

भारत की जनता का प्रथम सेवक

मेरे देश भाइयो, भारत और भारत की स्वतंत्रता के हित में अपनी सेवा अर्पित करने का सौभाग्य मुझे बहुत वर्षों से रहा है। आज मैं पहली बार भारतीय जनता के प्रथम सेवक के रूप में, उसकी सेवा और सुधार के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर, अपने पद से आप से बोल रहा हूं। मैं यहां इसलिए हूं कि आपकी ऐसी इच्छा थी, और मैं यहां तभी तक हूं, जब तक कि आप अपना विश्वास देकर, मेरा सम्मान करते है।

हम आज स्वतंत्र और पूर्ण सत्ताधारी लोग है और हमने अपने को अतीत के बोझ से मुक्त कर लिया है। हम संसार की ओर स्पष्ट और मैत्री-पूर्ण आंखो से और भविष्य की ओर आस्था और विश्वास के साथ देखते है।

विदेशी आधिपत्य का बोझ दूर हो गया है, लेकिन स्वतंत्रता अपनी अलग जिम्मेदारियां और भार लाती है और उन्हें हम स्वतंत्र लोगो की भावना से ही, आत्म-संयम के साथ और उस स्वतंत्रता की रक्षा और विस्तार करने के निश्चय से वहन कर सकते है।

हमने बहुत कुछ हासिल कर लिया है; परन्तु हमें अभी इससे अधिक हासिल करना है। तो आइए हम अपने नए धंधो में, दृढता से और उन ऊंचे सिद्धांतो को ग्रहण करते हुए, जिन्हें कि हमारे महान नेता ने सिखाया है, लग जांय। सौभाग्य से गाधी जी मार्ग-प्रदर्शन के लिए, हमें प्रेरणा देने के लिए और सदा आदर्श अध्यवसाय का पथ दिखाने के लिए हमारे साथ है। बहुत दिनों से उन्होने हमें सिखाया है कि आदर्श और उद्देश्य उन साधनों से पृथक नही किए जा सकते जो कि उनकी सिद्धि के लिए उपयोग में लाए जाते है; अर्थात् अच्छे उद्देश्यो की सिद्धि अच्छे साधनों द्वारा ही संभव है। यदि हम जीवन की महान बातो की ओर लक्ष्य करते है, यदि हम भारत का स्वप्न बड़े राष्ट्र के रूप में देखते है, जो कि शांति और स्वतंत्रता का अपना प्राचीन संदेश दूसरो को दे रहा है, तब हमें स्वयं बड़ा बनना है और भारत माता की योग्य सन्तान बनना है। संसार की निगाहें हम पर है और वे पूर्व में इस स्वतंत्रता के जन्म को ध्यान से देख रही है और विचार कर रही है कि इसका अर्थ क्या है।

---

१५ अगस्त, १९४७ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

हमारा पहला ध्येय यह होना चाहिए कि हम सब प्रकार के आंतरिक झगड़ों और हिंसा का अन्त करदें, जो कि हमें कलुषित करके गिराते हैं और जो कि स्वतंत्रता के पक्ष को हानि पहुँचाते हैं। ये जनता की महान आर्थिक समस्याओं पर, जिन पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है, विचार करने में बाधक होते हैं।

अपनी दीर्घकालीन पराधीनता और विश्वव्यापी युद्ध और उसके परिणामों ने हमारे आगे बहुत-सी अत्यावश्यक समस्याओं को एक साथ डाल दिया है। आज हमारी जनता के लिए भोजन और वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी है, और हम मुद्रा-स्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के बवंडर में पड़ गए हैं। हम इन समस्याओं को तुरन्त हल नहीं कर सकते, साथ ही उनके हल करने में देर भी नहीं लगा सकते। इसलिए हमें बुद्धिमत्ता के साथ ऐसी योजनाएँ बनानी हैं जिनसे हमारी जनता का बोझ कम हो और उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठे। हम किसी का बुरा नहीं चाहते, लेकिन यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि अपनी चिर-पीड़ित जनता के हितों का ध्यान हमें सबसे पहले होना चाहिए और अन्य स्वार्थों को उनके आगे झुक जाना चहिए। हमें अपनी दकियानूसी भूमि-व्यवस्था को शीघ्र ही बदलना है और हमें एक बड़े और संतुलित पैमाने पर उद्योग-व्यवसायों को उन्नत करना है, जिससे कि देश की संपत्ति बढ़े और लाभ उचित रूप में वितरित हो सके।

उत्पादन आज की सर्वप्रथम आवश्यकता है और उत्पादन में रुकावट डालने या उसे कम करने का प्रत्येक प्रयत्न राष्ट्र को, और विशेष रूप से हमारे बहुसंख्यक श्रमिकों को, हानि पहुँचा रहा है। लेकिन केवल उत्पादन पर्याप्त नहीं, क्योंकि इस का परिणाम यह हो सकता है कि सपत्ति खिंच कर कुछ थोड़े से हाथों में आ जाय। यह उन्नति के मार्ग में बाधक होगा और आज के प्रसंग में अस्थिरता और संघर्ष उत्पन्न करेगा। अतएव समस्या को हल करने के लिए उचित और न्याय्य वितरण अत्यन्त आवश्यक है।

भारत सरकार के हाथ में इस समय जलप्रवाह के नियंत्रण द्वारा नदियों की घाटियों के विकास की, बाँधों और जलागरों और सिंचाई के साधनों के निर्माण की, और पन-बिजली की शक्ति के विकास की कई बड़ी योजनाएँ हैं। इनसे खाने की वस्तुओं के उत्पादन में तथा सभी तरह के औद्योगिक विकास में सहायता मिलेगी। ये कार्य सभी योजनाओं के लिए बुनियादी हैं और हम इन्हें जल्दी-से-जल्दी पूरा करना चाहते हैं, जिससे कि जनता को इनका लाभ मिल सके।

इन सब बातों के लिए शांति की स्थिति और सभी सम्बन्धित लोगों का सहयोग और कठिन और निरंतर श्रम आवश्यक है। इसलिए हमें इन महान और

संविधान सभा में १४-१५ अगस्त, १९४७ की मध्य रात्रि के समय भाषण देते हुए
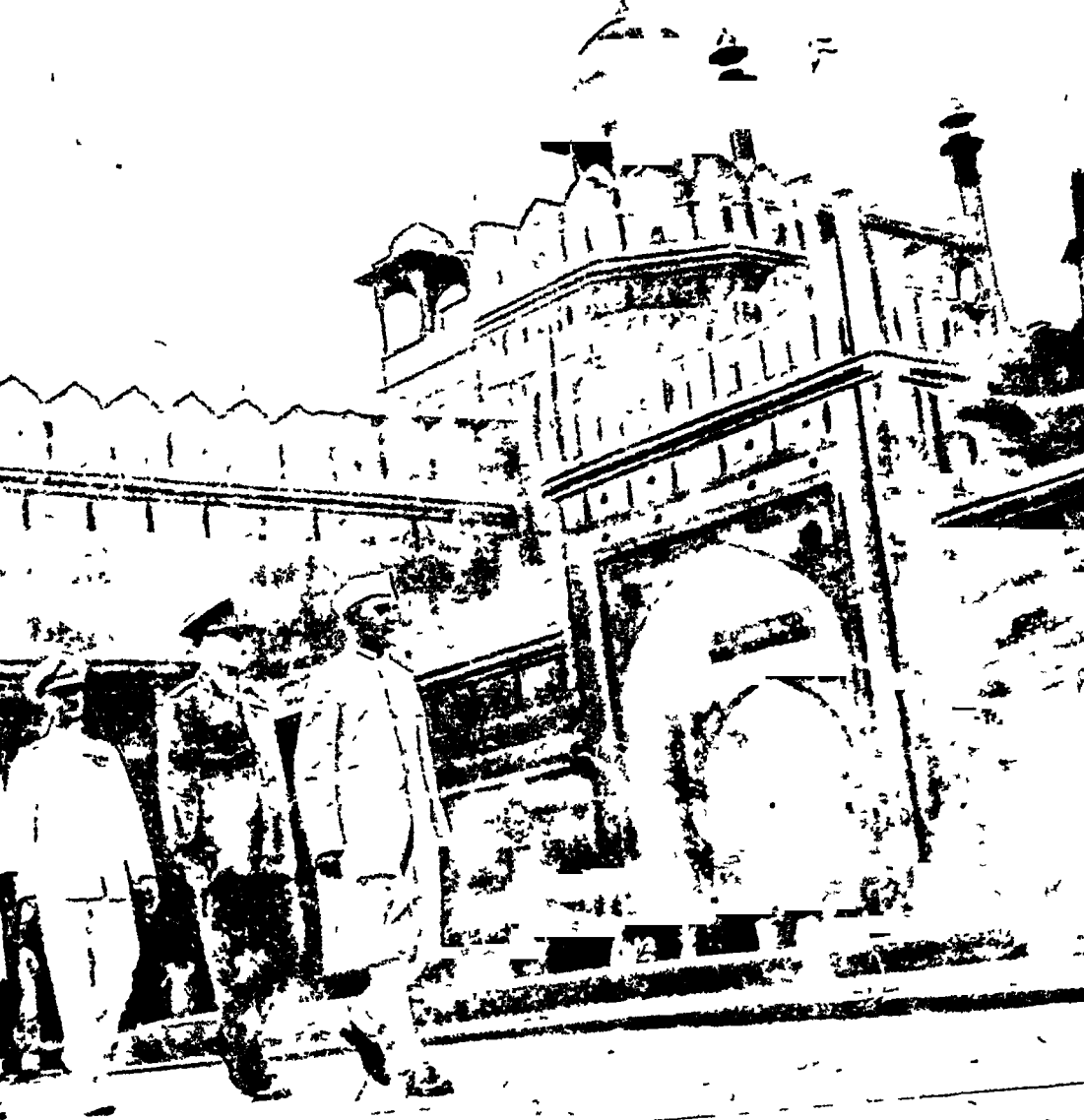
ाहरलाल नेहरू १५ अगस्त, १९४७ को दिल्ली के लाल किले पर भारतीय राष्ट्र पताका को फहराते हुए। उनके साथ रक्षा मंत्री सरदार वल्देव सिह (वाईं ओर से दूसरे) और अन्य उच्च सैनिक अधिकारी भी हैं
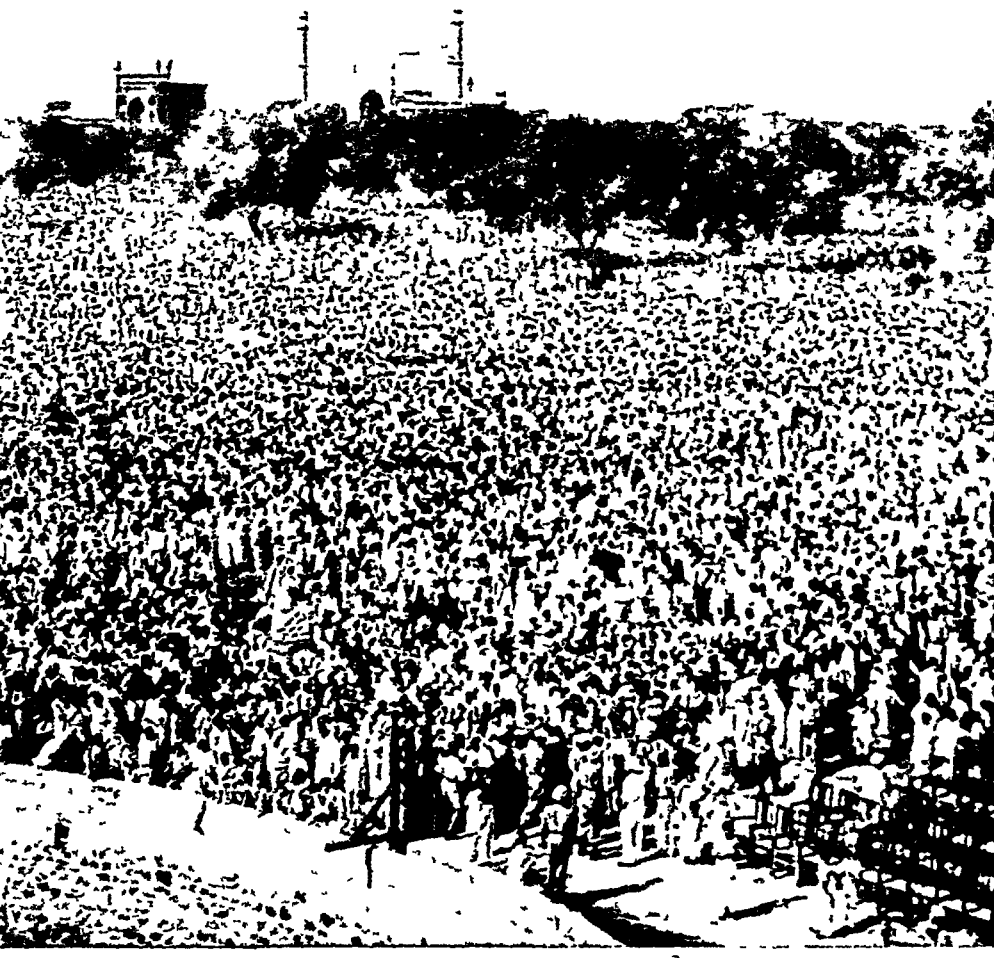
ध्वजारोहण समारोह देखते हुए विशाल जनसमूह
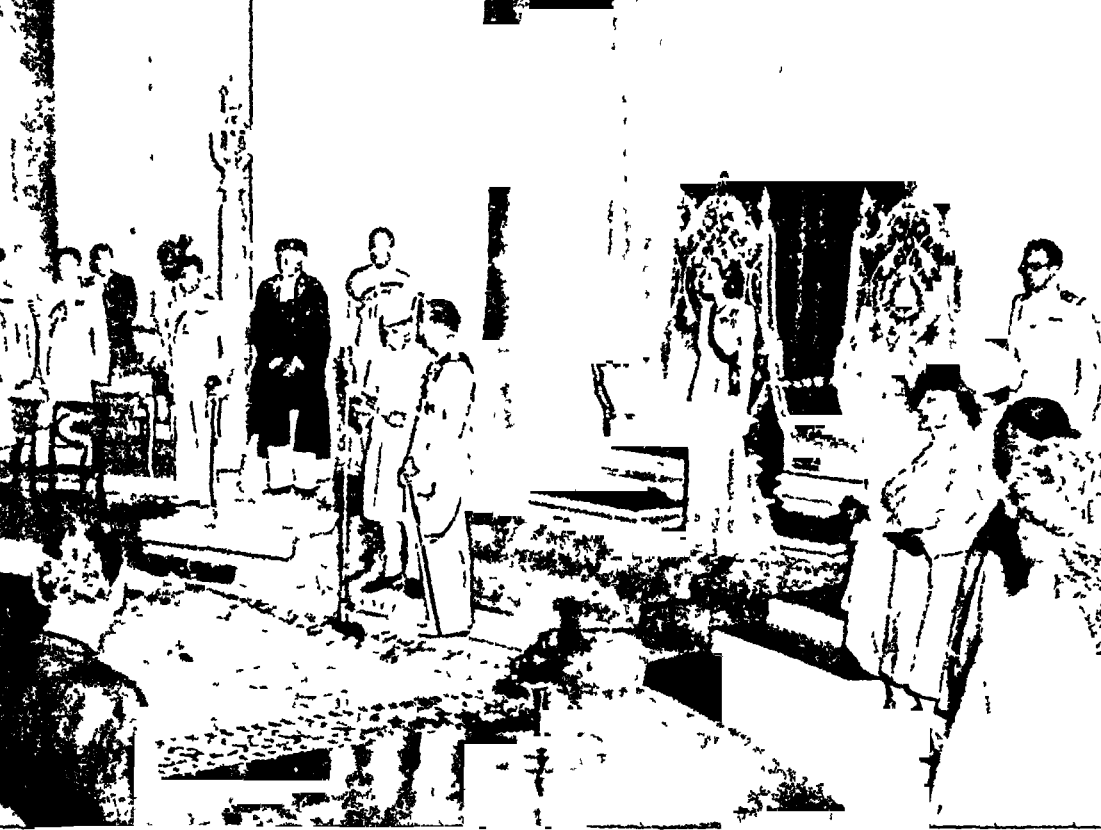
लार्ड माउन्टबैटन स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में श्री नेहरू को शपथ दिला रहे

करने योग्य कामों में लग जाना चाहिए और आपस के झगड़े-फसाद को भूल जाना चाहिए। झगड़ा करने का समय अलग होता है और मिल-जुलकर उद्योग करने का अलग। काम करने का समय अलग होता है और खेल-कूद का अलग। आज न झगड़ा करने का समय है, न बहुत खेल-कूद का। यदि हम अपने देश और अपनी जनता के साथ घात नही करना चाहते तो आज हमें एक दूसरे से सहयोग करना चाहिये और मिल-जुल कर काम करना चाहिए और यथार्थ सद्भावना से काम करना चाहिए।

मैं कुछ शब्द नागरिक तथा सैनिक राजसेवकों से कहना चाहूँगा। पुराने अन्तर और भेद मिट गए हैं और आज हम सभी भारत के स्वतंत्र बेटे और बेटियां हैं और अपने देश की स्वतंत्रता का तथा उसकी सेवा में लगने का हमें गर्व है। हम समान रूप से भारत के प्रति निष्ठा रखते हैं। हमारे सामने जो कठिन समय है उसमें हमारे राज-सेवको और विशेषज्ञो को बड़े महत्व का भाग लेना है और हम एक साथी की भांति उन्हे भारत की सेवा में लगकर ऐसा करने का बुलावा देते हैं। जय हिन्द!

हमारी स्वतन्त्रता का वार्षिक समारोह

१५ अगस्त का दिन आया, और हमें जो कुछ हासिल हुआ था, उस पर, विभाजन के दुख के बावजूद, हमने खुशियाँ मनाईं। हमने स्वतन्त्रता के सूर्य की ओर तथा उस अवसर की ओर देखा जिसे स्वतंत्रता अपने साथ लाती है। यद्यपि सूर्य उगा, पर काले बादलों के कारण वह हमसे छिपा रहा, और हमारे लिए धुंधला उषाकाल जैसा ही बना रहा। यह उषाकाल बहुत लंबा रहा है और दिन का प्रकाश अभी आने को है। एक राजनैतिक निश्चय कर लेने से या नया संविधान बना लेने से या किसी आर्थिक नीति से ही स्वतंत्रता प्राप्त नही हो जाती। वह तो मन और हृदय की वस्तु है। यदि मन संकीर्ण या कुहरे से ढँका रहा और हृदय में घृणा और कड़ुवापन हुआ तो स्वतंत्रता नही रह जाती।

दूसरी बार १५ अगस्त का दिन आया है और जो कुछ बीता है, उसके बावजूद, यह एक पवित्र दिन है। इस वर्ष के भीतर बहुत कुछ हुआ है और हमने अपनी लंबी यात्रा की थोड़ी सी मंजिल पार की है। लेकिन यह वर्ष दुख और लज्जा से भी भरा रहा है और भारत की उस भावना के प्रति, जो कि उसकी एक विशेषता रही है, विश्वासघात का रहा है। इस वर्ष ने, राष्ट्रपिता की हत्या द्वारा कुकृत्य की विजय होते देखी है। इससे अधिक लज्जा और दुख की बात हममें से किसी के लिए भी क्या हो सकती है ?

हम इस दिन, जैसा कि उचित है, उत्सव मना रहे हैं, लेकिन हमारे उत्सव में आत्मश्लाघा और व्यर्थ की सामान्य बातो के लिए स्थान नही। यह हृदय को टटोलने वाला और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए पुनः आत्म-समर्पण करने वाला दिन होना चाहिए। हमने क्या कर लिया है, इसके विषय मे हमें उतना विचार नही करना चाहिए, जितना कि इस विषय में कि हमे क्या करना है या हमने क्या बात गलत की है। हमें उन करोड़ों शरणार्थियो के विषय मे सोचना चाहिए, जो अब भी बेघर बार घूम रहे है। हमे भारत की उस विशाल जनता का ध्यान करना चाहिए, जो अब भी कष्ट में है और जिसने हमें आशा के साथ देखा है और जो अपने दुखी जीवन में सुधार की आशा लगाए हुए है। हमे भारत के महान

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४८ को दिया गया एक संदेश।

साधनों का भी ध्यान करना चाहिए, जिनका उपयोग यदि जनता के हित के लिए किया जाय, तो भारत का नक्शा बदल सकता है और वह महान और समृद्ध बन सकता है। हमें इस महान् कार्य में पूरी शक्ति के साथ लगना चाहिए। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि हमें उन महान शिक्षाओं को याद रखना चाहिए जो महात्मा गांधी से हमें मिली है और उन आदर्शों को जिन्हें कि उन्होंने हमारे सामने रखा है। यदि हम उन शिक्षाओं और आदर्शों को भूलते हैं, तो हम अपने ध्येय और अपने देश के प्रति विश्वासघात करते हैं।

इसलिए अपनी स्वतंत्रता के इस वर्ष-दिवस पर हम स्वतंत्र भारत और उसके लोगों के हित के लिए पुनः अपने को अर्पण करते हैं। हम इसके योग्य सिद्ध हों।
जय हिंद !

स्वतन्त्र भारत एक वर्ष का हुआ

देशवासियो, साथियो और मित्रो, एक वर्ष हुआ, आज ही के दिन, इसी समय, मैंने एक भाषण आपके लिए प्रसारित किया था। स्वतंत्र भारत आज एक वर्ष का हुआ। लेकिन अपनी स्वतंत्रता के इस बाल्यकाल में ही यह कैसी यातनाओ और संकटो से गुजरा है! फिर भी वह जिंदा है, यद्यपि जो जोखिम और मुसीबतें इसने झेली है वे एक अधिक पुराने और मजबूत राष्ट्र को भी दवा देने के लिए काफी थी। इस सफलता के लिए और दूसरी अनेक सफलताओ के लिए, जो हमारे देशवासियों को प्राप्त हुई है, हमें लोगों को धन्यवाद देना चाहिए। यह उचित है कि अपने कामो को हम तुच्छ न समझें, और उस साहस, परिश्रम और त्याग को न भूलें जिससे हमारे देशवासियो ने इस संकट के वर्ष में बहुत सी मुसीबतो का सामना किया है और उन पर विजय पाई है।

लेकिन हमें अपनी असफलताओं और गलतियों को भी नही भूलना चाहिए, क्योकि हमारी असफलताएं और भूलें भी बहुत रही है। इनमें से कुछ बहुत स्पष्ट हैं, लेकिन मुख्य असफलता तो एक आत्मिक दुर्बलता रही है, उन ऊँचे आदर्शो से गिर जाना रहा है, जिन्हे कि हमारे राष्ट्रपिता ने, जिनके योग्य नेतृत्व में हमने चौथाई सदी से अधिक समय तक अपनी लड़ाई जारी रक्खी थी और आगे बढे थे, हमारे सामने रक्खा था। उन्होने हमें सिखाया था कि ऊंचे उद्देश्यो की सिद्धि ऊँचे साधनो द्वारा ही होती है। आदर्शो और उद्देश्यो को उनकी प्राप्ति के साधनों से कभी अलग नही किया जा सकता। उन्होने हमे भय को दूर रखना सिखाया था, क्योकि भय केवल तुच्छ ही नही है, बल्कि घृणा और हिंसा को पैदा करने वाला है।

हम में से बहुतों ने यह पाठ भुला दिया और भय हम पर छा गया। यह भय किसी दूर के दुश्मन का नही था, बल्कि एक दूसरे का भय था, और इसके परिणाम-स्वरूप दुष्कृत्य देखने में आए।

हमारे गुरु, जिनसे हमे प्रेरणा मिलती थी, अब नही रहे। हमें अब भार अपने ही कंधों पर उठाना है और पहला प्रश्न जिसे हमें अपने से पूछना चाहिए वह यह है—क्या हम उनकी शिक्षा और सदेश पर दृढ है; अथवा हम नए रास्तो

नई दिल्ली से १५ अगस्त, १९४८ को प्रसारित भाषण।

में भटक पड़े हैं ? मैं आप से यह कहना चाहता हूँ कि कठिन परीक्षा के इस वर्ष से मुझे और भी अधिक विश्वास हो गया है कि यदि भारत की उन्नति करना है और उसे महान बनाना है, जैसा कि उसे होना चाहिए और जैसा कि वह होकर रहेगा, तो ऐसा उस संदेश और शिक्षा पर दृढ़ रह कर ही किया जा सकता है । मैं जानता हूँ कि मैं निर्बल हूँ और अक्सर भारत के प्रति, जिसकी सेवा के लिए मैंने बार-बार शपथ ली है, अयोग्य सिद्ध हुआ हूं । लेकिन हम चाहे कितने भी अयोग्य हों, हममें अब भी उस शक्ति का कुछ अंश है, जो हमारे नेता हमें दे गए हैं । वह शक्ति हमें उनसे ही नही, उनके संदेश से भी प्राप्त होती है । इसलिए आज मैं मातृभूमि की सेवा की ओर उन आदर्शों के पालन की, जिन्हें कि गांधीजी ने हमारे सामने रक्खा था, फिर से शपथ लेता हूँ ।

हम सभी भारत की चर्चा करते हैं और हम सभी भारत से बहुत बातो की आशा करते हैं। हम उसे इसके बदले में क्या देते हैं ? जो कुछ हम उसे देते हैं, उससे अधिक हम उससे लेने के अधिकारी नही। भारत अन्त में हमें वही देगा, जो कि प्रेम और सेवा और उत्पादक तथा रचनात्मक कार्य के रूप में हम उसे देंगे। भारत वैसा ही होगा जैसे कि हम होंगे: हमारे विचार और कार्य उसे रूप प्रदान करेंगे। हम उसकी कोख से उत्पन्न बच्चे हैं, आज के भारत के छोटे-छोटे अंश हैं; साथ ही हम आनेवाले कल के भारत के जनक हैं। हम बड़े होंगे तो भारत बड़ा बनेगा, और हम तुच्छ विचार वाले और अपने दृष्टिकोण में संकीर्ण बनेंगे, तो भारत भी वैसा ही होगा ।

गत वर्ष, हमारी आपत्तियाँ अधिकतर ऐसे ही संकीर्ण दृष्टिकोण और तुच्छ कार्यों का, जो कि भारत की महान सांस्कृतिक देन से इतने भिन्न हैं, परिणाम रही हैं। साम्प्रदायिकता से, मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों की साम्प्रदायिकता से, हमारी स्वतंत्र भावना के कुचले जाने का भय रहा है। प्रान्तीयता उस विशाल एकता के रास्ते में बाधक बनी है, जो कि भारत की प्रतिष्ठा और उन्नति के लिए इतनी आवश्यक है । हममें फूट की भावना फैली है और उसने हमें उन बड़ी बातो को भूल जाने दिया है, जिनके हम समर्थक रहे हैं ।

हमें अब अपने को फिर से पहचानना है और अपनी कल्पनाओं से स्वतंत्र भारत को अपनाना है। हमें पुराने मूल्यों को फिर से खोज निकालना है और उन्हें स्वतंत्र भारत की नई रूपरेखा में स्थान देना है। स्वतत्रता जिम्मेदारी लाती है और आत्म-संयम, परिश्रम और स्वतंत्र जनता की भावना द्वारा ही उसकी रक्षा हो सकती है ।

इसलिए हमें उन सभी बातो को छोड़ देना चाहिए, जो हमें बांधती हैं और गिराती हैं। हमें भय और साम्प्रदायिकता और प्रांतीयता का त्याग करना चाहिए। हमें एक स्वतंत्र और जनसत्तात्मक भारत का निर्माण करना चाहिए, जहाँ कि अपनी जनता का हित ही सबसे प्रथम स्थान रखता हो और दूसरे हित उसके अधीन समझे जायें।

स्वतंत्रता का कोई अर्थ नही रह जाता, यदि वह हमारी जनता के अनेक बोझों को हलका नही करती। जनसत्तावाद का अर्थ सहिष्णुता है, केवल उन लोगो के प्रति सहिष्णुता नही, जो कि हमसे सहमत हैं, वल्कि उन लोगो के प्रति जो कि हमसे सहमत नही होते। स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ-साथ हमारे व्यवहारों में परिवर्तन आना चाहिए, जिससे कि उनका इस स्वतंत्रता से ठीक-ठीक मेल हो सके।

संघर्ष चल रहा है और ऐसी अफवाहें है कि भारत में और सारी दुनिया में और भी घोर संघर्ष होने वाला है। हमें सभी स्थितियों और संभावनाओं के लिए तैयार रहना है। जव राष्ट्र पर संकट हो, तव प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह विना भय के और विना किसी पुरस्कार की आशा के अपनी सेवा राष्ट्र को भेंट करे। लेकिन आज मै सघर्षो और युद्धो के विषय में नही, वल्कि शाति और सहयोग के विषय में कहना चाहता हूँ, और ससार के सभी राष्ट्रो और अपने पड़ोसी देश के प्रति यह कहना चाहता हूं कि शाति और मित्रता वनाए रखना हमारा ध्येय है। हम यदि युद्ध करना चाहते है तो वह केवल गरीवी और उससे जनित विपत्तियो के विरुद्ध युद्ध है।

सारी दुनिया ससार-व्यापी युद्ध के परिणामो से पीड़ित है और मुद्रा-स्फीति से, वढ़ी कीमतों से और वेकारी से लोग दुखी है। भारत में ये सभी वातें है, साथ ही उन विशाल-संख्यक भाइयो और वहनो की चिन्ता हम पर है, जो कि अपार कष्टों को झेल रहे है और जो अपने घरो से भगाए जाकर, दूसरी जगह नई जिन्दगी की खोज में हैं।

हमें यह लड़ाई लड़नी है अर्थात् आर्थिक संकट के विरुद्ध लड़ाई लड़नी है और वेघरो को वसाना है। इस लडाई में नफरत और हिंसा के लिए जगह नही है, वल्कि केवल अपने देश और अपने लोगों की सेवा का भाव है। इस लड़ाई में हर एक भारतवासी सैनिक वन सकता है। व्यक्तियों और समूहो के लिए व्यापक हित को छोड़ कर निजी संकीर्ण हितों का ध्यान करने का अवसर नही है। यह समय आपस में झगड़ने और फूट का नही है।

इसलिए मै अपने देशवासी सभी स्त्री-पुरुषो से, जिनके हृदयो में भारत का प्रेम है और जो उसकी जनता को उठाना चाहते है, यह अनुरोव करता हूँ कि आपस में भेद उत्पन्न करने वाली दीवारो को हटा दें और एक महान् राष्ट्र क उपयुक्त इस ऐतिहासिक तथा विशाल उद्योग में मिल-जुल कर भाग लें।

सभी सरकारी नौकरो से, चाहे वे फौजी हों चाहे गैर-फौजी, मै अनुरोध करूँगा कि वे दृढ श्रद्धा से भारत की सेवा करें और सचाई, परिश्रम, योग्यता और निष्पक्षता से अपने कर्त्तव्य का पालन करें। जो इस संकट के समय

अपना कर्त्तव्य नही पालन करता वह भारत और उसके लोगो के प्रति अपने कर्त्तव्य से चूकता है ।

देश के युवकों से मैं विशेष रूप से अनुरोध करूंगा, क्योंकि वे आने वाले कल के नेता हैं और उन पर भारत के मान और स्वतंत्रता की रक्षा का भार आयेगा।

मेरी पीढ़ी एक बीतती हुई पीढ़ी है और शीघ्र ही हम भारत की प्रज्वलित मशाल, जो कि उसकी महान और सनातन आत्मा की प्रतीक है, युवा हाथों और सुदृढ़ बाहुओं को सौंप देंगे । मेरी यह कामना है कि वे उसे ऊपर उठाए रक्खें और उसके प्रकाश को कम अथवा धुंधला न होने दें, जिससे कि वह प्रकाश घर-घर में पहुँच कर, हमारी जनता में श्रद्धा, साहस और समृद्धि उत्पन्न करे ।

महात्मा गांधी

प्रकाश बुझ गया

मित्रो और साथियो, हमारे जीवन से प्रकाश जाता रहा और सब तरफ अंधेरा छा गया है। मैं नहीं जानता कि मैं आपसे क्या कहूँ। हमारे प्रिय नेता, जिन्हें हम बापू कहते थे, जो राष्ट्रपिता थे, अब नहीं रहे। शायद मेरा ऐसा कहना गलत है। फिर भी हम उन्हें अब न देखेंगे, जैसा कि हम इन बहुत से वर्षों से देखते आए हैं। उनके पास दौड़ कर सलाह लेने या उनसे सान्त्वना पाने के लिए अब हम न जा सकेंगे। यह एक भयानक आघात है—केवल मेरे लिए ही नहीं बल्कि इस देश के करोड़ो लोगो के लिए। और इस आघात की व्यथा मेरे या अन्य किसी के परामर्श से कम नहीं हो सकती।

मैंने कहा कि प्रकाश जाता रहा, लेकिन मैंने गलत कहा; क्योंकि वह प्रकाश, जिसने कि इस देश को आलोकित किया, कोई साधारण प्रकाश नहीं था। जिस प्रकाश ने इस देश को इन अनेक वर्षों में आलोकित किया है वह आने वाले अनेक वर्षों तक इस देश को आलोकित करता रहेगा और एक हजार वर्ष बाद भी यह प्रकाश इस देश में दिखाई देगा और दुनिया इसे देखेगी और यह अनगिनत हृदयो को शांति देगा। क्योंकि वह प्रकाश तात्कालिक वर्तमान से कुछ अधिक का प्रतीक था, वह जीवित और शाश्वत सत्यो का प्रतीक था और हमें ठीक मार्ग का स्मरण दिलाते हुए तथा इस प्राचीन देश को भूलों से बचाते हुए स्वतंत्रता की ओर ले जाने वाला था।

यह सब तब हुआ है, जबकि उनके सामने बहुत कुछ और करने को था। हम उनके संबंध में ऐसा कभी नहीं सोच सकते थे कि उनकी आवश्यकता नहीं रही या यह कि उन्होंने अपना काम पूरा कर दिया। लेकिन अब, विशेष रूप से, जबकि हमारे सामने इतनी कठिनाइयां हैं, उनका हमारे बीच में न होना एक ऐसी चोट है जिसका सहन करना बड़ा कठिन है।

एक पागल आदमी ने उनके जीवन का अन्त कर दिया। जिसने ऐसा किया उसे मैं पागल ही कह सकता हूँ। फिर भी, पिछले वर्षों और महीनो में देश में काफी विष फैलाया गया है और उस विष ने लोगो के मन पर अपना असर डाला है। हमें इस विष का सामना करना है, हमें इस विष को जड़ से उखाड़ना है, और हमें उन सभी संकटो का सामना करना है, जो कि हमें

---

३० जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

घेरे हुए हैं। और उनका सामना करना है, पागलपन या बुराई से नही, बल्कि उसी ढंग से, जिस ढग से कि हमारे प्रिय नेता ने हमे सिखाया है।

अव पहली वात याद रखने की यह है कि हममे से किसी को क्रोध के आवेश में कदापि कोई अनुचित कार्य नही करना है। हमे सशक्त और दृढ निश्चयी लोगों की भाँति आचरण करना है, सभी संकटो का जो हमे घेरे हुए है, दृढता से सामना करते हुए और अपने महान शिक्षक और महान नेता की उन आज्ञाओ का, जो उन्होने दी है, दृढता से पालन करते हुए और सदा यह याद रखते हुए आचरण करना है कि यदि, जैसा मुझे विश्वास है, उनकी आत्मा हमें देख रही है, तो किसी भी वात से उनकी आत्मा इतनी अधिक अप्रसन्न नही हो सकती जितनी कि यह देख कर कि हमने कोई निकृष्ट आचरण किया है या कोई हिंसा का काम किया है।

इसलिए हमे ऐसा काम न करना चाहिये। लेकिन इसका यह तात्पर्य नही कि हम कमजोरी दिखलावे, वल्कि यह कि हमे मजवूती से और मिल-जुल कर अपने आगे की सव कठिनाइयो का सामना करना चाहिए। हमे एक साथ मिल कर रहना चाहिए और इस महान विपत्ति के सामने अपनी छोटी-छोटी तकलीफो और कठिनाइयो और आपस के झगड़ो का अन्त कर देना चाहिए। यह महान दुर्घटना हमारे लिए इस वात की द्योतक है कि हम जीवन की सभी वड़ी वातो को याद रक्खे और उन सभी छोटी वातो को, जिनका हम जरूरत से अधिक ध्यान करते रहे है, भूल जावे। अपनी मृत्यु द्वारा उन्होने हमे जीवन की वड़ी वातो का, उस जीवित सत्य का, स्मरण दिलाया है, और यदि हम इसे याद रखते है, तो भारत का भला होगा।

कुछ मित्रो का प्रस्ताव था कि महात्मा गांधी का शव कुछ दिनो तक लेपादि द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय, जिससे कि करोड़ों व्यक्ति उन्हें अपनी अतिम श्रद्धांजलि भेंट कर सकें। लेकिन यह उनकी इच्छा थी, और इसे उन्होने वार-वार दुहराया था कि ऐसी कोई वात न होनी चाहिए। हमे ऐसा न करना चाहिए। वे लेपादि द्वारा शरीर को सुरक्षित रखने के घोर विरोधी थे। इसलिए हम लोगो ने उनकी इच्छा का पालन करने का निश्चय किया, दूसरो की इच्छा इससे भिन्न चाहे जितनी रही हो।

इसलिए शनिवार को दिल्ली शहर में यमुना नदी के किनारे उनका दाह-सस्कार होगा। शनिवार को दोपहर से पहले ११-३० वजे विड़ला-भवन से उनकी अर्थी निकाली जायगी और यह एक पूर्व-निश्चित मार्ग से चलकर यमुना नदी तक जायगी।

शाम के लगभग ४ बजे दाह संस्कार होगा। स्थान और मार्ग की सूचना रेडियो तथा समाचार-पत्रों द्वारा दे दी जायगी।

दिल्ली के लोगों को, जो अपनी अंतिम श्रद्धांजलि भेंट करना चाहें, इस मार्ग के किनारे इकट्ठे हो जाना चाहिए। मैं यह सलाह न दूंगा कि बहुत लोग बिड़ला भवन में आवें, बल्कि यह कि बिड़ला भवन से लेकर यमुना तक के इस लम्बे मार्ग के दोनों ओर इकट्ठे हो जायें। मैं उम्मीद करता हूँ कि वे शांतिपूर्वक और बिना प्रदर्शन के ऐसा करेंगे। इस महान आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पण करने का यही सबसे अच्छा और उपयुक्त ढंग होगा। इसके अतिरिक्त शनिवार हम सबके लिए उपवास तथा प्रार्थना का दिन होना चाहिए।

जो लोग दिल्ली से बाहर भारत में अन्य जगहों में रहते हैं, वे भी निस्संदेह इस अंतिम श्रद्धांजलि में, जिस रूप में उनसे होगा, भाग लेंगे। उनके लिए भी यह दिन उपवास और प्रार्थना का होना चाहिए। और दाह-कर्म के लिए निश्चित समय पर, यानी शनिवार को सायंकाल ४ बजे लोगों को नदी अथवा समुद्र तट पर जाकर प्रार्थना करनी चाहिए। जब हम प्रार्थना करें, तो सबसे बड़ी प्रार्थना यह होगी कि हम इस बात की प्रतिज्ञा करें कि अपने को सत्य के लिए और उस उद्देश्य के लिए, जिसके लिए हमारा यह महान देशवासी जीवित रहा और मरा, हम अपने को अर्पित करेंगे। यही सबसे अच्छी प्रार्थना है जो हम उनके और उनकी स्मृति के प्रति भेंट कर सकते हैं। यही सबसे अच्छी प्रार्थना है जो कि हम भारत और अपने लिए कर सकते हैं। जय हिन्द।

एक गरिमा अदृश्य हो गई

महोदय, आपने जो कुछ कहा है उससे क्या मै अपने को सम्मिलित कर सकता हूँ? प्रमुख व्यक्तियो के निधन पर इस सभा में श्रद्धाजलि भेट करने और उनकी प्रशंसा तथा शोक स्मृति मे कुछ कहने की परम्परा रही है। अपने मन में मै निश्चय नही कर पाया हूँ कि मेरे लिये या इस सभा में किसी के लिये भी इस अवसर पर अधिक कहना उपयुक्त भी होगा, क्योकि मै व्यक्तिगत रूप से भी और भारत सरकार का मुखिया होने के नाते भी घोर लज्जा का अनुभव करता हूँ कि हम अपनी सबसे महान् निधि की रक्षा करने मे असफल रहे। हम इस सम्बध मे ठीक उसी प्रकार असफल रहे है जिस प्रकार कि कई महीनो से हम बहुत से निर्दोष पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो की रक्षा करने में असफल रहे हैं। यह हो सकता है कि यह भार और कार्य हमारी या किसी भी सरकार की शक्ति से बाहर का रहा है। फिर भी यह असफलता है। और आज यह बात कि इस महान व्यक्ति को, जिसको हम असीम आदर और प्रेम प्रदान करते रहे है, हम न बचा सके, हम सभी के लिये लज्जाजनक है। एक भारतीय की हैसियत से मेरे लिये यह लज्जा की बात है कि एक भारतीय ने उनके विरुद्ध अपना हाथ उठाया; एक हिन्दू की हैसियत से भी मेरे लिये लज्जा की बात है कि एक हिन्दू ने आज के सब से बड़े भारतीय और इस युग के सब से महान् हिन्दू के प्रति यह नृशस कर्म किया।

हम जब लोगों की प्रशंसा करते है तो भली भाँति चुने हुए शब्दो मे करते है, और हमारे पास बड़प्पन की कुछ माप-तौल होती है। पर हम उनकी किस प्रकार प्रशसा करे और माप-तौल करें, क्योकि वे उस साधारण मिट्टी के बने ही न थे जिसके कि हम बने है। वे आये, उनका जीवन काफी लम्बा रहा और वे उठ गये। इस सभा मे उनके प्रति हमारी प्रशसा के शब्दो की आवश्यकता नही, क्योकि उन्होने जीवन में जो प्रशसा प्राप्त की वह इतिहास के किसी जीवित व्यक्ति को प्राप्त नही हुई। उनकी मृत्यु के बाद इन दो-तीन दिनो में उन्हे संसार भर की श्रद्धांजलि प्राप्त हुई है, हम उसमें क्या जोड़ सकते है? हम, जो कि उनके बच्चे रहे है, और कदाचित् उनके शरीर से उत्पन्न बच्चो से अधिक उनके सन्निकट रहे है, उनकी प्रशसा कैसे कर सकते है? क्योकि हम चाहे कितने ही, अयोग्य हो, हम, अधिक या कम अश मे, उनकी आत्मा के बच्चे रहे है।

सविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में २ फरवरी, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

एक आलोक जाता रहा और वह सूर्य जो हमारे जीवन को गर्मी और प्रकाश देता था, डूब गया और हम ठंड और अंधकार में कांप रहे है। फिर भी, वह न चाहेगा कि हम ऐसा अनुभव करें। आखिर उस आलोक ने, जिसे हमने इतने वर्षों तक देखा, दैवी ज्वाला के उस मनुष्य ने, हमें भी बदला—और हम जैसे भी है, इन वर्षों में उन्ही के बनाये हुए है, और उस दैवी ज्वाला से हममें से बहुतो ने एक छोटी-सी चिनगारी ग्रहण की है, जिसने हमें शक्ति दी है, और जिसने हमने कुछ हद तक उनके निर्दिष्ट मार्ग पर काम कराया है। इसलिये यदि हम उनकी प्रशंसा करते है तो हमारे शब्द कुछ तुच्छ लगते है, और यदि हम उनकी प्रशंसा करते है तो हम कुछ हद तक अपनी भी प्रशंसा करते है। बड़े आदमियो और विख्यात आदमियो के कांसे और संगमर्मर के स्मारक बनाये जाते है, लेकिन यह ज्योति-पुरुष अपने जीवन-काल में अनेक कर्तव्यों द्वारा करोड़ो-करोड़ो हृदयों में प्रतिष्ठित हुआ, इससे हम सभी—चाहे थोड़ी मात्रा में ही सही—कुछ कुछ वैसे ही बन गये जैसे कि वे थे। इस प्रकार वे सारे भारत में फैल गये, न केवल महलो में, या चुनी हुई जगहो में या सभाओ में बल्कि छोटे और पीड़ित लोगो की प्रत्येक झोंपडी और कुटिया मे। वे करोड़ो व्यक्तियों के हृदयो में जीवित है और अनत युगो तक जीवित रहेगे।

तो हम उनके बारे में और सिवा इसके क्या कह सकते है, कि इस अवसर पर हम विनम्रता का अनुभव करें। उनकी प्रशंसा करने के हम अधिकारी नही है—उनकी, जिनका हम पूरी तरह और पर्याप्त रूप में अनुसरण नही कर सके। यह उनके प्रति प्रायः अन्याय होगा कि हम उनके विषय में कुछ शब्द कह कर रह जायें, जब कि वे हम से काम और मेहनत और त्याग की अपेक्षा करते थे। बहुत अंशो में, पिछले तीस या अधिक सालो में, उन्होने इस देश को त्याग की ऐसी पराकाष्ठा तक पहुँचाया, जैसी कि इस क्षेत्र में अन्यत्र न मिलेगी। वे इसमें सफल हुए। फिर भी अन्त में ऐसी घटनाएं घटी जिनसे निस्सदेह उन्हे बड़ा ही कष्ट पहुँचा, यद्यपि उनकी कोमल मुखाकृति से मुसकान कभी न गई और न उन्होने किसी से कोई कठोर वचन कहा। फिर भी, उन्हे कष्ट हुआ होगा—कष्ट इस बात का कि यह पीढ़ी जिसे कि उन्होने शिक्षा दी थी, कसौटी पर पूरी न उतरी, और कष्ट इस बात का कि हम लोग उनके दिखाए मार्ग को छोडकर चले। और अन्त में उन्ही के एक बच्चे के हाथ ने—क्योंकि वह भी तो किसी भी दूसरे भारतीय की तरह उनका बच्चा ही है—उन्हे मार गिराया।

बहुत युगो बाद इतिहास इस काल पर, जिससे हम गुजरे है, अपना निर्णय देगा। वही इसकी सफलताओ और विफलताओ का निश्चय करेगा। हम लोग इसके इतने सन्निकट है कि ठीक-ठीक निश्चय नही कर सकते और यह नही समझ सकते कि

क्या हुआ है, और क्या नहीं हुआ। हम जो कुछ जानते हैं वह यह है कि एक गरिमा थी जो अब नही रही। हम जो कुछ जानते है वह यह है कि तत्काल अंधकार है, यद्यपि निश्चय ही वह बहुत घना अंधकार नही है क्योंकि जब हम अपने दिलो को देखते है तो अब भी उस जीवित ज्वाला को पाते हैं, जिसे उन्होंने प्रदीप्त किया था और यदि यह जीवित ज्वाला मौजूद है, तो इस देश मे अन्धकार नही हो सकता और हम लोग, अपने यत्न से उनको याद करते और उनके मार्ग पर चलते हुए, इस देश को, स्वयं तुच्छ होते हुए भी, जो ज्वाला उन्होने हमें दी, उसी से फिर आलोकित करने में सफल होगे।

वे कदाचित् अतीत भारत के—और क्या मै यह कहूँ कि भविष्य के भारत के भी ?—सब से बड़े प्रतीक थे जो हमें प्राप्त हो सकते थे। हम उस अतीत और आने वाले भविष्य के बीच वर्तमान के भयावह छोर पर खडे है और हम सभी प्रकार के खतरो का सामना कर रहे है, और सब से बड़ा खतरा कभी-कभी विश्वास की कमी है, जो हमारे सामने उपस्थित होती है, नैराश्य की भावना है जो सामने आती है, हृदय और आत्मा का हताश होना है जिसे हम उस समय अनुभव करते है जब कि हम आदर्शों को गिरता देखते हैं, जब हम देखते है कि वे बडी बाते, जिनकी हम चर्चा करते थे, थोथे शब्द मात्र रह गए है, और जीवन दूसरी ही दिशा में जाता दीखता है। फिर भी, मै विश्वास करता हूँ कि कदाचित् यह समय शीघ्र ही बीत जायगा।

अपने जीवन में तो यह ईश्वरीय पुरुष महान् था ही, वह अपनी मृत्यु में भी महान् हुआ, और मुझे इसमें किंचित् सदेह नही कि अपनी मृत्यु द्वारा भी उसने उस बड़े उद्देश्य की सेवा की, जिसकी कि वह आजन्म करता रहा। हम उनके लिये शोकाकुल है, और सदा शोकाकुल रहेगे क्योंकि हम मनुष्य है और अपने प्यारे स्वामी को नही भूल सकते। लेकिन मै जानता हूँ कि वे इसे न पसन्द करते कि हम उनके लिये शोक करे। जब उनके प्रियतम और निकटतम व्यक्ति उठ गये है तो उनकी आँखो में आँसू नही आये है—केवल उनमे एक दृढ निश्चय उत्पन्न हुआ है कि जिस महान् उद्देश्य की सेवा करना उन्होने चुना उसमे वे लगे रहे। इसलिये यदि हम केवल शोकाकुल होते है तो वे हमे झिड़केंगे। यह उनको श्रद्धांजलि भेंट करने का कोई ढंग नही। एकमात्र ढंग यह है कि हम अपना दृढ निश्चय प्रकट करें और यह नई प्रतिज्ञा करें कि हम उचित आचरण करेंगे और अपने को उस महान् कार्य के लिये समर्पित करेंगे जिसे कि उन्होंने उठाया था, और जिसे कि उन्होंने इतनी बड़ी हद तक पूरा किया। इसलिये हमें काम करना है, हमे परिश्रम करना है, हमें त्याग करना है और इस प्रकार, कम-से-कम कुछ हद तक, यह सिद्ध करना है कि हम उनके योग्य अनुयायी हैं।

महोदय, जैसा आपने कहा, यह स्पष्ट है कि यह घटना, यह दुर्घटना, केवल एक पागल आदमी का असंबद्ध कृत्य नहीं है। यह परिणाम है अहिंसा और घृणा के उस खास वातावरण का जो इस देश में कई महीनो और वर्षों से, खासकर पिछले कई महीनो से बना हुआ है। वह वातावरण हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमें घेरे हुए है, और यदि हमें उस उद्देश्य की पूर्ति करनी है जिसे कि उन्होंने हमारे सामने रक्खा, तो हमें इस वातावरण का मुकाबला करना है, उसके विरुद्ध लड़ना है और घृणा और हिंसा, आदि बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकना है।

जहां तक इस सरकार का संबंध है, मै आशा करता हूं कि वह इसका सामना करने में कोई यत्न, कोई उद्योग उठा न रखेगी, क्योंकि अगर हम ऐसा नहीं करते, अगर हम अपनी कमजोरी से या किसी कारण से जिसे हम पर्याप्त समझते है, शब्द या लेख या कार्य द्वारा इस हिंसा को और घृणा के इस प्रचार को रोकने का समुचित प्रयत्न नही करते तो हम वास्तव में इस सरकार में रहने के योग्य नही है, हम लोग निश्चय ही उनके अनुयायी होने के योग्य नही है और हम उस महान् आत्मा के लिये, जो दिवंगत हुई है, प्रशंसा के शब्द कहने के योग्य भी नही है। इसलिये इस अवसर पर, या किसी भी अवसर पर, जब हम इस महान् दिवगत स्वामी के विषय में सोचें तो उचित यही है कि हम काम और परिश्रम और त्याग को ध्यान में रखकर सोचें। जहां भी हम बुराई देखते हो उसका सामना करने के विचार से और जिस रूप में उन्होंने हमारे सामने सत्य को रक्खा है उसे ग्रहण किये रहने के विचार से हम उनके विषय में सोचें, और यदि हम ऐसा करेंगे, तो हम चाहे जितने अयोग्य हो, हम कम से कम अपने कर्तव्य का पालन करेंगे और उनकी आत्मा के प्रति उचित श्रद्धांजलि भेंट करेंगे।

वे चले गये और सारा भारत आज अपने को अनाथ अनुभव कर रहा है और बिछोह के शोक में डूब रहा है। हम सभी को इस भावना का आभास है और मै नही कह सकता कि इससे हम कब मुक्त हूंगे। साथ ही साथ हम एक गर्वपूर्ण कृतज्ञता की भावना का भी अनुभव कर रहे है कि इस पीढ़ी का सौभाग्य रहा है कि हम इस महान् व्यक्ति के संपर्क में आये। आने वाले युगो में, अब से सैकडो, और संभवतः हजारो वर्ष बाद, लोग इस पीढी का ध्यान करेंगे जब कि यह ईश्वरीय पुरुष इस धरती पर चलता था, और हमारा ध्यान करेंगे, जो कि चाहे जितने छोटे रहे हो, उनके दिखाये मार्ग पर और उस पवित्र धरती पर, जिस पर उनके पैर पड़े, चल सके है। आइये हम उनके योग्य बनें।

1713

अंतिम यात्रा

आखिरी सफर खतम हुआ, अंतिम यात्रा समाप्त हो गई। प्रायः ५० वर्ष से भी अधिक समय तक महात्मा गांधी हमारे इस देश मे सर्वत्र भमण करते रहे, हिमालय और सीमा-प्रान्त और ब्रह्मपुत्र से लेकर कन्याकुमारी तक सारे प्रातो में, देश के सभी हिस्सो में वे घूमे—खाली तमाशा देखने के लिये नही बल्कि जनता की सेवा करने के लिये, जनता को पहिचानने के लिये। शायद और कोई भी भारतीय ऐसा न होगा जिसने इस भारत देश में इतना भ्रमण किया हो, यहाँ की जनता को इतना पहिचाना हो, और जनता की इतनी सेवा की हो। तो उनकी इस दुनिया की यात्रा खत्म हुई। हमारी और आपकी यात्राएँ अभी जारी है।

कुछ लोग उनके लिए शोक करते है। और शोक करना कुछ मुनासिब भी है, उचित भी है। लेकिन शोक किस बात का ? गाधी जी के गुजरने का या किसी और बात का? महात्मा जी का जीवन और महात्मा जी की मृत्यु दोनो ही ऐसी रही है, कि हमेशा के लिये हमारा देश उनकी वजह से चमकता रहेगा।

शोक किस बात का ? हां, शोक अपने पर है, महात्मा जी पर नही। अपने ऊपर, अपनी दुर्बलता पर, हमारे दिलो में जो द्वेष है, जो अदावतें है और जो लड़ाइयां हम आपस में लड़ते है उन पर। याद रखिये, महात्मा जी ने किस बात के लिए अपनी जान दी ? याद रखिये, क्या बात पिछले चन्द महीनो से उन्होने विशेष-रूप से पकड़ी थी ? अब हम उनका आदर करते है परन्तु आदर खाली नाम का तो नही होना चाहिये, आदर होना चाहिये उनकी बातो का, उनके उपदेश का और विशेषकर उस बात का जिसके लिये उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया। और फिर हम और आप यहाँ इस त्रिवेणी से, गगा तट से, घर जाकर जरा अपने अपने दिलो से पूछें कि हमने अपना कर्तव्य कितना किया। हमें जो रास्ता महात्मा जी ने दिखाया था उस पर कहाँ तक हम चले, कहा तक हमने आपस में मेल रखने की कोशिश की, कहां तक लड़ाई की ? अगर इन बातो पर हम विचार करें और फिर सही रास्ते पर चलें तभी हमार लिये और हमारे देश के लिये भला है। एक महापुरुष हमारे देश में आया, दुनिया भर मे उसकी चमक फैली, हमारा देश भी चमका और फिर

---

१२ फरवरी, १९४८ को प्रयाग में त्रिवेणी सगम पर पूज्य बापू के अस्थि-विसर्जन के बाद दिया गया भाषण।

हमारे देश के और हमारे ही एक भाई के हाथ से उनकी हत्या हुई। क्या बात है? आप सोचें। एक आदमी पागल हो या न हो, लेकिन क्या बात है कि इस आदमी ने हत्या की। इसलिये कि इस देश में एक दूसरे के दिलों में, एक दूसरे के विरुद्ध, दुश्मनी और लड़ाई-झगड़े का विष फैलाया गया है। उसी विष में से ये सब जहरीले पौधे निकल रहे हैं। अब आपका और हमारा काम है कि उस जहर को हम खत्म करें। हमने अगर महात्मा जी से कुछ सबक सीखा है तो किसी एक व्यक्ति से, एक शख्स से, दुश्मनी का कोई सवाल ही नही उठता। हम किसी से दुश्मनी नहीं करेंगे, लेकिन जो बुरा काम है, जो जहरीली बात है, उससे दुश्मनी करेंगे, उसका मुकाबला करेंगे और उसको हरायेंगे। यह सबक हमने महात्मा जी से सीखा है। हम कमजोर है, फिर भी उनके साथ रहकर कुछ बड़प्पन हममें भी आ गया है। उनके साये में हम भी लोगो को कुछ लम्बे चौड़े मालूम होने लगे। लेकिन असल में तेज उनका था, प्रताप उनका था, शक्ति उनकी थी और रास्ता उनका था। कुछ लड़खड़ाते, कुछ ठोकरें खाते हम भी उस रास्ते पर चले, इसलिये कि हम भी कुछ सेवा कर सकें। देश का अब वह सहारा गया, लेकिन मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह गया? क्योकि यहाँ आज जो लाखो आदमी मौजूद हैं उनके अन्दर से और देश के करोड़ो आदमियो के दिलो से क्या गांधी जी की तस्वीर हटेगी? नहीं, क्यो कि आज जिन करोड़ो लोगो ने उनको देखा है वे याद रखेंगे। आगे नई नस्लें आयेगी, नये अंकुर उगेंगे, जो अपनी आखो से उन्हे नही देखेंगे, लेकिन फिर भी उनके दिल में वह तस्वीर जमी रहेगी, क्योकि देश के इतिहास में वह जम गई है। आज कहा जाता है कि वह गांधी-युग एक तरह से खत्म हुआ, जो ३०–४० वर्ष हुए भारत में शुरू हुआ था। लेकिन खत्म कैसे हुआ, समाप्त कैसे हुआ? वह तो एक तरह से, एक दूसरे ढग से अब शुरू हुआ है। अब तक उनके साये में हम उनका सहारा लेते थे, उनसे हमें मदद मिलती थी। अब हमें और आपको अपने पैरो पर खड़ा होना है। हाँ, उनके उपदेश का सहारा लेना है, उनकी याद का सहारा लेना है, उनसे थोड़ा-बहुत जो सीखा है उसको सामने रखकर चलना है। सहारा तो उनका काफी है; लेकिन अब अपने पैरो पर खड़ा होना है और विशेषकर जो उनका आखिरी उपदेश है, सदेश है, उसको याद रखना है। वह उपदेश यह है कि हमें डरना नही चाहिये। वे हमेशा यह सिखाते थे कि हम अपने दिल से डर निकाल दें, द्वेष निकाल दें, एक दूसरे से लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दें, और अपने देश को आजाद करें। उन्होने हमारे देश को आजाद कराया, स्वराज्य लिया। स्वराज्य लिया और ऐसे तरीके से लिया कि सारी दुनिया को आश्चर्य हुआ। वह हमें मिला तो, लेकिन मिलते वक्त हम उनका सबक भूल गये, हम बहक गये और लड़ाई-झगड़ा करने लगे जिससे देश का नाम बदनाम हुआ। आज कल हमारे यहाँ कितने ही नौजवान है जो बहके हुए हैं और न जाने क्या-क्या नारे लगाते है, और न जाने क्या-क्या गलत बातें कहते है।

पर वे इस देश के नौजवान हैं। हमें उनको सही रास्ते पर लाना है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि लोगो के दिलों में, यह जो द्वेष का जहर फैला हुआ है, जो कहता है कि हिन्दू को मुसलमान से लड़ना है मुसलमान को हिन्दू से लड़ना है या सिख को और किसी से लड़ना है, जो धार्मिक झगड़े पैदा करता है या धर्म के नाम पर राजनैतिक झगडे पैदा करता है, वह बुरी चीज है, और उसे दूर करना ही होगा। उसने हमारे देश को नीचे गिराया है और अगर हम होशियार नही होते तो हमें तथा हमारी आजादी को तबाह करेगा। इसलिये हिन्दुस्तान को होशियार करने के लिये महात्मा जी ने लगभग दो-तीन सप्ताह पहले उपवास किया था। उनकी तपस्या और उनके बलिदान से जनता कुछ जागी, कुछ हम ने और जनता के प्रतिनिधियो ने जाकर उनसे इकरार किया, प्रतिज्ञा की कि हम इस गलत रास्ते पर नही चलेंगे। उन्होंने अपना व्रत उपवास खत्म किया। उस समय किसको मालूम था कि थोड़े ही दिनो मे मौन और उपवास का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो जायगा ? सप्ताह में, वे एक दिन मौन रहते थे, पर आज हमेशा के लिये हमारे और आपके लिये मौन हो गये। तो आखिरी सबक उनका यह था इस लड़ाई-झगड़े को रोका जाय। बहुत कुछ लोग उस सबक को समझे, आप और हम भी सब समझे और देश भी समझा। आप यह याद रखिये कि अगर ऐसा लड़ाई-झगडा जारी हुआ, अगर ऐसी बातें हमारे देश में हुईं, जिनका एक नमूना और बहुत ही खतरनाक नमूना महात्मा जी की मौत है, अगर हमारे देश मे लोग हाथ उठाने लगे, और महात्मा जी जैसे महापुरुष की हत्या करने लगे, सो भी इस लिये कि वे उनकी राय से सहमत नही हैं या उनकी राजनीति को समझते नही हैं, तो यह देश के लिये बड़ा खतरनाक होगा। हम कहते है कि हमारे देश में जनता का राज्य हो, स्वराज्य हो, इसके माने क्या है ? इसके माने ये है कि हम एक-दूसरे को समझें, सारी जनता अपने प्रतिनिधि चुने और जो बात वे निश्चय करें, वह की जाय। अगर इस तरह हम एक-दूसरे को समझ कर नही चलते और हर आदमी एक दूसरे से लडता है तो देश कैसे बचेगा ? वह तो तबाह हो जायगा। यहाँ हमारे देश के फौज के बहुत से सिपाही बैठे है। अपने देश की आजादी और देश के लिये गरूर करना उनका कर्तव्य है। वे देश की सेवा करें, देश की रक्षा करें। अगर सिपाही एक-दूसरे से लड़ा करें तो फौज की फौज ही खत्म हो जायगी। फिर फौज की ताकत तो नहीं रही। इस तरह देश की ताकत और देश की शक्ति एक दूसरे से लड़ने से खत्म होती है। झगड़े की जो बाते हो उनका मिलकर और एक-दूसरे को समझाकर, फैसला कर लेना, यही ठीक स्वराज्य है, ठीक जनता का राज्य है। तो इस राय पर जो लोग नही चलना चाहते वे दूसरे रास्ते पर चलते है। किन्तु जब वे हमको और आपको नही समझा सकते तो फिर तलवार और बन्दूक लेकर लोगो को मारना शुरू कर देते है।

वे अपने भाइयों को, इस लिये मारते हैं क्योंकि जनता उनके विरुद्ध है। अगर जनता उनके विरुद्ध न हो तो वे फिर जनता के बल पर हुकूमत की कुर्सी पर बैठ सकते हैं। लेकिन जब वे यह जानते हैं कि जनता उनके विरोध में है और वे जनता को अपनी तरफ नहीं ला सकते तो झगडा-फसाद करते हैं ताकि हुकूमत में उलट-फेर हो और उससे वे कोई फायदा उठायें। लेकिन यह समझना लड़कपन है कि मार-पीट या झगड़ा-फसाद करके इस देश की हुकूमत बदली जा सकती है या उसमें कोई उलट-फेर किया जा सकता है। जो आदमी कुछ भी नहीं समझता वही ऐसी बात कह सकता है। फिर भी ऐसी बात हुई तो क्यों हुई? इसलिये कि हमारे देश के बहुत से लोगों ने, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो ऊँची-ऊँची पदवियों पर हैं, इस जहरीले विष की फिजा को देश में बढ़ाया। अब हमारा और आपका काम है कि इस जहर को पकड़ें और इसे खत्म करें, नहीं तो याद रखिये यह देश इस जहर में डूब जायगा। मुझे विश्वास है कि हम इसका विरोध पूरी तरह करेंगे। हमने, बहुत कुछ खो कर यह सबक सीखा है। हमारे दिल और हाथ-पैर इसलिये कमजोर थे कि महात्मा जी की मृत्यु हो चुकी है। हम और आप में से कितने ऐसे हैं जो इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करेंगे कि हम ऐसा झगड़ा-फसाद नहीं होने देंगे, जिससे महात्मा जी मरे, जिसमे हमारे देश का, ही नहीं सारी दुनिया का महापुरुष मरा। इस प्रतिज्ञा को जहाँ तक हममें ताकत है, हम पूरा करेंगे।

तो आप और हम सब इस गंगा के तट से वापस जायंगे। हमारा दिल उदास है, उसमें अकेलापन है। विचार आता है कि क्या अब कभी हम गांधी जी को नहीं देखेंगे। दौड़-दौड़ कर हम उनके पास जाते थे। जब कोई दिल में परेशानी होती थी, जब कोई बड़ा प्रश्न होता था और समझ में न आता था तब हम उनसे सलाह लेते थे। अब कोई सलाह देने वाला नहीं है और न कोई हमारे बोझ को उठाने वाला है। हमारे देश में न जाने कितने हजार या लाख पुरुष उनको अपना मित्र समझते थे और उनके पास दौड़-दौड़ कर जाते थे। सभी उनके बच्चे से हो गये थे। इसीलिये उनका नाम 'राष्ट्रपिता' था। वे हमारे देश के पिता थे। उनके न रहने से देश के लाखों करोड़ों घरों में आज उतना ही शोक है जितना कि पिता के मर जाने से होता है। तो हम यहाँ से जायंगे उदास होकर, अकेले होकर। पर साथ ही हम यहाँ से जायंगे एक गरूर लेकर—गरूर इस बात का कि हमारे देश में हमारा नेता एक ऐसा महापुरुष था जिसने सम्पूर्ण देश को सचाई के रास्ते पर दूर तक पहुँचा दिया, और हमें जो लड़ाई का तरीका बताया वह भी हमेशा सचाई का था। याद रखिये, उन्होंने जो रास्ता हमें दिखाया वह लड़ाई का था, वह चुपचाप हिमालय की चोटी पर बैठने वाले महात्मा का नहीं था। वे हमेशा अच्छे कामों के लिये लड़ाई लड़ने वाले थे।

उनकी लड़ाई सत्य, अहिंसा और शांति की थी, जिसमें उन्होंने ४० करोड़ आदमियों को आजाद कराया। इसलिये हमें चुपचाप नही बैठा रहना है। हमें अपना कर्तव्य पूरा करना है और हमारा कर्त्तव्य यह है कि हमने जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूरा करें और हमारे देश में जो विष फैला है और खराबियाँ पैदा हुई हैं उनको हटाकर सच्चाई के रास्ते पर, धर्म के रास्ते पर चले। हम इस देश को ऐसा स्वतंत्र और आजाद बनायें कि इसमें हर धर्म का आदमी, खुशी से मिलकर रहे और एक-दूसरे की सहायता करे और दुनिया को भी हम रास्ता दिखाये। यह प्रतिज्ञा करके हम यहां से जायं तो हमारे लिये भला है। हमने एक बड़ा सबक तो सीखा और अगर हम अपनी दुर्बलता के कारण इस बात को नही कर सके, तो फिर यह कहा जायगा कि एक महापुरुष आया और चला गया लेकिन जनता उसके योग्य नही थी, बहकती थी, छोटी थी और उसके बड़प्पन को भी नही समझती थी।

इन पिछले तीस-चालीस वर्षों में आपने और हमने न मालूम कितनी बार 'महात्मा जी की जय' के नारे लगाये। सारे देश में वह आवाज गूंजी। परन्तु उस आवाज को सुनकर महात्मा जी का दिल दुखता था। वे अपनी जय क्यों चाहते। वे तो विजयी पुरुष थे। उनकी जय आप क्या करेंगे? जय तो हमारी और आपकी होने वाली है। उनकी जय तो है, हमेशा के लिये, एक विजयी पुरुष की हैसियत से। हजार—दस हजार वर्ष तक उनका नाम लिया जायगा। और जय हमारी और आपकी वे चाहते थे, इस देश की जनता की और विशेष कर गरीब जनता की। वे किसानों, हरिजन भाइयो, दरिद्रों और गिरे हुओ की सेवा करते थे और उनको जाकर उठाते थे। उनके ढंग पर उन्होंने अपना रहन-सहन बनाया और कोशिश की कि देश में कोई नीचा न हो। वे दरिद्रनारायण की चर्चा किया करते थे। इस तरीके से उन्होंने आपकी और हमारी जय चाही थी, देश की जय चाही थी। लेकिन हमारी और आपकी और देश की जय और तो कोई नही कर सकता था। वह तो हम अपने बाहुबल से ही कर सकते थे। इसलिये उन्होंने हमें मंत्र पढाया और सिखाया कि हम क्या करे और क्या न करें। वे खाली ऊपरी जय नही चाहते थे, और देशो की तरह शोरगुल मचाकर या हुल्लड और बेईमानी करके या तलवार बंदूक भी चला कर वे जीतना नही चाहते थे, क्योंकि ऐसी जीत बहुत दिनो तक नही चलती। सत्य की विजय ही स्थायी विजय होती है। इसलिये अपनी लड़ाई में उन्होंने सत्य और अहिंसा के ही अस्त्र का सदा प्रयोग किया। जिस विजय की नींव सत्य पर रखी जाती है, उस पर कितनी ही बड़ी इमारत बनाई जा सकती है। ऐसी इमारत कभी गिरती नही, क्योंकि उसकी बुनियाद मजबूत है। आज कल की दुनिया में क्रांति होती है, इन्कलाब और उलट-फेर होते है, कभी

देश नीचे जाता है कभी ऊपर। फरेब, झूठ और दगाबाजी का बोलबाला है, यह आज कल की राजनीति है। उन्होंने हमें दूसरी ही राजनीति सिखाई, सचाई, अहिंसा, और एक दूसरे से प्रेम करने की राजनीति। उन्होंने हमें बताया कि हमारे इस भारत देश में बहुत से धर्म और मजहब हैं। ये बहुत दिनों से चले आये हैं और अब भारत के ही हो गये हैं, विदेश के नहीं। ये सब हमारे हैं और इनके मनाने वाले सब हमारे भाई हैं। हमें मिलकर रहना है। किसी को अधिकार न हो कि वह दूसरे के अधिकार को छीने, किसी को अधिकार न हो कि वह किसी दूसरे का हिस्सा ले। हमारी जनता का राज्य हो और उसमें सारे ३०–४० करोड़ हिन्दुस्तानियो का बराबर का भाग हो। यह न हो कि थोड़े से अमीर लोग उसके बडे हिस्सेदार बन जायें और हमारी सारी जनता गरीब ही रह जाय। यह स्वराज्य महात्मा जी का नहीं था, आम जनता का था और आम जनता का स्वराज्य एक कठिन बात है; लेकिन धीरे-धीरे हम इस तरफ जा रहे हैं उनका सबक सीख कर और उनकी शक्ति और तेज लेकर हम धीरे-धीरे आगे बढ रहे हैं। लेकिन अब उनका यह आखिरी सबक देखकर समय आ गया है कि हम ज्यादा चुस्ती से आगे बढे और समझे, उनकी खराबियो को खत्म करें और फिर आगे बढें। तब असल में हम और आप बहुत जोरों से और सचाई से कह सकेंगे कि 'महात्मा गाधी की जय।'

सब से बड़ा भारतीय

दो सप्ताह हुए जब भारत ने और दुनिया ने उस दुर्घटना का हाल जाना जो भारत को आने वाले युगों तक कलंकित करेगी। ये दो सप्ताह दुख और हृदय-मथन के, प्रबल और दबे हुए भावों की उठती हुई बाढ के, और करोड़ो आंखों से गिरने वाले आंसुओं की धार के रहे है। काश कि ये आंसू हमारी कमजोरियो और छोटेपन को बहाकर हमें उस गुरु के कुछ योग्य बनाते जिसका मातम हम मना रहे है। इन दो सप्ताहो मे भू-मण्डल के कोने कोने से, राजाओ और सत्ताधारियों ने और बड़े-बड़े अधिकारियो और साधारण लोगो ने, जो स्वभावतः उन्हे अपना मित्र, साथी और नेता समझते थे, श्रद्धाजलियां भेट की है।

भावनाओं की यह बाढ धीरे-धीरे ही कम होगी जैसा कि इस तरह की भावनाओ का नियम है। फिर भी हममें से कोई भी ऐसा नही है जो पहले जैसा बना रहे, क्योंकि वे हमारे जीवन और चिंतन के ताने-बाने में समा गये थे।

लोग उनके स्मारक के रूप में उनकी कांसे या संगमर्मर की मूर्त्तियां या स्तम्भ बनाने की बात चलाते हैं और इस तरह उनका उपहास करते है और उनके सदेश को झूठा बनाते है। हम उन्हे किस तरह की श्रद्धाजलि भेट करे जिसे कि वे स्वयं पसंद करते? उन्होंने हमें जीने और मरने का ढंग बताया है और अगर हमने वह सबक नही सीखा, तो यही बेहतर है कि हम उनका कोई स्मारक न बनाये क्योंकि उनका जो एकमात्र उपयुक्त स्मारक हो सकता है वह है उनके दिखाये रास्ते पर श्रद्धा से चलना और जिन्दगी और मौत में अपना कर्तव्य पालन करना।

वे सबसे बडे हिन्दू और सबसे बडे भारतीय थे, इतना बड़ा अनेक पीढ़ियो में कोई नही हुआ, और उन्हे हिन्दू और भारतीय होने का गर्व था। उन्हे भारत से इसलिये प्रेम था कि उसने सदा ही कुछ अक्षुण्ण सत्यों का प्रतिनिधित्व किया है। यद्यपि वे बडे ही धार्मिक व्यक्ति थे और उस राष्ट्र के पिता कहलाये जिसे कि उन्होने स्वतत्रता दिलाई, फिर भी किसी संकीर्ण धार्मिक या राष्ट्रीय बधन से उनकी आत्मा बंधी नही थी। इस प्रकार वे एक महान् अन्तर्जातीय व्यक्ति बने। उनका विश्वास मनुष्य मात्र की एकता मे था और उन्होने विशेष रूप से सर्वत्र करोड़ों गरीबों, दुखियो और दलितो की सेवा को अपनाया था।

---

१४ फरवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित भाषण।

उनकी मृत्यु के अवसर पर जितनी श्रद्धाजलियाँ उन्हें भेंट हुईं उतनी इतिहास में किसी दूसरे मनुष्य को नहीं मिली। कदाचित् सब से अधिक प्रसन्नता उन्हें उन सौहार्दपूर्ण श्रद्धाजलियों से प्राप्त हुई होती जो कि पाकिस्तान के लोगो से उन्हे मिली हैं। दुर्घटना के दूसरे दिन हम सभी क्षण भर के लिये इस कड़ुएपन को भूल गये जो पिछले महीनों के संघर्ष और विलगाव के कारण हममें पैदा हो गया था, और गांधी जी भारत के लोगों के प्रिय नेता के रूप में सामने आये, उस भारत के जो कि इस जीवित राष्ट्र के बटँवारे से पहले था।

लोगों के हृदय और मस्तिष्क पर उनके इस गहरे प्रभाव का क्या कारण था? आने वाले युग इस विषय पर अपना निर्णय देंगे। हम लोग तो उनके समय से इतने निकट हैं कि उनके अद्भुत रूप से सपन्न व्यक्तित्व के सभी पहलुओ का ठीक ठीक अनुभव भी नही कर सकते। लेकिन हम लोग भी इस बात का अनुभव करते हैं कि सत्य के लिये उनमें महान् प्रेम था। यही सत्य-प्रेम उन्हे यह घोषणा करने के लिये बराबर प्रेरित करता था कि अच्छे उद्देश्य की सिद्धि बुरे साधनों द्वारा नही हो सकती। अगर साधन बुरे हों तो स्वय उद्देश्य में टेढापन आ जायगा। जब कभी वे समझते थे कि उन्होंने भूल की है तो यही सत्य-प्रेम उन्हे अपनी भूलो की घोषणा करने के लिये प्रेरित करता था—अपनी कुछ भूलो को उन्होने हिमालय जैसी बड़ी भूलें बताया है। यही सत्य प्रेम उन्हे बुराई और असत्य से, वह जहां भी हो और परिणाम जो भी हो, लड़ने की प्रेरणा देता था। इस सत्य ने गरीबो और अकिंचनों की सेवा को उनके जीवन की एक प्रबल प्रेरणा बना दिया था, क्योंकि जहा भी विषमता, भेद और दमन है वही अन्याय, बुराई और असत्य भी है। और इस तरह वे सामाजिक या राजनैतिक बुराइयो से पीड़ित सभी लोगों के प्रिय और एक आदर्श जनसमाज के प्रतिनिधि बन गये थे। इस सत्य के कारण ही ऐसा था कि जहा भी वे बैठ जाते वह स्थल मदिर बन जाता था और जहा उनके पैर पड जाते वह स्थल तीर्थ हो जाता था।

वे शरीर से हमें छोड़कर चले गये और अब हम उन्हे फिर कभी न देख सकेंगे, और न उनका मीठा स्वर सुन सकेंगे न दौड कर उनकी सलाह लेने जा सकेंगे लेकिन उनकी अमिट स्मृति और अमर सदेश हमारे साथ सदा बने रहेंगे। हम इनका आदर किस तरह कर सकते हैं और जीवन को उनके अनुरूप कैसे बना सकते हैं?

भारत में वे एकता के महान प्रवर्तक थे। उन्होंने हमें सिखाया कि दूसरों के साथ केवल सहिष्णुता का बरताव ही नही करना चाहिये बल्कि उन्हे समान उद्योगों में मित्र और साथी समझना चाहिये। उन्होंने हमें अपने छोटे-छोटे स्वार्थों और पक्षपातो से ऊपर उठकर दूसरो में भलाई देखने की शिक्षा दी। उनके जीवन के अंतिम कुछ महीने और स्वय उनकी मृत्यु हमारे लिये इस उदार सहिष्णुता

और एकता के उनके सदेश के प्रतीक बन गये है। उनकी मृत्यु से कुछ पहले हमने उनके सामने इसके लिये प्रतिज्ञा की थी। हमे इस प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये और याद रखना चाहिये कि भारत यहा के सभी रहने वालो का, वे चाहे जिस धर्म के हो, समान्य घर है। वे हमारी महान विरासत के बराबर के साझीदार है और उनके बराबर के अधिकार और कर्तव्य है। हमारा एक मिला-जुला राष्ट्र है, जैसा कि सभी बडे राष्ट्र अनिवार्य रूप से होते है। यदि हमने दृष्टि-कोण की कोई संकीर्णता दिखाई और इस बडे राष्ट्र को सीमाओ में बाधने का यत्न किया तो यह उनकी अन्तिम शिक्षा के साथ दगा होगी और निश्चय ही हम तबाह हो जायेंगे और उस आजादी को खो बैठेगे जिसके लिये उन्होने परिश्रम किया और जिसे उन्होने एक बडे अंश में हमारे लिये हासिल किया।

भारत के साधारण व्यक्ति की, जिसने कि अब तक इतने दुख झेले है, सेवा करना भी उतना ही आवश्यक है। उसका हक सब से ऊपर होना चाहिये और उसकी दशा के सुधार के रास्ते में जो कुछ भी बाधा हो उसे अलग हटा देना चाहिये। नैतिक और मानुषिक दृष्टि से ही नही, बल्कि साधारण राजनैतिक समझ-बूझ की दृष्टि से भी यह आवश्यक हो गया है कि आम आदमी का स्तर ऊचा किया जाय और उसे उन्नति करने का पूरा अवसर दिया जाय। जो सामाजिक संगठन उसे यह अवसर नही देता, वह अपने आप को खोटा प्रमाणित करता है और उसे बदल देना चाहिये।

गाधी जी चले गये है परन्तु उनकी प्रज्वलित आत्मा हमारे चारो ओर व्याप्त है। अब हमारे ऊपर बोझ आ पड़ा है और तत्काल यह आवश्यक हो गया है कि हम इस बोझ को अपनी पूरी सामर्थ्य से उठायें और निभाए। हमे आपस मे मिल जुल कर रहना है और साम्प्रदायिकता के उस घोर विष का मुकाबला करना है जिसने हमारे युग के सब से बड़े व्यक्ति की जान ली। हमें इसको जड़ से उखाड़ना है, भटके हुए लोगो के प्रति प्रतिशोध की भावना से नही, बल्कि स्वय इस बुराई के साहसपूर्ण विरोध की भावना से। यह बुराई गाधी जी की मृत्यु से समाप्त नही हो गई। और यह बात तो और भी लज्जाजनक है कि कुछ लोगो ने इस हत्या पर विभिन्न प्रकार से खुशिया मनाई। जिन्होने ऐसा किया या जो इस तरह के विचार रखते है वे भारतीय कहलाने के अधिकारी नही हैं।

मैंने बताया है कि राष्ट्र के इस सकट के अवसर पर हमे मिल-जुल कर रहना चाहिये और जहा तक सभव हो सार्वजनिक विवाद से बचना चाहिये और मुख्य बातो मे एकमत प्राप्त करने पर जोर देना चाहिये। मै समाचार-पत्रों से विशेषरूप से

अनुरोध करूंगा कि वे इस आवश्यक कार्य में सहायता दें और व्यक्तिगत अथवा ऐसी आलोचनाए न करे जो देश मे फूट को उत्तेजना देती हो। मै विशेष रूप से यह अनुरोध काग्रेस के अपने उन करोड़ो मित्रो और साथियो से भी करूगा जिन्होंने महात्मा गाधी का नेतृत्व स्वीकार किया है अगर्चे वह अक्सर कसौटी पर पूरे नही उतरे ।

अखबारो में पढकर और अन्य सूत्रो से भी यह जानकर कि सरदार पटेल और मेरे बीच गहरे भेद के होने की दबी हुई चर्चा हो रही है, मुझे बेहद दुख हुआ है। बेशक बहुत वर्षों से स्वभाव के तथा दूसरे भेद बहुत विषयो पर हम लोगो में रहे है, लेकिन कम से कम भारतवर्ष को यह जानना चाहिये कि इन भेदो से ऊपर हमारे राजनैतिक जीवन की प्रमुख बातो में हमारा एकमत रहा है और बडे-बडे कामो मे हमने चौथाई सदी बल्कि इससे अधिक समय तक मिलजुल कर उद्योग किया है। सुख और दुख में हम बराबर साथ रहे है। क्या यह सभव है कि हमारे राष्ट्र के भविष्य के लिये जो यह सकटकाल सामने आया है उसमें हम मे से कोई छोटापन दिखायेगा और राष्ट्रहित के अतिरिक्त किसी दूसरी बात पर ध्यान देगा? मै सरदार पटेल के प्रति सम्मान और आदर प्रकट करूगा, न केवल उनकी राष्ट्र के प्रति आजन्म सेवाओ के लिये बल्कि उन महान कार्यों के लिये भी जो कि उन्होने उस समय से किये है, जब से कि वह और मै भारत सरकार की सेवा मे रहे है। वे युद्ध और शाति के समय हमारी जनता के बहादुर सरदार रहे है। जब कि दूसरे डिग जाते वे दृढनिष्ठ रहे है और वे एक बडे सगठनकर्ता है। इन अनेक वर्षों में उनके साथ काम करने का मेरा सौभाग्य रहा है और समय के साथ-साथ उनके प्रति मेरा प्रेम और उनके महान गुणो के प्रति मेरा आदर बढता गया है ।

हाल मे अखबारो में कुछ अनधिकृत समाचार प्रकाशित हुए है जिनसे लोगो में गलतफहमी फैल गई है कि मैने अपने पुराने मित्र तथा साथी जयप्रकाश नारायण के विरुद्ध कड़ी भाषा मे आलोचना की है । ये समाचार गलत है। मै यह कहना चाहूंगा कि भारत के समाजवादी दल की कुछ नीतियो से मुझे गहरा दुख पहुचा है। और मै समझता हू कि आवेश में आकर या घटनाओ के आघात से वे गलत काम और गलत बयानी में पडे है, लेकिन मुझे जयप्रकाश नारायण की योग्यता या सचाई में कभी भी सदेह नही रहा । एक मित्र के रूप मे मै उनका आदर करता रहा हू और मुझे विश्वास है कि एक समय आयेगा जब कि ये भारत के भाग्य को स्वरूप देने मे बड़े महत्व का भाग लेंगे। दुर्भाग्य से समाजवादी दल ने बहुत समय से नकारात्मक नीतिया ग्रहण की है और उसने उन व्यापक विचारो को छोड़ दिया है जिन पर कि पहले ध्यान देना चाहिये।

इसलिये, अपने सार्वजनिक जीवन में सहिष्णुता और सहयोग लाने के पक्ष

और उन सभी शक्तियों के पक्ष में जो कि भारत को एक बड़ा और उन्नतिशील राष्ट्र बनाना चाहती हैं, मिल-जुल कर काम करने का मैं अनुरोध करता हूं। मेरा अनुरोध है कि साम्प्रदायिकता और संकीर्ण प्रान्तीयता के विष के विरुद्ध जीतोड़ प्रयत्न हो। मेरा अनुरोध है कि उद्योग के क्षेत्र के संघर्ष बंद हों, और भारत के नवनिर्माण के लिये सभी लोगों का मिल जुल कर प्रयत्न हो। इन महान कार्यों के लिये मै प्रतिज्ञा करता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि इस पीढ़ी के लोगो द्वारा गांधी जी के स्वप्न किन्ही अंशो में पूरे होंगे। इस प्रकार हम उनकी स्मृति का सम्मान कर सकेंगे और उनके लिये एक उपयुक्त स्मारक का निर्माण कर सकेंगे।

सबसे उपयुक्त स्मारक

स्वभावतः भारत का प्रत्येक भाग महात्मा गांधी जी का किसी न किसी रूपमें स्मारक निर्माण करना चाहता है। प्रांतीय सरकारें, रियासतो की सरकारें, म्युनिसि-पैलिटियां, स्थानीय बोर्ड और सार्वजनिक संस्थाएं तथा अन्य व्यक्ति सभी अपने-अपने ढंग से स्मारक स्थापित करने के लिए उत्सुक है। मंदिरो से लेकर प्रतिमाओं तक के निर्माण के विभिन्न सुझाव रखे गये है। अपने एक हाल के वक्तव्य में सरदार पटेल ने पूरे जोर के साथ उन सभी प्रयत्नो के प्रति विरोध प्रकट किया है जो मंदिरो तथा ऐसे स्मारको के निर्माण के लिए हो रहे है और जिनसे मूर्तिपूजा का आभास होता है। इससे निश्चय ही गांधी जी अप्रसन्न हुए होते और वास्तव में उन्होने ऐसे विषयो पर अपने विचार बड़े कठोर शब्दो में प्रकट किए है।

स्पष्ट ही सबसे उपयुक्त स्मारक उनकी महान शिक्षाओ का अनुसरण करना और राष्ट्र के विकास के लिए उनके रचनात्मक विचारो को आगे बढाना है।

फिर भी यह तो निश्चित-सा ही है कि कुछ मूर्तियां तो स्थापित की ही जायगी। यदि ऐसा हो, तो इस बात का अधिक से अधिक यत्न होना चाहिए कि केवल कलात्मक कृतियो की स्थापना की ही इजाजत दी जाय। दुर्भाग्य से भारत में मूर्ति-कला का स्तर गिरा हुआ है और अधिकतर लोग व्यक्ति के जैसे तैसे दूर के सादृश्य से भी संतुष्ट हो जाते है। हमारे शहर और सार्वजनिक स्थल ऐसी कृतियो से भरे पड़े है जिन्हें कल्पना की कैसी भी खींच-तान से कलात्मक या देखने में सुन्दर नही कहा जा सकता। अनेक अवसरो पर मुझे ऐसी कच्ची कृतियो को देखकर आघात पहुचा है। मै उन लोगो को, जो इस प्रकार के स्मारको का विचार कर रहे है, इस बात के लिए आगाह कर देना चाहता हू कि जल्दी में कोई निर्णय न करें, बल्कि कांग्रेस सभापति के सभापतित्व में स्थापित राष्ट्रीय स्मारक समिति के इस प्रश्न पर विचार विमर्श की प्रतीक्षा करें।

एक और विषय है जिसकी ओर मै जनता का ध्यान दिलाना चाहूंगा। सारे भारत में सडको, चौको, और सार्वजनिक इमारतो का नामकरण गांधी जी के नाम पर करने की प्रवृत्ति हो रही है। यह बहुत सस्ते ढग का स्मारक है और इसमें बिना श्रम या व्यय के कुछ संतोष तो मिल ही जाता है। प्राय मुझे तो

नई दिल्ली में २५ फरवरी, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

यह उनके नाम से लाभ उठाने का प्रयत्न लगता है और बिना किसी उद्योग के यह दिखाना जैसा लगता है कि हम उनका सम्मान करते हैं। इससे भी अधिक वाछनीय तो यह है कि प्रसिद्ध ऐतिहासिक नामों को, जिनकी अपनी विशिष्टता है, बदला न जाय। यदि ऐसी प्रवृत्तियां रोकी नही जाती तो गाधी जी के नाम पर हजारो सड़कें, पार्क और चौक हो जायंगे। उससे न तो हमारी सुविधाओ मे वृद्धि होगी और न राष्ट्रपिता की कीर्त्ति में। नतीजा केवल यह होगा कि बातें नीरस ढग से दुहराई जायंगी और अव्यवस्था उत्पन्न होगी। हम में से अधिकतर लोग तब गांधी रोड गाधी नगर या गांधीग्राम में रहने लगेंगे।

राष्ट्रपिता

मित्रो और साथियो, आज के दिन जिसे हम राष्ट्रपिता की स्मृति में विशेष रूप से अर्पित करते हैं, मैं आप लोगों से क्या कहूँ? आज मैं आपसे प्रधान मंत्री की हैसियत से कुछ न कह कर जवाहरलाल की हैसियत से कहूँगा, जो कि आप लोगों की तरह ही भारत की लम्बी मुक्ति-यात्रा का एक यात्री है और जिसका यह महान सौभाग्य रहा है कि गुरु के चरणों में बैठकर भारत और सत्य की सेवा करना सीखे। न मैं आपसे आजकल की उन समस्याओं के बारे में कुछ कहूंगा जिनसे हमारा दिमाग परेशान है और जिनकी ओर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है। बल्कि मैं उन बुनियादी बातों के विषय में कहना चाहूंगा जिन्हें गांधीजी ने हमें सिखाया है और जिनके बिना जीवन सारहीन और खोखला रहेगा।

उन्होंने हमें निष्कपट व्यवहार और सत्य से प्रेम करना सिखाया, न केवल हमारे व्यक्तिगत जीवनों में बल्कि सार्वजनिक बातों और राष्ट्रों के समागम में। उन्होंने हमें मनुष्य और उसके श्रम के गौरव का पाठ पढ़ाया। उन्होंने उस पुरानी शिक्षा को दुहराया कि घृणा और हिंसा का परिणाम घृणा, हिंसा और विनाश के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। और इस तरह उन्होंने निर्भीकता, एकता, सहिष्णुता और शांति का मार्ग दिखाया।

हम लोगों ने उनकी शिक्षा के अनुरूप कहाँ तक अपना जीवन ढाला? मुझे भय है कि बहुत अधिक नहीं। फिर भी हमने बहुत कुछ सीखा और उनके नेतृत्व में हमने शांतिपूर्ण साधनों द्वारा अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त की। लेकिन ठीक मुक्ति के समय हम भटक गए और बुरे मार्गों में पड़ गए। इससे उनके महान् हृदय पर असीम आघात पहुंचा, उस हृदय पर जिसकी धड़कन सदा भारत और उन महान सत्यों के लिए, जिनका कि युग-युगांतरों से भारत प्रतीक रहा, हुआ थी।

आज के विषय में क्या कहा जाय? जब हम उनका स्मरण करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं और कभी-कभी बच्चों की भांति उनकी मूर्तियां स्थापित करने की बात करते हैं, तब क्या यह भी विचार करते हैं कि वह संदेश जिसके लिए वे जिये और मरे, क्या था? मुझे भय है कि हम सभी उस संदेश के अनुरूप अपना

महात्मा गांधी के जन्म दिवस के अवसर पर २ अक्तूबर, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

जीवन ढालने से बहुत दूर हैं । लेकिन इसका मुझे निश्चित विश्वास है कि वे महान शक्तियां, जिन्हें उन्होंने संचालित किया था, मौन परन्तु जोरदार ढंग से अपना काम कर रही है और भारत को उस दिशा में ले जा रही हैं जिधर ले जाने की उनकी इच्छा थी। और भी शक्तियां हैं; फूट और असत्य, हिंसा और संकीर्णता की शक्तियां है, जो कि विरोधी दिशा में काम कर रही है। दोनों के बीच निरंतर संघर्ष है, जिस प्रकार कि अच्छाई और बुराई-की शक्तियो के बीच सारे संसार मे संघर्ष चलता है। यदि हम गांधी जी की स्मृति का आदर करते हैं तो हमे सक्रियता से ऐसा करना चाहिए और जिन ध्येयो का वे प्रतिनिधित्व करते थे उनके पक्ष में सतत काम करना चाहिए।

मुझे अपने देश का गर्व है, अपनी राष्ट्रीय थाती का गर्व है, बहुत-सी बातो का गर्व है, लेकिन मैं आपसे गर्वपूर्वक नही बल्कि बड़ी विनम्रता से कह रहा हूँ क्योंकि घटनाओ ने मेरा उत्साह भंग कर दिया है। मैं प्रायः संकोच अनुभव करता हूँ, और भारत का स्वप्न जो मैं देखता रहता था, मन्द पड गया है। मैंने भारत से प्रेम किया है और उसकी सेवा करनी चाही है, उसकी भौगोलिक विशालता के कारण नही; इसलिए भी नहीं कि अतीत में वह महान था, वरन इसलिए कि उसके वर्तमान मे मेरी आस्था है और मुझे विश्वास है कि वह सत्य और स्वतन्त्रता तथा जीवन के उच्च आदर्शों पर दृढ रहेगा ।

क्या आप चाहते हैं कि भारत इन महान उद्देश्यो और आदर्शों पर दृढ रहे जिन्हें गांधी जी ने हमारे सामने रखा था ? यदि ऐसा है तो आपको विचार करना होगा और उनके आदेशो के अनुसार काम करना होगा । क्षणिक आवेश या तुच्छ लाभो के फेर से बचना होगा। आपको उस प्रत्येक प्रवृत्ति को जड से उखाड़ कर फेंकना होगा जो कि राष्ट्र को निर्बल बनाती है, चाहे वह साम्प्रदायिकता हो, चाहे पार्थक्य, चाहे धार्मिक कट्टरता, चाहे प्रातीयता और चाहे वर्ग का गर्व।

हमने बार-बार दोहराया है कि हम इस देश में किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता सहन नही करेंगे, और हम एक स्वतन्त्र लौकिक राज्य का निर्माण कर रहे हैं जहा प्रत्येक धर्म और विश्वास के लिए समान स्वतन्त्रता और सम्मान है, जहा प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता तथा अवसर प्राप्त है । इसके बावजूद कुछ लोग अब भी साम्प्रदायिकता और पार्थक्य की भाषा मे बात करते है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मैं इसका पूरा विरोधी हूँ और अगर आपको गाधीजी की शिक्षा मे विश्वास है तो मैं आशा

दूसरी बुराई प्रांतीयता की है और आज हम इसे बहुत बढती हुई देख रहे हैं, जिसके चक्कर में पड़ कर हम महत्वपूर्ण विषयो को भूल जाते हैं। इसका भी विरोध और मुकाबला करना है।

हाल ही में कुछ लोगो ने भारत को एक आक्रान्ता राष्ट्र बताया है। मैं केवल यही कहूँगा कि उन्होने ऐसा अज्ञानवश ही कहा है। यदि भारत किसी दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध आक्रामक उपाय अपनाता है तो मेरे और मेरे अनेक साथियो के लिए भारत सरकार में कोई स्थान नही रह जाता। यदि हम आक्रमण करते हैं तो अब तक जिन उद्देश्यो का हमने समर्थन किया है और जो कुछ गाधी जी ने हमें सिखाया है उस सबके प्रति हम झूठे ठहरेंगे।

हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान ने, पिछले सप्ताहों में एक विचित्र उत्तेजना दिखाई है। मैं उसके समाचारपत्रो और नेताओ के वक्तव्यो को पढ़कर दंग रह गया। इन भाषणो या वक्तव्यो का तथ्य से कोई सरोकार नही और ये घोर भय और बेतुकी धारणाएं उत्पन्न करने वाले है। अगर पाकिस्तान के लोग ऐसा घृणा और भय पैदा करने वाला साहित्य नित्य पढते रहेंगे तो मुझे आश्चर्य नही कि भारत की जो तस्वीर वे अपने मन में बनाते हैं वह वास्तविकता से बिल्कुल रहित है। मुझे इसका गहरा रज है, क्योकि जैसा मैंने पहिले कहा है, पाकिस्तान के लोगो को मैं अजनबी नही समझता। वे हमारे देशवासी रहे है, और न वे और न हम भूतकाल को भुला सकते है या अपना करीबी रिश्ता भुला सकते हैं, तात्कालिक उद्वेग हमें चाहे अलग करता हुआ दीखे। मैं बड़ी सचाई और मित्रता की भावना से पाकिस्तान के उन सभी लोगो, को जो कि भारत के विरुद्ध बिना सोचे समझे प्रचार कर रहे है, सतर्क करना चाहूंगा। वे अपने ही देश तथा उसके लोगो का इससे अहित कर रहे हैं।

मै पाकिस्तान के लोगो को विश्वास दिला सकता हूँ कि भारत किसी भी देश पर आक्रमण करने की इच्छा नही रखता, और पाकिस्तान के विरुद्ध तो बिलकुल भी नही। हम चाहते है कि पाकिस्तान शातिपूर्वक रहे और उन्नति करे और हमारे और उसके घने सबंध रहें। हमारी ओर से कभी भी आक्रमण न होगा।

लेकिन कश्मीर के लोगो के विरुद्ध और भारतीय संघ के विरुद्ध भयानक और अक्षम्य आक्रमण हुआ है। हमने उस आक्रमण का मुकाबला उस तरह से किया है जैसा कि कोई भी स्वाभिमानी देश करता। स्मृतियां क्षणिक होती है और यह याद रखना चाहिए कि ग्यारह महीने से कुछ अधिक पहले कश्मीर में क्या हुआ। पाकिस्तान ने इस बात से इन्कार किया कि उसका

इस आक्रमण में कोई हाथ है और अकाट्य प्रमाणों के बावजूद इन्कार ही करता रहा । संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् में इसी इन्कार के आधार पर उसने अपना मुकदमा खड़ा किया, और अब उसे स्वीकार करना पड़ा है कि उसकी सेनाएं काश्मीर में काम कर रही हैं जो कि भारतीय संघ का अंग है । इतिहास में कम मिसालें ऐसी मिलेंगी जहां कोई मुकदमा सत्य के इतने घोर प्रतिवाद के आधार पर रचा गया हो । संयुक्त राष्ट्रों के कमीशन ने विराम संधि का प्रस्ताव किया। हमने उसे स्वीकार किया। पाकिस्तान ने अपने गर्व और उन्माद में उसे अस्वीकार कर दिया।

मैं आपसे और पाकिस्तान के लोगों से कहना चाहता हूं और अब मैं प्रधान मंत्री की हैसियत से बोल रहा हूं कि चाहे जो हो जाय, हम कदापि इस आक्रमण को सहन न करेंगे। हम इसका पूरे बल से मुकाबला करेंगे, क्योंकि इसमें न केवल कश्मीर की रक्षा का प्रश्न है, बल्कि भारत के लोगों के सम्मान का प्रश्न है, और राष्ट्रों के विधान की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

पिछले वर्ष या इससे कुछ अधिक समय के बीच भारत में बहुत सी घटनाएं घटी हैं, जिनसे मुझे मार्मिक दुःख पहुंचा है, क्योंकि ये बुरी घटनाएं थीं और गुरु की शिक्षा के विरुद्ध थीं । लेकिन हमने काश्मीर या हैदराबाद में जो कुछ किया है उसके लिए मुझे कोई क्षोभ नहीं । वास्तव में यदि हमने जो कुछ किया है या कर रहे हैं उसे न करते तो और भी अधिक उत्पात और हिंसा और उत्पीड़न हुआ होता। यदि भारत कश्मीर की सहायता के लिए न दौड़ता या एक एक अनाचारी गुट से दलित हैदराबाद के लोगों की मदद के लिये न जाता, तो मुझे उस पर लज्जा आती।

दूसरे देशों में जो कुछ भी हो, हमें शांत रहना चाहिए और गांधी जी की शिक्षाओं के प्रति सच्चे बने रहना चाहिए। अगर हम उनके प्रति सच्चे रहे तो हम अपने प्रति और भारत के प्रति सच्चे रहेंगे और अपने प्यारे देश में जो कुछ भी होगा अच्छा ही होगा। जय हिन्द!

एक वर्ष पहले

मित्रो और साथियो, एक वर्ष हुआ, यहां से, आज ही के दिन और इसी समय मैंने एक भाषण दिया था और यह घोषित किया था कि वह प्रकाश, जिसने हमारी जीवनियो को आलोकित किया था, बुझ चुका है, और हम अंधकार से घिर गए हैं। और अब मैं आपसे फिर निवेदन कर रहा हूं, जबकि आपने और मैंने इस घटनापूर्ण वर्ष का बोझ अपने कंधो पर उठा लिया है।

यह प्रकाश बुझा नही क्योकि यह पहले से भी अधिक प्रकाशमान है और हमारे प्रिय नेता का संदेश हमारे कानो में गूज रहा है। फिर भी हममें से बहुत से अकसर पूर्व ग्रहो और उद्वेगो से प्रभावित होकर इस प्रकाश के समक्ष अपनी आंखें मूद लेते हैं और इस संदेश के प्रति अपने कान बन्द कर लेते है।

आइए, हम आज अपनी आखें, अपने कान और अपने दिलों को खोलें और श्रद्धापूर्वक उनका ध्यान करें, और सबसे अधिक इस बात पर विचार करें कि वे किन सिद्धान्तो पर दृढ रहे और हमसे वे क्या कराना चाहते थे।

आज शाम को हममें से बहुतो ने भारत में सर्वत्र, नगरो, कस्बो और गावों में वह सदेश सुना जिसे गांधी जी दोहराया करते थे और हमने उसके प्रकाश में काम करने की नए सिरे से प्रतिज्ञा की है। आज की विघटनशील दुनिया में इस सन्देश की जैसी आवश्यकता है वैसी पहले कभी नही थी। इस दुनिया ने अपनी समस्याओं को बार-बार हिंसा और घृणा के तरीको से हल करने का प्रयत्न किया है। बार-बार यह तरीका असफल रहा है और संकट का सामना करना पड़ा है। अब समय आ गया है कि हम अपने कटु अनुभव से शिक्षा लें।

वह शिक्षा यह है कि नैतिक मूल्यो की उपेक्षा करके हम अपने विनाश का ही आह्वान करते है और यह कि हम भारत और ससार की बुराइयो का अन्त केवल शातिपूर्ण ढंग से और सहयोग द्वारा और स्वतत्रता तथा सत्य की निष्काम सेवा द्वारा कर सकते है और हमें भारत के लोगो में एकता और सद्भावना का प्रचार करना चाहिए और वर्गभेदो को तथा जन्म, जात-पात और

महात्मा गांधी के मृत्यु दिवस पर, ३० जनवरी, १९४९ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

साम्प्रदायिकता

पांच नदियों का यह अभागा प्रदेश

१५ और १६ अगस्त को भारत ने स्वतंत्रता मिलने की खुशी मनाई, न केवल भारत ने बल्कि भारतीयो ने, इस विस्तृत संसार में जहां कही भी वे थे। मुझे विदेशो से शुभ कामनाओं के हजारो संदेश मिले है। वे दुनिया के कोने-कोने से बडे राष्ट्रो के प्रतिनिधियों, प्रसिद्ध पुरुषो और भारतीयो के पास से आए है। स्वतंत्र राष्ट्रो की बिरादरी में भारत का स्वागत करने वाले दूसरे देशो के इन नेताओं के, सदेशो का मुझ पर गहरा असर जरूर पड़ा है, लेकिन समुद्र पार के अपने देशवासियो के अत्यन्त मार्मिक संदेशो ने मेरे हृदय को जितना स्पर्श किया है, औरो ने उतना नही किया। मातृभूमि से दूर रहते हुए, वे भारत की स्वतंत्रता के शायद हमसे अधिक भूखे रहे है, और इस स्वतंत्रता की प्राप्ति उनके जीवन की एक महान घटना है। मेरी कामना है कि नया भारत अपने प्रवासी बच्चो को, जो कि उसके प्रति इतने गर्व और प्यार से देखते है सदा याद रखे और उन्हे जो भी मदद दे सकता हो, दे।

करीब-करीब सारे भारत ने स्वतत्रता-प्राप्ति के अवसर पर उत्सव मनाया, लेकिन पाच नदियो के अभागे प्रदेश ने ऐसा नही किया। पंजाब ने, पूर्व और पश्चिम में, समान रूप से विपत्ति और दुःख उठाया है। बहुत जगहो में हत्या और अग्निकाड और लूटमार हुई है और शरणार्थियो का प्रवाह एक जगह से दूसरी जगह उमड पड़ा है।

हमारी सरकार के प्रारंभिक कार्यों में एक कार्य पजाब की चिन्ता करना था। इसलिए १७ तारीख के सवेरे अपने सहयोगी, रक्षा मन्त्री सरदार बलदेव सिंह और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मि० लियाकत अली खा तथा उनके कुछ साथियो के साथ मै वहाँ शीघ्रता से गया। जो कुछ हमने वहां देखा और किया, उसे मै आपको बताना चाहता हूँ। काफी उत्तेजनापूर्ण अफवाहें फैलती रही है और जनता के मन स्वभावतः सारे भारत में विचलित है, क्योकि जैसी भी घटना घटे, पजाब के निवासी, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, हमारे अपने लोग है, और जो कुछ उन पर बीतती है हम पर बीतती है।

आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि १५ अगस्त तक सारे पजाब में एक दूसरा ही शासन था। यह प्रात गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट की धारा ९३ के अन्तर्गत शासित था। १५ तारीख को शासन बदला। इस प्रकार नई प्रातीय सरकारें अभी केवल चार दिन

नई दिल्ली से १९ अगस्त, १९४७ को प्रसारित एक भाषण!

ही है। यही बात नई केन्द्रीय सरकार के विषय में भी है। इन केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की सीधी जिम्मेदारी केवल १५ अगस्त से है। पूर्वी और पश्चिमी पंजाब की सरकारों को अपना काम संभालने और विभागों के उचित संचालन से पूर्व ही, अपनी जन्मघड़ी से ही एक भयानक संकट का सामना करना पड़ा है।

पंजाब की अनर्थकारी घटनाओं की कहानी हमें कई महीने पीछे इस वर्ष के मार्च महीने में ले जाती है। एक के बाद एक आफतें आई हैं और हर एक की प्रतिक्रिया दूसरी जगह हुई है। मैं यह कथा यहां न सुनाऊंगा, और न मैं यही बताऊंगा कि किसका दोष है। पंजाब के बहुत-से हिस्सों में काफी हत्याएं, अग्निकांड और सभी प्रकार के अपराध हुए हैं और इस सुन्दर और इतने होनहार प्रान्त ने इन महीनों में अनगिनत यातनाएं झेली हैं। इस लम्बी कहानी के कहने से कोई विशेष लाभ न होगा। हम अपना नया जीवन १५ अगस्त से आरंभ करते हैं।

मि० लियाकत अली खां, सरदार बल्देव सिंह और मैं पहले पटियाला गए और वहां हमने पूर्वी और पश्चिमी पंजाब के मंत्रियों से और भिन्न-भिन्न नागरिक तथा फौजी अफसरों से सलाह की। हम विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं से, विशेषकर अकाली सिख नेता मास्टर तारासिंह और ज्ञानी करतार सिंह से मिले। इसके बाद हम लाहौर गये और वहां की घटनाओं का आंखों देखा हाल सुना और इसके बाद हम अमृतसर गये।

अमृतसर और लाहौर दोनों जगहों में हमने एक दारुण वृत्तांत सुना और हमने हिन्दू, मुस्लिम, सिख शरणार्थियों को हजारों की संख्या में देखा। शहर में कहीं-कहीं अब भी आगें जल रही थी, और हाल के अत्याचारों के समाचार हम तक पहुँचे। हम सब इस विषय में एकमत थे कि जैसी स्थिति हमने देखी, वैसी स्थिति में हमें दृढ़ता से कार्य करना चाहिए और जो कुछ हो गया है उसके संबंध में कड़ए तर्क-वितर्क में नहीं पड़ना चाहिए और परिस्थिति की यह मांग थी कि कुछ भी करना पड़े, अपराधों का अन्त करना चाहिए।

ऐसा न होने से इस प्रदेश और सभी सम्प्रदायों के लोगों के लिए नितान्त अशान्ति और विनाश का सामना था। समाज-विरोधी लोग अपना काम कर रहे थे, सभी प्रकार की सत्ता का खुलेआम विरोध कर रहे थे और समाज के आधार-भूत ढांचे को नष्ट कर रहे थे। जब तक इन लोगों का दमन नहीं होता, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, तब तक किसी भी व्यक्ति के लिए कोई स्वतंत्रता या सुरक्षा नहीं थी; और इसलिए हम सभी लोगों ने जो वहां उपस्थित थे, चाहे वे दोनों केन्द्रीय

या दोनों प्रांतीय सरकारों के थे और चाहे वे विभिन्न संप्रदायों के नेता थे, यह प्रतिज्ञा की कि इस हत्या और अग्निकांड का अन्त करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाएंगे।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने कारगर उपाय किए हैं जो न केवल शासन और फौजी दृष्टिकोण से, बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण बात—अपनी समस्त जनता की लोकप्रियता के दृष्टिकोण से प्रभावकारी हैं।

हमने पंजाब की दोनों प्रांतीय सरकारों के ऊंचे पदाधिकारियों की समितियां स्थापित की हैं और नागरिक तथा फौजी अधिकारियों के बीच संपर्क स्थापित करने वाले पदाधिकारी नियुक्त किए हैं, जिससे कि दोनों प्रांतीय सरकारों और फौजों में आपस में अधिक से अधिक सहयोग हो सके। हमने केन्द्रीय सरकारों को इस कार्य में सहायता देने के लिए वचनबद्ध किया है। लोकप्रिय नेताओं ने हमें अपने अधिक से अधिक सहयोग का आश्वासन दिया है।

मुझे विश्वास है कि हम इस स्थिति को कारगर ढंग से वश में ला सकेंगे और जल्दी ही पंजाब में अमन की हालत लौटेगी, लेकिन इसके लिए क्या सरकारी अफसर, और क्या सभी संबंधित लोग, सभी के अधिकतम उद्योग की और निरंतर सतर्कता की आवश्यकता है। हममें से हर एक को, जिसे कि अपने देश का ध्यान है, इस शांति और सुरक्षा की स्थापना के काम में सहायता करनी चाहिए।

अतीत में, दुर्भाग्यवश, हमारे यहां बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक झगड़े हुए हैं। भविष्य में उन्हें बर्दाश्त न किया जायगा। जहां तक कि भारत सरकार का संबंध है, वह प्रत्येक सांप्रदायिक उत्पात का दृढ़ता से दमन करेगी। वह प्रत्येक भारतीय को बराबरी के दर्जे का समझेगी और उसे उन सभी अधिकारों को दिलाने का उद्योग करेगी जो किसी दूसरे को प्राप्त हैं।

हमारा राज्य साम्प्रदायिक राज्य नहीं है, वह एक लोकतंत्रात्मक राज्य है जिसमें प्रत्येक नागरिक के समान अधिकार हैं। सरकार इन अधिकारों की रक्षा के लिए कटिबद्ध है।

मि० लियाकत अली खां ने मुझे विश्वास दिलाया है कि पाकिस्तान सरकार की भी यही नीति है।

हमने शरणार्थियों को लाहौर से अमृतसर और अमृतसर से लाहौर पहुंचाने का प्रबंध कर लिया है। ये रेलगाड़ियों और मोटरलारियों द्वारा

पहुँचाए जायंगे और हम आशा करते ह कि जिन लोगों की इच्छा होगी, वे वहुत जल्दी अपने निर्दिष्ट स्थल पर पहुँचा दिये जायँगे। इसके अलावा हम उनके रहने और खाने का भी प्रवंध कर रहे है। भारत सरकार ने पूर्वी पंजाव सरकार को ५ लाख रुपये शरणार्थियों की सहायता के लिए देना आज मंजूर किया है। इसके अतिरिक्त उसने उन शरणार्थियों के लिए, जो दिल्ली तथा और जगहों में पहुँच गए है, ५ लाख की स्वीकृति दी है । हमारे शरणार्थी-कमिश्नर श्री चन्द्रा अमृतसर के लिए तुरन्त रवाना हो रहे हैं।

हम लाहौर में एक डिप्टी हाई कमिश्नर नियुक्त कर रहे है, जिनका काम वहाँ हमारे हितों का ध्यान रखना और विशेषकर उन शरणार्थियों की देखभाल करना होगा जो कि पूर्वी पंजाव में आना चाहते है। हम पूर्वी पंजाव की सरकार के पास शरणार्थियों को टिकाने के लिए कुछ तम्बू भेजने की आशा कर रहे है; हर प्रकार से जो हमारे लिए संभव होगा, हम पंजाव के पीड़ितों की सहायता करेंगे। जहाँ तक कि पूर्वी पंजाव का प्रश्न है, वहां सीधी हमारी जिम्मेदारी है और हम उसके अनुसार कार्य करेंगे।

जहाँ हम उन लोगों को जो पूर्वी पंजाव में आना चाहते हैं, प्रत्येक सहायता पहुंचायेंगे, वहां हम यह न चाहेंगे कि नई सरहदों के आरपार लोगों के सामूहिक प्रव्रजन को प्रोत्साहन मिले, क्योंकि ऐसा होने से सभी को अपार कष्ट पहुँचेगा। हम उम्मीद करते है कि वहुत जल्दी शांति और व्यवस्था स्थापित हो जायगी और लोगों को अपने-अपने धंधों में लगने की सुरक्षा प्राप्त होगी।

हमने यह सव तो किया है, लेकिन अन्त में भविष्य इस वात पर निर्भर करता है कि हमें लोगों से क्या सहयोग प्राप्त होता है। इस सहयोग की दृढ़ आशा करके ही हम आगे वढ़ रहे है, और विश्वास के साथ यह घोषणा कर रहे है कि हम इस पंजाव की समस्या को शीघ्र ही हल करेंगे । ये भयानक उपद्रव होते रहे तो वहां या भारत में कही भी हम कोई उन्नति नहीं कर सकते। इसलिए मैं सभी संवंधित लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि इस दायित्व का मजवूती और साहस से सामना करें और यह दिखा दें कि स्वतंत्र भारत एक कठिन परिस्थिति पर किस प्रकार कावू पाता है।

पंजाव की समस्या हमारी प्राथमिक समस्याओं में से है और मैं जल्दी ही या जव भी जरूरत हो वहाँ फिर जाने का विचार कर रहा हूँ। चूंकि हम जनता का सहयोग चाहते हैं, इसलिए हमें उनको ठीक-ठीक वातें वताना चाहिए। इसलिए मैंने आज आप से यह सव कहा है, और आवश्यकता पड़ने पर मैं फिर आप से कहूँगा।

इस बीच में, मैं आशा करता हूँ कि लोग वे सिर-पैर की अफवाहों पर विश्वास न करेंगे, जो कि सहज में फैल कर लोगो के मन पर असर डालती है। वास्तविकता काफी बुरी है, लेकिन अफवाहें उसे और भी बुरी बना देती हैं।

जिन लोगों ने पंजाब के इन बुरे दिनो में तकलीफें उठाई है उनके प्रति हमारी गहरी समवेदना है। वहुतो ने अपनी जानें गंवाई हैं, बहुतों ने अपना सर्वस्व खो दिया है। हम मरों को जिला नही सकते, लेकिन जो लोग जिन्दा है उन्हें निश्चय ही सरकार से अब सहायता मिलनी चाहिए, और बाद में सरकार को उन्हें फिर से बसाना चाहिए।

धर्म और राजनीति का भयावह गठबन्धन

महोदय, इससे पहले कि यह विवाद और आगे बढ़े, मैं चाहूंगा कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में सरकार का जो रुख है, उसे बता दूं। सरकार इस प्रस्ताव का स्वागत करती है और इस प्रस्ताव के पीछे जो उद्देश्य है, उसकी सिद्धि के लिए, जो कुछ उसकी शक्ति में है, करना चाहती है। माननीय प्रस्तावक की धारावाही वक्तृता के बाद, मुझे इस प्रस्ताव की वांछनीयता के संबंध में, कुछ कहने की जरूरत नही है। वास्तव में यह एक अनिवार्य नीति है, जिसे कि हर एक स्वतंत्र देश को जरूर अपनाना चाहिए। इस नीति के कार्यान्वित होने के विरुद्ध संभव है कि पहले कुछ कारण रहे हों, यद्यपि मैं समझता हूं कि पहले भी हममें से जिन्होंने कुछ अंशो में भी सांप्रदायिकता को स्वीकार किया था, उन्होंने भूल की थी और बुद्धिहीनता का काम किया था और उनकी नासमझी से हमें बहुत नुकसान हुआ। फिर भी पहले हालतें दूसरी थी। परन्तु जब एक देश स्वतंत्रता से परिचालित होता है, तब इस नीति के अलावा दूसरा उपाय ही नहीं होता। नही तो गृह-युद्ध अनिवार्य है। वास्तव में हमने देख लिया है कि राजनीति में सांप्रदायिकता ने हमें कहां पहुंचा दिया है, और हमें इस बात को साफ-साफ अपने मन में समझ लेना चाहिए, और देश को समझ लेना चाहिए कि धर्म और राजनीति का सांप्रदायिकता के रूप में मेल एक अत्यन्त भयावह मेल है। और उससे बहुत बुरे और कुत्सित परिणाम उत्पन्न होते है।

यह भाषण संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका) नई दिल्ली, में ३ अप्रैल, १९४८ को परिषद् के सदस्य श्री अनन्तशयनम आयंगर के निम्न प्रस्ताव पर होने वाले वादविवाद के अवसर पर दिया गया था:—

"क्योंकि जनसत्ता के उचित रूप में कार्यान्वित होने के लिए और राष्ट्रीय एकता तथा मजबूती के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय जीवन से सांप्रदायिकता अलग हो, इस परिषद का मत है कि किसी भी सांप्रदायिक सगठन को जो कि अपने विधान से अथवा अपने किसी पदाधिकारी या अधिकार में उपनिहित विवेक द्वारा अपनी सदस्यता से धर्म, जाति और उपजाति या इनमें से किसी कारण से लोगो को वंचित करता है, अपने संप्रदाय की वास्तविक धार्मिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त अन्य कामो में भाग लेने की आज्ञा न हो और इस प्रकार के कामो को रोकने के लिए व्यवस्था संबंधी तथा शासकीय सभी उपाय किए जायं।"

यह प्रस्ताव अपने संशोधित रूप में प्रधान मंत्री द्वारा उनके भाषण के अन्त में संशोधन के स्वीकृत होने पर सभा द्वारा स्वीकृत हुआ था।

हम सदा इस बात पर बल देते रहे है कि राजनीति और नीतिशास्त्र में मेल रखा जाए और मै आशा करता हूँ, कि हम सदा इसी पक्ष में रहेंगे । चौथाई सदी या इससे भी अधिक काल से महात्मा गांधी ने हमें राजनीति को नैतिक स्तर पर रखना सिखाया है। हमें इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय संसार के ऊपर और आनेवाली पीढ़ियों के ऊपर है। लेकिन, कम से कम, एक विशेष बात थी कि हमने इस महान आदर्श को अपने सामने रखा और अपने निर्बल और लड़खड़ाते ढंग से सही, उसे कार्यान्वित करने की कोशिश की। लेकिन राजनीति का और धर्म का संकीर्णतम अर्थ में संयोग, जिसका परिणाम सांप्रदायिक राजनीति है—इसमें कोई संदेह नही कि यह एक अत्यन्त भयानक संयोग है और इसका अन्त कर देना चाहिए। माननीय प्रस्तावक ने जैसा बताया है, यह स्पष्ट है कि यह संयोग देश के लिए व्यापक रूप से हानिकर है। यह बहु संख्यकों के लिए हानिकर है, लेकिन यह कदाचित् किसी भी अल्प संख्यक समुदाय के लिए, जो इस से लाभ उठाना चाहता है, सबसे अधिक हानिकर है। मै समझता हूँ कि भारत का अब तक का इतिहास भी यह दिखायेगा। लेकिन हर हालत में एक अल्पसंख्यक समुदाय, जो कि अपने को अलग-अलग रखना चाहता है, देश के लिए हानिकर है, और सबसे अधिक वह अपने ही हितो को हानि पहुंचाता है, क्योंकि अनिवार्य रूप से वह अपने और दूसरो के बीच में एक रुकावट खड़ी करता है—धर्म के स्तर पर रुकावट नही, बल्कि राजनीति के स्तर पर रुकावट और कभी-कभी कुछ अंशों में आर्थिक स्तर पर भी; और इस प्रकार आचरण करते हुए वह कभी भी वास्तव में वह प्रभाव नही रख सकता, जिसके लिए उसे उचित रूप से आकांक्षा करनी चाहिए।

इस समय संविधान-परिषद् में भारत के भावी संविधान का निर्माण हो रहा है और इसमें संदेह नही कि वह इसे दो तीन महीनों में अन्तिम रूप देकर पक्का कर देगी और कोई भी प्रस्ताव जो हम स्वीकार करें उससे उस संविधान को, जिस रूप में वह स्वीकार होगा, बदला नही जा सकता। लेकिन आखिर संविधान बनाने वाली सभा कमोबेश यही सभा है, कुछ विशेष अन्तर नहीं। और यदि यह सभा इस प्रस्ताव की भावना के अनुकूल विचार रखती है तो मुझे कुछ भी संदेह नहीं कि संविधान परिषद् भी इस प्रस्ताव के अनुकूल विचार रखेगी। इसके अतिरिक्त, उस सविधान-परिषद के संबंध में जो भी प्रमाण हमारे सामने है, वे बताते हैं कि वह इस प्रस्ताव की शर्तों के अनुकूल दूर तक पहुंच चुकी है। इसने हमारे पुराने संविधान की बहुत-सी साप्रदायिकता की पोषक बातों को अलग कर दिया है । ऐसी और बातें रहेंगी या नहीं, स्पष्ट है कि मै इसकी जमानत नही दे सकता। लेकिन जहां तक कि मेरा संबंध है, मै समझता हूं कि साम्प्रदायिकता, वह चाहे जिस रूप में हो, जितनी कम हो उतना ही हमारे संविधान के और सरकार के व्यावहारिक संचालन के लिये अच्छा है।

अब, महोदय, जहां तक इस प्रस्ताव का सम्बन्ध है, जैसा कि मैंने कहा, हम इसके अन्तर्गत ध्येय का और इसके पीछे जो भावना है उसका सरगर्मी से स्वागत करते हैं। लेकिन इस प्रस्ताव में इसे कार्यरूप में लाने के लिए व्यवस्था संबंधी और शासकीय उपायों की चर्चा हुई है। ये शासकीय तथा व्यवस्था संबंधी उपाय क्या होंगे, इसका फौरन बता सकना असंभव है। इसके लिए बहुत गहरी छान-बीन आवश्यक होगी, खास तौर से व्यवस्था सम्बन्धी बातो के सम्बन्ध में। और अनुमानतः सरकार के लिए उचित मार्ग यह होगा, कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जैसा कि मुझे विश्वास है कि यह होगा, तो वह यह विचार करे कि कौन से शासकीय और विशेषकर कौन से व्यवस्था सम्बन्धी उपाय इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक होंगे। इसके बाद सभा के अगले अधिवेशन में व्यवस्था सम्बन्धी उपायो तथा सिफारिशो पर विचार किया जाए।

इस बीच में निस्संदेह हमारा नया संविधान बन चुका होगा और उस समय, हमें यह विचार करन में सहायता मिलेगी कि वे व्यवस्था सम्बन्धी उपाय नए संविधान के अनुसार क्या हों। लेकिन हमें उस समय तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नही है। जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, उद्देश्य यह है कि हमें इस प्रस्ताव के अभिप्राय के अधिकतम अनुकूल काम करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस प्रस्ताव का उद्देश्य, मैं मानता हूँ, यह भी है कि इस विषय में देश का पथ-प्रदर्शन हो, जिसमें कि देश जहाँ तक संभव हो यह साफ-साफ समझ ले कि हमारे लिए काम करने का एकमात्र ठीक ढंग यह है कि साम्प्रदायिकता के राजनैतिक पहलू के हर एक रूप और प्रकार से छुटकारा पाया जाय। इसे हम स्वीकार करते है। अब, इस समय, जैसा कि कुछ सदस्य बाद में बता सकते है, प्रस्तावित संविधान के मसविदे में कुछ निश्चित साम्प्रदायिक तत्व है। उदाहरण के लिए, मेरा ख्याल है कि यह प्रस्ताव है कि यद्यपि सम्मिलित और सामान्य निर्वाचक-मंडल हों फिर भी अल्पमत वालो के लिए या परिगणित जातियों के लिए, मैं समझता हूँ, कमोवेश जनसंख्या के आधार पर जगहें सुरक्षित रहें। अब मै यह नही कह सकता कि इसके सम्बन्ध में अंतिम निर्णय क्या हो। व्यक्तिगत रूप से मै उम्मेद करता हूँ कि जितनी कम सुरक्षित जगहें हों, उतना ही अच्छा है। और मैं समझता हूँ कि किसी और वर्ग या बहुसंख्यको की दृष्टि की अपेक्षा, स्वयं अल्प-संख्यको या जिनके लिए जगहें सुरक्षित करने का विचार है उनके अपने हितो की दृष्टि से यह अधिक अच्छा रहेगा।

इस विषय का एक और पहलू भी है, जिसे ध्यान में रखना चाहिए। हम जनसत्ता और एकता आदि की बात करते हैं और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही हम देश में अधिकाधिक जनसत्ता और एकता पावेंगे। यह जनसत्ता केवल राजनीति का मामला ही नही है। जनसत्ता की उन्नीसवीं सदी की यह कल्पना, कि हर व्यक्ति

को एक वोट देने का अधिकार प्राप्त हो, उन दिनों एक काफी अच्छी कल्पना थी। लेकिन वह अपूर्ण थी और आज लोग एक अधिक विस्तृत और गहरी जनसत्ता की कल्पना करते हैं। आखिरकार एक दरिद्र के, जिसे एक मताधिकार प्राप्त हो और लखपती के वीच, जिसे भी एक ही मताधिकार प्राप्त हो, कोई समता नही है। लखपती के पास अपना प्रभाव डालने के सौ साधन है, जो कि दरिद्र को प्राप्त नही हैं। आखिरकार उस आदमी के, जिसे शिक्षा की महान् सुविधाएं प्राप्त रही है, और उस के वीच, जिसे ये प्राप्त नही रही है, कोई समानता नहीं है। इसलिए शिक्षा, सम्पत्ति तथा और प्रकार से आदमियों में आपस में वड़े भेद होते है। मै समझता हूं कि लोगो के वीच कुछ हद तक भेद रहेंगे भी। योग्यता और समझ के विचार से सव मनुष्य समान नही है। लेकिन मुख्य वात यह है कि लोगों को अवसर की समानता प्राप्त होनी चाहिए और जहां तक जिसकी योग्यता हो, वहां तक उसे पहुंचने का मौका मिलना चाहिए।

अव आज भारत मे यह मानी हुई वात है कि कुछ दलों, वर्गों और व्यक्तियों के वीच वड़े-वड़े भेद हैं। जो लोग चोटी पर है और जो सवसे नीचे है, उनके वीच एक वड़ी खाई है। अगर हमारे यहां जनसत्ता होनी है, तो यह आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है कि न केवल इस खाई पर एक पुल वांधा जाय, वल्कि यह खाई वहुत कम की जाय। वास्तव में जहां तक अवसर का प्रश्न है, जहा तक अन्त में साधारण जीवन की हालतों का प्रश्न है, और जहां तक जीवन की आवश्यकताओ का प्रश्न है, उक्त भेदों को वहुत कम करना ज़रूरी है। ऐश आराम की वस्तुओ को अभी छोड़ा जा सकता है, यद्यपि में मुझे कोई वजह नहीं जान पड़ती कि कुछ लोग ऐश आराम के लिये क्यों विशिष्ट समझे जायें। लेकिन यह कदाचित् एक दूर की तस्वीर है। अव चूंकि भारत में इतने वड़े भेद है, हम लोगो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि न केवल मानवता की दृष्टि से, वल्कि जनसत्ता की पूर्ति की दृष्टि से भी, जो लोग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से नीचे गिरे हुए है, उन्हें उठावें और उन्हें वढ़ने और उन्नति करने के सभी सभावित अवसर दें। यही देश की साधारणतः मानी हुई नीति रही है और यही सरकार की स्वीकृति नीति है। तो इस नीति के अनुसार कुछ सुरक्षित जगहें कायम की गईं, उदाहरण के लिए परिगणित लोगों के लिए। अनेक छात्रवृत्तियां, पाठ्य पुस्तकें सवंधी सुविधाएं आदि दी गई है, और निस्संदेह इससे भी अधिक दी जायगी न केवल परिगणित जातियों को, वल्कि देश के और पिछड़े हुए वर्गों को भी। आदिवासी जन है और और लोग भी है, जिन्हें सभी प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। हमारे लिए यह कहना काफी नही कि हमने एक आदिवासी को मताधिकार दे दिया और उसके प्रति हमने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया। सैकड़ो हजारों वर्षो तक उसके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन न करके, उसे एक मताधिकार देकर हम अपने को और कर्त्तव्यो से मुक्त समझते है। अतएव हमें सदा इस दृष्टि से विचार करना है कि जिन्हें अव

तक अवसर नही मिले हैं, हमें उनके स्तर को ऊँचा करना है। मैं व्यक्तिगत रूप से यह नही समझता कि राजनीति के स्तर पर ऐसा करने का सबसे अच्छा उपाय उनके लिए जगहों की सुरक्षा आदि है। मैं समझता हूं कि सबसे अच्छा तरीका और बुनियादी तथा सारभृत तरीका आर्थिक और शिक्षा के क्षेत्रो में उनकी शीघ्रता से तरक्की करना है। इसके बाद वे अपने पैरों पर आप खड़े हो सकेंगे।

जब आप किसी व्यक्ति या समुदाय को ऐसा सहारा देते हैं, जिससे उसे अपनी शक्ति का, जो कि वास्तव में उसके पास है नही, भ्रम होता है, तो बड़ा खतरा पैदा होता है। यह सहारा बाहरी होता है और जब यह हटा लिया जाता है, तो यकायक समुदाय कमजोर पड़ जाता है। एक राष्ट्र को आखिर अपने पैरो के बल खड़ा होना चाहिए। जब तक वह किसी बाहरी सहारे का भरोसा रखता है, तब तक वह मजबूत नही, वह कमजोर है। इसलिए जैसा कि कहना चाहिए, यह बाहरी सहारा यानी जगहो की सुरक्षा आदि, संभव है कि पिछड़े हुए वर्गों के लिए कभी-कभी सहायक हो, लेकिन यह राजनैतिक प्रसग में एक झूठा मान ले आता है, शक्ति का एक झूठा मान उत्पन्न करता है, और इसलिए अन्त में इसका प्रायः उतना महत्व नही जितना कि वास्तविक शिक्षा तथा सस्कृति सम्बन्धी और आर्थिक उन्नति का है, जो कि उन्हें किसी भी कठिनाई या विरोधी का सामना करने की भीतरी शक्ति देती है। फिर भी मैं कल्पना कर सकता हूँ कि अपने इन अभागे देशवासियो की वर्तमान परिस्थिति में, जिन्हें अतीत में ऐसे अवसर नही मिले है, इस बात के लिए विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि निश्चय ही शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में और राजनैतिक क्षेत्र मे भी उन्हें उस समय तक उचित समर्थन दिया जाय, जब तक कि वे बिना किसी बाहरी सहायता के अपने पैरो के बल खड़े न होने लगें।

इसलिए मै यह प्रस्ताव सरकार की ओर से स्वीकार करता हूँ। लेकिन इसे स्वीकार करते हुए मैं इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि जहाँ तक इसके कार्यान्वित करने का प्रश्न है, विशेषकर कानून के क्षेत्र में, इस पर पुनः ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और वह अन्त में पुनः इस सभा के सामने लाना होगा।

"सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी" शब्दो को जिनकी इस प्रस्ताव के एक संशोधन में चर्चा हुई है, प्रस्ताव में जोड़ना स्वीकार करने में मुझे सरकार की ओर से कोई आपत्ति नही है, यह अब इस प्रकार पढ़ा जायगा :

".......अपने सम्प्रदाय की वास्तविक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य कामों में भाग लेने की आज्ञा न हो............"।

कांश्मीर
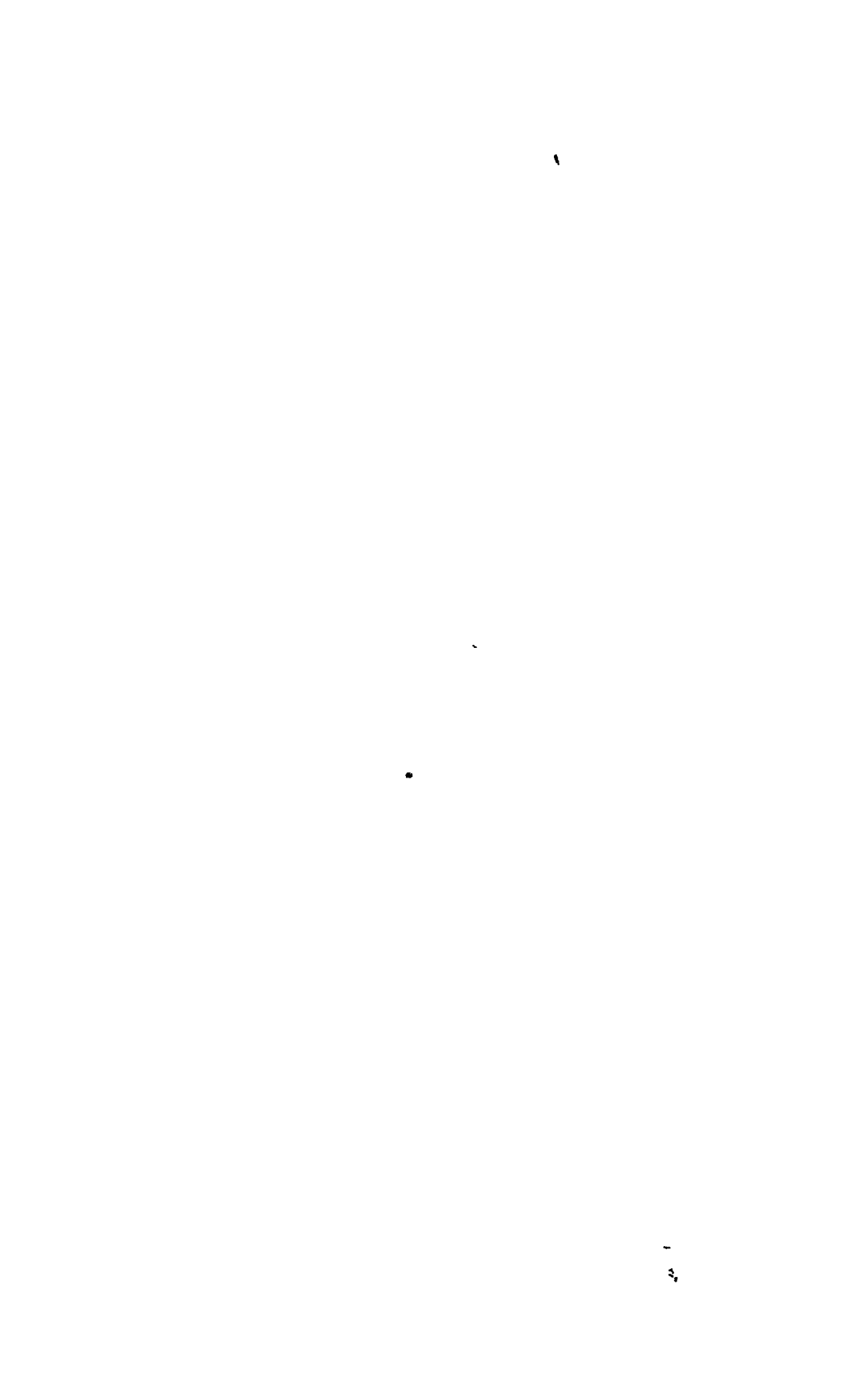
कौन ज़िम्मेवार है ?

आज रात मैं आपसे काश्मीर के बारे में कहना चाहता हूँ। इस प्रसिद्ध घाटी के सौन्दर्य के बारे में नहीं, बल्कि उस भय-कंप के बारे में जिसका काश्मीर को हाल में सामना करना पड़ा है। हम लोग बहुत संकट के दिनो से होकर गुजरे हैं और हमें कितने ही महत्त्वपूर्ण और दूर तक प्रभाव डालने वाले निर्णय करने पड़े हैं। हमने ऐसे निर्णय किए हैं और मैं आपको उनके बारे में बताना चाहता हूँ।

पड़ोसी सरकार ने, ऐसी भाषा में जो सरकारो की तो क्या बल्कि जिम्मेदार लोगों की भी भाषा नही है, भारत सरकार पर यह आरोप लगाया है कि उसने काश्मीर को धोखेबाजी से भारतीय सघ में सम्मिलित किया है। ऐसी भाषा के प्रयोग में मैं उनकी बराबरी नही कर सकता, और न ऐसा करने की मेरी इच्छा ही हैं, क्योंकि मैं एक जिम्मेदार सरकार और जिम्मेदार जनता की तरफ से बोल रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि काश्मीर में दंगा और बल-प्रयोग हुआ है, लेकिन प्रश्न यह है इसके लिए जिम्मेदार कौन है ? जम्मू और काश्मीर रियासत के बड़े हिस्से बाहरी आक्रमणकारियो द्वारा, जो कि हथियारो और सामान से सुसज्जित हैं ध्वस्त हो चुके हैं, और उन्होंने शहरो और गाँवो को लूटा तथा तबाह किया है। उन्होंने वहाँ के बहुत से निवासियो को तलवार के घाट उतार दिया है। इस सुरम्य और शान्त देश में भीषणता का आक्रमण हुआ और श्रीनगर का सुन्दर शहर भी नष्ट होते होते बचा।

मैं यह सबसे पहले बता देना चाहता हूँ कि काश्मीर के संबन्ध में हमने हर एक कदम पूरे सोच विचार के बाद और परिणामो को ध्यान में रखते हुए रखा है, और मुझे विश्वास है कि हमने जो कुछ किया है, ठीक किया है। इन कदमो का न उठाना हमारे लिए एक दायित्व के प्रति धोखा देना होता, और बल-प्रयोग के सामने, जिसके साथ ही साथ अग्निकांड, स्त्रियो के प्रति बलात्कार और कत्ल हो रहे हों, बुजदिली के साथ झुक जाना होता।

कुछ हफ्तो से हमें जम्मू प्रान्त के रियासती प्रदेश में आक्रमणकारी दलो के चुपके-चुपके प्रवेश करने के समाचार मिल रहे थे; इस बात के भी कि काश्मीर और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की सरहद पर हथियारबन्द आदमियो का जमाव हो रहा है।

---

२ नवम्बर १९४७ को नई दिल्ली से प्रसारित एक भाषण।

हम स्वभावतः इससे चिन्तित हुए, न केवल इस खयाल से कि काश्मीर और उसके लोगों से हमारे निकट के सम्बन्ध है, वल्कि इसलिए भी कि काश्मीर बड़े वड़े राष्ट्रों का सरहदी इलाका है, इसलिए वहां जो कुछ हो रहा है, उसमें दिलचस्पी लेना हमारे लिए अनिवार्य है। लेकिन हम किसी तरह का हस्तक्षेप नही करना चाहते थे और न हम लोगों ने दस्तन्दाज़ी का कोई कदम उठाया, अगर्चे जम्मू प्रान्त के एक हिस्से पर आक्रमणकारी चढ़ आए थे।

यह कहा गया है कि जम्मू की ओर से पाकिस्तान की सरहद पार करके हमले हुए थे, और मुसलमान मारे, भगाए या निकाल दिये गए थे। हमने वुराई की निन्दा करने में कभी संकोच नही किया है, चाहे उसके करने वाले हिन्दू हों या सिख हों या मुसलमान हों। इसलिए अगर हिन्दुओ या सिखों या रियासत के कर्मकारियों ने जम्मू प्रान्त में कोई दुर्व्यवहार किया है, तो हम निश्चय रूप से उसकी निन्दा करते हैं और उनके किए पर खेद प्रकट करते हैं।

लेकिन मेरे सामने जम्मू सूवे के ९५ गांवों की एक विस्तृत सूची है, जिनका पाकिस्तान से आए आक्रमणकारियों ने विध्वंस किया है। भिम्वर जैसे एक काफी वड़े कस्वे को लूटकर उसे विध्वस्त कर दिया गया है। और भी कस्वों पर घेरा डाल दिया गया है और पुंच्छ और मीरपुर के इलाकों के काफी वड़े हिस्से आज हमला करने वालों के अधिकार में है। क्या यह इस बात का संकेत देता है कि काश्मीर की ओर से पश्चिमी पंजाव पर आक्रमण हुए? इससे क्या यह नही जाहिर होता कि पश्चिमी पंजाव से काश्मीर रियासत में वरावर संगठित हमले होते रहे हैं? इन हमला करने वालों के पास नए से नए ढंग के आधुनिक हथियार है। यह कहा गया है कि अग्निज्वाला फेंकने वाले अस्त्रों का भी उपयोग हुआ है और उनके पास एक विगड़ा हुआ टैंक भी पाया गया है।

इस समय के आसपास काश्मीर रियासत ने हमसे हथियारों की मांग की। हमने इस विषय में कोई जल्दी नही की और अगर्चे हमारे रियासती और रक्षा मंत्रियों ने मंजूरी दे दी थी, तथापि व्यवहार में कोई हथियार भेजे नही गए।

२४ अक्तूवर की रात को मुझे मालूम हुआ कि एक धावा और हुआ है और इस वार वह ऐवटावाद-मानसरा सड़क की ओर से हुआ है, जो काश्मीर मे मुजफ्फरावाद के पास प्रवेश करती है। हमे वताया गया कि एक सौ से ऊपर लारियों में हथियारवन्द और सामान से लैस आदमियों ने सरहद पार कर मुजफ्फरावाद को लूट लिया है और वहुत से आदमियो की हत्या की है, जिनमें जिले के मजिस्ट्रेट भी थे, और अव वे झेलम घाटी की सड़क से श्रीनगर की तरफ वढ़ रहे हैं। रियासती फौजें थोड़ी-थोड़ी संख्या मे सारी रियासत में फैली हुई थी और वे इस

हथियारबन्द और सुसंगठित धावे का मुकाबला नहीं कर सकती थी। नागरिक जनता, हिन्दू और मुसलमान, इन हमला करने वालों के सामने से भाग रही थी।

२४ अक्तूबर की रात को पहली बार काश्मीर रियासत की ओर से भारत में प्रवेश करने की तथा सैनिक सहायता की प्रार्थना की गई। २५ ता० को सवेरे हमने रक्षा-समिति में इस पर विचार किया, लेकिन सेना भेजने के विषय में इस कार्य की प्रत्यक्ष कठिनाइयो को ध्यान में रखते हुए, कोई निर्णय नहीं किया। २६ ता० को सवेरे हमने इस मामले पर फिर विचार किया। अब तक स्थिति और भी नाजुक हो चुकी थी। धावा करने वालो ने कई कस्बो में लूटमार की थी और महूरा के बिजलीघर को, जहाँ से सारे काश्मीर में बिजली पहुँचती है, नष्ट कर दिया था। वे घाटी में प्रवेश करने ही वाले थे। श्रीनगर और सारे काश्मीर का भाग्य तराजू के काँटे पर था।

हमारे पास सहायता माँगने के जरूरी संदेसे न केवल महाराजा की सरकार की ओर से, बल्कि जनता के प्रतिनिधियो की ओर से भी आए, खासकर काश्मीर के उस बड़े नेता और नेशनल कान्फ्रेंस के सभापति शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के पास से। काश्मीर सरकार और नेशनल कान्फ्रेंस दोनो ही ने इस पर जोर दिया कि काश्मीर का भारतीय संघ में प्रवेश हम स्वीकार करें। हमने इस प्रवेश को स्वीकार करने का और हवाई जहाजों से सेना भेजने का निश्चय किया, लेकिन हमने एक शर्त्त लगाई कि इस प्रवेश पर रियासत में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद काश्मीर की जनता की राय ली जाए। हमें इस बात की चिन्ता थी कि एक सकट के क्षण में और बिना काश्मीर के लोगो को अपना विचार प्रकट करने का पूरा अवसर दिए हुए हम कोई अन्तिम निर्णय न कर लें। अन्त में निर्णय करना उन्हीं का काम था।

और यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि हमारी बराबर यह नीति रही है कि जहाँ भी किसी रियासत के किसी भी अधिराज्य में प्रवेश करने के विषय में झगड़ा हो, वहाँ रियासत की जनता का निर्णय ही माना जायगा। इस नीति के अनुसार हमने प्रवेश सम्बंधी प्रार्थनापत्र में यह शर्त जोड़ी।

हमने २६ अक्टूबर के तीसरे पहर काश्मीर में सेनाएं भेजने का निश्चय किया। श्रीनगर खतरे में था और स्थिति गंभीर और नाजुक थी। हमारे कर्म-चारियो ने दिन रात परिश्रम किया और २७ को पौ फटते ही हमारे सैनिक हवा के मार्ग से रवाना हो गए। शुरू में उनकी संख्या थोड़ी थी, लेकिन पहुँचते ही वे हमला करने वालों को रोकने में जुट गए। उनका साहसी कमांडर, जो कि हमारी सेना का एक बहादुर अफसर था, दूसरे ही दिन मारा गया।

तव से सेना और सामान हवाई जहाजों से वरावर वहां पहुँचाए गए है, और हमारे कर्मचारियों ने हमारे पाइलेटों और हवावाजो ने जिस तरह इस काम में अपने को जी जान से लगा दिया है, उसकी मै अपनी ओर से तथा अपनी सरकार की ओर से वड़ी तारीफ करूंगा। हवाई लाइनो ने हमसे पूरा सहयोग किया है और मै उनका भी कृतज्ञ हूँ। हमारे नोजवानो ने यह दिखा दिया है कि वे किस प्रकार अवसर आने पर, जवकि स्थिति नाजुक हो, अपने देश की सेवा के लिए तत्पर हो सकते है।

श्रीनगर खतरे में था और आक्रमणकारी उसके दरवाजे तक आ गया था। वहां न कोई शासन रह गया था, न सैनिक थे, न पुलिस थी। रोशनी और विजली की शक्ति भी वहां नही थी और वहां वहुत से शरणार्थी इकट्ठे हो गए थे। फिर भी श्रीनगर में कोई प्रत्यक्ष खलवली नही थी। दूकानें खुली हुई थी और लोगो का गलियों में आना जाना जारी था। यह अद्‌भुत घटना कैसे घटी। शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफरेंस के उनके साथियों और उनके निहत्थे मुसलमान, हिन्दू और सिख स्वयंसेवको ने स्थिति को हाथों में लिया, व्यवस्था वनाए रखी, और खलवली उत्पन्न होने से रोकी। एक ऐसे क्षण में जवकि ज्यादातर लोगों की हिम्मतें छूट गई होती, उन्होंने अद्‌भुत काम कर दिखाया। वे अपने संगठन की शक्ति के कारण ऐसा कर सके, लेकिन इससे भी वढ़कर इस कारण कि अपने देश की ऐसे निर्दय आक्रमणकारी से रक्षा करने पर वे तुले हुए थे जो कि उनके देश का विनाश कर रहा था और दहशत पैदा करके उन्हें पाकिस्तान मे शरीक होने पर मजवूर करने की कोशिश कर रहा था। भविष्य में जो भी हो, काश्मीर की घाटी के लोगों ने इन पिछले कुछ दिनो में आश्चर्यजनक साहस, संगठन की योग्यता तथा एकता दिखाई है।

वहुत अच्छा हो कि सारा भारत जो कि साम्प्रदायिक झगड़ो के कारण विषाक्त हो गया है, इस से सवक सीखे। एक वड़े नेता शेख अब्दुल्ला की प्रेरणा से घाटी के लोग मुस्लिम, हिन्दू और सिख अपने देश की रक्षा के लिए, जो कि समान रूप से सवका है, आक्रमणकारी के विरुद्ध मिलकर एक हुए। जनता की इस सहायता और सहयोग के विना हमारे सैनिक वहुत कम काम कर पाते।

इस नाजुक अवसर पर शेख अब्दुल्ला को शासन का प्रधान वनाने के निर्णय पर कश्मीर के महाराजा वधाई के पात्र है। अपनी जनता को स्वतंत्रता का संरक्षक और ट्रस्टी वनाना ही यह वड़ी वुद्धिमत्ता का काम था, जिसका कि और शासक अनुसरण कर सकते है।

इसलिए यह याद रखना चाहिए कि कश्मीर की लड़ाई एक लोकप्रिय नेता

के नेतृत्व में काश्मीर के लोगो की आक्रमणकारी के विरुद्ध लड़ाई है। हमारे सैनिक वहाँ इस युद्ध में सहायता देने के लिए गए है और जैसे ही काश्मीर आक्रमणकारियो से मुक्त हो जायगा, हम सैनिको के वहाँ रहने की कोई आवश्यकता शेप नही रह जायगी और काश्मीर के भाग्य का निपटारा काश्मीर के लोगो पर छोड़ दिया जायगा।

हम ऐसे दिनों में से गुज़रे है जो न केवल काश्मीर के लिए वल्कि सारे भारत के लिए सकट का रहा है। यह संकट कम हुआ है, लेकिन इसे समाप्त नही कह सकते और अभी वहुत से और खतरे हमारे सामने है। वहाँ कुछ भी होगा उसके लिए हमें वहुत सतर्क और खूव तैयार रहना है। इस तैयारी की दिशा में पहला कदम तो यह हो सकता है कि हम भारत में सव प्रकार के सांप्रदायिक झगड़ो को समाप्त कर दें, और किसी एकतापूर्ण राष्ट्र की भांति अपनी स्वतत्रता के प्रति हर एक खतरे का सामना करने के लिए तत्पर हो जाय। वाहरी खतरे का अच्छी तरह सामना हम तभी कर सकते है जवकि हमारे यहां भीतरी शांति और व्यवस्था हो और एक संगठित राष्ट्र हो।

हम काश्मीर पर धावा करने वालो और आक्रमणकारियों की वात करते है, लेकिन ये लोग न केवल पूरी तरह से हथियारवन्द और सुशिक्षित है वल्कि कुशल नेतृत्व में है। ये सभी पाकिस्तान के इलाके से होकर आए है। पाकिस्तान सरकार से यह पूछने का हमें अधिकार है कि ये लोग सीमाप्रान्त या पश्चिमी पंजाव पार कर वहाँ कैसे पहुंचे और कैसे ये पर्याप्त रूप से हथियारवन्द है? क्या यह अन्तर्राष्ट्रीय विधान को भग करना और एक पड़ोसी राष्ट्र के प्रति अमित्रता का व्यवहार करना नही है? क्या पाकिस्तान सरकार इतनी कमजोर है कि उसके इलाके को पार कर दूसरे देश पर आक्रमण करने वाली फौजो को वह रोक नही सकती, या वह चाहती है कि ऐसा आक्रमण हो? इसके सिवा दूसरी वात नही हो सकती।

हमने पाकिस्तान सरकार से वार वार कहा है कि वह इन आक्रमणकारियो को आने से रोके और जो आ गए है उन्हें लौटा दे। इनका रोकना पाकिस्तान सरकार के लिए आसान है, क्योकि काश्मीर में पहुंचने वाली सड़कें वहुत नही है और वे पुलों को पार करके आती है। अपनी ओर से हम कह सकते है कि जव आक्रमण का खतरा पूरी तरह दूर हो जायगा तो अपनी सेना का काश्मीर में उपयोग करने की हमारी कोई इच्छा नही है।

हमने यह घोपणा की है कि काश्मीर के भाग्य का अतिम निर्णय वहां के लोगो के हाथ रहेगा। हमने यह प्रतिज्ञा न केवल काश्मीर के लोगों से वल्कि सारे ससार

से कर रक्खी है और महाराजा ने इसका समर्थन किया है। हम इससे पीछे न हटेंगे और न हट सकते हैं। हम इसके लिए तैयार हैं कि जब काश्मीर में शान्ति और व्यवस्था और कानून स्थापित हो जायं तो संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण मे जनमत लिया जाय। हम चाहते हैं कि जनता को न्याय और उचित ढंग से मत देने का अवसर मिले और हम उसके निर्णय को स्वीकार करेंगे। इससे अधिक न्यायपूर्ण और उचित प्रस्ताव की मैं कल्पना नही करता।

इस बीच हमने काश्मीर के लोगो को यह वचन दे रक्खा है कि हम उनकी आक्रमणकारियो से रक्षा करेंगे और हम इस प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।

काश्मीर की अग्नि-परीक्षा

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं इस सभा को वे घटनाए, जिन्होंने हमें काश्मीर में अपनी फौजें भेजकर हस्तक्षेप करने के लिए विवश किया और जो गंभीर प्रश्न उस रियासत में उठ खड़े हुए, उनके सम्बन्ध में भारत सरकार का रुख बता सकूंगा।

इस सभा को मालूम है कि इस वर्ष १५ अगस्त को सम्राट के आधिपत्य का अन्त होने पर, काश्मीर ने किसी भी राज्य के साथ अपने को सम्मिलित नही किया था। यह सही है कि यह रियासत क्या निर्णय करेगी, इसमें हमारी गहरी दिलचस्पी थी। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण, काश्मीर, जिसकी सरहदें तीन देशो, अर्थात सोवियत संघ, चीन और अफगानिस्तान से लगी हुई है, भारत की रक्षा और अन्तर्जातीय संपर्क के प्रश्नो से घनिष्ट रूप से संबद्ध है। आर्थिक दृष्टि से भी काश्मीर का भारत से गहरा संबंध है। मध्य एशिया से भारत आने वाले व्यापारी दलो का रास्ता काश्मीर से होकर आता है।

फिर भी रियासत पर, भारतीय राज्य में सम्मिलित होने के लिए, हमने जरा भी दवाव नही डाला, क्योकि हमने अनुभव किया कि काश्मीर एक वड़ी कठिन परिस्थिति में है। हम शासन की ओर से केवल समायोग नही चाहते थे, बल्कि काश्मीर जनता की इच्छा के अनुसार यह काम करना चाहते थे। वास्तव में हमने जल्दी में निश्चय कराने का कोई प्रोत्साहन नही दिया। यहां तक कि यथावत् स्थिर रहने के सम्बन्ध में भी कोई करार करने के विषय में हमने जल्दी नही की, यद्यपि १५ अगस्त के वाद ही काश्मीर का पाकिस्तान से इस प्रकार का समझौता हुआ था।

हमको वाद में मालूम हुआ कि पाकिस्तान के अधिकारियो द्वारा जनता की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक सामान जैसे अनाज, नमक, शक्कर और पेट्रोल आदि का काश्मीर प्रवेश रोक कर, काश्मीर पर वाहरी दवाव डाला जा रहा है। इस प्रकार काश्मीर पर आर्थिक फासी लगाने का और उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिए मजबूर करने का यत्न चल रहा था। यह दबाव संगीन था, क्योकि काश्मीर के लिए इस सामान को यातायात की कठिनाइयो के कारण भारत से प्राप्त करना आसान नही था।

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में २५ नवम्बर, १९४७ को दिया गया वक्तव्य।

सितम्बर मे हमें समाचार मिला कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के कबायली इकट्ठा करके काश्मीर की सरहद पर भेजे जा रहे है। अक्तूबर के आरंभ में घटनाओं ने एक गंभीर पलटा लिया। पश्चिमी पंजाब के पड़ोसी जिलो से हथियारबन्द दल जम्मू प्रान्त में पहुंच गए और स्थानीय निवासियों पर भयानक लूट-मार करने लगे। उन्होने गांवो और कस्बो को जलाया, और बहुत से लोगो को कत्ल कर दिया। इन हिस्सों से बड़ी संख्या में शरणार्थी जम्मू में पहुंचने लगे।

जम्मूकी सरहद के स्थानीय निवासियों ने, जो कि मुख्यतया हिन्दू और राजपूत है, बदला लेना शुरू किया और इन सरहदी गांवो के मुसलमानो को निकाल भगाया। इन सरहदी झगड़ो में दोनो ही दलों के लोगों ने सरहद के दोनो तरफ के गांवो को बहुत बड़ी संख्या में नष्ट कर दिया या जला दिया।

जम्मू प्रान्त पर पश्चिमी पंजाब के आक्रमण करने वालो की संख्या बढ़ी और वे उस प्रान्त मे फैल गए। काश्मीर सरकार की सेना जिसे कि इन हमलो का कई जगहो पर मुकाबला करना पडता था, शीघ्र ही छोटे-छोटे टुकडों में बंट गई और धीरे-धीरे उसकी युद्ध करने की शक्ति जाती रही। आक्रमण करने वाले खूब सगठित थे, उनके पास कुशल अफसर थे और आधुनिक हथियार थे। जम्मू प्रान्त के एक बड़े हिस्से पर अधिकार करने में वे सफल हुए, खासतौर से पुंच्छ इलाके में। पुंच्छ का कस्बा, मीरपुर, कोटली और कुछ और जगहे मुकाबले मे डटी रही।

लगभग इसी समय रियासत के अधिकारियों ने हमसे हथियार और लडाई का सामान मांगा। हमने सामान्य क्रम में उन्हें लड़ाई का सामान देना स्वीकार किया। लेकिन वास्तव में हमने कोई सामान उस समय तक नही भेजा, जब तक कि घटनाओ ने एक और नाजुक परिस्थिति नही पैदा कर दी। इस दर्जे पर भी भारत में सम्मिलित होने की चर्चा नहीं उठी।

इस समय काश्मीर की जनता के संगठन के नेता, काश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस के सभापति शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, जेल से मुक्त किए गए और हम लोगों ने उनसे और काश्मीर के महाराजा के प्रतिनिधियो से काश्मीर की स्थिति के सबध में परामर्श किया। हमने उन दोनों से यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि हम काश्मीर के भारत प्रवेश का स्वागत करेंगे, तथापि हम यह नही कि यह प्रवेश जल्दी में या दबाववश हो। बल्कि हम उस समय तक रुकना पसन्द करेंगे, जब तक कि जनता निर्णय न करे। शेख अब्दुल्ला की भी यही राय थी।

२४ अक्तूबर को हमने सुना कि बड़े-बड़े हथियारबन्द दल, जिनमें कि सीमा प्रान्त के कबायली और अवकाशप्राप्त सैनिक दोनों ही थे, मुजफ्फराबाद के नाके को तोड़

कर श्रीनगर की ओर कूच कर रहे थे । ये आक्रमणकारी पाकिस्तान का इलाका पार करके आए थे और उनके पास ब्रेन तोपें, मशीनगनें, मार्टर बन्दूकें और अग्निक्षेपक यंत्र थे । उनके साथ यातायात की सैकड़ों गाड़ियाँ भी थीं। वे लूट-मार करते और आग लगाते हुए तेजी से घाटी में उतर रहे थे।

इस स्थिति पर २५ और २६ अक्तूबर को हमने अपनी रक्षा-समिति में बड़ी गंभीरता से विचार किया। २६ के सवेरे स्थिति यह थी कि धावा करने वाले श्रीनगर की ओर कूच कर रहे थे, और कोई फौजी दस्ता ऐसा नहीं था जो उनका सामना कर सके। दो दिन तक उड़ी के पास रियासती सेना ने अपने बहादुर कमाण्डर के नेतृत्व में, जो कि मरते दम तक इस हमले को रोके रहा, इनका सामना किया। इस तरह जो दो दिन हासिल हुए, वे बड़े मूल्यवान थे।

इन हालतो में महाराजा और शेख अब्दुल्ला दोनो की तरफ से हम से यह कहा गया कि हम भारतीय सघ में रियासत का प्रवेश स्वीकार करें और भारत की फौजी शक्ति से काश्मीर की सहायता करें। तुरन्त निर्णय करना आवश्यक था, और अब तो यह स्पष्ट हो गया है कि यदि हमने निर्णय करने मे २४ घंटे की भी देर की होती तो श्रीनगर चला गया होता, और उसकी वही दशा हुई होती जो कि मुजफ्फराबाद, बारामूला और दूसरी जगहो की हुई। हमारे लिए यह स्पष्ट था कि हम किसी भी सूरत में निर्दयी और गैरजिम्मेदार हमलावरो के जरिये काश्मीर की बरबादी देख नही सकते थे। ऐसा करना, सबसे खराब किस्म की कट्टरता और आतंक के सामने सिर झुकाना होता और सारे भारत पर उसके बहुत बुरे परिणाम होते। इस स्थिति में बीच में दखल देना कोई आसान काम नही था और इसमें पूरा जोखिम और खतरा था। फिर भी हमने जोखिम उठा कर दखल देने का निश्चय किया, क्योंकि ऐसा न करने का नतीजा काश्मीर की बरबादी और भारत के लिए और भी ज्यादा खतरा होता।

लेकिन, प्रवेश को स्वीकार करते हुए, हमने महाराजा से यह पूरी तरह स्पष्ट कर दिया कि अब से उनकी सरकार को जनता की इच्छा पर चलना होगा और शेख अब्दुल्ला को, मैसूर में स्वीकृत नए नमूने पर, एक अन्तरकालीन सरकार बनाने का काम सौंप देना होगा। शेख अब्दुल्ला को, निश्चित रूप से, काश्मीर के लोगो का, वे चाहे मुस्लिम हो या हिन्दू हों या सिख हो, बहुत बड़ा बहुमत प्राप्त था। इसके अतिरिक्त हमने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जैसे ही काश्मीर में कानून और व्यवस्था स्थापित हो जायगी, और उसकी भूमि हमलावरो से साफ हो जायगी, रियासत के भारत प्रवेश का प्रश्न जनमत से हल किया जाय ।

बाद की फौजी कार्यवाही बताने में मै इस सभा का समय नहीं लूंगा। जो घटनाएँ

हुईं, वे अच्छी तरह मालूम है और उनसे हमारे सैनिक संगठन का, हमारे सैनिको और उड़ाको का गौरव बढता है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारी कार्यवाही कठिन परिस्थितियो में अधिकाश हवाई यातायात पर ही निर्भर रही है। हमारी नागरिक यात्रा-लाइनो ने और उनके उडाको ने भी वहा बडी सफलता से काम किया है।

एक बात जिसने कि हमारी सफलता में बड़ी मदद दी, कम से कम उतनी ही मदद दी, जितनी कि हमारी फौजी कार्यवाही ने, वह थी शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में नागरिक शासन का कायम रहना, और नागरिको के संयम का बना रहना। नागरिक जनता ने बिल्कुल निहत्थी होते हुए और दुश्मन के शहर से चन्द मीलो पर होते हुए भी जैसा आचरण किया, वह उसके साहस और स्थिरता का साक्षी है। वह ऐसा कर सकी क्यों कि उनका एक बड़ा नेता था, और क्योंकि हिन्दू, मुसलमान, और सिख सब ने अपने नेता के नेतृत्व में मिलजुल कर दुश्मन को भगाने और अपनी जन्मभूमि काश्मीर को बचाने का निश्चय कर लिया था। यह बात भारत की आधुनिक समय की घटनाओ में बड़े मार्के की है और ऐसी है, जिससे देश के और हिस्सो को उपयोगी शिक्षा मिल सकती है। श्रीनगर की रक्षा में निश्चय ही इस बात का बहुत ही बड़ा महत्व है।

इस समय स्थिति यह है कि हमारे सैनिकों ने पुंच्छ की रक्षा कर ली है, और कोटली से वे ८ मील पर हैं। जिस जमीन पर वे लड़ रहे है, वह बड़ी ऊबड़ और पहाड़ी है, और सड़को तथा निकासो को हमला करने वालो ने नष्ट कर दिया है। इसलिए प्रगति मन्द है। पुंच्छ इलाके में, जहां कि आक्रमणकारियो ने अधिकार कर लिया था, बहुत से गैर मुस्लिम निवासी कत्ल कर दिए गए हैं।

यहां पर मैं यह कहना चाहूँगा कि जम्मू के निकट शुरू नवम्बर १९४७ में कुछ घटनाएँ घटी जिनका मुझे बहुत अफससोस है। मुस्लिम शरणार्थियो के दल जम्मू से बाहर पहुँचाए जा रहे थे, जबकि उन पर गैर मुस्लिम शरणार्थियो ने तथा औरों ने हमला कर दिया और एक बड़ी संख्या में जानें गईं। जो सैनिक उन्हें साथ ले जा रहे थे उन्होने प्रशंसा योग्य काम नही किया। मैं यह बता दूं कि हमारे कोई सैनिक वहां मौजूद न थे और न उनका इसमें कोई भाग था। हमने अपने सैनिकों को लोगों की रक्षा करने की और निष्पक्ष व्यवहार की, तथा स्थानीय निवासियो से मेल मिलाप बढ़ाने की कड़ी आज्ञाएँ दे रखी हैं। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता होती है कि उन्होने इन आदेशो का पालन किया है।

इस सभा को मालूम है कि पाकिस्तान सरकार ने काश्मीर में की गई हमारी कार्यवाही के विरुद्ध प्रतिवाद किया है। ऐसा करने में उसने जिस भाषा का प्रयोग

किया है, वह किसी भी सरकार को शोभा नही देती। उन्होने हम पर धोखा देने और षड्यंत्र करने का इलजाम लगाया है। मैं केवल यह कहूँगा कि मुझे पूरा विश्वास है कि काश्मीर के संबंध में भारत सरकार का प्रत्येक कार्य सीधा और खुला हुआ रहा है, और मैं किसी भी समय संसार के सामने उसकी वकालत कर सकता हूँ। सच बात तो यह है कि हम लोग इस मामले में अत्यधिक सतर्क रहे है जिससे कि क्षणिक उद्वेग में कोई गलत बात न हो जाय। हमारे सैनिको का आचरण बराबर अच्छा और हमारी परम्पराओं के योग्य रहा है।

यही बात मैं पाकिस्तान सरकार के विषय में नही कह सकता। उसका कहना है कि झगड़े का आरंभ पूर्वी पंजाब और काश्मीर में मुसलमानों की भारी हत्या से हुआ है और काश्मीर पर आक्रमण कबायलियो पर उस सब की एक सहज प्रतिक्रिया थी। मेरे विचार में यह बिल्कुल झूठ है। मुझे बहुत अफसोस है कि जम्मू प्रान्त के कुछ हिस्सो के मुसल्मान मारे गए या निकाल भगाए गए। परन्तु हमारी सरकार या हमारे सैनिको का इस सब में कोई हाथ नही था। पिछले चन्द महीनों में पंजाब में यह आपस की मारकाट एक बड़ी दुखदायी बात रही है और जम्मू पर इसका गहरा असर पड़ा। हमारे पास यह सिद्ध करने के काफी प्रमाण है कि काश्मीर पर ये सारे हमले क्या जम्मू प्रान्त में और क्या काश्मीर में, पाकिस्तान सरकार के ऊँचे पदाधिकारियो द्वारा जानबूझ कर संगठित किए गए है। उन्होने कबाइलियों और अवकाशप्राप्त सैनिको को इकट्ठा करने में मदद दी, उन्होंने इन्हें युद्ध के साधन, लारियाँ, पेट्रोल और अफसर दिए। वे अब भी ऐसा कर रहे है। यही नही, उनके बड़े पदाधिकारी इस सबका खुल्लमखुल्ला ऐलान कर रहे है। यह स्पष्ट है कि आदमियों का कोई बड़ा गिरोह हथियारबन्द दस्ते बनाकर, बिना वहाँ के अधिकारियो की सदिच्छा, चश्मपोशी या सक्रिय सहायता के पाकिस्तान इलाके को पार नही कर सकता था। बरबस यही नतीजा निकलता है कि काश्मीर के धावो की पाकिस्तान के अधिकारियो ने होशियारी से योजना की और इस निश्चित उद्देश्य से उनका संगठन किया, कि रियासत पर बलपूर्वक अधिकार कर उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होने को विवश कर दिया जाय। यह न केवल कश्मीर के प्रति बल्कि भारतीय सघ के प्रति एक दुश्मनी का काम था। पाकिस्तान की सरकार का रुख जानने के लिए उसके तथा मुस्लिमलीग के अर्ध सरकारी पत्रो को देखना पर्याप्त है। यदि हमने इस योजना को सफल होने दिया होता तो हमलोग काश्मीर के लोगों से दगा करने के अपराधी होते और भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य से घोर रूप में विमुख होते। इसका परिणाम भारत की सांप्रदायिक और राजनैतिक स्थिति पर सर्वत्र भयावह होता। पाकिस्तान सरकार ने यह प्रस्ताव किया है कि हमारे सैनिकों और आक्रमणकारी काश्मीर से एक साथ हट जाएँ। यह एक अजीब सा प्रस्ताव है और इसके यही माने हो सकते हैं कि आक्रमण करने वाले वहाँ पाकिस्तान सरकार के कहने

से पहुंचे हैं। हम लुटेरों से, जिन्होंने वहुत वडी संख्या में हत्याएं की है और जिन्होंने काश्मीर को वरवाद करने की कोशिश की है, कोई वातचीत नही कर सकते। उनकी हैसियत एक राज्य की हैसियत नही है, चाहे उनके पीछे एक राज्य का सहारा हो। हम काश्मीर में लोगो की रक्षा करने के लिये वहाँ गए है और जैसे ही यह कर्त्तव्य पूरा हो जायगा, हमारे सैनिको की वहाँ ठहरने की आवश्यकता नही रहेगी और तव हम अपनी फौजें वापस वुला लेंगे। जव तक यह खतरा दूर नही होता तव तक हम काश्मीर के लोगो का साथ नही छोड सकते। अगर पाकिस्तान सरकार वास्तव मे शान्ति चाहती है, तो वह इन हमला करने वालो का आना रोक सकती है, और इस तरह शांति और व्यवस्था की स्थापना में शीघ्रता करा सकती है। इसके वाद काश्मीर के लोग अपना निर्णय कर लें और हम उनके निर्णय को स्वीकार करेंगे। लेकिन अगर यह हथियारो की लड़ाई जारी रहती है तो लोगो को शांतिपूर्वक निर्णय करने का कोई अवसर नही मिलेगा; तव इस युद्ध मे लगे हुए लोगो के त्याग और शक्ति द्वारा ही क्रमशः अंतिम निर्णय हो सकेगा।

अपनी नेकनीयती स्थापित करने के लिए हमने यह सुझाव दिया है कि जव लोगों के अपने भविष्य के निर्णय का अवसर आवे तो उसे एक निष्पक्ष न्याय-मंडल के निरीक्षण में, जैसा कि संयुक्त राष्ट्रो का संगठन है, होना चाहिए।

काश्मीर के विषय में विचारणीय यह है कि उसके भविष्य का निर्णय जनता के मत के अनुसार होगा या हिंसा और नंगी शक्ति द्वारा। पाकिस्तान से प्रोत्साहन पाकर आक्रमणकारियों ने तलवार के जोर से और प्रत्यक्ष रूप में काश्मीर के लोगो की वड़ी संख्या की इच्छा के विरुद्ध उसे पाकिस्तान मे सम्मिलित होने के लिये मजवूर करने का प्रयत्न किया है। राजनैतिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिए हम ऐसे तरीकों की कामयावी नही देख सकते। यह एक दुःखद वात है कि पाकिस्तान आर्थिक और सामाजिक पुनर्संगठन के आवश्यक कार्यों पर ध्यान देने की वजाय ऐसे उपायों में भाग ले रहा है।

काश्मीर अग्निपरीक्षा से गुजरा है और मुझे विश्वास है कि यह सभा चाहेगी कि मैं काश्मीर के लोगो तक, पिछले हफ्तो मे उनपर जो कुछ वीती है, उसके लिए इस सभा की सहानुभूति पहुचा दूँ। यह सुन्दर देश, जिसे कि प्रकृति ने ऐसी रमणीयता प्रदान की है, ऐसे लोगो द्वारा वरवाद किया गया है, जिन्होने हत्याएं, आतिशजनी लूट-मार और स्त्रियों और वच्चो पर गदे हमले किए है। काश्मीर के लोगों ने जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण वड़ी मुसीवतें उठाई है, फिर भी शेख अब्दुल्ला के प्रभावशाली नेतृत्व में वे मुसीवत की घडी में एक साथ मिलकर डटे रहे है और उन्होंने सारे भारत के लिए इस वात की एक मिसाल पेश की है कि

साम्प्रदायिक एकता द्वारा क्या-क्या हासिल किया जा सकता है। भविष्य में चाहे जो कुछ भी हो काश्मीर के इतिहास का यह अध्याय पढ़ने योग्य होगा और हम इस बात का कभी खेद न करेंगे कि मुसीबत के समय हम उन बहादुर लोगों की सहायता कर सके। काश्मीर और भारत अनेक प्रकार से युगो से एक साथ बंधे रहे है। इन पिछले चन्द हफ्तो ने हमारे पुराने सम्बन्धो में एक नई कड़ी जोड़ दी है, जिसे कोई काट नही सकता।

काश्मीर सम्बन्धी तथ्य

जैसा कि अब भली भांति मालूम है, भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के सामने पाकिस्तान से या वहाँ होकर आने वाले लोगों के द्वारा काश्मीर पर हमले का मामला रख दिया है ।

सरकार चाहती है कि अन्तर्राष्ट्रीय नीति और औचित्य को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक उसके लिए संभव है, वह समाचार-पत्रो और जनता को पूरी-पूरी बातें बता दे। उसने अभी तक इसलिए प्रतीक्षा की कि सुरक्षा परिषद् इस विषय पर विचार कर ले, तब इसपर कुछ कहा जाय, लेकिन इस दृष्टि से कि पाकिस्तान के वैदेशिक मंत्री तथा औरो ने इसपर वक्तव्य दिये है, यह उचित ही है कि यथार्थ बातो को संक्षेप में बता दिया जाय ।

मैंने इससे पहले कई अवसरो पर, जबसे कि २७ अक्तूबर १९४७ को हमने अपने सैनिक काश्मीर भेजे, वहाँ की यथार्थ बातो को देश के सामने रखा है। हमारे सैनिक काश्मीर की घाटी और श्रीनगर की रक्षा करने में और दुश्मन को झेलम घाटी की सड़क से उडी तक पीछे भगाने में सफल हुए।

तब से एक विस्तृत मोर्चे पर काश्मीर रियासत और पाकिस्तान की प्रायः पूरी सरहद पर लड़ाई जारी है। बहुत बड़ी संख्या में हथियारबन्द लोग व्यूह बनाकर, आधुनिक शस्त्रो से पूरी तरह सुसज्जित हो कर काश्मीर रियासत के इलाके में कई जगहों पर दाखिल हुए है, और इससे भी बड़ी तादाद में लोग सरहद पर पाकिस्तान की ओर इकट्ठा हुए है।

पाकिस्तान के ये सरहदी हिस्से, इन आक्रमणकारियो के कार्य के अड्डे बन गए है, और इन अड्डों की सुरक्षा प्राप्त करके वे बडी संख्या में सरहद पार करके आते है, और काश्मीर रियासत के इलाके में, जो कि भारतीय संघ का इलाका है, लूटमार और अग्निकाण्ड करते है।

आत्मरक्षा के आधार पर भारत सरकार के लिये यह उचित ही होता यदि वह इन अड्डों पर आक्रमण करने वालों के आधारो को समाप्त कर देती। लेकिन उसने लड़ाई के क्षेत्र को सीमित रखने के विचार से और इस आशा

नई दिल्ली में, पत्रकारो की एक कांफ्रेंस में २ जनवरी, १९४८ को दिया गया एक वक्तव्य।

से कि पाकिस्तान इन हमला करने वालों को उकसाना और मदद देना वन्द कर देगा, वड़ी विवेकशीलता से ऐसा नही किया।

पिछले दो महीनो में पाकिस्तान सरकार से वरावर यह अनुरोध किया गया है कि भारत पर हमला करने के लिये वह अपने इलाके का उपयोग किया जाना रोके। यही नहीं कि उसने ऐसा नही किया, वल्कि यह एक निश्चित वात है कि इन हमला करने वालों को, जिनमें कि वहुत-से पाकिस्तान राष्ट्र के व्यक्ति है, पाकिस्तान सरकार ने सब तरह की सहायता दी है।

पाकिस्तान के इलाके से उन्हें मोटरों और रेलगाड़ियों से आने-जाने दिया जाता है, उन्हें पेट्रोल, खाना और रहने का स्थान दिया जाता है, और जो हथियार उनके पास है वे साफ तौर पर पाकिस्तानी सेना के हथियार है। काश्मीर युद्ध में हमारे सैनिकों ने पाकिस्तानी मेना के आदमियो को पकड़ा है।

यही नही कि पाकिस्तान सरकार ने इस आक्रमण को रोकने के लिये कोई कारगर कदम नही उठाया, वल्कि उसने आक्रमणकारियो को सक्रिय हमले वन्द करने के लिये कहने से भी इन्कार किया।

भारत सरकार एक मित्र और पड़ोसी देश का भारतीय इलाके पर आक्रमण करने के लिये अड्डे के रूप मे उपयोग होना सहन नही कर सकती। लेकिन जव तक कि परिस्थितिया मजबूर न कर दें, तव तक झगड़ा वचाने की इच्छा से, उसने यह निश्चय किया कि इस मामले को संयुक्त राष्ट्र सगठन की सुरक्षा परिषद् के सामने पेश कर दिया जाय।

२२ दिसम्वर, १९४७ को पाकिस्तान के प्रधान मंत्री के पास एक नियमित लिखित अनुरोध भेजा गया। इस पत्र मे पाकिस्तान के आक्रमण करनेवाले कार्यों और पाकिस्तान द्वारा आक्रमणकारियो को विविध रूप मे दी जाने वाली सहायता का सक्षेप मे उल्लेख था, और पाकिस्तान सरकार से कहा गया था कि वह पाकिस्तानियो को जम्मू और काश्मीर रियासत पर किये जाने वाले हमलो में भाग लेने से रोके तथा आक्रमणकारियों द्वारा काश्मीर रियासत पर किये जाने वाले हमलो के लिये पाकिस्तानी इलाके के उपयोग को रोके, (२) उन्हे किसी प्रकार का फौजी या अन्य सामान न दे, (३) और ऐसी कोई सहायता न दे जिससे कि वर्तमान लड़ाई के अधिक समय तक खिंचने की संभावना हो।

भारत सरकार ने फिर अपनी यह उत्कट इच्छा प्रकट की कि वह पाकिस्तान के साथ मैत्रीभाव वनाये रखना चाहती है, और यह आशा प्रकट की कि उसका अनुरोध तुरंत विना किसी प्रकार की-मानसिक रुकावट के स्वीकार किया जायगा।

लेकिन उसने यह भी बताया कि यदि ऐसा न हुआ, तो वह अपने और जम्मू तथा काश्मीर रियासत की सरकार के हितो की रक्षा के लिये, संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य की हैसियत से अपने अधिकारो तथा उत्तरदायित्व का उचित ध्यान रखते हुए, जो भी उचित समझेगी करेगी।

चूकि इस नियमित अनुरोध का कोई उत्तर न मिला, दो स्मरण-पत्र इसलिये भेजे गये। आखिरकार ३० दिसम्बर को सयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में संयुक्त राष्ट्र संघ के भारतीय प्रतिनिधि ने इस मामले को निर्णय के लिये पेश कर दिया। ३१ दिसम्बर को इस हवाले की एक प्रति तार द्वारा पाकिस्तान सरकार के पास भेज दी गई।

इस हवाले में इस विषय की यथार्थ बातो का बयान था, और कहा गया था कि उन बातो से निम्नलिखित निश्चित परिणाम निकलते है:—

(क) आक्रमणकारियो को पाकिस्तान के इलाके से होकर आने दिया जाता है;

(ख) उन्हे पाकिस्तान के इलाके को अपने हमलो का अड्डा बनाने दिया जाता है;

(ग) उनमें पाकिस्तानी नागरिक सम्मिलित हैं;

(घ) वे अपने फौजी सामान का बहुत सा हिस्सा, यातायात के साधन और सामान (जिसमें पेट्रोल भी है) पाकिस्तान से प्राप्त करते है; और

(ङ) पाकिस्तान के अफसर उन्हें प्रशिक्षण दे रहे है, उनका निर्देशन कर रहे है और अन्य प्रकार से उन्हे सहायता दे रहे है।

पाकिस्तान के अतिरिक्त और कोई जरिया नही था जिससे कि इतना आधुनिक फौजी सामान, प्रशिक्षण और निर्देश उन्हें प्राप्त होते। इसलिये भारत सरकार ने सुरक्षा परिषद् से यह अनुरोध किया कि वह पाकिस्तान सरकार से यह कहे कि—

(१) पाकिस्तान सरकार अपने फौजियो तथा नागरिको को जम्मू और काश्मीर रियासत पर होने वाले हमले में भाग लेने या उसमें मदद पहुंचाने से रोके;

(२) वह अन्य पाकिस्तानियों को जम्मू और काश्मीर रियासत में होने वाली लड़ाई में कोई भी भाग लेने से रोके।

(३) वह आक्रमणकारियो को (क) काश्मीर के विरुद्ध आक्रमण में अपने

इलाके के उपयोग से रोके; (ख) फौजी या और सामान न दे; (ग) न कोई ऐसी सहायता दे जिससे कि युद्ध के अधिक समय तक खिचने की सभावना हो।

इसलिये सुरक्षा परिषद् से किया गया हवाला ऊपर बताये हुए विषयो तक सीमित है। ये बहुत जरूरी बातें हैं, क्योकि पहला कदम लड़ाई का रोकना होना चाहिये और यह तभी हो सकता है जब कि हमला करने वाले वापस चले जायं। यह याद रखना चाहिये कि जो भी लड़ाई हुई है वह भारतीय सघ के इलाके मे हुई है, और भारतीय सरकार का यह प्रकृत अधिकार है कि वह आक्रमणकारियो को अपने इलाके से मार भगावे। जब तक कि काश्मीर रियासत से आक्रमणकारी निकल नही जाते, तब तक किसी और मामले पर विचार नही हो सकता।

भारत सरकार को बहुत खेद है कि यह भयंकर सकट उपस्थित हो गया है। इसे उत्पन्न करने मे उसका कोई हाथ नही है। भयकर बाहरी आक्रमणकारी सेनाओ ने जिन्होने काश्मीर रियासत के निवासियो के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया है और जिन्होने बहुत से गांवो और कस्बो को नष्ट कर दिया और जला दिया है, उनके कारण यह स्थिति भारत सरकार के सामने आई है। कोई भी सरकार इस तरह के आक्रमण को सहन नही कर सकती।

फिर भी, इस इच्छा से कि कोई काम ऐसा न हो जिससे और जटिलताएं उत्पन्न हो, इस सरकार ने जितनी सहिष्णुता संभव थी दिखाई है और पाकिस्तान सरकार से बार-बार अनुरोध किया है। पर इन अनुरोधो का कोई परिणाम नही हुआ। इसलिये भारत सरकार ने इस विशेष प्रश्न को सुरक्षा परिषद् मे पेश करने का निश्चय किया। स्वभावतः उसने आत्म-रक्षा से प्रेरित होकर, आने वाली परिस्थिति मे जैसा भी उचित हो वैसा कार्य करने की स्वतत्रता सुरक्षित रक्खी है।

पाकिस्तान के वैदेशिक मत्री ने, हाल मे समाचारपत्रो के सवाददाताओ से बातचीत करते हुए भारत सरकार पर बहुत से अभियोग लगाये है। मै इन अभियोगो के उत्तर न दूगा, सिवा इसके कि उनका पूर्णतया प्रतिवाद करूं। पिछले वर्ष में जो कुछ हुआ है वह अच्छी तरह विदित है, और हम इस बात के लिये तैयार है कि उनकी पूरी छानबीन हो। जाहिर है कि ये सब अभियोग इसलिये लगाये गये हैं कि काश्मीर संबन्धी विषय ऐसी और बातों के जंगल मे ढंक जाय जिनका कि उससे कोई संबंध नही।

यह सरासर झूठ है कि भारत सरकार ने विभाजन को रद्द करने या पाकिस्तान का गला घोटने का प्रयत्न किया है। केवल यह बात, जो कि सभी स्वीकार करते है कि हम बहुत उदारतापूर्ण आर्थिक शर्तों पर राजी हुए, इसका सबूत है कि

हम पाकिस्तान की मदद करना और उससे मित्रता का संबंध रखना चाहते हैं।

यह सरासर झूठ है कि हमने इन आर्थिक समझौतों को अस्वीकार कर दिया। हम उन पर कायम हैं और उन्हें पूरा करेंगे, लेकिन यह भी सही है कि हमने पाकिस्तान से कहा है कि हम ये रकमें इस वक्त नही दे सकते, जब कि हमारे दिये हुए धन के भारत के विरुद्ध युद्ध में उपयोग होने की संभावना है।

काश्मीर का मामला बिल्कुल अलग है। अगर एक वर्बर दुश्मन द्वारा एक मित्र इलाके पर किये गये हमलों को प्रोत्साहन मिलता है, और उन्हें सहन किया जाता है, तो इस ढंग से न भारत के लिये कोई भविष्य है न पाकिस्तान के लिये। इसलिये इनका मुकाबला करना है और हम पूरी ताकत से मुकाबला करेंगे। काश्मीर राज्य को उनसे पूरी तरह से मुक्त करना ही होगा। अपने हित की संकीर्ण दृष्टि से भी पाकिस्तान सरकार को अनुभव करना चाहिये कि इस तरह के हमले को प्रोत्साहन देना स्वयं उसके भविष्य के लिये भी भयावह है, क्योकि एक बार जब उन्मुक्त हिंसा की शक्तियां खुलकर काम करने लगती हैं, तो वे किसी भी राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल देती हैं।

यह याद रखना चाहिये कि काश्मीर में कोई ऐसा झगड़ा नही है जो साम्प्रदायिक कहा जा सके। बहुत-से काश्मीरी मुसलमान, हिन्दू, और सिख आक्रमणकारियो से लड़ रहे हैं। उनके लिये अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना एक राष्ट्रीय प्रश्न है, और हम वहाँ उनकी सहायता के लिये गये हैं। अपने पूरे सम्मान के साथ हम उनसे प्रतिज्ञाबद्ध हैं, और इस प्रतिज्ञा पर हम डटे रहेंगे।

समाचारपत्रों से मेरा अनुरोध है कि इस विषय पर इस नाजुक स्थिति में, वे सयम से काम लें, और कोई अनधिकृत बात न प्रकाशित करें। जब भी संभव होगा हम समाचारपत्रों को पूरी सूचना देने का प्रयत्न करेंगे। अनधिकृत समाचारों के प्रकाशन से राष्ट्र को और जिस पक्ष को हमने उठाया है, उसे हानि पहुँचने की संभावना है।

काश्मीर से प्रतिज्ञा

पाकिस्तान को शेप नकद रुपयो की अदायगी के सवन्ध मे सरकार का निश्चय वहुत सोच विचार के अनन्तर और गाधी जी की सलाह के वाद किया गया है। मै इसे स्पष्ट करना चाहूंगा कि इसका मतलव यह न समझना चाहिये कि सरकार की पूर्व स्थिति की दृढता या समीचीनता के विषय में, जो मेरे साथियो के विविध वक्तव्यो में व्यक्त हुई है, हमारी सर्वसम्मति में कोई अन्तर आया है। न हम उन तर्कों या तथ्यो को स्वीकार करते है, जिन्हें कि पाकिस्तान के वैदेशिक मत्री ने अपने सव से हाल के वक्तव्य में सामने रखा है।

---

१५ जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से दिया गया वक्तव्य।

भारत ने हाथ के नकद रुपयो में से वडी उदारतापूर्वक ७५ करोड़ रुपये पाकिस्तान के लिये नियत करना स्वीकार किया, जिससे कि पाकिस्तान अपना काम ठीक से आरंभ कर सके। यह अनुभव किया गया कि निर्णायक पचो को पाकिस्तान के लिये इतनी लम्वी रकम नही निर्धारित करनी चाहिये थी और यह आशा की जाती थी कि भारतीय सघ की इस उदारता की पारस्परिक प्रतिक्रिया होगी। उप-प्रधान मत्री, सरदार पटेल ने इसे स्पष्ट कर दिया था कि यह आर्थिक सौदा सभी विचार्य विपयो के सामूहिक निर्णय से सवद्ध था। लेकिन इसी वीच काश्मीर में पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध वस्तुत. एक अघोपित युद्ध छेड़ दिया, और इस खयाल से कि ५५ करोड रुपये (७५ करोड में २० करोड रुपये पहले ही दिये जा चुके थे) काश्मीर में भारत के विरुद्ध न खर्च किये जायें। वे तव तक के लिये जव तक काश्मीर का झगड़ा तय न हो जाय, रोक लिये गये थे। यह भारत और पाकिस्तान के वीच कडुएपन का एक और कारण वन गया। जव महात्मा गाघी ने १३ जनवरी, को अपना उपवास आरम किया, और राष्ट्र से दुर्भावना, पक्षपात और उद्वेगो को जो भारत और पाकिस्तान के परस्पर के संवध को विपाक्त कर रहे थे, दूर करने का अनुरोध किया, तव भारत सरकार ने नियत रकम अर्थात् ५५ करोड़ रुपये पाकिस्तान सरकार को अपनी सद्भावना के संकेत के रूप में और "गाधी जी के अहिंसात्मक और उच्च उद्योग" के प्रति अपनी श्रद्धांजलि के रूप में, तुरत देना निश्चय किया। १८ जनवरी को महात्मा गाधी ने अपना उपवास तोड़ा, जव कि दिल्ली के नागरिकों ने अपनी शांति-समितियो द्वारा यह प्रतिज्ञा की कि वे अपने हृदयों

हम इस आशा मे इस निर्णय पर पहुचे है कि यह उदार इंगित, जो कि भारत के उच्च आदर्शों और गांधी जी के उच्च मापदड के अनुकूल है, संसार को हमारी शांति की इच्छा और सद्भावना के प्रति विश्वास दिलायेगा। हमारा यह भी दृढ विश्वास है कि यह एक ऐसी स्थिति के उत्पन्न करने में सहायक होगा जिससे प्रेरित होकर गांधी जी अपना उपवास तोड सकेंगे। यह निश्चित है कि उस उपवास का इस विशेष मामले से कोई संबध नही है, और हमने इसके सबध में यो विचार किया कि हमारी इच्छा थी कि वर्तमान खिचाव को हर तरह से कम करने का प्रयत्न किया जाय।

छः महीने पहिले हमने कलकत्ते मे एक अलौकिक घटना घटते देखी जहाँ कि ऐसे ही एक उपवास की किमियागरी के द्वारा रातो रात दुर्भावना सद्भावना मे वदल गई। जिस किमियागरी ने यह परिवर्तन किया उसे हमारे गवर्नर-जनरल ने 'एक व्यक्ति का सरहदी दल' वताया। जब कि पश्चिमी पजाव में ५०,००० आदमी शांति नही स्थापित कर सके, यह अहिंसा का निहत्था सैनिक फिर काम कर रहा है। यह प्रार्थना है कि वही भारत मे और दूसरी जगह भी अपना प्रभाव डाले।

हमने भारत और पाकिस्तान के वीच झगड़े और तर्क के एक प्रधान कारण को दूर करने का प्रयत्न किया है और हम आशा करते है कि और प्रश्न भी हल हो जायगे। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिये कि काश्मीर के लोग एक भीषण और अकारण हमले से पीडित है, और हमने इस वात की प्रतिज्ञा की है कि उन्हे स्वतंत्रता दिलाने मे हम उनकी सहायता करेगे। हम उनकी स्वतत्रता अपने किसी लाभ के लिये नही चाहते, वल्कि इसलिये कि एक सुन्दर देश और एक शात जनता वरवादी से वच जाय।

और देश से साम्प्रदायिकता को दूर करेंगे।

इतिहास का प्रवाह

महोदय, काश्मीर के संबंध में एक वक्तव्य देने के लिए मैं आपकी अनुमति और इस भवन का अनुग्रह चाहता हूँ। मैं इस भवन से अनुरोध करूँगा कि वह कुछ समय के लिए इसे धैर्य से सुने क्योंकि मुझे बहुत कुछ कहना है, चाहे जितने संक्षेप में मैं कहूँ—यह नही कि मै कोई सनसनीपूर्ण बाते प्रकट करने जा रहा हूँ, सच तो यह है कि जो कुछ मुझे कहना है उसके विषय में कोई विशेष गोपनीयता नही है ; और ये बातें पिछले कुछ महीनो में बहुत-से समाचारपत्रो मे और दूसरी जगह प्रकाशित हो चुकी है। फिर भी यह उचित होगा कि मै इस भवन के सामने, जो कुछ हुआ है, उसका एक प्रकार से सिलसिलेवार हाल रखू। अपना काम हल्का करने के लिए, और इस भवन के सदस्यो के सुभीते के लिए, हमने काश्मीर विषय पर एक सरकारी पत्रक तैयार कराया है, जो सदस्यो में वितरण किया जायगा। इस सरकारी पत्र में ठीक आज तक की बाते नही आ गई है। इसमे प्रायः उस समय तक की बातें है जबकि यह मामला सुरक्षा परिषद् मे पेश हुआ था। इसमें बिल्कुल पूर्ण सामग्री नही है, इस मानी मे कि प्रत्येक तार या प्रत्येक पत्र आ गया हो, लेकिन सब मिलाकर, हमारे और पाकिस्तान सरकार के बीच संवादो का जो विनिमय हुआ है या संबद्ध संवाद इस सरकारी पत्र में आ गए है।

अब, इससे पूर्व कि मैं काश्मीर के इस विशेष प्रश्न पर कुछ कहूँ, मैं आपकी अनुमति से, एक और बडे प्रश्न के सबन्ध में कुछ शब्द कहना चाहूँगा, जिसका कि काश्मीर का यह प्रश्न एक अंगमात्र है। हम लोग बहुत कठिन समय मे रह रहे है; हम भारत में इतिहास के एक बडे गतिशील काल से गुजर रहे है। पिछले छः महीनो मे बहुत कुछ हुआ है, बहुत कुछ जो कि अच्छा था, और बहुत कुछ जो कि बहुत बुरा था। लेकिन शायद, जब कि भारत का इतिहास लिखा जायगा, जबकि आज का भय कष्ट बहुत कुछ भुलाया जा चुका होगा, उन समय जो सबसे बडी बातें बताई जायेंगी उनमें एक उस परिवर्त्तन के विषय मे होगी जो कि भारत में देशी रियासतो के सबंध मे हुआ है। हम कुछ बहुत मार्के की घटना घटते देख रहे है। हम लोगो के लिए जो कि इस परिवर्त्तन काल के बीच में रह रहे है, जो कुछ हुआ है उसके महत्व का पूरा पूरा अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन एक विचित्र ढंग से-शांतिपूर्ण ढंग से एक ऐसी इमारत ढह रही है जो कि भारत मे १२० या

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में, ५ मार्च, १९४८ को दिया गया वक्तव्य ।

१४० वर्षों से करीब-करीब उन्नीसवी सदी के आरंभ से, कायम रही है।

हम अचानक इतिहास के प्रवाह को, इतिहास के लम्बे झाड़ू को चलते औ इस १३० वर्ष पुराने ढाचे को वुहार कर उसके स्थान पर कुछ और ही कायम करते देखते हैं। हम निश्चित और पक्के तरीके से नही बता सकते कि इसका अन्तिम और ठीक-ठीक परिणाम क्या होगा यद्यपि तस्वीर काफी तेजी से स्पष्ट होती जा रही है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें भाग्य का हाथ है। जो कुछ हो रहा है वह ऐसा नही कि हम उसकी आशा न करते रहे हो। वास्तव में, हम में से वहुतो के, वहुत सालों से, भारतीय रियासतो के संबंध मे कुछ निश्चित ध्येय रहे है और उनके लिए भारत में अपने राजनैतिक तथा अन्य सगठनो द्वारा रियासतो की जनता द्वारा, प्रान्तो की जनता द्वारा और दूसरे प्रकार से हमने काम किया है। और सब कुछ लेकर जो आज हो रहा है वह उन्ही ध्येयो के अनुकूल हो रहा है जिन्हें हमने निर्धारित किया था। इसलिए आश्चर्य की कोई बात नही है। फिर भी, महोदय, क्या मै यह स्वीकार करूं, कि मै भी, जो कि अनेक वर्षो से रियासती जनता के आन्दोलन के निकट सम्पर्क मे रहा हूं, अगर मुझसे छः महीने पहले पूछा जाता कि आने वाले छः महीनो मे विकास का क्रम क्या होगा, तो यह कहने म संकोच करता कि इतने वेग से परिवर्तन होंगे। कई कारणो से इतने द्रुत परिवर्त्तन हुए हैं। अन्त मे मेरा अनुमान है, कि ये इतिहास की शक्तिया है जो काम कर रही है—यह उन वहुत सी शक्तियो का, जो इतने दीर्घकाल से दबी रही है, उभार है। क्योकि इन १३० वर्षो मे एक अजीव हाल रहा है। उन्नीसवी सदी के प्रारंभिक दिनो में, चौथाई सदी के भीतर, ब्रिटिश सरकार ने रियासतो का एक ढाचा बनाया था। यह वस्तुत. भारत की उस समय की स्थिति मे ठीक वैठता था या नही या यह कि ब्रिटिश सरकार न होती तो क्या होता। यह कहना कुछ कठिन है,जो भी हो, ब्रिटिशो की प्रमुख शक्ति ने इस प्रथा का सृजन किया और निस्संदेह वे अपने लाभ के लिये जैसा समझते थे, उस रूप मे यह प्रथा चलती रही; इसलिए नही कि उसमें कोई दम था, जैसा कि आज जाहिर है, बल्कि इसलिए कि वह प्रमुख शक्ति या सर्वोपरि कहलाने वाली शक्ति चलती रही। भारत में और वाहर दुनिया में तरह तरह के परिवर्तन हो रहे थे, फिर भी भारतीय रियासतो का ढाचा वना रहा। हममें से वहुतो ने वताया कि यह दकियानूसी है, पुराना पड़ गया है, इसे वदलना चाहिए, यह वदल के रहेगा, आदि। लेकिन अव जवकि एक विदेशी शासन का वरद हस्त हट गया है, तो दवाव भी हट गया है। जो शक्तिया रोक रखी गई थी अचानक काम करने लगी और हम उन्हें काम करते हुए देखते है—वहुत तेजी से काम करते हुए देखते है। शक्तिया वेशक मौजूद है, हममें से किसी ने उन्हें दवाया नही, लेकिन मै समझता हूँ कि स्थिति से, एक टेढी और कठिन स्थिति से निवटने के विपय में, यह सभा मुझसे सहमत होगी, कि हम पर मेरे मित्र तथा सहयोगी, उपप्रधान मंत्री का आभार है।

अतएव रियासतों के विषय में एक परिवर्तनशील भारत के इस महान प्रसंग में ही हमें उसके किसी खास पहलू को देखना है। दुर्भाग्य से छः महीने पूर्व हमने भारत का विभाजन, उसके दो टुकड़े होना और एक टुकड़े का भारत से अलग होना देखा। इस विभाजन की क्रिया के ठीक बाद ही एक दूसरी क्रिया आरंभ हुई,—या यह कहें कि ये दोनो ही क्रियाएं बराबर चली आ रही थी,—भारत की एकता आरंभ हुई। हमने भारत के इस एकीकरण का क्रम प्रान्तो मे, और विशेष रूप से रियासतों में, देखा है। इसलिए ये दोनों चीजे साथ साथ चलती रही हैं—पृथक होने का क्रम और एकता का क्रम और लेखा लगाने पर यह कहना कठिन है कि हमारा नफा क्या रहा और नुकसान क्या रहा है। यह एकता का क्रम कहाँ तक आगे जायगा, और हमें कहाँ ले जायगा, यह कहना कठिन है। फिर भी हम लोगो के लिए, जो कि भारत के इतिहास के इस अनोखे और गतिशील युग में रह रहे हैं, जो कुछ हुआ है उसे एक परिप्रेक्षित में देखना कौतूहलजनक है, बशर्ते कि हम इसे इस नाटक में भाग लेने वालो की भाति न देखे, बल्कि अलग हट कर एक इतिहास-कार की तरह पीछे मुड़कर देखें। जो इतिहासकार पीछे दृष्टि डालते हुए रियासतो के भारत में इस अनुकलन को देखेगा, वह नि.सन्देह इसे भारतीय इतिहास की एक प्रमुख बात स्वीकार करेगा।

अच्छा, महोदय, यह प्रक्रिया अनेक रूप ग्रहण कर रही है। बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें तो भारत के साथ मिला ली गई है, कुछ रियासतो को आपस में मिलाकर रियासती सघ बना दिये गए हैं, जो कि भारतीय संघ की इकाई के रूप में हैं, कुछ बड़ी रियासतें अलग बनी रहने दी गई है। लेकिन जो बात इतने ही महत्व की है—और, अगर मैं कह सकता हूँ, तो इससे भी अधिक महत्व की है—वह इस ऊपरी एकता की नही है, बल्कि भीतरी एकता की है, यानी रियासतो में प्रजातत्री संस्थाओ तथा उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के विकास की है, क्योंकि इनसे वास्तविक एकता होती है, सरकार के ऊंचे स्तर पर नही बल्कि जनता के स्तर पर। ये दोनो प्रक्रियायें जारी रही है, और क्या मैं इस भवन को स्मरण दिलाऊ कि ये दोनो ही उन ध्येयों के अनुसार हैं, जिनके लिए बहुत वर्षो तक हमने परिश्रम किया है।

अब, रियासती पद्धति के परिवर्तनो के इसी प्रसंग में, मैं चाहूँगा कि यह सभा काश्मीर के विशेष मामले पर विचार करे, यद्यपि इसका मामला अलग ही है, और इसमें कई बातें पेश आती है। आज भारत की दो रियासतें है जो कि इस क्रम में और रियासतो से बिल्कुल अलग है। ये रियासतें है हैदराबाद और काश्मीर। इस समय मैं हैदराबाद के बारे में कुछ कहने नही जा रहा हूँ। जहाँ तक काश्मीर का मामला है, यह और रियासतो से कई कारणो से भिन्न है; कुछ तो इसलिए

कि इसका विदेशी राजनीति से उलझाव हो गया है, यानी भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धो से इसका उलझाव हो गया है। इसलिए जो दो खास रियासती प्रश्न है वे कुछ-दब गए है। यह एक अजीब बात है कि यह मामला इस प्रकार उलझ गया है। पर इसमे कोई अजीब बात नही, बल्कि जिस तरीके पर उलझाव हुआ है, वह अजीब है, क्योकि पाकिस्तान सरकार हमे बराबर आश्वासन देती आई है कि काश्मीर की हाल की घटनाओं से—हमलो और आक्रमणों से—उनका कोई सरोकार नही; वे इस कथन को दुहराते चले जा रहे है, फिर भी वो इन घटनाओ से लाभ उठाना चाहते है। इसलिए एक तरफ तो जो कुछ हुआ है उसकी जिम्मेदारी से वे इनकार करते है, दूसरी तरफ वे जो भी हासिल करके उसमे हिस्सा बटाना चाहते है। हर हालत मे, काश्मीर की समस्या औरो से जुदा है।

लेकिन एक क्षण के लिए काश्मीर की समस्या की इस बाहरी पेचीदगी को छोड़ दिया जाय, और अगर आप विचार करे तो मूलतया यह भी वही समस्या है, यानी जनता की स्वतत्रता के विकास की समस्या है और एक नवीन एकीकरण के विकास की भी। भारत सरकार का और रियासती सचिवालय का यह उद्देश्य रहा है कि सभी रियासतो के लोगो की इस भीतरी स्वतंत्रता का विकास हो; अगर बहुत सी रियासतो ने भारत मे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया है तो इसका यह कारण नही कि रियासती सचिवालय ने एक बड़ी लाठी के बल पर ऐसा करा लिया। यह जनता से उत्पन्न होने वाली शक्तियो के कारण हुआ है और दूसरे प्रभावो के कारण भी, जिनमे से मुख्य यह है कि एक बाहरी शक्ति जो कि रियासतों को बल्कि रियासती प्रथा को कायम किए हुए थी अचानक अलग हो गई, ब्रिटिश सरकार की शक्ति और उसका समर्थन उसे प्राप्त न रहा। उसके हट जाने पर तुरन्त इमारत ढहने लगी, और यह एक अद्भुत बात है-अर्थात एक इमारत का, जो कि कुछ ही महीने या एक वर्ष पहले इतनी सुदृढ दिखाई पड़ती थी, अचानक ढहना-यह उन लोगो के लिए तो आश्चर्यजनक नही था जो कि वस्तु-स्थिति जानते थे, लेकिन निश्चय ही उन लोगो के लिए जो कि चीजों को सही ढग से देखते है यह बात आश्चर्यजनक थी। इस लिए इस बात को जानते हुए और अनुभव करते हुए कि आखिरकार रियासती जनता ही अपने भविष्य का निर्णय करेगी, मूलतया हम लोग जनता की स्वतंत्रता का ध्येय रखते रहे है। हम उन्हे मजबूर करने नही जा रहे है, और वास्तव मे आज की दुनिया को देखते हुए हम किसी रियासत में ऐसा कर भी नही सकते। दूसरी मजबूरियां है, जैसे भौगोलिक मजबूरिया। यह ठीक है; कोई इसकी उपेक्षा नही कर सकता। और भी मजबूरियां है। और स्वभावतः इस समस्या पर विचार करते हुए, हमें अर्थात् भारत सरकार को भारत के भीतरी और बाहरी सुरक्षा के हितो को भारत के व्यापक हितो की दृष्टि से देखना पड़ता है। लेकिन इसे छोड़ दिया जाय तो हम और किसी

तरह का दबाव स्वतन्त्रता के विकास पर नहीं डालना चाहते। वास्तव में हम रियासत के लोगों को इसका प्रोत्साहन देना चाहते हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यदि ऐसी स्वतंत्रता का विकास हुआ, और रियासत के लोगों को अपने संबंध में निश्चय करने की स्वतंत्रता मिली, तो वह उन्हें हमारे निकट लाने का बलशाली कारण बनेगी, क्योंकि हम आशा करते हैं कि हम भारत में जो भी संविधान स्वीकार करें, वह जनता की इच्छा पर पूर्णतया आधारित होगा।

अब, काश्मीर के प्रश्न पर जाने से पहले क्या मैं कुछ शब्द कहूँ, और वे ये हैं. इस मामले में मैं कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूँ, क्योंकि इस प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में बहस हो रही है, या फिर होने जा रही है, और मैं कोई बात ऐसी न कहना चाहूँगा जिससे यह मतलब लगाया जाय कि मामले को निबटाने के मार्ग में, चाहे सुरक्षा परिषद् में हो चाहे दूसरी जगह, कठिनाइयां डाली जा रही हैं। क्योंकि हम हृदय से निबटारा चाहते हैं, हम उत्सुकता से यह चाहते हैं कि ये बड़ी शक्तियां साधारण रूप से कार्य करने का अवसर पायें और अपने परिणाम को प्राप्त करें; इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा परिणाम कृत्रिम परिणाम होगा। हम कोई भी परिणाम ऊपर से नहीं लाद सकते और निश्चय ही पाकिस्तान ऐसा नहीं कर सकता। अन्त में, मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि और जगहों की तरह काश्मीर में भी वहां की जनता ही अन्तिम निर्णय करेगी और जो कुछ हम चाहते हैं वह यह है कि उन्हें बिना किसी बाहरी दबाव के ऐसा करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

अब, एक बात काश्मीर के विषय में और है जिसे कि मैं इस सभा के सामने रखना चाहूँगा। भारत में हम लोग दुर्भाग्यवश हर एक समस्या को या बहुत सी समस्याओं को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से हिन्दू बनाम मुसलमान, या हिन्दू और सिख बनाम मुसलमान आदि, के रूप में देखने के अत्यधिक अभ्यस्त हो गए हैं। दुर्भाग्य से हमें उत्तराधिकार में यह चीज मिली है, और इसने हमें जिस हद तक नुकसान पहुंचाया है वह भुलाया नहीं जा सकता, न उन विपत्तियों को हम भूल सकते हैं जिनमें इसने हमें डाला है। मुझे आशा है कि हम इस साम्प्रदायिक भावना को, कम-से-कम भारत में दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम इसे खतम कर देने की आशा करते हैं—शायद आकस्मिक रूप से नहीं, फिर भी निश्चित रूप से बहुत तेजी से।

इस सांप्रदायिक संघर्ष के प्रसंग में, काश्मीर बिलकुल अलग ही है, क्योंकि काश्मीर सांप्रदायिक संघर्ष का क्षेत्र नहीं है। आप चाहें तो इसे राजनैतिक संघर्ष का मामला कह सकते हैं। या यह और किसी प्रकार का संघर्ष हो सकता है, लेकिन यह मूलतया

सांप्रदायिक संघर्ष नही है। इसलिए, काश्मीर की यह लड़ाई, अगर्चे इससे काश्मीर के लोगो को बड़ी तकलीफे पहुँची है और अगर्चे इसने भारत सरकार और भारत के लोगो पर एक बोझ डाला है, आशा के एक चिन्ह की भाति है, क्योकि इसमें हम कुछ तत्वो का, हिन्दू, मुसलमान, सिख और दूसरो को एक ही स्तर पर और अपनी स्वतत्रता के लिए राजनैतिक युद्ध में एक विशेष सहयोग, सगठन और मेलजोल देखते है। इस बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ, क्योकि दूसरी तरफ हमारे विरोधियो और आलोचको द्वारा यह बराबर कहा जाता है कि यह सांप्रदायिक मामला है, और हम वहाँ पर हिन्दू या सिख अल्पसख्यको की काश्मीर की मुसलमान जनता के विरुद्ध, सहायता करने के लिए गए है। इस से ज्यादा ऊटपटाग झूठी बात हो ही नही सकती। अगर हमें जनता के बहुत बड़े दलो की, जिसके मानी होते है, काश्मीर के मुसलमानो की मदद हासिल न होती तो हम वहा अपनी सेनाए नही भेज सकते थे, न वहाँ ठहर सकते थे। हम वहाँ महाराजा काश्मीर के निमत्रण के बावजूद न जाते, अगर उसका समर्थन काश्मीर की जनता के प्रतिनिधियो द्वारा न हुआ होता, और क्या मैं इस सभा को बताऊ कि यद्यपि हमारी सेनाओ ने बड़ी बहादुरी से काम किया है, फिर भी अगर उन्हें काश्मीर की जनता का सहयोग प्राप्त न होता तो उन्हे यह सफलता नही मिल सकती थी? अब, बाहर के लोग, भारत की सरहद से बाहर के लोग, हम पर काश्मीर मे एक स्वायत्त शासक की 'मदद करने के लिए जाने का दोषी ठहराते है। इस सभा को स्मरण होगा कि जब हमने उस नाजुक. अवसर पर, जबकि हमे यह निर्णय करना पड़ा कि हम भारतीय सेना भेजें या न भेजें, काश्मीर का भारत में मिलना स्वीकार करें या न करें, तब उन शर्तो में से जो हमने लगाई थी, एक यह थी कि वहाँ लोकप्रिय शासन स्थापित होना चाहिए, ध्येय या आदर्श के रूप मे नही, बल्कि तुरन्त। यह हमने तत्काल चाहा था और जहाँ तक हो सकता था इसे तत्काल कार्यान्वित किया गया। इसलिए यह अजीब बात है कि हम पर इस तरह का इलजाम लगाया जा रहा है। इसी इलजाम को एक दूसरे प्रसग मे देखिए। काश्मीर के वे पुरुष और स्त्रियां जो हमारे साथ है, जो कि अपनी स्वतत्रता और आजादी के लिए वहाँ लड रहे है, इस स्वतत्रता के युद्ध में नवागन्तुक नही है बल्कि एक पीढ़ी से वे काश्मीर में, काश्मीर की स्वतंत्रता के लिए लड़ते रहे है। उन्होने इसके लिए तकलीफें उठाई है और हममें से कुछ ने निरकुश शासन के विरुद्ध काश्मीर की आजादी की लड़ाई मे शरीक रहने मे, अपना सौभाग्य समझा है। ये लोग आज हमारे साथ है। उनके विरोधी कौन है जो कि काश्मीर में तथा दूसरी जगह उनके खिलाफ है? यह एक दिलचस्प कल्पना है, और जाच का दिलचस्प विषय है क्योकि ये शरीफ लोग जोकि काश्मीर के शासक के निरंकुश होने की और वहा निरकुश शासन होने की बातचीत करते है, इन दस या बीस वर्षों के बीच क्या करते रहे है? उन्होंने काश्मीर के लोगो की आजादी
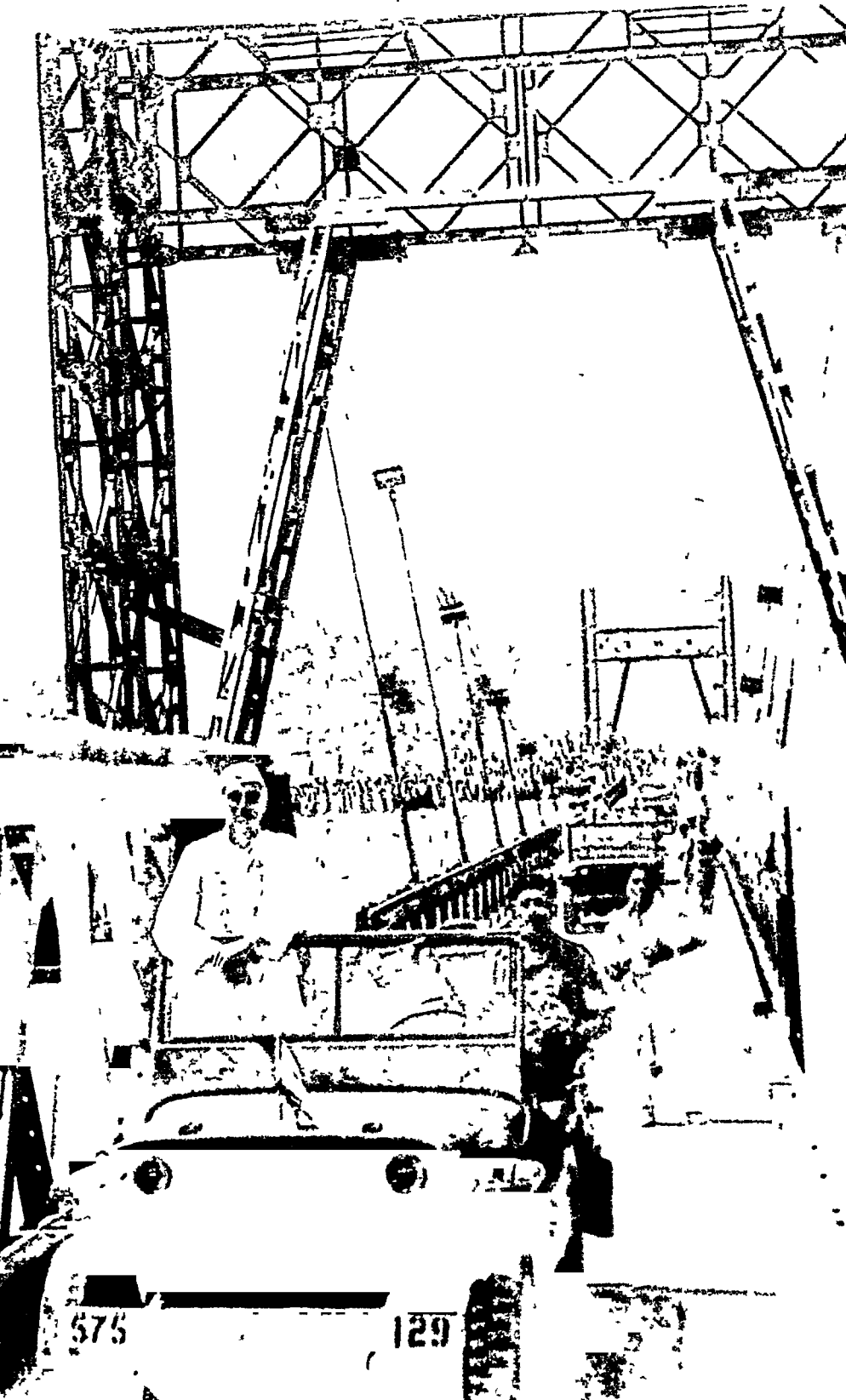
575
129

श्रीनगर मे श्री नेहरु एक घायल सैनिक के लिये सैनिक अस्पताल में अपने हस्ताक्षर दे रहे हैं

ऊपर बांये —काश्मीर मे पहली बार टेलीफोन द्वारा वार्ता कर रहे हैं

की लड़ाई कभी नहीं लड़ी, उनमें से ज्यादातर लोग इसी निरंकुश शासन की सहायता करते रहे; उनमें से ज्यादातर लोगों ने काश्मीर में आजादी के आन्दोलन का विरोध किया। अब, बिल्कुल दूसरे ही कारणों से वे काश्मीर की आजादी के हिमायती बने हुए हैं। और वह किस तरह की आजादी है, जिसे कि वे आज काश्मीर में लाए हैं? काश्मीर में वे जो तथाकथित आजादी आज लाए हैं, वह उस सुन्दर देश में लूटने, हत्या करने और आतिशजनी करने की आजादी है, और जम्मू और काश्मीर रियासत की सुन्दरी स्त्रियों को भगा ले जाने की आजादी है, और न केवल भगा ले जाने की बल्कि खुले बाजार बेंचने के लिए खड़ा करने की आजादी है। इसलिए जब हम काश्मीर की कहानी पर विचार करें तो हमें इस पृष्ठभूमि को अपने सामने रखना चाहिए। यह एक दहलाने वाली पृष्ठभूमि है और सुरक्षा परिषद् ने इसे जिस रूप में ग्रहण किया है उससे हममें से बहुत लोग व्यथित रहे हैं। सुरक्षा परिषद् में क्या हुआ और क्या नहीं हुआ इसके ब्योरे में मैं नहीं जाना चाहता, लेकिन इतना मैं महसूस करता हूं कि इस पृष्ठभूमि को समझने की आवश्यकता है। काश्मीर में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न नहीं है, और हमारे निरकुश शासन के या किसी और के पक्ष में होने का हरगिज प्रश्न नहीं है। हमने पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों के बीच यह अच्छी तरह दिखा दिया है कि रियासती जनता और उसके शासकों के सबन्ध में हमारा क्या दृष्टिकोण है, विशेष कर काश्मीर के सबन्ध में। पहले दिन से जब से, हम वहां पहुचे हैं, पिछली अर्थात् अक्तूबर से आज तक, हमने अपने अमल से उसे दिखा दिया है, और अपना भाषण समाप्त करने से पहले, काश्मीर की आजादी के बारे में हमारी क्या भावना है, इस पर मुझे कुछ और कहना होगा।

अब, महोदय, काश्मीर की घटनाओं के सबध में, मैं कुछ विस्तार से कहूंगा।

इस भवन को मेरा २५ नवम्बर, १९४७ को दिया हुआ वक्तव्य स्मरण होगा। उस वक्तव्य में मैंने जम्मू और काश्मीर रियासत की उस तारीख तक की घटनाएं बयान की थीं, और बताया था कि पाकिस्तान की सरकार ने इन घटनाओं के विषय में क्या किया और हमारे ध्येय क्या है?

पाकिस्तान के खिलाफ हमारी शिकायत यह थी कि उसने बाहरी कबाइलियों को और अपने नागरिकों को जम्मू और काश्मीर रियासत के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भड़काया और सहायता दी। दिसम्बर के महीने में रियासत पर फौजी दबाव ने जोर पकड़ा। करीब १९,००० हमला करने वाले उड़ी के क्षेत्र में और सम्मिलित हुए। रियासत की पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी सरहदों पर १५,००० हमला करने वाले युद्ध में लगे थे। आक्रमणकारियों द्वारा रियासत की सरहद के भीतर धावे

जारी थे और इनमे हत्या, अग्निकाण्ड और स्त्रियों का भगाया जाना शामिल था। लूटमार का माल इकट्ठा करके कबायली क्षेत्रों मे इसलिए पहुचाया जा रहा था कि उसके लोभ मे आकर कबायली आक्रमणकारियो के दल को बढावे। हमलो मे सक्रिय रूप से भाग लेनेवालो के अतिरिक्त बहुत से कबायली और दूसरे लोग, जिनकी संख्या अनुमानत १००,००० है, जम्मू और काश्मीर रियासत की सरहदो पर पश्चिमी पंजाब के जिलो में भिन्न-भिन्न जगहो पर इकट्ठा हो रहे थे; और उनमें से बहुत से पाकिस्तानी नागरिको द्वारा, जिनमे कि पाकिस्तानी सेना के अफसर लोग भी थे, सैनिक शिक्षा पा रहे थे। पाकिस्तान के इलाके में उनकी देखभाल होती थी, उन्हे खाना, कपड़ा, हथियार और सामान दिया जाता था और वे जम्मू और काश्मीर की रियासत मे, फौजी और नागरिक पाकिस्तानी अधिकारियों की प्रत्यक्ष या परोक्ष मे की गई सहायता से पहुँचाए जाते थे। हमला करने वालो के साज-सामान में मोर्टर तोपें और मझोली मशीन गनो जैसे आधुनिक हथियार थे, आदमी बाकायदा सिपाहियो की पोशाके पहनते थे, नियमित व्यूह बनाकर लड़ते थे, और आधुनिक युद्ध के ढगो का उपयोग करते थे। नरवाहित बेतार के तार के सेटो और 'वी' चिन्हित सुरंगो का भी इस्तेमाल होता था।

कई बार भारत सरकार ने पाकिस्तान सरकार से कहा कि वह आक्रमणकारियो को सुविधाएं न प्रदान करे, क्योकि यह उनकी ओर से आक्रामक का और भारत विरोधी कार्य होगा; लेकिन इसका कोई सतोषजनक उत्तर न मिला। २२ सितम्बर को, मैंने स्वयं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को नई दिल्ली मे एक पत्र दिया जिसमें कि संक्षेप मे सहायता देने के विभिन्न तरीको को बताया गया था और उनकी सरकार से यह कहा गया था कि इस तरह की सहायता तुरन्त और निश्चित रूप से बन्द कर दी जाय।

चूकि इस पत्र का कई दिनो तक कोई उत्तर नही मिला, मैंने २६ दिसम्बर को स्मरण दिलाने के लिए एक तार भेजा। ३१ दिसम्बर को भारत सरकार ने वाशिंगटन-स्थित अपने राजदूत को यह निर्देश दिया कि वह सयुक्त राष्ट्रो की सुरक्षा परिषद् के सभापति को एक सदेश दे। इस सन्देश द्वारा सयुक्त राष्ट्रो के अधिकार पत्र की ३५ वी धारा के अनुसार सुरक्षा परिषद् मे इस मामले का हवाला दिया गया और उसी दिन, इसका पूरा मजमून पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के पास तार से भेज दिया गया।

पहली जनवरी को, पाकिस्तान के प्रधान मत्री का २२ दिसम्बर का उत्तर मुझे मिला। इस पत्र से काश्मीर की समस्या के हल के प्रति किसी सहायतापूर्ण दृष्टिकोण का पता नही चला। उसमें केवल भारत के विरुद्ध बेसिरपैर के इलजाम

लगाए गए थे, जैसे कि पाकिस्तान को कुचल डालने का निश्चय, भारत के मुसलमानो का संगठित विनाश और बल तथा छल द्वारा काश्मीर का भारतीय संघ में प्रवेश प्राप्त करना। यह पत्र इससे पहले भी प्राप्त हुआ होता तो भी हमारे सयुक्त राष्ट्रो की सुरक्षा परिषद् से किए गए इस अनुरोध में अन्तर न पड़ता कि वह पाकिस्तान सरकार से कहे कि:—

(१) पाकिस्तान सरकार के फौजी अथवा नागरिक कर्मचारियो को, जम्मू और काश्मीर रियासत पर आक्रमण में भाग लेने या सहायता करने से रोके;

(२) पाकिस्तानी नागरिको को जम्मू और काश्मीर रियासत के भीतर युद्ध मे भाग लेने से मना करे;

(३) आक्रमणकारियो को (क) काश्मीर के विरुद्ध फौजी कार्यवाही में अपने इलाके से होकर आने तथा उस के उपयोग से रोके; (ख) फौजी तथा अन्य सामान न दे; (ग) और अन्य प्रकार की कोई ऐसी सहायता न दे जिससे कि युद्ध के खिचने की संभावना हो।

इस सभा को उस स्थिति का स्मरण होगा जिसमे कि हमने काश्मीर मे फौजें भेजी। काश्मीर रियासत के इलाके पर अर्थात् उसके प्रवेश के बाद जो भारतीय संघ का इलाका बन गया है उस पर आक्रमण हो रहा था, और उसके साथ हत्या, अग्निकाण्ड, लूट और स्त्रियो का भगाया जाना चल रहा था। सारा देहाती प्रदेश तबाह किया जा रहा था। नए आक्रमणकारी पाकिस्तानी इलाके से होकर काश्मीर में बराबर आ रहे थे। जो भी लड़ाई हो रही थी, वह सब भारतीय संघ के इलाके के भीतर थी। आक्रमणकारियो के मुख्य अड्डे सरहद पर पार पाकिस्तानी इलाके में थे। वहाँ से वे रसद और सामान और आदमियो की सहायता प्राप्त करते थे, और वहाँ आराम करने और सुरक्षापूर्वक दम लेने के लिए भागकर जा सकते थे। हमारे सैनिको को दृढ़ आज्ञा थी कि पाकिस्तानी इलाके में न जायं। भारतीय इलाके पर आक्रमण रोकने का साधारण उपाय यह होता कि पाकिस्तान में उन्हें अड्डे न बनाने दिया जाता। चूकि पाकिस्तान इस मामले मे हमसे सहयोग करने को तैयार नही था, इसलिए हमारे पास बस दो रास्ते रह गए थे, यानी या तो हम आक्रमणकारियो से ठीक-ठीक निबटने के लिए अपनी हथियारबन्द सेना पाकिस्तानी इलाके मे भेजें या सयुक्त राष्ट्रो से यह अनुरोध करें कि वह पाकिस्तान से ऐसा करने को कहे। इनमें से पहला रास्ता ग्रहण करने मे पाकिस्तान से सशस्त्र युद्ध की सभावना थी। इसे हम बचाना चाहते थे, और शान्तिपूर्वक हल का प्रत्येक सभव उपाय कर लेना चाहते थे। इसलिए एक ही रास्ता जो हमारे लिए खुला रह गया था, वह था सुरक्षा परिषद् में इस विषय को पेश करना।

इस सभा का समय, मैं सुरक्षा परिषद् की ब्योरेवार कार्यवाही बताकर न लूंगा।

यह काफी पूरी तौर पर समाचार-पत्रो मे आ चुकी है। मै अवश्य स्वीकार करूंगा कि यह देखकर कि जो हवाला हमने दिया था उस पर अभी तक उचित ढंग से विचार नही हुआ है, और दूसरे मामलो को इसकी अपेक्षा विशेषता दी गई है, मुझे आश्चर्य और दु.ख हुआ है। जो बाते हमने अपने हवाले में बयान की, अगर वे सही है, जैसा कि हम दावा करते है कि वे है, तो उनके कानूनी और शांति और व्यवस्था की स्थापना की दृष्टि से दोनो तरह के स्वभावत. कुछ परिणाम होते है।

पाकिस्तान की तरफ से भारत पर लगाये गये उन विलक्षण आरोपो को दुहराया गया था जो कि पाकिस्तान के प्रधान मत्री के पत्र में जिसका मैंने हवाला दिया है, पहले लगाये गये थे। पाकिस्तान ने तुरत कार्य करने से, जम्मू और काश्मीर में हमारे वैरियो को आदमी और सामान की सहायता देना बन्द करने से, रियासत पर पाकिस्तान से होकर आने वाले आक्रमणकारियो को रोकने से और जो कबायली अथवा पाकिस्तानी इस समय रियासत मे है उन्हे वापस बुलाने से उस समय तक इनकार किया, जब तक कि एक ऐसा समझौता पहले न हो जाय और वह घोषित न कर दिया जाय कि भारतीय सशस्त्र सैनिक जम्मू और काश्मीर रियासत से बिल्कुल वापस बुला लिये जायगे, और रियासती शासन बदल कर एक दूसरा शासन स्थापित कर दिया जायगा। झगड़े की और भी बातें थी, लेकिन मुख्य बातें वही दो थी, जिन्हे कि मैंने अभी बताया है।

खुलासा यह है कि पाकिस्तान ने न केवल यह स्वीकार किया कि वह हमला करने वालो की सहायता कर रहा है, बल्कि यह स्पष्ट कर दिया कि जब तक उसके कुछ राजनैतिक ध्येय सिद्ध न होगे वह ऐसा करता रहेगा। यह एक ऐसा प्रस्ताव था जिसे कि भारत सरकार स्वीकार नही कर सकती थी। क्योंकि ऐसी स्वीकृति न केवल काश्मीर की जनता के प्रति विश्वासघात होता, जिसे कि भारत-सरकार अपना वचन दे चुकी थी, बल्कि हिंसात्मक और आक्रमणकारी तरीको के आगे सिर झुकाना होता, जिसके कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही के लिये भयंकर परिणाम होते। रियासत को गहरे खतरे में डाले बिना, और रियासत के लोगो को, जो हममें विश्वास रखते थे, ऐसे अनाचारी और निर्दय आक्रमणकारी को सिपुर्द किये बिना, जो कि रियासत और उसके लोगो में इतनी तबाही फैला चुका था, हमारे लिये अपने सैनिकों को वापस बुलाना असभव था। न हम काश्मीर के लोगो की रक्षा की जिम्मेदारी में किसी बाहरी शक्ति को शरीक कर सकते थे। शेख अब्दुल्ला के शासन के स्थान पर किसी दूसरे शासन को स्वीकार करना हमारे लिये उतना ही असंभव था। जम्मू और काश्मीर की सरकार अब निरंकुश सरकार नही रह गई है, यह सरकार रियासत के सब से बड़े लोकप्रिय दल का प्रतिनिधित्व करती है और ऐसे नेता के नेतृत्व में है जिसने कि अद्वितीय कठि-

नाइयो के इन कई महीनों में जनता के नैतिक स्तर को बनाये रखा है, रियासत के अधिकांश भाग पर समुचित शासन कायम रखा है, और आक्रमणकारियो द्वारा काश्मीर को ध्वस्त और तबाह करने के जो निर्दय प्रयत्न हो रहे हैं, उनके विरोध की प्रेरणा को साधारणतया जगाये रखा है। काश्मीर में अन्य कोई शासन तब तक संभव नही जब तक कि यह शासन बल पर आधारित न हो। अगर शेख अब्दुल्ला वहाँ पर जनता के समर्थन के बल पर नही हैं, तो वे बने नही रह सकते थे, और जो कुछ उन्होने इन कठिन महीनो में कर दिखाया है, वह करना और भी कठिन होता। यह उन पर निर्भर करता है कि वे किसी काश्मीरी को अपनी सरकार में सहायता देने के लिये चुनें और इस विषय में हमारे लिये उनके विवेक में हस्तक्षेप करना अनुचित होगा।

मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने सुरक्षा-परिषद् के सामने बहुत से ऐसे बयान दिये और भारत के खिलाफ इलजाम लगाये जो कि बिल्कुल बेबुनियाद हैं। भारत और पाकिस्तान में पिछले छः महीनो या इससे अधिक समय में बहुत सी ऐसी बातें हुई हैं, जिन्होने हम सबको लज्जित किया है, और मैं किसी समय भी अपनी जनता की गलतियो को स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ, क्योकि इसे मैं अच्छा नही समझता कि कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र सत्य से डिगे। यही पाठ था जो कि हमारे गुरु ने हमें सिखाया था, और हम उसे अपनी शक्ति भर ग्रहण किये रहेंगे। इन पिछले महीनो में, भारत और पाकिस्तान में बहुत सी भयानक बातें हुई हैं, और जहाँ मैं इस सब भयानकता के लिये प्रारंभिक जिम्मेदारी के विषय में दृढ़ मत रखता हूँ, वहाँ मैं समझता हूँ कि अधिक या कम हद तक हमारी सब की कुछ जिम्मेदारी है। लेकिन जहाँ तक काश्मीर की घटनाओ का मामला है, मुझे अपने मन में विश्वास है कि भारत सरकार का हर एक कार्य सीधा, खुला हुआ और परिस्थितियो को देखते हुए अनिवार्य था। अक्टूबर के अन्त में हमारा वहाँ जाना, घटना-क्रम से विवश होकर हुआ। काश्मीर की जनता की रक्षा के लिये, जब कि वह एक भयानक खतरे में थी, हमारा दौड कर न पहुँचना सदा के लिये लज्जा की बात होती, एक बडी दगा होती, और उन्हे गहरी क्षति पहुँचाना होता। हमारी इस विषय में गहरी भावनाएं हैं, और यह केवल राजनैतिक लाभ या हानि का प्रश्न नही है। यह हमारे लिये एक नैतिक प्रश्न रहा है और है, चाहे इस मामले के और पहलुओ को अलग भी रक्खा जाय। और इसीलिये हर एक पग पर मैंने महात्मा गांधी से परामर्श किया और उनका समर्थन प्राप्त किया। जब कि अनेक इल्जाम लगाये जा रहे हो और बढे-चढे बयान दिये जा रहे हो तो उनके उलझाव में बुनियादी बातें अक्सर भुला दी जाती हैं। चाहे कोई भी क्यों न हो, जिसने भी काश्मीर में हमारे काम से परिचय प्राप्त किया है, उससे मैं जानना चाहूँगा कि उस विनाशक तिथि ने, जब कि मुजफ्फराबाद

मे आक्रमणकारी टूटे और उन्होने लूट-मार और आतिशजनी शुरू की, हमने कौन-सा बड़ा कदम उठाया जो कि नैतिक दृष्टि से या किसी प्रकार भी गलत था?

इस लड़ाई मे, जिसमे कि मै फिर कहूँगा कि हमें विवश होकर पड़ना पडा, भारतीय सेना का कार्य अनुशासन, निष्पक्षता, सहनशीलता और वहादुरी की दृष्टि से मर्के का रहा है। उसने रियासत की जनता के हर एक वर्ग की रक्षा की है। यह सुझाव देना कि पूरी शाति स्थापित होने से पहले वह वापस बुला ली जाय—न केवल अव्यावहारिक और अनुचित ही है, वल्कि काश्मीर मे हमारी सेना के आदर्श आचरण पर लांछन लगाना भी है। काश्मीर मे हम और हमारी सेना इसलिये है कि विधानतः हमारी स्थिति अकाट्य है। लेकिन विधान की वात अलग भी रखी जाय, तो भारतीय संघ का काश्मीर के विषय मे नैतिक पक्ष भी उतना ही अकाट्य है। अगर हम वहाँ न गये होते और अगर हमारे सशस्त्र सैनिक वहुत जोखिम उठाकर काश्मीर म शीघ्रता से न भेजे गये होते तो वह सुन्दर देश लुट जाता और नष्ट-भ्रष्ट और तवाह कर दिया जाता और उसके पुरुष और स्त्री जो कि युगो से अपनी वुद्धि और अपनी सांस्कृतिक परम्परा के लिये प्रसिद्ध रहे है, एक वर्वर आक्रमणकारी के पैरो तले कुचल दिये गये होते। भारत की कोई भी सरकार, जव तक कि उसमें पूरे वल से मुकावला करने की शक्ति होती, ऐसी घटना को सहन नही कर सकती थी, और अगर काश्मीर में ऐसी घटना घटे तो शेष भारत मे क्या स्वतत्रता या सुरक्षा हो सकती है ?

जम्मू और काश्मीर रियासत मे हमारे केवल दो ध्येय है—वहाँ के लोगों की स्वतंत्रता और उन्नति को पक्का करना, और ऐसी किसी भी घटना को घटन से रोकना जो कि भारत की सुरक्षा को खतरे मे डालने वाली हो। काश्मीर से हमें कुछ और नही हासिल करना है, यद्यपि हमारी सहायता से काश्मीर का वहुत लाभ हो सकता है। यदि ये दो ध्येय पूरे होते है तो हमें संतोष है।

सयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् के सामने इस मामले को ले जाना हमारा एक आस्था-सूचक कार्य था, क्योकि क्रमश. एक विश्वव्यापी व्यवस्था और एक विश्वव्यापी शासन की सिद्धि मे हमारा विश्वास है। अनेक आघातों के वावजूद हम उन आदर्शो पर दृढ़ रहे है, जिनका प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्रों और उनके अधिकार-पत्र द्वारा होता है। लेकिन वही आदर्श हमें यह भी सिखाते है कि अपनी जनता के प्रति और उन लोगो के प्रति जो हममें विश्वास करते है, हमारे कुछ कर्तव्य है, हमारी कुछ जिम्मेदारियां है। इन लोगो के साथ विश्वासघात करना उन वुनियादी आदर्शो से विश्वासघात करना होगा, जिनके पक्ष में संयुक्त राष्ट्र है या उसे होना चाहिये। प्रवेश के अवसर पर ही अप्रत्याशित ढंग से हमने एकतरफा घोषणा की कि हम काश्मीर के जनता के निर्देश, या उसके मतग्रहण

द्वारा प्राप्त निर्णय को स्वीकार करेंगे । हमने यह भी आग्रह किया कि काश्मीर सरकार को तत्काल लोकतांत्रिक सरकार हो जाना चाहिए। हम इन स्थिति पर बराबर दृढ़ रहे हैं। हम ऐसे जन-मतग्रहण के लिए तैयार हैं, जिसमें कि सबको स्वतंत्र मत देने के लिए सुरक्षा होगी, और हम काश्मीर के लोगों के निर्णय को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

हमारा प्रतिनिधि मंडल हमसे पूरी तरह परामर्श करके लेक सक्सेस वापस गया है। वह भारत सरकार की स्थिति और भारतीय जन-मत का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करके और इस ज्ञान के साथ कि उन्हे हमारा पूरा समर्थन प्राप्त है, गया है। मैं श्री गोपाल स्वामी आयंगार और उनके सहयोगियो के प्रति, सुरक्षा परिषद् के सामने हमारा पक्ष योग्यता और दृढता से रखने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहूंगा। शेख अब्दुल्ला वापस नही गए हैं, क्योकि उनका काम इस नाजुक स्थिति में उनकी जनता के बीच है। उनको एक भारी जिम्मेदारी वहन करनी है। मुझे विश्वास है कि इस नई जिम्मेदारी का वे उस दृढता और योग्यता से निर्वाह करेंगे, जिसने कि उन्हें काश्मीर के मुसलमानो, हिन्दुओ और सिखो में प्रिय बना दिया है। प्रतिनिधि-मंडल में उनकी जगह विदेशी मामलो के सचिवालय के सेक्रेटरी-जेनरल श्री गिरिजाशंकर वाजपेयी ने, ली है जिनसे कि मुझे इन कठिन महीनो में बड़ा बल मिला है।

जम्मू और काश्मीर की सैनिक स्थिति के सबंध में मैं अधिक न कहूंगा। हमारे लिए चिन्ता के क्षण आए हैं, लेकिन किसी समय भी मुझे शत्रु का मुकाबला करने और उसे हराने की अपनी शक्ति के संबंध में संदेह नहीं रहा है। हमारे अफसरो और जवानो में पूरा उत्साह है, और किसी की चुनौती को स्वीकार करने के लिए वे तैयार हैं। हमें अपनी सेना और हवाई दल, दोनो के अफसरो और जवानो पर गर्व करने का अच्छा कारण है। खास तौर पर मैं ब्रिगेडियर उस्मान की प्रशसा करना चाहूगा, जिनका नेतृत्व और जिनकी सफलता भारतीय सेना की उच्चतम परंपराओ के अनुकूल रही है।

सुरक्षा परिषद् के सामने पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने हमारे खिलाफ अनेक ऐसे इलजाम लगाए है, जिनका कि काश्मीर के मामले से कोई वास्ता नहीं। उन्होने उस बात की चर्चा की है, जिसे कि जूनागढ में उन्होने हमारा हमला बताया है और नर हत्या और बहुत सी और बातो का जिक्र किया है। मैं इस भवन का समय इन बातो के विषय में नही लेना चाहता। हमें कुछ छिपाना नहीं है और अगर सुरक्षा परिषद् कुछ जांच करना चाहती है तो हम उसका स्वागत करेंगे।

अब मैं इस भवन को सूचना देना चाहूंगा कि काश्मीर के महाराजा साहब

आज एक घोपणा प्रकाशित करने जा रहे हैं और मैं संक्षेप में उनकी बातों को इस भवन के सामने रखूंगा, या अच्छा हो कि मैं पूरी घोपणा ही पढ़कर सुना दूं

जम्मू और काश्मीर के श्रीमान् महाराजा हरीसिंह इंदर महिंदर वहादुर

का

घोपणापत्र, आज सन् एक हजार नौ सौ अड़तालीस की पाँचवीं मार्च को प्रचारित

अपने वंश की परंपरा के अनुसार इस उद्देश्य से कि पूरे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का ध्येय जितना शीघ्र संभव हो सके सिद्ध हो, मैंने समय-समय पर रियासत के शासन में अपनी जनता के अधिकाधिक भाग लेने का प्रबंध किया है। उसी ध्येय के अनुसार मैंने जम्मू ऐण्ड काश्मीर कंस्टिट्यूशन ऐक्ट आफ १९९६ (१९९६ का १४ वाँ ऐक्ट) द्वारा एक वैधानिक शासन की स्थापना की है, जिसके अन्तर्गत एक मंत्रिपरिषद है, एक विधान सभा है, जिसमे कि चुने हुए सदस्यों की वहुसंख्या है, और एक स्वतंत्र न्यायाधिकारी-वर्ग है।

जो उन्नति अब तक हुई है, और मेरी जनता की जो वैध इच्छा है कि वयस्क मताधिकार पर आधारित एक पूर्ण रूप से जनसत्तात्मक संविधान तत्काल स्थापित हो, जिसमें कि धारा सभा के प्रति उत्तरदायी कार्यकारिणी समिति के प्रमुख के पद पर मेरे वंश का वंशगत शासक हो, उसे मैंने वडे संतोप और गर्व के साथ अवगत किया है।

मैं अपनी जनता के लोकप्रिय नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को संकटकालीन शासन का प्रधान नियुक्त कर चुका हूँ।

अब मेरी इच्छा संकटकालीन शासन के स्थान पर एक जनप्रिय अन्तःकालीन सरकार निर्माण करने की, और उसके अधिकारों, कर्त्तव्यों, और कार्यों को उस समय तक के लिए निर्धारित करने की है, जब तक एक पूर्णतया जनसत्तात्मक विधान का निर्माण न हो जाय।

अतएव मैं इस पत्र द्वारा निर्देश करता हूँ कि:

१—मेरी मंत्रिपरिषद में प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रिगण प्रधान मंत्री के

परामर्श से नियुक्त होंगे, मैंने राजकीय आज्ञापत्र द्वारा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को पहली मार्च, १९४८ से प्रधान मंत्री नियुक्त किया है।

२—प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रीगण मंत्रिमंडल (कैबिनेट) के रूप में और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करेंगे। मेरे नियुक्त किए हुए एक दीवान भी मंत्रिमंडल के सदस्य होंगे।

३—मैं इस अवसर पर एक बार फिर यह गंभीर आश्वासन दिलाना चाहता हूँ कि मेरी जनता के सभी वर्गों को नागरिक तथा सैनिक दोनों प्रकार की सेवा के अवसर एकमात्र योग्यता के आधार पर, बिना किसी धर्म या संप्रदाय के भेद-भाव के प्राप्त होंगे।

४—जैसे ही साधारण स्थितियों की स्थापना पूरी हो जाय, एक राष्ट्रीय विधान सभा (नेशनल असेंबली) की संयोजना के लिए, जोकि वयस्क मताधिकार पर आधारित हो, इस सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए कि प्रत्येक निर्वाचनक्षेत्र के प्रतिनिधि जहाँ तक संभव हो उस क्षेत्र की जन-संख्या के सानुपात हों, मेरी मंत्रिपरिषद् उचित प्रबंध करेगी।

५—जिस विधान का राष्ट्रीय सभा निर्माण करेगी, उसमें अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का पर्याप्त प्रबंध होगा और धर्म की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता और सभा करने की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति करने वाली धाराओं का उचित समावेश होगा।

६—जैसे ही नये विधान का कार्य समाप्त हो, राष्ट्रीय सभा उसे मंत्रिपरिषद द्वारा मेरी स्वीकृति के लिए उपस्थित करेगी।

७—अन्त में मैं इस आशा को दुहराता हूँ कि एक लोकप्रिय अन्तःकालीन सरकार का निर्माण और निकट भविष्य में एक पूर्णतया जनसत्तात्मक विधान की स्थापना मेरी प्रिय जनता के संतोष, सुख और नैतिक तथा भौतिक उन्नति को पुष्ट करेगी।

यह घोषणा मैं इस सभा की मेज पर रख रहा हूँ।

भारत को कुछ छिपाना नहीं है

सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष के नाम भेजे गए मेरे ५ जून, १९४८ के पत्र के संबंध में पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मि० लियाकत अली खां के एक वक्तव्य का समाचार मैंने समाचार-पत्रों मे देखा है। मैं भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के अभियोगों अर्थात् जातिविनाश और करार पूरा न करने अथवा जूनागढ़ के भारत में सम्मिलित होने की वास्तविकता के तर्क-वितर्क में न पड़ूंगा। हमारे विचार अनेक बार सुरक्षा परिषद् के सामने और मेरे तथा मेरे साथियो के वक्तव्यो में प्रकट किए जा चुके हैं। जाति-विनाश और करार पूरा न करने के अभियोगों को हम निराधार समझते हैं। अगर हमने सुरक्षा परिषद् के इस निर्णय का प्रतिवाद किया है कि इन अभियोगो को परिषद् के कमीशन के कार्यक्षेत्र की सीमा में रक्खा जाय, तो निश्चय ही इसका कारण यह नहीं है कि हम कुछ छिपाना चाहते हैं। भारत को कुछ छिपाना नही है, इससे यह दलील नहीं की जा सकती कि भारत को एक वाहरी संगठन द्वारा, एक ऐसे विषय की जांच पड़-ताल के लिए जो उसकी सीमा के वाहर है, और जो वस्तुतः निराधार है, राजी हो जाना चाहिए।

पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने भारत के, काश्मीर के झगड़े को सुरक्षा परिषद् में पेश करने के निश्चय को, समय प्राप्त करने और फिर फौजी बल से निर्णय करने की इच्छा से प्रेरित बताया है। सुरक्षा परिषद् में भेजी गई भारत की शिकायत से पता लगेगा कि मि० लियाकत अली खां ने जो सुझाव दिया है उसके प्रतिकूल, भारत ने बराबर इस बात पर जोर दिया है कि परिषद् द्वारा उसके द्वारा की गई पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायत पर अविलंब कार्य होना चाहिए। सुरक्षा परिषद् के सामने काश्मीर का झगड़ा उपस्थित करके भारत का यह तात्पर्य नही रहा है कि जम्मू और काश्मीर रियासत से फौजी कार्यवाही द्वारा, सभी आक्रमणकारियो को निकाल वाहर करने और शांति स्थापित करने की अपनी स्वतंत्रता का परित्याग करे। एक ऐसी रियासत के संबंध में जो उसमें सम्मिलित हुई, उसे ऐसा करने का अधिकार भी है और उस पर यह जिम्मेदारी भी है। यह आश्चर्य की बात है कि मि० लियाकत अली खा को भारत द्वारा, अपने साधनों का उपयोग करते हुए इस वैध और न्याय-सगत उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये प्रयत्नो के खिलाफ शिकायत हो।

---

१० जून, १९४८ को नई दिल्ली से दिया गया वक्तव्य।

फिर इस प्रकार के अभियोग लगाए गए है, कि भारतीय सैनिकों ने 'उन इलाकों मे जहाँ वे है, असहाय वुड्ढे आदमियो, स्त्रियों और वच्चो के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किये है। मे पूरे जोर के साथ इस वेवुनियादी इलजाम का प्रतिवाद करता हूँ।

इन वे वुनियाद और झूठे अभियोगो को वार-वार दुहराने का एक मात्र उद्देश्य संसार का ध्यान उन वर्वर अत्याचारो से हटाना है जो आक्रमणकारी पाकिस्तान की सक्रिय सहायता से, निर्दोष नागरिको, मर्द, औरत, वच्चे, वूढो पर उन इलाको में करते रहे है, जिन पर उन्होंने कब्जा का लिया है या जहाँ-जहाँ से वे गुजरे है। मानवता के विरुद्ध किए गए ऐसे अत्याचार कभी छिप नही सकते। वारामूला, भीम्वर, मीरपुर, रजौरी अपने आक्रमणकारियो के वुरे कार्यों की घोषणा करते रहेंगे।

मि० लियाकत अली खा ने शिकायत की है कि भारतीय सैनिको ने पाकिस्तान की सरहद मे प्रवेश किया है और भारतीय उड़ाको ने उन गाँवो पर गोलावारी की है जो पर्याप्त रूप से पाकिस्तान की सरहद के भीतर है। हमारे द्वारा पाकिस्तान की सरहद में प्रवेश करने की हर एक शिकायत की, जिसकी जांच हो सकती थी, जांच की गई है। इनमे से अधिकतर शिकायतें, जांच करने पर निराधार सिद्ध हुई है। जैसा कि अच्छी तरह मालूम है, आक्रमणकारी रियासत के इलाके से खदेड़े जाने पर अक्सर पाकिस्तान मे, भाग कर पहुंचते है। हमारे सैनिक रियासत की हद तक उनका पीछा करते है। यह उनका कर्त्तव्य है और उनके अधिकार की वात है। हमारे उड़ाको के संवंध मे भी पाकिस्तान की हर एक शिकायत की जांच हुई है। गढी हवीवुल्ला के खास मामले में, जिसका कि पाकिस्तान के प्रधान मत्री ने हवाला दिया है, वस्तु-स्थिति का पता लगाने के लिए दोहरी जाच की गई और भारत-सरकार की ओर से पाकिस्तान-सरकार के प्रति घटना के लिए खेदप्रकाश किया जा चुका है। दो ससारव्यापी युद्धो का इतिहास वताता है कि निरीक्षण मे हुई स्वाभाविक भूल के कारण तटस्थ लोगो को हानि से वचाना कितना असंभव रहा है। पाकिस्तान पर आक्रमण करने का कोई उद्देश्य नही रहा है।

मि० लियाकत अली खां ने, पाकिस्तान-सरकार के, "उत्तेजना के वावजूद वे-मिसाल सब्र" दिखाने की वात कही है। वे सहज ही इस वात को भूल गए है कि पिछली अक्टूवर में काश्मीर की घाटी पर कवाइलियो द्वारा आक्रमण से, जिसकी उन्हें प्रेरणा और सहायता पाकिस्तान से मिली, भारत सरकार को किस प्रकार उत्तेजित किया गया और अव भी किया जा रहा है। अभी उड़ी के युद्धक्षेत्र में भी पाकिस्तानी सैनिक भारतीय सैनिको का अपने पूरे वल से मुकावला कर रहे है। इन परिस्थितियो मे पाकिस्तान सरकार के लिए यह कहना व्यर्थ है कि वह "भारत से

शांति और मैत्री के संबंध बनाए रहने को उत्सुक है" या यह कि भारत काश्मीर में जो कुछ कर रहा है उससे "पाकिस्तान की रक्षा को भीषण खतरा है" या यह कि जम्मू और काश्मीर के मुसलमानो के विरुद्ध "हत्या और विनाश" का कार्य हो रहा है ।

रियासत के मुसलमानो की हत्या और विनाश की बात तो बहुत दूर है, भारतीय सेना का उपयोग तो पाकिस्तान द्वारा छोड़े हुए लुटेरो से उनकी रक्षा के लिए हुआ है । एक अन्तःकालीन सरकार, जो कि जनता की प्रतिनिधि है, जिसके नेता एक मुस्लिम है जो कि जम्मू और काश्मीर में लोकप्रिय और प्रगतिशील शक्तियों के वर्षों से सर्वप्रमुख नेता रहे है, रियासत में कायम की गई है। भारतीय सघ में सम्मिलित होने के प्रश्न पर भारत ने बार-बार कहा है कि जम्मू और काश्मीर के लोगो का स्वतत्रतापूर्वक दिया गया जनमत उसे मान्य होगा। पाकिस्तान ने यद्यपि युद्ध की घोषणा किए बिना, आक्रमणकारियो और रियासत के भीतर उपद्रवियो की सहायता के लिए सब कुछ किया है, भारत सरकार ने शाति के हित में अद्वितीय संयम से काम लिया है। वह अभी भी के पड़ोसी राज्य पाकिस्तान के साथ अत्यन्त मैत्रीपूर्ण ढग से रहना चाहती है । लेकिन उसकी इस इच्छा की पूर्ति में, ऐसा वक्तव्य जिस तरह का कल मि० लियाकत अली खा द्वारा दिया गया बताया जाता है, बाधक हो सकता है, सहायक नही ।

1713

काश्मीर की कहानी आगे चलती है

महोदय, मैं इस भवन की मेज पर कुछ कागजात रखना चाहता हूँ और उनके संबन्ध में एक वक्तव्य देना चाहता हूँ। ये पत्र काश्मीर के संबन्ध में बिठाए गए संयक्त राष्ट्र कमीशन के विषय में हैं, जो कि अब लगभग दो मास से भारत और पाकिस्तान में आया हुआ है। इस भवन के माननीय सदस्यों ने आज सवेरे के समाचारपत्रों में इस कमीशन और भारत-सरकार के बीच होने वाले कुछ पत्र-व्यवहार को, करीब तीन सप्ताह पहले कमीशन द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव को, भारत-सरकार द्वारा उस पर दिए गए उत्तर को, पढ़ा होगा और पाकिस्तान के उत्तर के कुछ झलक भी उसे मिली होगी। पूरे पत्र अभी समाचार-पत्रों में प्रकाशित नहीं हुए हैं और वास्तव में हमें आज ही सवेरे, कराची से भेजे गए एक विशेष दूत द्वारा प्राप्त हुए हैं। निश्चय ही ये पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित होंगे। इस बीच में इस सभा की मेज पर मैं इनमें से कुछ पत्र रखूंगा और शेष पत्रों को भी, जैसे ही वे टाइप हो जायंगे आज मेज पर रख दिया जायगा।

अब, यह भवन जानता है कि यह कमीशन यहाँ पिछले दो महीनों या कुछ अधिक से आया हुआ है और सभा ने इस प्रकाशित पत्र-व्यवहार से यह जाना होगा कि उसका प्रस्ताव क्या था और उस के प्रति हमारी प्रतिक्रिया क्या थी। वास्तव में सभा को मालूम हो गया होगा कि हमने विराम संधि और युद्ध स्थगित किए जाने के सबंध में कुछ शर्तें स्वीकार कर ली हैं। लेकिन पाकिस्तान ने उन्हें अस्वीकार कर दिया है। अब, मैं इस समय इस मामले पर बहुत विशेष बातें न कहना चाहूँगा। कुछ तो इसलिए कि मुझे सवेरे इन पत्रों को पढने का समय न मिल सका और मैं उन्हें अधिक ध्यान से पढना चाहूँगा। कुछ इसलिए कि कमीशन विचार कर रहा है कि आगे वह क्या कदम उठाये या न उठाये, और मेरे लिए यह बहुत उचित न होगा कि कोई ऐसी बात कहूँ जिससे कि कमीशन असमजस में पड़ जाय।

जैसा कि यह भवन शायद जानता है, कमीशन की यह इच्छा थी कि हम इन पत्रों का प्रकाशन और उनके संबन्ध में इस भवन में कुछ वक्तव्य देना आज की तिथि तक स्थगित रक्खें। कमीशन से परामर्श के आरंभ से ही हम चाहते रहे

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ७ सितंबर, १९४८ को दिया गया भाषण।

है कि इस भवन को और देश को पूरी तरह से विश्वास में लें और जानकारी दें क्योंकि हम ऐसे जरूरी और महत्त्वपूर्ण विषय में इस भवन की जानकारी और अनुमति के विना कोई कदम नही उठाना चाहते थे लेकिन वर्तमान परिस्थितियो में वहुत इच्छा रखते हुए भी हमारे लिए यह कठिन हो गया कि जव कमीशन इस नाजुक वातचीत में लगा हो तव इस भवन मे, हम कोई वक्तव्य दें । इसलिए उनके अनुरोध पर हमें इस प्रकार के प्रकाशन को समय-समय पर टालना पडा । आखिर उन्होने अपना वक्तव्य कल कराची मे ४ वजे प्रकाशित किया। अव यद्यपि इस विषय पर मैं अधिक नही कहना चाहता फिर भी कुछ वाते हैं जिन पर मैं इस भवन का ध्यान दिलाना चाहूँगा । ये वातें खूव जानी हुई हैं—न केवल इस सभा वल्कि सारे देश द्वारा। फिर भी कभी-कभी जानी हुई और मानी हुई वातो से इन्कार किया जाता है, और जव उन्हें स्वीकार किया जाता है तो दूसरी वात हो जाती है।

काश्मीर की प्रस्तुत कहानी और विपत्ति करीव दस महीने पहले आरभ हुई। पिछले साल, अक्टूवर के अन्त के करीव पाकिस्तान के इलाके से होकर आने वाले लोगो द्वारा काश्मीर पर आक्रमण हुआ, और भारत सरकार को एक वड़ी कठिन समस्या का सामना करना पड़ा, जिसका निर्णय किसी भी सरकार के लिए वहुत कठिन होता, और हमे यह निर्णय चन्द घंटो के भीतर करना पड़ा। हम लोगो ने निर्णय किया, और तवसे हम उसी निर्णय का अनुसरण कर रहे हैं । हमे उस समय यह स्पष्ट हो गया था और यह वात अव सारी दुनिया को, जो इस विषय मे कुछ जानना चाहती है, विदित हो गई है कि इस आक्रमण को पाकिस्तान सरकार ने न केवल उकसाया और प्रश्रय दिया वल्कि उसे सक्रिय रूप से सहायता भी दी। इसके वाद यह स्पष्ट हो गया कि मदद देने के अतिरिक्त पाकिस्तान की सेना इसमें सक्रिय भाग ले रही थी। अव इन दस महीनो से वरावर पाकिस्तान सरकार इस वात से इनकार करती रही है । उसने इससे जोरो के साथ और वार-वार इन्कार किया। हमने इसे संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद को वताया ।

वास्तव में हम सुरक्षा परिषद् के सामने वहुत सीधा-सा वयान लेकर गए, वह यह कि काश्मीर की शांति को पाकिस्तान के इलाके से होकर आने वाले इन आक्रमणकारियो ने भंग किया है; और हमने अपना पक्ष जितना हो सकता था उतने सयम से रखा, यद्यपि हम उसे और जोरो से रख सकते थे। हमने कहा कि यह निश्चित है कि पाकिस्तान से होकर आने वाले लोग पाकिस्तान की सहायता और सदिच्छा से ही आयेंगे और इसलिए हमने सुरक्षा परिषद् से यह अनुरोध किया कि वह पाकिस्तान से कहे कि वह उनकी सहायता न करे और न उन्हें इस प्रकार आने दे । मेरे विचार में यह एक वहुत ही

संयत अनुरोध था और बहुत ही संयत भाषा में किया गया था। पाकिस्तान ने इस वाक्ये से-इनकार किया और सुरक्षा परिषद् के सामने जो लम्बे वाद-विवाद हुए उनमें भी वह न केवल इन्कार करता गया बल्कि इस बात पर उसकी तरफ से झुंझलाहट और गुस्सा दिखाया गया कि कोई भी उसके विरुद्ध ऐसा इल्जाम लगा सके। खैर, आज मैं उसके इन्कार की इस लम्बी दास्तान में नहीं पड़ना चाहता, लेकिन जो बात है वह यह है कि आज उसने ही यह स्वीकार किया है कि वह इनकार झूठा था। अब यह एक महत्त्वपूर्ण मामला बन गया है।

यह न केवल व्यावहारिक राजनीति और जो स्थिति हमारे सामने है उसके दृष्टिकोण से, बल्कि नैतिकता परस्पर, सदाचार और राष्ट्रो के बीच परस्पर की शिष्टता के दृष्टिकोण से भी यह महत्त्वपूर्ण है। मै यह जानता हूँ कि सार्वजनिक नैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीयता का दर्जा दुर्भाग्य से इस दुनिया में बहुत ऊचा नही है।. फिर भी, कुछ दिखावा बनाए रखा जाता है, कुछ शिष्टताए बरती जाती है, और किसी मापदड को माना जाता है। मै इस भवन मे और देश से निवेदन करूँगा कि इन दस महीनो या इससे कुछ अधिक की कहानी और उसके विषय में जो कुछ कहा गया है, उस पर पाकिस्तान-सरकार की जिस रूप मे प्रतिक्रिया हुई है वह इतनी अजीब है कि एक राष्ट्र के लिए शोभा नही देती। कल तब, और जहाँ तक दुनिया जानती है, कल ४ बजे शाम तक, पाकिस्तान ने यह नही माना था कि वह किसी भी रूप में काश्मीर के आक्रमणो में भाग ले रहा है। हमें अवश्य मालूम था। इस बात का बिल्कुल निश्चित और प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास था। आखिरकार आप बड़ी फौजो पर परदा नही डाल सकते। फिर भी कल ४ बजे शाम तक, जबकि ये पत्र जनता के लिए प्रकाशित किए गए, सार्वजनिक रूप से इसे स्वीकार नही किया गया। वास्तव में पिछले कई सप्ताहो मे इससे बराबर इन्कार होता रहा, जबकि यह बडी पाकिस्तानी सेना काश्मीर मे सक्रिय थी, और भारतीय संघ के प्रदेश में भारतीय सेना के विरुद्ध युद्ध में लगी हुई थी।

कृपया इसे याद रखिए कि पिछले दस महीनो में काश्मीर में जो भी लड़ाई हुई है वह भारत के इलाके में हुई है। पाकिस्तान के इलाके में कोई लड़ाई नही हुई, न उस पर कोई आक्रमण ही हुआ और पाकिस्तान के इलाके में कहीं भी भारतीय सेना नही गई। यह एक खास और बुनियादी बात है, जो किसी जांच और दूसरी बातो को अलग रखते हुए, यह सिद्ध करती है कि यदि कोई बाहरी लोग भारतीय संघ के इलाके में लड़ रहे है तो वही बाहरी लोग झगडा करने वाले है। वे वहाँ है क्यो? पिछले लगभग छः सप्ताह के बीच हमने फिर पाकिस्तान-सरकार को और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री को काश्मीर रियासत में पाकिस्तानी सैनिको का होना बहुत स्पष्ट शब्दो में बताया था।

फिर भी, या तो इस वात से इनकार किया गया, या उसे टाला गया। मुझे यह एक गैरमामूली वात मालूम हुई। मै और आदमियो से भिन्न होने का दावा नही करता। मै उम्मीद करता हूँ कि मेरे मापदंड दूसरो के मापदंड की अपेक्षा घटिया नही है। मुझे यह देखकर वड़ा धक्का पहुँचा है कि कोई देश, किसी भी सरकार का जिम्मेदार मंत्री इस तरह के सरासर झूठे वयान दे और उसके जरिये दुनिया को धोखा देने की कोशिश करे। आपको स्मरण होगा कि लेक सक्सेस में सुरक्षा परिषद् के सामने इस विषय पर लम्वे वाद-विवाद हुए थे। पाकिस्तान सरकार के विदेश मंत्री ने, जो कि उस सरकार के वहाँ पर मुख्य प्रतिनिधि थे, पाकिस्तान का पक्ष सुरक्षा परिषद् के सामने रखा था।

मै आप से इस देश से और सारे संसार से इस वात पर विचार करने का अनुरोध करूँगा कि उस मामले का आधार अव क्या रह गया। क्योकि वह सारा मामला एक मुख्य वात पर आधारित था, यानी काश्मीर में पाकिस्तान की साजिश से इन्कार पर। उन्होने वरावर इसमें सक्रिय भाग लेने से इन्कार किया है। अगर यह वात झूठी सावित होती है, जैसा कि अव खुद उनके मुंह से झूठी सावित हुई है, तव वह मामला जिसे कि सुरक्षा परिषद् के सामने इतने परिश्रम से पाकिस्तान सरकार ने खड़ा किया था, क्या ठहर सकता है? अव उस अभियोग का क्या होता है जो कि हमने उनके विरुद्ध लगाया था और जिस पर कि सुरक्षा परिषद् ने विचार ही नही किया, जिस पर हमें वड़ा खेद और आश्चर्य रहा? इसलिए हमें जिस मुख्य वात का ध्यान रखना है वह यह है कि एक यथार्थ वात को, जिससे दस महीने से ज्यादा तक इन्कार किया गया, अव पाकिस्तान सरकार ने खुली तौर पर स्वीकार किया है। हाँ, इस स्वीकार का उनका अपना ढंग है। मैं अव कमीशन के पास भेजे गए उसके पत्र के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊंगा। उसमें कहा है:—

"भारत वरावर जम्मू और काश्मीर में अपनी सशस्त्र सेना का निर्माण कर रहा था। यह निर्माणक्रम २१ अप्रैल १९४८ को वन्द नहीं हुआ वल्कि और पुष्ट किया गया। अप्रैल के आरंभ में भारतीय सेना ने एक जोर का हमला किया जिससे कि स्थिति में मुख्य परिवर्तन हुआ। यह हमले की कार्यवाही वरावर जारी है। भारत सरकार का सर्व विदित उद्देश्य यह था कि जम्मू और काश्मीर में एक फौजी निर्णय कर लें और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संगठन के सामने एक सिद्ध तथ्य प्रस्तुत करें। इस स्थिति ने न केवल आजाद काश्मीर सरकार के अधिकार की सारी आवादी को ही खतरे में डाला, और इसके परिणाम स्वरूप वडी संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान में आने लगे, वल्कि पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए एक सीधा खतरा भी पैदा हो गया। इस वात ने पाकिस्तान सरकार को मजवूर किया कि अपनी सेना को खास-खास रक्षा के मोर्चों पर भेजे।"

इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि वे इसे स्पष्ट रूप में नहीं कहते कि रक्षा के ये मोर्चे दूसरे देश में थे ।

युद्ध स्थगित करने के और दूसरे प्रस्तावो पर उनके निर्णय को अलग रखिये। जो देश एक पड़ोसी देश के विरुद्ध, चाहे सुरक्षा, या अपने बचाव के नाम पर ही क्यों न हो, आक्रमण में भाग लेता है, ऐसा करने से कई महीने तक इन्कार करता रहता है, और जब वह अपने अपराध को साबित हुआ देखता है जिसे वह जब और किसी तरह नही छिपा सकता, तब जैसे-तैसे उसे स्वीकार करता है और उसके लिए कोई भी वजह बता देता है—ऐसे देश की राजनीति का औचित्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय या नैतिक दृष्टिकोण से कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? इस पर भी विचार कीजिए कि इस बयान के अनुसार उन्होंने अप्रैल में यह कार्यवाही की, यानी चार-साढ़े चार महीने हुए। अगर उन्होने यह अनुभव किया था कि उनकी सुरक्षा खतरे में थी, या कोई बात ऐसी हो रही थी जो उनके लिए भयावह थी, और इसलिए उन्हें अपनी सेना भेजनी पडी, तो उन्हें क्या करना चाहिए था ? जाहिर है कि उन्हें भारत सरकार को सूचना दे देनी थी और संयुक्त राष्ट्र संगठन को यह सूचना दे देनी थी कि ऐसी बातें हो रही हैं और, जैसा वे कहते हैं, स्थिति में एक मुख्य परिवर्तन हुआ है और इसलिए वे ऐसा करने पर विवश हुए हैं ।

इस विस्तृत संसार में मैं किसी भी ऐसे देश की कल्पना नही कर सकता जिसने ऐसा न किया होता। मन्शा का सवाल अलग रहा, यह एक स्पष्ट और अनिवार्य कर्त्तव्य था। उन्होने यह सेना, अपने बयान के अनुसार, पिछली अप्रैल में या उसके आसपास भेजी, और हमें यह नही बताया गया कि किसके इलाके में वह आ रही है, और संयुक्त राष्ट्र सगठन को भी, जिसके सामने यह प्रश्न था और जो वास्तव में उस समय भारत में एक कमीशन भेजने का विचार कर रहा था, इसकी कोई जानकारी न कराई गई। आपको स्मरण होगा कि सुरक्षा परिषद् की कार्यवाही के शुरू में, भारत और पास्कितान से इन फौजी कार्यवाहियो के संबंध में और दोनो देशो के बीच कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के विषय में अनुरोध किया गया था। जो कुछ पक्तियां मैंने पाकिस्तान के उत्तर से पढ कर सुनाई है उनमें भारत पर आक्रमण करने का अभियोग लगाया गया है। हम आक्रमणकारी को भारतीय संघ के इलाके से निकाल बाहर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह हमारी घोषित नीति रही है, जिसे कि हमने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सामने दुहराया है और जो कि हमारे लिए अनिवार्य रही है, और जो वास्तव में किसी भी देश के लिए, जिसमें अणुमात्र भी आत्म-सम्मान है, अनिवार्य होती।

दूसरी ओर पाकिस्तान सरकार ने क्या किया? हमने आरम्भ से ही जो भी कदम उठाया है खुले तौर पर उठाया है; उसके सम्बध मे कुछ लुका-छिपी नही रही है। यह भवन काश्मीर के मामले में बहुत दिलचस्पी लेता रहा है। भारतीय जनता ने इसमें बहुत ही दिलचस्पी ली है और ठीक ही है क्यो कि हमारी सरकार ने अपने ऊपर इसका बोझ लिया है। यह एक भारी बोझ रहा है। मै आपको साफ बताऊंगा कि यह मेरे लिए और खासकर मेरी सरकार के लिए क्यो एक भारी बोझ रहा है? इसलिए नही कि इसमे फौजी कार्यवाही करनी पडी है, यद्यपि वह भी सदा एक बोझ होती है, बल्कि इसलिए यह एक बोझ रहा है कि हम इस विषय में निश्चित रहना चाहते थे कि किसी समय भी हम उन सिद्धान्तो के प्रतिकूल कुछ न करें, जिनकी कि हमने इतने दिनों से घोषणा की थी।

क्या मै इस भवन को अपनी बात बताऊं? प्रारंभिक अवस्था में, अक्टूबर के अन्त में और नवम्बर में, और वास्तव में बाद में भी, काश्मीर के विषय में मै इतना चिन्तित था कि यदि कोई ऐसी बात हुई होती या उसका होना संभावित होता, जो कि मेरी दृष्टि में काश्मीर के लिए भयवाह होती, तो मेरा हृदय टूट जाता। सरकारी कानूनो के अतिरिक्त व्यक्तिगत कारणो और भावुकतावश मुझे इस मामले में बेहद दिलचस्पी थी। इसे मै छिपाना नही चाहता, कि काश्मीर में मेरी दिलचस्पी है । फिर भी मैंने निजी और भावुकता के पहलू को दबा रखने और इस पर भारत की भलाई और काश्मीर की भलाई के बृहत्तर दृष्टिकोण से विचार करने की कोशिश की। मैंने इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने की कोशिश की कि हम उन सिद्धान्तो से, जिन्हे हमने अतीत में घोषित किया हैं, विचलित न हो या भटकें नही।

जब यह प्रश्न पहले उठा तब मैने महात्माजी से मार्ग-प्रदर्शन चाहा जैसा कि मै और मामलों पर प्राप्त करता था, और मैंने उनके पास बार बार जाकर उनके सामने अपनी कठिनाइया रखी। यह सदन जानता है कि अहिसा का वह प्रचारक फौजी मामलो में उचित सलाहकार नही था और यही उन्होने कहा; लेकिन वे निश्चय ही नैतिक प्रश्न पर मार्ग-प्रदर्शक थे। इसलिए मैंने अपनी कठिनाइयां और अपनी सरकार की कठिनाइयाँ उनके सामने रखी। और यद्यपि इस अवसर पर मै अपनी या अपनी सरकार की जिम्मेदारी कम करने के लिए उनका नाम घसीटना ठीक नही समझता, फिर भी मै इस मामले का जिक्र यह दिखाने के लिए करता हूँ कि इसके नैतिक पहलू की मुझे बराबर चिन्ता रही है। और खासकर जब मैंने देखा कि भारत मे वैसी घटनाएँ घटी जैसी कि पिछले महीनो मे घटी है जिन्होने भारत के नाम को बदनाम किया है, तो मै बहुत विचलित और चिन्तित हुआ और इसके लिए फिक्रमन्द था कि हमें जहा तक सभव हो वहाँ तक सीधे पथ पर कायम रहना चाहिए।

तो यह मेरा रुख रहा है और कई अवसरों पर मैंने खुले तौर पर इसकी घोषणा की है। अत्युक्ति और गोल-मोल आरोपो को छोड़कर मैं किसी भी व्यक्ति से यह जानना चाहूँगा, चाहे वह मित्र हो चाहे दुश्मन, कि अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह के उस दिन से लेकर जबकि हमने काश्मीर में आकाशमार्ग से फौजें भेजने का महत्त्वपूर्ण निर्णय किया, आज तक हमने काश्मीर में ऐसी कौन-सी बात की है, जो किसी भी दृष्टिकोण या मापदंड से गलत हो?

मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। हो सकता है कि व्यक्तियो ने यत्र-तत्र भूलें की हो, लेकिन मै कहता हूँ कि भारत सरकार ने और भारतीय सेना ने समग्र रूप से जो कुछ किया है वह अनिवार्य था और प्रत्येक कदम जो हमने उठाया है वह अनिवार्य कदम था, और यदि हमने वैसा न किया होता तो हम अपने को कलंकित कर लेते। इस रूप में मैंने काश्मीर के प्रश्न को देखने का साहस किया है और जब मैं देखता हूँ कि दूसरी तरफ सारा मामला जिसके विषय मे यदि मैं कड़ी भाषा का प्रयोग करूँ तो कह सकता हूँ कि झूठ और दगा पर खड़ा किया गया है, तो क्या मैं गलत कहता हूँ? यह बात है जिस पर मैं चाहूँगा कि यह भवन और मुल्क और दुनिया विचार करे।

'इसलिए, पहली बात याद रखने की यह है कि यह सब मामला, जो कि पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद् के सामने खड़ा किया, खुद उनके इकरार के अनुसार और इस साबित हुई बात के सामने कि उसकी बड़ी सेनाएं काश्मीर में सक्रिय रही हैं, अब ढह जाता है और निश्चय ही ऐसी ही सेनाए हैं, तथा आप कहना चाहें तो अन्य जो उनसे सबद्ध रही है, काश्मीर में भारतीय संघ के इलाके में इन दस महीनो से या लगभग इतने समय से कार्य करती रही हैं। बाद की हर एक कार्यवाही पर इस पहलू से दृष्टि डालनी चाहिए।

अब हम वर्त्तमान काल पर आते है, और यहाँ मुझे एक बात और कहनी है। यह एक आक्रमण रहा है; और यदि इसे-जैसा कि खुद उनका इकरार है—एक आक्रमण कहा जाय, तो उसके कुछ परिणाम होते है। अब मेरी कठिनाई यह रही है कि यदि किसी प्रश्न पर विचार करते हुए, आप अपने को विस्तार की बातो के जगल में खो देते है, तो आप मुख्य बात से अलग बहक जाते है। काश्मीर के मसले पर लम्बे विवाद हुए है और पिछले और वर्त्तमान इतिहास के हर पहलू पर विचार हुआ है। लेकिन मुख्य विचार्य बात क्या रही है? मैं इसे दुहराऊँगा, क्योकि मैं समझता हूँ कि मुख्य बात पाकिस्तान का भारतीय प्रदेश पर आक्रमण है, दूसरी बात इस आक्रमण के वाकये से इन्कार है; और तीसरी इस वाकये का मौजूदा इकरार है। इस परिस्थिति की मुख्य बातें ये है। बहस इतने लबे समय से इसलिए चल रही है कि इन मुख्य बातो को नजरअंदाज कर दिया गया

था या उन पर जोर नही दिया गया था। हमने वेशक उन पर जोर दिया और इस प्रश्न पर वारीकी के साथ विस्तृत विचार हुआ।

यदि आप कोई वहस एक गलत वयान को लेकर आरंभ करते हैं तो सारी वहस गलत हो जाती है और आप कठिनाइयो में पड़ जाते है। यदि आप किसी समस्या को विना उसका विश्लेषण किए या यथार्थ रूप समझे हल करना चाहते हैं तो आप उसे कैसे हल कर सकेंगे ? और यही मूल कठिनाई इस काश्मीर के मामले में रही है। मुख्य विचारणीय वात को या तो नजरअन्दाज कर दिया गया है, या टाल दिया गया है, या छोड़ ही दिया गया है। इसलिए हम और मामलों मे फँस गए जिनसे हमें कोई हल हासिल नही हो सकता। अब वुनियादी वात पाकिस्तान के इस इकरार से ही जाहिर हो गई है।

भारत मे आए संयुक्त राष्ट्र के कमीशन के युद्ध स्थगित करने और विराम सधि आदि के प्रस्ताव के सवध में मै अधिक वहस न करूँगा, क्योकि इस समय मैं कोई ऐसी वात नही कहना चाहता जो कि कमीशन को असमंजस में डाले। लेकिन कुछ कागज़ात आपके सामने हैं। यह कहने की आवश्यकता नही कि उनके प्रस्ताव का हमने वड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ स्वागत नही किया; उसकी वहुत-सी वातें इच्छा के प्रतिकूल पड़ने वाली थी। लेकिन हमने इस मामले पर, जहाँ तक सभव हुआ, ठडे दिल से और विना उद्वेग के विचार करने का प्रयत्न किया, ताकि वहुत्रस्त काश्मीर रियासत में शाति स्थापित हो सके और अनावश्यक कष्ट और रक्त-पात न हो। जव कमीशन ने कुछ और वातो को, जिन्हे हमने उनके सामने रखा, स्पष्ट करने का सौजन्य दिखाया तो हमने उनके युद्ध स्थगित करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। हमने वहुत से विषय उनके सामने नही रखे, वल्कि कुछ सीधी और मोटी वातें काश्मीर की सुरक्षा के सवध मे रखी। हमने ये वातें उनके सामने रखी और उन्होने उनके विषय में अपना आशय स्पष्ट करने का सौजन्य दिखाया। इसके वाद हमने युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसकी अनेक ऐसी वातो को भी हमने स्वीकार किया जो कि हमे पसन्द नही थी, क्योकि हमने अनुभव किया कि शाति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के हित मे यह हमारे लिये अच्छा होगा कि हम कुछ कदम आगे वढें, भले ही कुछ कदम अनिच्छा से वढ़ाये, जायें। हमने शाति स्थापित करने के उद्देश्य से ऐसा किया और यह दिखाने के उद्देश्य से किया कि हम सयुक्त राष्ट्र सघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की इच्छा की पूर्ति के लिए, जहाँ तक हमारे लिए वढना संभव है, वढ़ने के लिए तैयार है। सयुक्त राष्ट्र सघ का मूल प्रस्ताव हमें १४ अगस्त को मिला। १५ अगस्त को हमारा स्वतत्रता-दिवस था। उसके ठीक वाद १६ ता० को हम कमीशन के सदस्यो से मिले और हमने उनका ठीक-ठीक आशय समझने की दृष्टि से विचार-विनिमय किया, और उनको अपने ठीक-ठीक विचार वताए; और चार दिन के भीतर, यानी २० अगस्त

को हमने उनके पास अपना उत्तर भेज दिया। हमने इस मामले में देर लगानी नही चाही, क्योंकि वे उत्सुक थे कि इसमें देर न लगाई जाय।

पाकिस्तान सरकार को भी ये प्रस्ताव उसी समय अर्थात् १४ अगस्त को ३ या ४ बजे शाम को मिल गए थे। उनके पास भी उतना ही समय था। लेकिन कमीशन के पाकिस्तान वापस जाने पर भी—और कमीशन के कुछ सदस्य इस बीच में भी कराची गए थे, उनका उत्तर तैयार नही था। वास्तव में घटनाओं के दवाव से या कमीशन के दवाव से आखिरकार किसी प्रकार का जवाब उन्होंने कल दिया। इस बीच में स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिये लंबे-लंबे खत उन्होंने भेजे। मुझे खेद है कि अभी मैं पूरा उत्तर नही पढ सका हूँ, क्योंकि यहा आने से जरा पहले ही मुझे वह मिला है। लेकिन उसके खास-खास हिस्से मैंने पढ लिए हैं और नतीजा यह निकलता है कि वे उन प्रस्तावों को अस्वीकार करते हैं।

कमीशन ने हमें यह वताया कि ये प्रस्ताव समग्र रूप से किए गए हैं। और यद्यपि वे खुशी से किसी भी विषय पर बहस करने के लिए तैयार थे, उनके लिए यह कठिन था, दरअसल सभव न था कि उन्हें शर्त के साथ स्वीकृति मान्य हो, क्योंकि यदि हमने कुछ शर्तें लगाईं और पाकिस्तान ने भी शर्तें लगाईं तो किसने क्या स्वीकार किया इसका क्या पता चल सकता था? इसलिए उन्होंने कहा कि इन प्रस्तावो को ज्यो-का-त्यो स्वीकार करना चाहिए, और यदि उनकी स्वीकृति में शर्तें लगाई गई तो वह स्वीकृति न कहलायेगी वल्कि उसका अर्थ उन्हें अस्वीकृत करना होगा। इसलिए जो कुछ पाकिस्तान-सरकार ने किया है वह प्रस्तावो को अस्वीकार करने के वरावर है। यह कमीशन के निश्चय करने और वताने की वात है कि अव वह क्या करेगा। उसे सलाह देना मेरा काम नही। इस तरह हम एक अजीव परिस्थिति में पहुँच जाते है यानी यह कि वह मुल्क, जो कि अपने ही कहे के अनुसार एक आक्रमणकारी राष्ट्र था, अब युद्ध स्थगित करने के प्रस्ताव को अस्वीकार करता है, या ऐसी शर्तें पेश करता है, जो उसके इन्कार करने के वरावर है।

इन सब वातो के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम होने चाहिए। वे क्या है? यह कि एक किंचित सीमित क्षेत्र में, वे सभी अफसर और व्यक्ति, जो काश्मीर के इलाके में, भारत के विरुद्ध एक युद्ध में हिस्सा ले रहे हैं — जाहिर है इनमें पाकिस्तानी है, और दूसरे राष्ट्रीय भी है——केवल एक छेड़-छाड़ के युद्ध में ही नही लगे है, बल्कि ऐसे युद्ध में लगे है जिसके विषय में संयुक्त राष्ट्र कमीशन ने युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव रखा है। उनकी यह स्थिति विचारणीय हो जाती है।

काश्मीर के प्रश्न पर बस मै इतना ही कहना चाहता हूँ। स्वभावतः काश्मीर की कहानी अभी चल रही है। लगभग इन दस महीनो मे यह एक दास्तान बन गया है, और इस के साथ बहुत कुछ वेदना, रक्त पात और आँसू मिले हुए है। इस मे बहादुरी के क्षण भी आए है। लेकिन भारत वासियो के लिए और भारत सरकार के लिए कई प्रकार से यह एक परीक्षा और कठिनाइयो का समय रहा है, फिर भी कोई ऐसा समय नही आया, जबकि हमने समझा हो कि हम गलती पर है, या हमने कोई ऐसा कदम उठाया है जिसके औचित्य का हम पूरा-पूरा समर्थन नही कर सकते। इसी विश्वास के साथ हम आगे बढेंगे और क्या मै कहूँ कि सयुक्त राष्ट्र कमीशन के साथ परामर्श में और काश्मीर संबंधी और मामलो में हमने शेख अब्दुल्ला की काश्मीर सरकार से निकट संपर्क रखा है और जो भी कदम हमने बढाए है उनके बारे मे सलाह ली है? यह स्वाभाविक था और वर्त्तमान परिस्थिति मे अनिवार्य कि हमलोग आपस मे एक दूसरे से सलाह लेते हुए आगे बढते, इसी आधार पर हम आगे बढेगे, चाहे वह फौजी क्षेत्र में हो चाहे दूसरे क्षेत्र मे, और मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम ठीक मार्ग पर रहे और तात्कालिक लाभ उठाने के लिये ही क्यो न हो, उससे डिगे नही, तो हमारी जीत होगी। कोई भी मुल्क जो अपने पक्ष को सरासर झूठ पर आधारित करता है, अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सकता।

हैदराबाद
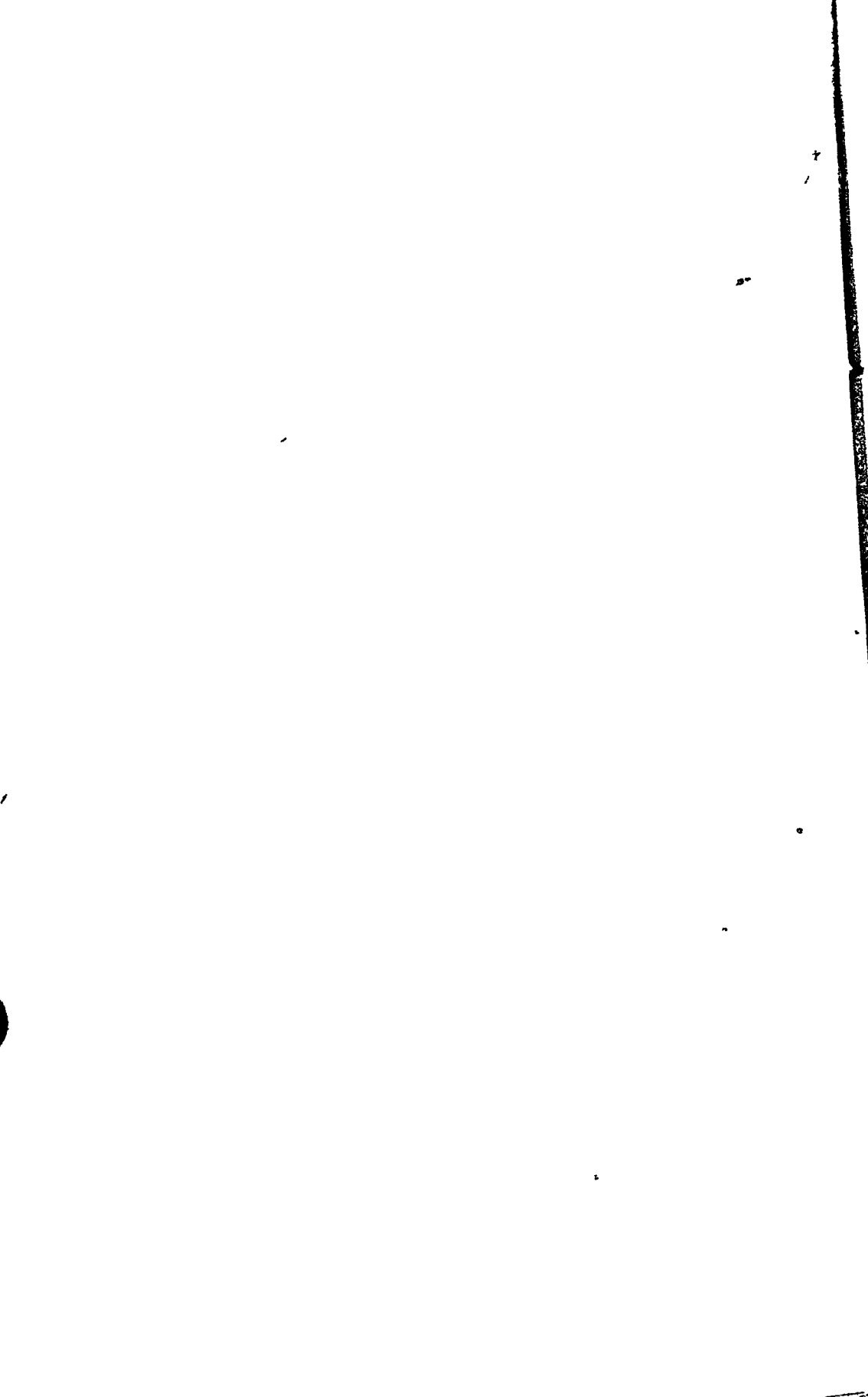
यह हैदराबाद का प्रश्न

महोदय, अब मैं इस भवन मे एक दूसरे ही विषय पर निवेदन करूंगा जो कि एक बिल्कुल भिन्न विषय है, लेकिन किसी देश के संगठित जीवन में चीजों को अलग-अलग करके देखना सचमुच कठिन है। इसलिये एक का असर दूसरी चीज पर पडता है। लेकिन वस्तुत. जो कुछ मैं हैदराबाद के संबंध में कहने जा रहा हूं, वह उससे जुदा है जो मैंने काश्मीर के विषय में कहा है, और उसका उससे कोई संबंध भी नही है।

एक साल से अधिक हो गया कि हम हैदराबाद की सरकार से शांतिपूर्ण और संतोषजनक समझौते के लिये तत्परता से कोशिश कर रहे हैं। पिछले नवम्बर में हमारी कोशिशो का नतीजा यह हुआ कि हम एक साल के लिये तात्कालिक समझौता कर सके। हमने यह आशा की थी कि जल्द ही इसके बाद एक अंतिम और संतोषजनक समझौता हो सकेगा। हमारे विचार में इस समझौते का आधार रियासत में उत्तरदायित्वपूर्ण-शासन की स्थापना और भारत में उसका सम्मिलित होना ही हो सकता था। इस प्रवेश का अर्थ यह होता कि रियासत भारतीय संघ की एक स्वायत्त इकाई बन जाती और दूसरी स्वायत्त इकाइयों के अधिकार और हक उसे प्राप्त होते। वास्तव में, हमने हैदराबाद से जो प्रस्ताव किया वह भारतीय संघ की बडी बिरादरी में उसका एक सम्मानित साझीदार बनने का प्रस्ताव है।

हैदराबाद में या किसी भी दूसरी रियासत या प्रान्त में उत्तरदायित्व पूर्ण लोकप्रिय शासन हमारा ध्येय रहा है, और हमे यह बताने मे बडी प्रसन्नता है कि हैदराबाद रियासत को छोड़कर सारे भारत में यह पूर्ति के बहुत निकट पहुंच गया है। हमारे लिये यह कल्पना से बाहर की बात थी कि आधुनिक युग मे, और नई स्वतन्त्रता से अनुप्राणित भारत के बीचोबीच एक ऐसा प्रदेश हो जिसे यह स्वतन्त्रता प्राप्त न हो और जहा अनिश्चित काल के लिये निरकुश शासन रह सके।

जहां तक भारत में प्रवेश होने का प्रश्न था, यह बात भी स्पष्ट थी कि हैदराबाद जैसे प्रदेश को, जो चारो ओर से भारतीय संघ से घिरा हुआ हो और शेष दुनिया के साथ जिसका प्रत्यक्ष संबंध न हो, निश्चय ही भारतीय संघ का अंग

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में ७ सितम्बर, १९४८ को दिया गया वक्तव्य।

होना चाहिये। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तो इसे एक अग होना ही चाहिये था, लेकिन भौगोलिक और आर्थिक कारणों से तो यह और भी आवश्यक था। और उन कारणों की उपेक्षा नही की जा सकती थी—विशेष व्यक्तियों या दलो की जो भी इच्छाएं हों। हैदराबाद और शेष भारत के बीच कोई भी दूसरा संबध संदेहात्मक स्थिति को कायम रखने वाला होता और इसलिये संघर्ष का भय सदा उपस्थित रहता। केवल अपने को स्वतंत्र घोषित कर देने से कोई रियासत स्वतंत्र नहीं हो जाती। स्वतंत्रता का अर्थ दूसरे स्वतंत्र राज्यो से विशेष प्रकार का संबध और उनके द्वारा इस स्थिति की मान्यता होता है। भारत इसे कभी स्वीकार नही कर सकता कि हैदराबाद का किसी दूसरी शक्ति से स्वतंत्र संबध हों, क्योंकि इससे भारत की सुरक्षा संकट मे पड़ती है। ऐतिहासिक दृष्टि से हैदराबाद कभी स्वतत्र नही रहा है। व्यवहारत', आज की परिस्थिति में, यह स्वतंत्र नही हो सकता।

इसके अतिरिक्त, उन सिद्धातो के अनुसार, जिनकी कि हमने बार बार घोषणा की है, हम इस बात पर राजी थे कि हैदराबाद का भविष्य वहा के जनमत के आधार पर निश्चित हो। शर्त यह थी कि जनमत स्वतंत्र वातावरण में प्राप्त किया जाय। जो आतंक की स्थिति आज हैदराबाद मे फैली हुई है उसमे ऐसा सभव नही है।

समझौते के लिये हमारी बार-बार की गई कोशिशे, जो एक या दो अवसरो पर प्रायः सफल होती जान पड़ी थी, दुर्भाग्यवश असफल रही। इसके कारण हमे स्पष्ट जान पड़े, हैदराबाद रियासत मे कुछ शक्तियां काम कर रही थी, जिन्होंने यह निश्चय कर रखा था कि भारतीय सघ से कोई समझौता न होने पाये। बिल्कुल गैर-जिम्मेदार लोगों के नेतृत्व में ये शक्तियां अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती रही और अब सरकार पर पूरा काबू पाये हुए हे। रियासत के साधन हर तरह से युद्ध की तैयारी मे लगाये जा रहे है। रियासत की सेना बढ़ा ली गई है और अनियमित सेना तेजी से बढ़ने दी गई है। हथियार और गोला-बारूद विदेशों से छिपाकर लाये गये है। यह क्रम, जिसमें कि कई विदेशी दु.साहसी स्पष्टतः लगे हुए है, बराबर जारी है। भारत की स्थिति में कोई भी देश अपने बीचोबीच स्थित रियासत द्वारा की जाने वाली इन युद्ध की तैयारियों को सहन नहीं कर सकता। फिर भी वर्तमान भारत सरकार ने किसी समझौते की आशा से धैर्यपूर्वक बातचीत जारी रखी। एकमात्र दूसरा कदम जो उसने उठाया वह यह था कि जहां तक संभव हो हैदराबाद में युद्ध—सामग्री का बाहर से आना रुके।

हैदराबाद में जो निजी सेनाएं तैयार हुईं, खासकर रजाकारों की, वे रियासत

के भीतर और कभी कभी सरहद को पार करके भारत मे भी अधिकाधिक क्रूर हो रही हैं। इसका हाल विस्तार से देने का मेरा विचार नहीं है इसलिये कि पूरा हाल कुछ तो उपप्रधान मंत्री द्वारा इन अधिवेशन में पूर्व प्रस्तुत हैदराबाद संबंधी सरकारी श्वेत-पत्र में और कुछ अन्य प्रकाशित पत्रों में मिल जायगा। हैदराबाद रियासत के भीतर, उन लोगो के विरुद्ध—चाहे वे मुसलमान हो चाहे गैर-मुसलमान, चाहे सरकारी कर्मचारी हो चाहे अन्य ऐसे कर्मचारी जो कि रजाकारो और उनके साथियो के विरुद्ध हैं—बढ़ते हुए आतंक और भीषणता ने, एक गंभीर परिस्थिति पैदा कर दी है, और इसकी प्रतिक्रिया संघ के सरहदी भागों और साधारणत: भारत में हुई है। इस समय हमारी तात्कालिक और सब से बड़ी चिन्ता हैदराबाद रियासत में फैलती हुई हिंसा और अराजकता की लहर के संबंध मे है।

रजाकारो के कार्यो का पूरा हाल बयान करने में समय लगेगा। मैं केवल कुछ हाल की घटनाएं बताऊंगा और कुछ आंकडे दूंगा। रियासत के भीतर एक गाव के निवासियो ने अपने उत्साही मुखिया के नेतृत्व में, इन डाकुओ से मुकाबला किया। गोला-बारूद खतम हो जाने के कारण जब उनके लिये और मुकाबला करना असंभव हो गया, तब वे सब-के-सब तलवार के घाट उतार दिये गये, और गांव जला कर खाक कर दिया गया। बहादुर मुखिया का सिर काट डाला गया और उसे एक लट्ठे के सिरे पर लगाकर फिराया गया। एक दूसरे गाव में पुरुष, स्त्रियां और बच्चे सब एक जगह इकट्ठा किये गये और रजाकारो और निजाम की पुलिस द्वारा गोली से मार दिये गये।

गांववालो के एक बड़े दल पर, जो कि बैलगाड़ियों पर भारत की किसी सुरक्षित जगह में रक्षा पाने के लिये जा रहा था, बेरहमी से आक्रमण किया गया, पुरुष पीटे गये और स्त्रिया भगा ले जाई गई।

एक रेलगाड़ी रोक ली गई, मुसाफिरो को लूट लिया गया और कई डिब्बे जला दिये गये । इस भवन को मालूम है कि हैदराबाद रियासत में स्थित हमारे इलाकों में प्रवेश करने वाले हमारे ही सैनिको पर आक्रमण हुए है, और रजाकारों ने हमारे सरहदी गांवो पर धावे किये हैं।

जो समाचार हमें कल मिले है, उनके अनुसार रजाकारो ने और नियमित हैदराबाद सेना की एक इकाई ने, जिसके साथ बख्तरबन्द मोटरें भी थीं, भारतीय इलाके मे भारतीय सैनिको से मुठभेड़ की । वे भगा दिये गये, एक बख्तरबन्द मोटर नष्ट कर दी गई और एक अफसर तथा ८५ और ओहदो के लोग, कैद कर लिये गये। यह घटना भारत के विरुद्ध बढ़ती अप्रसन्नता की और भी मिसाल है।

जब से यह उत्तेजक हिंसा पूर्ण लड़ाई आरभ हुई, तब से अब तक प्राप्त सूचना के अनुसार, रियासत के भीतर ७० गावो पर धावे हुए हैं और हमारे इलाके पर कोई डेढ़ सौ अतिक्रमण हुए हैं, सैकडो आदमी मारे गये हैं और बहुत सी स्त्रियो के साथ बलात्कार हुआ है या वे भगाई गई है, १२ रेलगाड़ियो पर हमले हुए है और एक करोड से ऊपर की जायदाद लूटी गई है। लाखो आदमी रियासत से भाग कर भारत के पडोसी प्रातो मे शरणार्थी हुए है।

यह सदन स्वीकार करेगा कि कोई भी सभ्य सरकार इस तरह के अत्याचारो को भारत के भौगोलिक अंतस्थल में ही बेधडक जारी रहने नही दे सकती, क्योंकि यह न केवल हैदराबाद के शान्तिप्रिय निवासियो की सुरक्षा, इज्जत, जिन्दगी और जायदाद का मामला है, बल्कि भारत की व्यवस्था और आंतरिक शाति का भी है। हैदराबाद मे हत्याकाड, अग्निकांड, बलात्कार और लूटमार होती रहे, और उनसे भारत में साम्प्रदायिकता की भावना को उत्तेजना न मिले, और संघ की शाति न भंग हो, ऐसा नही हो सकता। इस भवन को विचार करना चाहिये कि भारत मे जो हमसे पहले हुकूमत थी, वह इस परिस्थिति मे क्या करती। इससे बहुत कम उत्पात होने पर भी उसने जोरदार हस्तक्षेप किया होता। ब्रिटिश राज्य की सार्वभौम सत्ता के उठ जाने से हैदराबाद और उस शक्ति के, जिस पर कि व्यापक रूप से भारत की सरक्षा का भार है और निर्विवाद रूप से बना रहेगा, पारस्परिक सम्बन्ध या एक के दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व नही बदल सकते। हमने धैर्य रखा है और बर्दाश्त दिखाई है, इस आशा से कि समझ आ जाएगी और दूसरे पक्ष को एक शातिपूर्ण हल प्राप्त हो सकेगा। यह आशा व्यर्थ गई और न केवल रियासत के भीतर या उसकी सरहदो पर अशाति के लक्षण दिखायी देते है बल्कि भारत की शाति और जगह भी खतरे मे है।

हमारी आलोचना इसलिये हुई है कि हमने जरूरत से ज्यादा धैर्य और सब्र दिखाया है। इस आलोचना का कुछ समर्थन हो सकता है, लेकिन हमने इस सिद्धात पर कार्य करने का प्रयत्न किया है कि सघर्ष टालने और शातिपूर्ण ढग से समझौता करने के लिये जो प्रयत्न हो सकता है उससे विमुख न होना चाहिये। जब तक बिल्कुल मजबूरी न हो जाय तब तक इसके अतिरिक्त कोई भी कार्यक्रम उन आदर्शों और सिद्धातो के प्रतिकूल होगा, जिनके प्रति विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिये अपने युद्ध के आरभ से अन्त तक हमने बार-बार आस्था प्रकट की है। लेकिन क्रूर घटनाओ के आगे हम अपनी आखे नही मूंद सकते, न उस कड़े उत्तरदायित्व को टाल सकते है जिसे कि ये घटनाए हमारे ऊपर डाले। वर्तमान समय में, मैं दुहराना चाहूंगा, जो बात सब से पहले विचारणीय हो जाती है वह हैदराबाद मे जीवन की सुरक्षा और इज्जत का प्रश्न है और यह कि उस रियासत

में जो बर्बर आतंक छाया हुआ है उसे कैसे रोका जाय। और प्रश्न बाद में उठाये
जा सकते हैं, क्योंकि वास्तव में अन्य प्रश्नों को विचारने के लिये शांति और व्यवस्था
परम आवश्यक है।

हैदराबाद सरकार ने, उस आतंक को दबाने के मामले में, जिसने कि वहां
के शांतिप्रिय और कानून की हद में रहने वाले नागरिकों के जीवन को इतना
अरक्षित बना दिया है कि वे बड़ी संख्या में भाग कर पड़ोसी प्रांतों और
रियासतों में जा रहे हैं, अपनी अनिच्छा और असमर्थता दोनों ही
दिखाई हैं। हम अनुभव करते हैं कि इस हालत में हैदराबाद में तब
तक आंतरिक सुरक्षा स्थापित न होगी जब तक कि हम सिकंदराबाद
में अपने सैनिकों को फिर से तैनात नहीं करते हैं—जैसा कि उन वर्षों को
आरंभ तक, जब तक भारत ने उन्हें वहां से हटाया नहीं था, वे वहां थे। निजाम के गत
हाल के पत्र के उत्तर में श्रीमान् गवर्नर जनरल ने उन्हें यह सुझाव दिया था, लेकिन
आला हजरत ने यह उत्तर दिया कि इस प्रकार की कार्यवाही आवश्यक नहीं है,
क्योंकि हैदराबाद की परिस्थिति बिल्कुल साधारण है। यह बात वास्तव में हर रोज
जाने हुए वाकये के खिलाफ पड़ती है और हमने अब निजाम से अंतिम बार यहां
है कि वह रजाकारों को तुरंत छिन्न-भिन्न करें, और जैसा कि श्रीमान् गवर्नर जनरल
ने सुझाव दिया था, सिकंदराबाद में उतनी संख्या में जितनी कि हैदराबाद में शांति
स्थापित करने के लिये आवश्यक हो, हमारी सेना की वापसी के लिये सुगमता उत्पन्न
करें। जब वह वहां स्थापित हो जायगी, तो लोगों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न
होगी और निजी फौजों के आतंक समाप्त हो जायंगे।

क्या मैं कुछ शब्द और कहूं? सब से पहले मैं इस भवन से यह कहना चाहूंगा
और देश के सामने यह रखना चाहूंगा कि हमने हैदराबाद के प्रश्न को, जहां तक
संभव हो सका, साम्प्रदायिकता के दृष्टिकोण से बिल्कुल हट कर देखने का प्रयत्न किया
है, और मैं चाहूंगा कि देश भी इसे इसी असाम्प्रदायिक रूप से देखे। मैं जानता
हूं जैसा कि मैंने अभी कहा है कि साम्प्रदायिक भावनाएं उकसाई गई हैं। लेकिन
हम सभी का यह कर्तव्य है, हम चाहे हम किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों, कि इस
प्रश्न को साम्प्रदायिकता के स्तर से ऊपर उठ कर, और मैं समझता हूं कि
अधिक वास्तविक तथा बुनियादी दृष्टिकोण से देखें।

हम अपनी सेना सिकंदराबाद में हैदराबाद के सभी लोगों की सुरक्षा के लिये—
चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान, या कोई और, भेजना चाहते हैं। अगर वहां पर
हैदराबाद में स्वतंत्रता स्थापित होनी है तो वह सभी के लिये समान रूप से होगी,
किसी एक वर्ग के लिये नहीं। इसलिये मैं इस बात पर जोर दूंगा, और [illegible]

कि जन-मत पर प्रभाव डालने वाली वे शक्तियां जो कि जनता पर सदा, विशेषकर कठिनाई और तनाव के समय, इतना प्रभाव डाल सकती हैं, इस असाम्प्रदायिक पहलू पर जोर दें। हमें भी पुलिस की कार्यवाही के रूप में जो कुछ भी करना पड़े, हमारे निश्चित और स्पष्ट आदेश होंगे कि यदि कोई पक्ष साम्प्रदायिक उपद्रव उठाये तो उससे बड़ी सख्ती से पेश आया जाय।

जैसा कि मैंने इस भवन को बताया है, भय से आतंकित होकर बहुत से लोग हैदराबाद से बाहर आये हैं। मैं नही कह सकता कि कितने लोग बाहर आये है, लेकिन मध्य प्रांत में इस समय भी दसियों हजार के पड़ाव पड़े हैं—संभवतः कई लाख आदमी पिछले दो महीनों में बाहर आये होंगे। अब, यदि मैं सलाह दूं—यद्यपि यह सलाह देना एक हद तक जिम्मेदारी उठाना है—तो यह सलाह दूंगा, और मैं इस सलाह देने की जिम्मेदारी भी लेने को तैयार हूं, कि लोग हैदराबाद से या किसी भाग से जहां वे हों, बाहर न आवें।

(एक माननीय सदस्य : और कत्ल हो जाय!)

किसी ने कहा कि कत्ल हो जायं। मै अपने ही विचारों के अनुसार कह सकता हूं। अगर मै वहां होऊं तो मै बाहर न आऊं, चाहे जो हो—कत्ल हो या न हो। मै समझता हूं कि जब कभी हमें एक गंभीर स्थिति का सामना करना पड़े, उससे भागने से बुरी दूसरी बात नही हो सकती, और विशेषकर मौजूदा हालत में, मै ऐसा करने में कोई लाभ नही देखता। क्योकि वह आदमी जो भागता है साधारणतः अपने को उस दूसरे के मुकाबले में ज्यादा खतरे मे डालता है, जो कि अपने स्थान पर डटा रहता है। यह सही है कि मै अपवाद स्वरूप दशाओ पर विचार नही कर रहा हूं और संभव है कि कही-कही असाधारण स्थिति हो जायगी। लेकिन जो कुछ मै कह रहा हू वह यह है कि संभव है कि देश मे शीघ्र गंभीर घटनाएं घटने वाली हों, इसलिये हमारी सरकार ने इन बातों पर पूरा और गहरा विचार किया है। हमने इन पर आपस में ही नही बल्कि अपने सलाहकारों से परामर्श किया है। हमने अनेक संभावित परिणामो पर विचार किया है। हम हवा में कोई कार्रवाई नही कर सकते। इसलिये हमने ऐसा किया है। और यह करने के बाद हम कुछ नतीजों पर पहुंचे है, जो कि मै आपके सामने रख रहा हूं। चाहे जैसा वक्त होता, मैं मुल्क को यही सलाह देता कि लोग शांत और अविचलित रहे। मैं घबड़ाने से और कठिन स्थिति से भागने से इन्कार करता हूं। इस समय खास तौर पर, मै सभी लोगो से, अपनी पूरी सामर्थ्य से यह कहूंगा कि हमें शांति और स्थिरता बनाये रखनी चाहिये और जो भी स्थिति उपस्थित हो उसका शांति के साथ, बिना विचलित हुए और अनुशासनपूर्वक सामना करना चाहिये। साथ ही हमे उन बुनियादी सिद्धांतो और पाठों को, जो कि हमारे गुरु ने पढ़ाए है, स्मरण रखना चाहिये।

हम शांतिप्रिय लोग हैं

साथियो और दोस्तो, मै आपसे हैदराबाद के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। आपको मालूम ही है कि वहा पिछले पांच दिनो में तेजी के साथ क्या घटनाएँ घटी है। आप जानते है कि हैदराबाद मे हमारी सरकार ने जो कार्यवाही की है, उससे उसका उद्देश्य पूरा हुआ है। रजाकारो को, जिन्होंने पिछले चन्द महीनो मे इतनी शरारतें की है, गैर कानूनी करार दिया गया है, और उनके दल को तितर-वितर किया जा रहा है। अब हमारे सामने नई समस्याएं है और भारत तथा हैदराबाद के लोगों की भलाई का ध्यान रखते हुए हमें उनसे बुद्धिमानी के साथ निबटना होगा।

यह स्वाभाविक है कि लबे विचार और परामर्श तथा दुखद निर्णय के बाद हमने जो कार्यवाही की उसके शीघ्र ही समाप्त होने पर हमे प्रसन्नता है। जैसा कि मैने बार-बार कहा है, हम लोग शातिप्रिय है, युद्ध से नफरत करते है, और किसी के साथ सशस्त्र युद्ध मे पडने की अंत तक इच्छा नही करते। फिर भी, परिस्थितियो ने, जिन्हे आप भली भांति जानते है, हमे हैदराबाद में यह कार्यवाही करने के लिये मजबूर किया। सौभाग्य से, यह कार्यवाही थोडे वक्त की थी और शाति के मार्ग पर फिर लौट आने पर हमे सतोष हुआ है।

जिस उत्तम ढग से हमारी सशस्त्र सेना के अफसरो और जवानो ने सच्चे सैनिको की भांति, कौशल से, शीघ्रता और धैर्य से, और सभी मर्यादाओं का पालन करते हुए, यह काम पूरा किया है, उस पर हमें प्रसन्नता है। पिछले छ दिनों में जिस बात से मुझे सब से अधिक प्रसन्नता हुई है वह यह है कि हमारी जनता ने, वह मुस्लिम हो या गैरमुस्लिम, सयम और अनुशासन की माग को पूरा किया है और एकता की कसौटी पर वह खरी उतरी है। यह एक शान बात है और ऐसी है जोकि भविष्य के लिये शुभसूचक है कि इस विशाल देश मे कही भी कोई साम्प्रदायिक घटना नही घटी। मै इसके लिये बहुत कृतज्ञ हू। मै हैदराबाद के लोगो को भी बधाई दूगा, जिन्होने कि परीक्षा के इन दिनो में शाति रखी है और शाति स्थापना मे मदद दी है। बहुत से लोगो ने हमे आगाह किया था कि हम जोखिम और खतरे का सामना कर रहे है और साम्प्रदायिक दगे

हैदराबाद के संबंध में नई दिल्ली से १८ सितम्बर, १९४८ को प्रसारित वार्ता।

हमारे देश को झुलसा देंगे। लेकिन हमारी जनता ने इन भविष्यवाणी के ठेकेदारों को गलत सिद्ध कर दिया है, और यह दिखा दिया है कि संकट का सामना करते समय वह उसका साहस, मर्यादा और शांति से सामना कर सकती है।

इसे आगे के लिये एक उदाहरण और एक प्रण बनाना चाहिये। अब मे साम्प्रदायिक वैमनस्य की कोई बात चीत या संकेत न होना चाहिये। हमे झूठे सिद्धांत और अनुदार प्रेरणाओ को, जिन्होंने इस वैमनस्य को जन्म दिया है, दफन कर देना चाहिये, और उस संयुक्त भारत का निर्माण करना चाहिये, जिसके लिये हमने बीते दिनो में परिश्रम किया है, और जिसमे कि हर भारतीय को बराबर अधिकार और अवसर मिलेंगे, वह चाहे जिस धर्म का हो।

हमें आज खुशी है, और ठीक ही है, लेकिन हमे यह याद रखना चाहिये कि एक बडा राष्ट्र और एक बडी जाति, चाहे वह मुसीबत मे हो चाहे कामयाबी की दशा मे, अपना सतुलन नही खो बैठती। हमने बहुत सी मुसीबतों का सामना किया है और उन पर काबू पाया है। हमें इस सफलता का भी बिना मतवाला बने सामना करना चाहिये।

हमे अपने वास्तविक लाभों को इस अवसर पर स्थायी बनाना चाहिये— एकता सद्भावना और पारस्परिक सहनशीलता सम्बन्धी सभी लाभो को। मैं इस अवसर पर पाकिस्तान के लोगो से, जो कल तक हमारे देशवासी थे और अब भी हमा उतनेही निकट है, यह अनुरोध करूंगा कि अपना भय और संदेह त्याग कर हमारे साथ मिलकर शांति के कार्यों मे लगे।

हैदराबाद के लोगो को, मुसलमानो और गैर मुसलमानो दोनो ही को, मै अपना अभिवादन भेजना चाहूंगा। यह हमारे लिये एक रज की बात रही कि इस देश के निवासियो के बीच सशस्त्र सघर्ष का अवसर आया। प्रसन्नता की बात है, कि वह मौका बीत गया। हैदराबाद के शासक-गुट ने यह बुरा रास्ता पकड़ा था जिससे कि यह दुखद संघर्ष उपस्थित हुआ। मुझे प्रसन्नता है कि आला हजरत निजाम ने यह अनुभव किया कि उन्होंने गलत काम किया था, और वह बहकाये गये, और अब उन्होंने कदम पलटे है। इतनी देर बाद भी, ठीक कार्य करने के लिये, वह बधाई के पात्र है। अगर यही ठीक कार्य कुछ पहले हुआ होता तो हम बहुत कुछ मुसीबत और उलझनो से बच जाते।

लेकिन बीती हुई बात के सबध मे अब मै कुछ नही कहना चाहता और मै नहीं चाहता कि अब कोई आगे अपने मन मे दुर्भावना को बनाये रहे। हमने स्पष्ट

रूप से कह दिया है कि हैदराबाद का भविष्य उनकी जनता की इच्छा के अनुसार निर्धारित होगा। हम इस घोषणा पर दृढ़ रहेंगे। वह भविष्य, मुझे विश्वास है, भारत से निकटतम संबंध का होगा। इतिहास, भूगोल और सांस्कृतिक परम्पराएं इस बात की साक्षी होती हैं।

अभी हमारे सैनिक कमाण्डर हैदराबाद का प्रबंध करेंगे , क्योंकि साधारण स्थिति स्थापित करने के लिये बहुत कुछ कार्य करना शेष है। हमने उन्हें निर्देश दे रक्खा है कि रियासत के लोगों के साधारण जीवन मे, क्या शहर में क्या गांव में, जहा तक हो कम हस्तक्षेप किया जाय, और उसे पूर्ववत् चलाना चाहिये।

जैसे ही यह तात्कालिक कार्य पूरा होता है, दूसरे प्रबंध किये जायंगे, और फिर एक विधान परिषद् के चुनाव का प्रबंध होगा जो कि हैदराबाद के वैधानिक संगठन का निश्चय करेगी।

मैं फिर कहूंगा कि हम हैदराबाद को अपने से भिन्न या गैर नहीं समझते, जैसा कि पहले भी नहीं समझा है। उसके निवासी, चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, हमारे भाई-बन्द हैं और भारत की महान विरासत में हमारी तरह हिस्सेदार हैं। जय हिन्द!
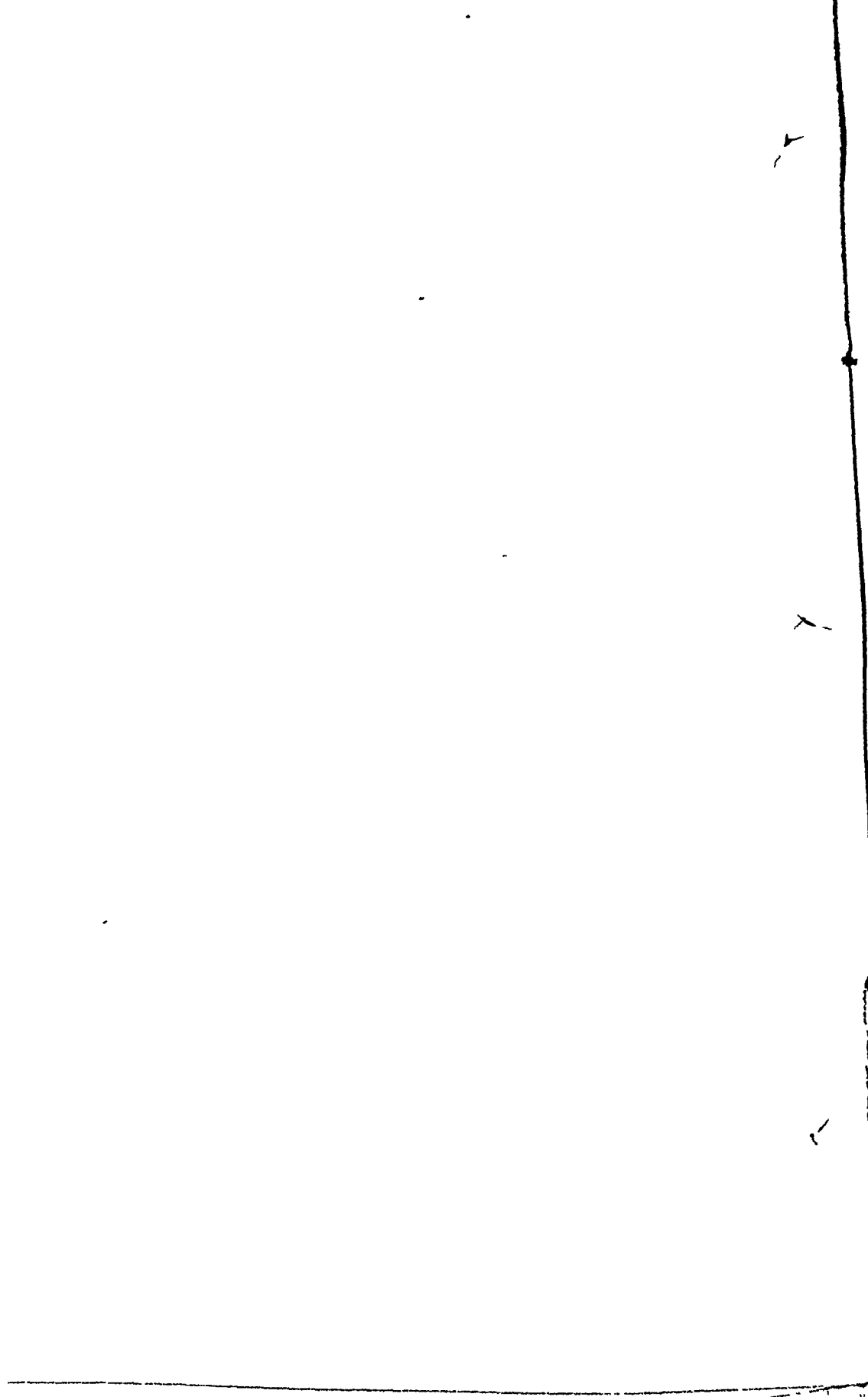
शिक्षा
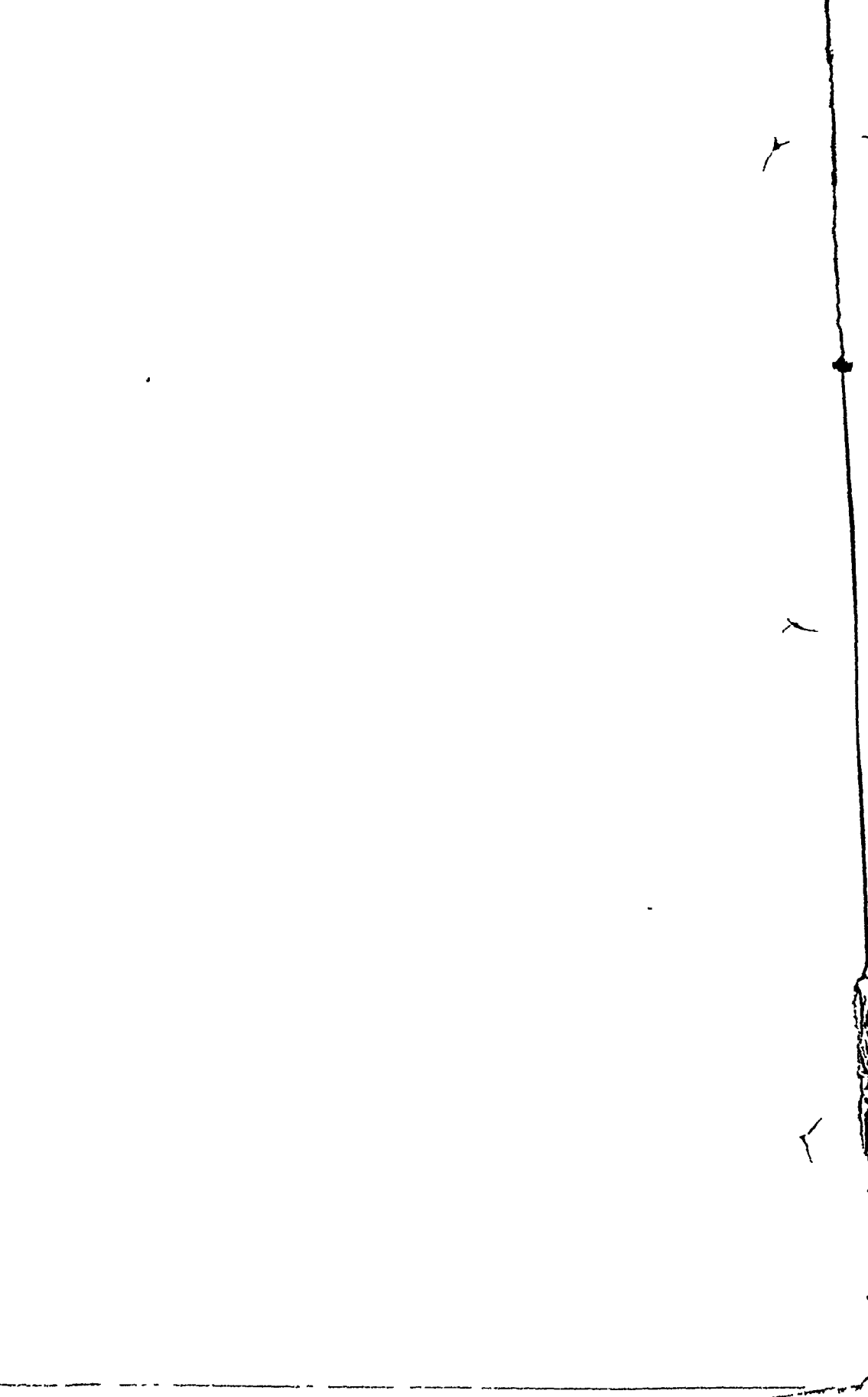
विश्वविद्यालयों को बहुत कुछ सिखाना है

बहुत दिनों बाद मैं इलाहाबाद शहर में जो मेरा घर है और जिसके लिए मैं प्राय अजनबी हो गया हूँ, आया हूँ। पिछले पन्द्रह महीनो में मैं नई दिल्ली में रहा हूँ, जो कि पुराने दिल्ली शहर से लगी हुई है। यह दो नगर हम पर क्या असर करते है, हमारे मन में कैसे चित्र और विचार उत्पन्न करते है? जब मैं उनके विषय में सोचता हूँ, तब भारत के इतिहास की लम्बी अटूट परम्परा मेरे सामने फैल जाती है; यह राजाओ और बादशाहो का सिलसिला उतना नही होता जितना कि राष्ट्र के आन्तरिक जीवन, विभिन्न क्षेत्रो में उसकी सास्कृतिक कृतियो, उनके आत्मिक प्रयासो और विचार तथा कार्य के क्षेत्र में उसकी यात्रा के विषय में होता है। एक राष्ट्र का जीवन, विशेषकर भारत जैसे राष्ट्र का जीवन मुख्यतया गावो मे बीतता है। फिर भी यह शहर ही है जो कि युग की सर्वोच्च सास्कृतिक सिद्धि का, जैसा कि वह कभी-कभी मनुष्य जीवन के नागवार पहलुओ का भी, प्रतिनिधित्व करते है। इसलिए ये शहर मुझे भारत के सास्कृतिक विकास की, उस भीतरी शक्ति और सतुलन की, जो कि युगो की सभ्यता और सस्कृति के परिणाम है, याद दिलाते है। हमें भारत में अपने इस उत्तराधिकार का बडा गर्व रहा है, और यह ठीक ही है। लेकिन फिर भी आज हम कहा खड़े है?

यह अच्छा ही है कि हम अपने-आपसे यह प्रश्न इलाहाबाद के इस प्राचीन नगर में और इस विद्यापीठ में करते है । विश्वविद्यालयो को आधुनिक ससार में बहुत कुछ सिखाना है और उनके कार्य का क्षेत्र बराबर बढता जाता है। मैं स्वयं विज्ञान का भक्त हूँ, और मैं विश्वास करता हूँ कि ससार की रक्षा हुई तो अन्तत विज्ञान के तरीको और उसके मार्ग से ही होगी। लेकिन विद्या के जिस भी मार्ग हम अनुसरण करें, और वह हमें चाहे जितना उपयोगी जान पड़े, फिर भी यदि एक विशेष आधार और बुनियाद के बिना विद्या का भवन निर्माण किया जाय तो वह खिसकते हुए बालू पर बना हुआ होगा । विश्वविद्यालयो का यह काम है कि इस मूल आधार और बुनियाद को, और विचार और कार्य के उस मापदड को समझें और उनपर जोर दें। विशेषकर आज बहुत तेजी से बदलते हुए इस जमाने मे, जब कि पुराने मूल्य हम से छूट

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के विशेष कन्वोकेशन पर १३ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

गए हैं और हमने नये मूल्यो को अपना लिया है, यह जरूरी हो गया है। हमें स्वतत्रता मिली, वह स्वतंत्रता जिसे हम बहुत समय से खोज रहे थे, और यह हमें कम-से-कम हिंसा द्वारा मिली। लेकिन उसके तुरन्त बाद ही हमे खून और आसू के समुद्र को पार करना पड़ा। खून और आँसू से भी बुरी, उसके साथ आने वाली लज्जाजनक बातें थी। उस समय हमारे मूल्य और आदर्श, हमारी पुरानी संस्कृति, हमारी मानवता और अध्यात्म और वह सब कुछ जिसका कि बीते युग मे भारत प्रतीक रहा है, कहाँ थे? यकायक इस भूमि पर अन्धकार उतर आया और लोगो पर पागलपन छा गया। भय और घृणा ने हमारे मनों को अन्धा कर दिया और वे सारे सयम, जो हमें सभ्यता सिखाती है, वह गए। दहशत पर दहशत टूटी और मनुष्यो की निर्दय बर्बरता पर हम अचानक सन्नाटे मे आ गए। जान पड़ा कि सभी प्रकाश बुझ गए हैं; सब नहीं, क्योकि कुछ अब भी इस गर्जते हुए तूफ़ान में टिमटिमाते रहे। हमने मरो और मरते हुओं के लिए रंज किया, और उन लोगो के लिए जिनकी तकलीफ मौत से बढ़ कर थी। इससे भी ज्यादा, हमने भारत माता के लिए रंज किया जो सबकी माँ है, और जिसकी आज़ादी के लिए हमने इतने वर्षो से परिश्रम किया है।

जान पड़ा कि प्रकाश बुझ गए हैं। लेकिन एक ज्योतिर्मय शिखा जलती रही और अपना प्रकाश फैले हुए अन्धकार पर डालती रही। और उस विशुद्ध शिखा को देख कर हम में शक्ति और आशा लौटी और हमने अनुभव किया कि जो भी क्षणिक दुर्घटना हमारे लोगो पर आ पड़े, भारत की आत्मा, शक्तिशाली और अकलुष है, वर्तमान क़ोलाहल से ऊपर उठी हुई है, और प्रतिदिन की तुच्छ आकस्मिक बातों की चिन्ता नहीं करती। आप लोगो में से कितने इस बात का अनुभव करते है कि इन महीनो मे भारत के लिए महात्मा गान्धी की उपस्थिति का क्या महत्त्व रहा है? हम सभी भारत के प्रति और स्वतंत्रता के लिए पिछली आधी सदी या उससे अधिक समय की उनकी महान सेवाओ को जानते है। लेकिन कोई भी सेवा उतनी महान नहीं हो सकती, जितनी कि उन्होने पिछले चार महीनो में की हैं, जब कि एक मिटती पिघलती दुनिया के बीच वह उद्देश्य की चट्टान और सत्य के प्रकाश स्तम्भ की भाँति बने रहे हैं और उनका दृढ़ मन्द स्वर जनता के कोलाहल से ऊपर उठकर, उचित पुरुषार्थ का मार्ग दिखाता रहा है।

और इस उज्वल शिखा के कारण हम भारत और उसके लोगो मे अपना विश्वास नहीं खो सके। फिर भी जो अन्धकार छाया हुआ था, वह स्वयं एक आशका की बात थी। जब कि स्वतंत्रता का सूर्य उदित हो गया हो, तब हम अन्धकार की स्थिति में क्यों लौटें? हम सब के लिए और विशेष कर उन नवयुवको और नवयुवतियों के लिए जो कि विश्वविद्यालयो में पढ़ रही हैं, यह आवश्यक है कि ठहर कर इन बुनियादी बातों पर एक क्षण के लिए विचार करें, क्योकि भारत के भविष्य का निर्माण वर्तमानकाल

नागपुर विश्वविद्यालय में १ जनवरी १९५० को दीक्षान्त समारोह के अवसर पर भारत
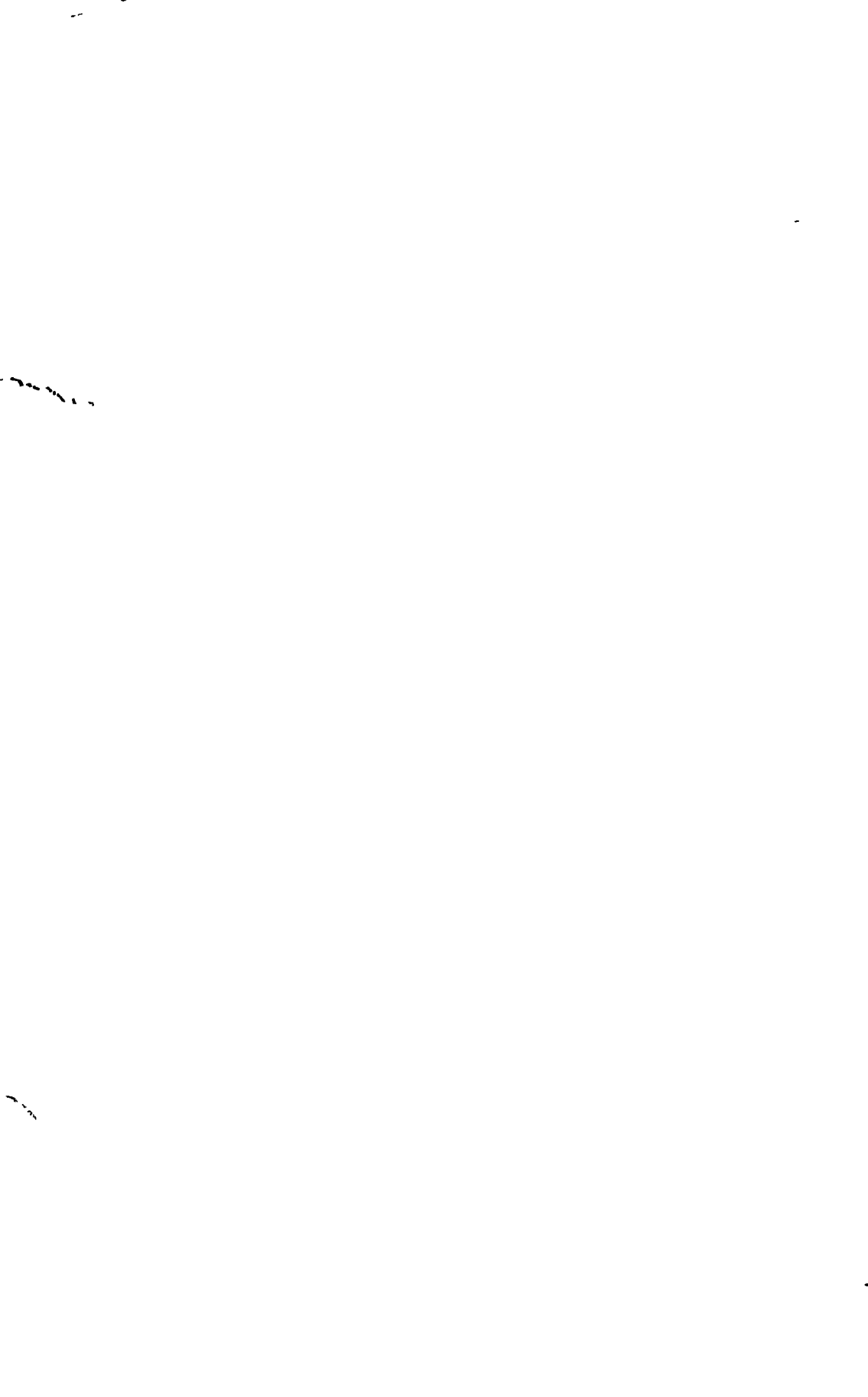
में हो रहा है, और भविष्य वैसा ही होगा जैसा कि उसे करोड़ो नवयुवक और नवयुवतियां बनाना चाहेगी। आज वातावरण में संकीर्णता, असहिष्णुता और अचेतनता है, साथ ही सजगता की कमी है, जिससे मै जरा भयभीत होता हूं। हम अभी एक विश्वव्यापी महायुद्ध से गुजरे है। वह युद्ध शान्ति और स्वतंत्रता नही लाया, फिर भी उससे हमें बहुत से सबक सीखने चाहिए। इस युद्ध के द्वारा फासिस्ट और नात्सी कहलाने वाले मतो का पतन हुआ, ये दोनो ही मत संकीर्ण और उद्धत थे, और घृणा तथा हिंसा पर आधारित थे। मैंने उन देशो में, जहां ये उत्पन्न हुए और अन्यत्र भी इनका विकास देखा। उनके कारण वहां के लोगो को कुछ काल के लिए प्रतिष्ठा मिली, लेकिन उन्होने आत्मा का हनन किया, और उन्होंने सभी मूल्यो और विचार तथा आचरण के मापदडो को नष्ट कर दिया। अन्त में उन्होने उन राष्ट्रो का ही सत्यानाश कर दिया जिन्हे कि उन्होने उठाना चाहा था।

मै उसी से मिलती-जुलती कुछ चीज आज भारत में पनपते देखता हूं। यह कभी राष्ट्रवाद के नाम पर, कभी धर्म और संस्कृति के नाम पर अपने को प्रकट करती है, लेकिन यह असल में राष्ट्रवाद, सच्ची नैतिकता और सच्ची संस्कृति की विरोधी है। यदि इसमें कोई सदेह था, तो पिछले कुछ महीनो ने हमें वास्तविक चित्र दिखा दिया है। कुछ सालो से हमें घृणा, हिंसा और जनता के एक वर्ग की सकीर्ण साम्प्रदायिकता की नीति का विरोध करना पडा है। अब वह वर्ग भारत के कुछ भागो को अलग करके एक राज्य बनाने में सफल हुआ है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता, भारतीय स्वतंत्रता के लिए इतनी बाधा और खतरा रही है, अब वह अपने को एक राष्ट्र कहती है। यह खास भारत में आज एक जीवित शक्ति नही रह गयी, क्योकि यह अब दूसरे हिस्सो में केन्द्रित है। लेकिन इसका परिणाम समाज के और वर्गों के लोगो को गिरानेवाला हुआ है, जो उसकी नकल करना चाहते है बल्कि उससे आगे बढ जाना चाहते है। हमें भारत मे अब इस प्रतिक्रिया का मुकाबला करना है, क्योकि साम्प्रदायिक राष्ट्र के पक्ष में स्वर उठाया जा रहा है, शब्द जो भी व्यवहार मे लाए जाते हो। और न केवल एक साम्प्रदायिक राष्ट्र की मांग की जाती है, बल्कि राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में वही सकीर्ण और वही गला घोटने वाली मांग की जा रही है।

हम लौट कर भारत के लम्बे इतिहास को देखें तो हम देखते है कि हमारे पूर्वजों ने जब कभी ससार को स्पष्ट और भयहीन नेत्रो से देखा और अपने मन की खिड़कियो को आदान-प्रदान के लिए खुली रक्खा, तब उन्होंने अद्भुत उन्नति की। और बाद के कालो में, जब वह अपने दृष्टिकोण में सकीर्ण बने, और बाहरी प्रभावों से झिझके, भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक अधोगति हुई। हमारा उत्तर धिकार कितना गौरवशाली है, यद्यपि हमने उसका अक्सर दुरुपयोग किया

है। सभी विपदाओ और मुसीबतो के बावजूद भारत एक जीवित राष्ट्र रहा है और है। निर्माणकारी और रचनात्मक उद्योगो के क्षेत्र में यह जीवनी-शक्ति एशियायी ससार के अनेक हिस्सो में और अन्यत्र फैली, और उसकी शानदार विजय हुई। यह विजय तलवार की विजय उतनी नही थी जितनी कि मन और हृदय की थी, जो आरोग्य प्रदान करती है और जो उस समय भी कायम रहती है जब कि तलवार के धनी लोग और उनके कारनामे भुला दिए जाते है। लेकिन यही जीवनी-शक्ति, अगर उसका उचित और रचनात्मक निर्देशन नही होता तो पलट कर हमारा विनाश कर सकती है, और हमें नीचे गिरा सकती है।

अपने जीवन के स्वल्प काल मे भी हमने इन दो शक्तियों को भारत मे और सारे ससार मे अपना काम करते देखा है—निर्माण करने वाले और रचनात्मक उद्योग की शक्तियो को और विनाश की शक्तियो को। इन में से अन्त में किसकी विजय होगी? और हम किसके पक्ष में खड़े है? यह हम में से सब के लिए, और विशेषकर उनके लिए, जिनमे से राष्ट्र के नेता उत्पन्न होगे, और जिन पर भविष्य का भार पडेगा, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम अनिश्चित रहकर इस प्रश्न का सामना करने से हरगिज इंकार नही कर सकते। जब स्पष्ट विचार और प्रभाव उत्पन्न करने वाले कार्य की आवश्यकता हो उस समय हम अपने मन को घृणा और उद्वेग से उन्मत्त नही होने दे सकते।

किस प्रकार के भारत और किस प्रकार के ससार के लिए हम उद्योग कर रहे है? क्या घृणा और हिंसा और भय और साम्प्रदायिकता और सकीर्ण प्रान्तीयता हमारे भविष्य का निर्माण करेगी? कदापि नही, यदि हममें और हमारे कथनो में कुछ भी सचाई है। यहाँ, इस इलाहाबाद नगर में, जो मुझे केवल अपने निकट सम्पर्को के कारण ही नही, बल्कि भारत के इतिहास मे अपना महत्त्व रखने के कारण भी प्रिय रहा है, मेरा बचपन और मेरी युवावस्था, भारत के भविष्य के स्वप्न देखने और उसकी कल्पना करने में बीती है। क्या उन स्वप्नो में कुछ वास्तविक तत्त्व भी रहा है, या वह केवल एक ज्वर-ग्रस्त मस्तिष्क के कल्पनाचित्र मात्र रहे है? उन स्वप्नो का कुछ थोडा हिस्सा सत्य उतरा है, लेकिन जिस रूप में मैंने कल्पना की थी उस रूप में नही, और अभी बहुत अधिक का सत्य होना शेष रह जाता है। जो कुछ हासिल हुआ है उस पर विजय का अनुभव तो क्या हो—हमारे आगे एक सूनापन है और हमारे चारो ओर जो कुछ है, वह वेदनामय है, और हमे करोड़ो नेत्रो के आंसू पोंछने है।

एक विश्वविद्यालय का अस्तित्व मानवता, सहिष्णुता, बुद्धि, प्रगति, विचारो के साहसपूर्ण अभियान और सत्य की खोज के लिए होता है। उसका अस्तित्व इसलिए

है कि मानव जाति और भी ऊंचे उद्देश्यो की सिद्धि के लिए आगे बढ़े। यदि विश्व-विद्यालय अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करें, तो राष्ट्र और जनता का कल्याण होता है। लेकिन यदि विद्या का मन्दिर ही सकीर्ण कट्टरता और क्षुद्र उद्देश्यो का घर बन जाता है, तो राष्ट्र कैसे उन्नति करेगा और जनता कैसे ऊंचे उठेगी ?

इसलिये हमारे विश्वविद्यालयो और शिक्षा संस्थाओ और उनके संचालकों पर एक महान उत्तरदायित्व है। उन्हे अपनी दीपशिखा को जलाये रहना चाहिये और सही मार्ग से विचलित न होना चाहिये, चाहे आवेग जनता को आंदोलित कर रहा हो और उनमें से बहुतो को—जिनका कर्तव्य दूसरो के लिये मिसालें पेश करना है—अंधा बना रहा हो। हम टेढ़ेपन से या इस आशा से कि इसका अच्छा नतीजा निकल सकता है, बुराई के साथ खेल करते हुए, अपने उद्देश्य पर न पहुचेंगे। सही उद्देश्य की गलत तरीको से कभी पूरी सिद्धि नही होती।

हमें अपने राष्ट्रीय ध्येय के संबध में स्पष्ट हो जाना चाहिये। हमारा ध्येय एक शक्तिशाली, स्वतन्त्र और जन-सत्तात्मक भारत के निर्माण का है, जहा प्रत्येक नागरिक को बराबर का स्थान प्राप्त हो, और विकास और सेवा के पूरे अवसर हो, जहा आजकल प्रचलित धन और हैसियत की विषमताए न रह गई हो, जहा हमारी मार्मिक प्रेरणाएं रचनात्मक और सहकारितापूर्ण उद्योग की तरफ केंद्रित हो। ऐसे भारत में साम्प्रदायिकता, पार्थक्य, अलहदगी, अस्पृश्यता, कट्टरता और मनुष्य द्वारा मनुष्य से अनुचित लाभ उठाने के लिये कोई स्थान नही है, और यद्यपि धर्म के लिये स्वतंत्रता है फिर भी उसे राष्ट्र के जीवन के राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं से हस्तक्षेप न करने दिया जायगा। यदि ऐसा है तो जहा तक हमार राजनैतिक जीवन का सबध है,—यह सब हिन्दू और मुसलमान और ईसाई और सिख के टटे दूर होने चाहिये और हमें एक सयुक्त लेकिन मिला-जुला राष्ट्र बनाना चाहिये जहा व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दोनो प्रकार की स्वतंत्रताएं सुरक्षित हो।

हम लोग कठिन परीक्षाओ से गुजरे हैं। हम उन्हे पार कर सके हैं, लेकिन इसका भीषण मूल्य चुकाना पड़ा है और पीड़ित मस्तिष्को और अवरुद्ध आत्माओ के रूप मे बहुत समय तक इसके परिणाम हमारा पीछा करेंगे। हमारी परीक्षाए समाप्त नही हुई। आइये हम अपने को इनके लिये स्वतन्त्र और संयमी पुरुषो और स्त्रियो की भांति, हृदय और उद्देश्य की दृढता के साथ तैयार करें, जिसमे कि हम सही मार्ग से न डिगें और न अपने आदर्शों और उद्देश्यो को भूलें। हमें घावो को भरने का काम आरम्भ करना है और हमें निर्माण और रचना ही करनी है। भारत के विक्षत शरीर और आत्मा हमारा आवाहन कर रहे है कि हम अपने को इस महान कार्य के लिये समर्पित करें। हम इस कार्य और भारत के योग्य सिद्ध हो, यह मेरी कामना है।
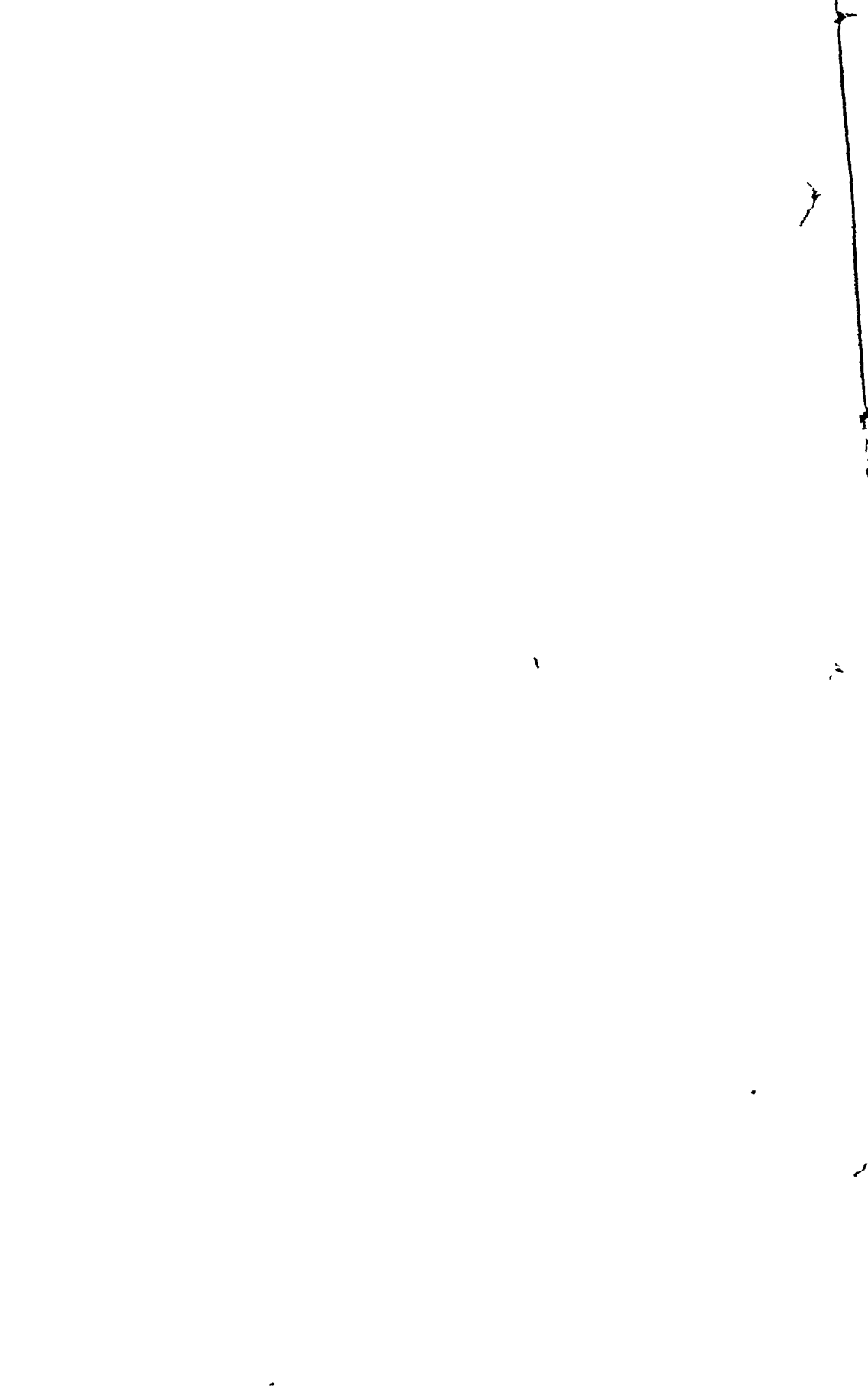
शिक्षा मानव-मन की मुक्ति के लिये है

मैं अलीगढ़ और इस विश्वविद्यालय में बहुत अरसे के बाद फिर आया हूं। हम लोगो के बीच न केवल समय का अतर रहा है, बल्कि भाव और दृष्टिकोण का भी। मैं नहीं जानता कि आज आप और वस्तुत हममें से बहुत से लोग कहा खड़े है, क्योकि हम लोग विक्षोभो और हृदयविदारक अवस्थाओ से गुजरे है, जिन्होने निःसंदेह हममें से बहुतो में शंकाएं उत्पन्न की है और हमारा मनोभग हुआ है। वर्तमान अनिश्चितताओं से पूर्ण है, भविष्य तो और भी ढंका हुआ है और उसको भेद कर देख सकना कठिन है। फिर भी हमें वर्तमान का सामना करना है और भविष्य के निर्माण का उद्योग करना है। हमें—हममें से हर एक को—यह देखना है कि हम कहाँ खड़े है और किस पक्ष को लेकर खड़े है। अगर भविष्य मे विश्वास के रूप में एक दृढ लगर हमारे पास नहीं तो वर्तमान में हम भटक जायेंगे, और स्वय जीवन के सम्मुख कोई प्रयत्न करने योग्य ध्येय न रह जायगा।

मैंने आपके वाइस चांसलर का आमत्रण बडी प्रसन्नता से स्वीकार किया है, क्योकि मै आप सबसे मिलना चाहता था और आपके मन की थोड़ी-बहुत थाह लेना चाहता था, और आपको अपने मन की एक झलक देना चाहता था। हमें एक दूसरे को समझना है, और अगर हम हर एक बात के बारे में सहमत नही हो सकते तो कम-से-कम हमें अलग-अलग रायें रखने के विषय में सहमत होना है और यह जानना है कि हम किन बातो में सहमत है और किन बातो में हमारा मतभेद है।

भारत के हर एक संवेदनशील आदमी के लिये पिछले छ. मास दुःख और वेदना के रहे है, और जो इन सब से बुरी बात है—निराशा के रहे है। जो लोग अवस्था में बड़े और अनुभवी है, उनके लिये यह स्थिति काफी बुरी रही है, लेकिन मुझे कभी-कभी कुतूहल हुआ है उन नवयुवकों पर, जिन्होने अपने जीवन की देहली पर ही घोर संकट और दुर्घटना का प्रत्यक्ष अनुभव किया है, इन सब का क्या असर हुआ है। इसमें सदेह नही कि वे इसे पार कर ले जायेंगे, क्योकि युवा-

---

अलीगढ (उ० प्र०) में मुस्लिम युनिवर्सिटी के वार्षिक समावर्तन के अवसर पर २४ जनवरी, १९४९ को दिया गया भाषण।

वस्था लचीली होती है; लेकिन यह भी हो सकता है कि वे अपने जीवनों के अंतिम दिनों तक इसका निशान लिये रहे। हममें सही विचार और काम करने की काफी बुद्धि और शक्ति हो तो शायद अब भी हम उस निशान को मिटाने में सफल हो जायँ।

जहाँ तक मेरी बात है, मैं कहना चाहता हूँ कि बावजूद सब बातों के मुझे भारत के भविष्य में दृढ विश्वास है। वास्तव मे अगर मुझमें यह न होता, तो मेरे लिये कारगर ढंग से काम करना असभव हो जाता। यद्यपि हाल की घटनाओ ने मेरे बहुत से पुराने स्वप्न चूर चूर कर दिये है, फिर भी बुनियादी ध्येय बना हुआ है और उसे बदलने का मैं कोई कारण नही देखता। वह ध्येय ऊँचे आदर्शो और उन्नत प्रयत्नों वाले एक स्वतंत्र भारत का निर्माण करना है जहाँ कि अनेक और विविध प्रकार की विचार और संस्कृति की धाराएं आपस मे मिलकर उसके निवासियों की उन्नति और उत्कर्ष की एक बड़ी नदी तैयार करे।

मुझे भारत पर गर्व है, न केवल उसकी प्राचीन शानदार विरासत के कारण बल्कि इस कारण भी कि उसमें, अपने मन और आत्मा के द्वारो और खिड़कियो को दूर देशो से आने वाली ताजी और शक्तिदायिनी हवाओ के प्रति खुला रखने की आश्चर्यजनक सामर्थ्य है। भारत की शक्ति दोहरी रही है : एक तो उसकी अपनी आंतरिक संस्कृति है जो कि युगो मे पुष्पित हुई है, दूसरे, और स्रोतों से शिक्षा प्राप्त करके उसे अपना बनाने की सामर्थ्य है। उसकी अपनी धारा इतनी प्रबल है कि वह अन्य धाराओ में डूब नही सकती, और उसमें इतनी बुद्धिमत्ता है कि वह अपने को उनसे अलग अलग नही होने देती, इसलिये भारत के सच्चे इतिहास मे निरंतर समन्वय दिखाई देता है, और जो अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्होने इस विभिन्न परन्तु मूलतः संयुक्त संस्कृति के विकास पर विशेष असर नही डाला है।

मैंने कहा है कि मुझे भारत की विरासत पर गर्व है, और अपने पूर्वजो पर जिन्होने भारत को बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रधानता दिलाई। आप इस विषय में क्या अनुभव करते है? क्या आप यह अनुभव करते है कि आप भी इसमें साझीदार हैं और इसके उत्तराधिकारी हैं और आपको भी इसी चीज का गर्व है जो समान रूप से आपकी और हमारी है? या आप अपने को गैर अनुभव करते है, और इसे बिना समझे और बिना उस पुलक का अनुभव किये हुए, जो उस अनुभव से उत्पन्न होती है कि हम एक महान खजाने के ट्रस्टी और उत्तराधिकारी हैं, उससे गुजर जाते है? मै यह प्रश्न इसलिये पूछता हूँ कि हाल के वर्षों में बहुत-सी शक्तियाँ काम-करती रही है, जिन्होने लोगो के मन को अनुचित मार्गों में

खीचा है और इतिहास के क्रम को उलटने का प्रयत्न किया है। आप मुसलमान हैं और मैं एक हिन्दू हूं। हम भिन्न भिन्न धर्मों का अनुसरण करें यहां तक कि किसी धर्म का अनुसरण न करें, लेकिन इससे उस सांस्कृतिक विरासत में, जो आपकी भी है और मेरी भी, कोई अन्तर नही आता। अतीत हमें एक साथ पकड़े हुए है: फिर वर्तमान या भविष्य हमारे मन को क्यो विलग करे?

राजनैतिक परिवर्तन कुछ नतीजे उत्पन्न करते हैं, लेकिन मुख्य परिवर्तन तो वे हैं जो राष्ट्र की आत्मा और दृष्टिकोण में होते हैं। जिस बात ने मुझे इन पिछले महीनों और वर्षों में बहुत चिन्तित किया है, वह राजनैतिक परिवर्तन नही है, बल्कि क्रमश. आत्मा में होने वाले उस परिवर्तन की अनुभूति है, जिसने कि हमारे बीच बहुत बड़ी रुकावटें खड़ी कर दी हैं। भारत की आत्मा को बदलने का प्रयत्न एक ऐतिहासिक क्रम को, जिससे हम युगों से गुजर रहे थे, उलटना है, और चूंकि हमने इतिहास की धारा को पलटने की कोशिश की, इसलिये हम पर आफतों का पहाड़ टूटा। हम सहज में भूगोल या उन शक्तिशाली प्रवृत्तियों से, जो इतिहास का निर्माण करती हैं, खिलवाड़ नही कर सकते। और यदि हम घृणा और हिंसा को अपने कार्यों का आधार बनाते हैं, तो यह उससे भी कही बुरी बात है।

मैं समझता हूँ पाकिस्तान का जन्म कुछ अस्वाभाविक ढंग से हुआ है। फिर भी वह बहुत से लोगो की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व करता है। मेरा विश्वास है कि विकास का यह एक उलटा क्रम है, लेकिन हमने इसे ईमानदारी से स्वीकार किया है। मैं चाहता हूँ कि आप हमारे वर्तमान विचारो को साफ-साफ समझ लें। हम पर यह आरोप लगाया गया है कि हम पाकिस्तान को कुचलना और उसका गला घोटना चाहते है, और उसे भारत से मिलने के लिये मजबूर करना चाहते हैं। यह आरोप, दूसरे अनेक आरोपो की तरह भय और हमारे रुख की नितान्त नासमझी पर आधारित है। मेरा विश्वास है कि विभिन्न कारणो से यह अनिवार्य है कि भारत और पाकिस्तान एक दूसरे के करीब आवें, नही तो उनमें आपस में संघर्ष उत्पन्न होगा। कोई मध्यम मार्ग नही है, इसलिये कि हम एक दूसरे को बहुत समय से जानने के कारण एक दूसरे के प्रति उदासीन पड़ोसी की तरह नही रह सकते। वास्तव में मुझे विश्वास तो यह है कि संसार के वर्तमान प्रसंग में भारत के और बहुत से पड़ोसी देशो से निकट संपर्क बढ़ेंगे। लेकिन इन सब का यह अर्थ नही कि पाकिस्तान को मजबूर करने या उसका गला घोटने का कोई विचार है। अगर हम पाकिस्तान को तोड़ना चाहते होते, तो हम विभाजन को स्वीकार ही क्यों करते? उस समय इसका रोकना ज्यादा आसान था, बनिस्बत अब के, जब कि इतना सब कुछ हो चुका है। इतिहास में लौटने का सवाल नहीं होता। वास्तव में यह भारत की भलाई की ही बात होगी कि पाकिस्तान एक सुरक्षित और समृद्ध राष्ट्र

बने, और हम उससे नजदीकी दोस्ती बढ़ा सके। यदि आज किसी प्रकार भारत और पाकिस्तान के पुर्नमिलन का प्रस्ताव मुझ से किया जाय तो मै स्पष्ट कारणो से इसे अस्वीकार कर दूगा। मै पाकिस्तान की महान समस्याओ का बोझ नही उठाना चाहता। हमारी अपनी ही समस्याए क्या कम है ? निकट का कोई भी संपर्क, साधारण क्रम में और मित्रता की भावना द्वारा ही उत्पन्न हो सकता है, जिससे कि पाकिस्तान एक राज्य के रूप में समाप्त नही होता बल्कि बराबरी का साझीदार बनाकर ऐसे विशाल संघ का, जिसमे और देश भी सम्मिलित हो, एक अग बनता है।

मैंने पाकिस्तान के विषय मे इसलिये कहा है कि यह विषय आप लोगो के मन में होगा और आप उसके प्रति हमारा रुख जानना चाहेगे। आपके मन इस समय कदाचित अनिश्चित अवस्था में हो, और आप शायद यह न जानते होगे कि किधर देखे और क्या करे। हममें से हर एक को कुछ विचारो के प्रति बुनियादी निष्ठा के विषय मे स्पष्ट होना चाहिये। क्या हमारा विश्वास ए क ऐसे राष्ट्रीय शासन में है, जिसके अन्तर्गत सभी धर्म और सभी प्रकार के मत हो और जो मूल में एक असाम्प्रदायिक राष्ट्र हो, या हमारा विश्वास एक धार्मिक या धर्म–सत्तात्मक राष्ट्र मे है जो कि दूसरे धर्म वालों को बिरादरी से बाहर समझता है ? यह कुछ बेतुका-सा सवाल है, क्योकि धार्मिक या धर्म-सत्तामक राष्ट्र का विचार संसार ने सदियो पहले त्याग दिया था, और आधुनिक मनुष्य के मस्तिष्क मे उसके लिये कोई जगह नही। फिर भी, भारत में आज यह प्रश्न करना पड़ता है, क्योकि हममे से बहुतो ने कूद कर एक पुराने युग में पहुँच जाने की कोशिश की है। हमारे व्यक्तिगत उत्तर जो भी हो, हमें सदेह नही कि उन विचारो पर लौटना जिन्हें कि दुनिया पीछे छोड़ चुकी है, और जो आधुनिक विचारो से कोई भी मेल नही रखते, सभव नही। जहाँ तक भारत का संबंध है मै कुछ निश्चय के साथ कह सकता हूँ। हम उस असाम्प्रदायिक और राष्ट्रीय लीक पर चलेंगे जो अन्तर्राष्ट्रीयता-अभिमुखी महान प्रवृत्तियो के अनुकूल पड़ती हैं। इस समय विचारों में जो भी उलझाव हो, भविष्य में भारत अतीत की तरह ऐसा देश होगा जिसमें कि बहुत से समान रूप से प्रतिष्ठित धर्मो का अस्तित्व हो, लेकिन जिसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण एक हो, और मै आशा करता हूँ कि यह राष्ट्रीयता संकीर्ण प्रकार की न होगी, जो कि अपने ही आवरण के भीतर रहना चाहती है, बल्कि एक सहिष्णु और रचनात्मक राष्ट्रीयता होगी, जो अपनी और अपनी जनता की प्रतिभा में विश्वास रखते हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना में पूरा भाग लेगी। हमारा एकमात्र अंतिम उद्देश्य जो हो सकता है वह 'एक ससार' का है। यह आज एक दूर की बात मालूम पड़ती है, जब कि दलो में विरोध चल रहे हैं, और तीसरे लोक व्यापी युद्ध की तैयारियाँ हो रही है, और उसके नारे बुलंद हो रहे है; फिर भी, इन नारो के बावजूद, यही उद्देश्य है, जिसे कि हम अपने सामने रख सकते है, क्योकि संसार व्यापी सहयोग न हुआ तो संसार व्यापी तबाही होकर रहेगी।

हमें ऐसा उदार दृष्टिकोण बनाना चाहिये और दूसरों की संकीर्णताओं से प्रभावित होकर अपने भावों तथा दृष्टिकोण में संकीर्णता नहीं लानी चाहिये। जिसे साम्प्रदायिकता कहते हैं, उसे हम इस देश में काफी देख चुके, और हमने उनके कड़ुए और जहरीले फल को भी चखा। समय आ गया है कि हम उनका अंत करें। जहाँ तक मेरा संबंध है मैं इस साम्प्रदायिक भावना को कहीं भी प्रवेश पाते नहीं देखना चाहता, और शिक्षा संस्थाओं में तो हरगिज नहीं। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के मन को मुक्त करना है न कि उसे बांधे हुए चौखटों में बन्द करना है। मैं इस विश्वविद्यालय को मुस्लिम युनिवर्सिटी के नाम से पुकारा जाना पसन्द नहीं करता, उसी तरह जिस तरह कि मैं बनारस युनिवर्सिटी का हिन्दू युनि-वर्सिटी कहलाना नहीं पसन्द करता। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई विश्वविद्यालय विशिष्ट सांस्कृतिक विषयों और अध्ययनों का प्रबंध न करे। मैं समझता हूँ कि यह उचित है कि यह विश्वविद्यालय इस्लामी विचार-धारा तथा संस्कृति के कुछ पह-लुओं के अध्ययन पर खास जोर दे।

मैं चाहता हूँ कि आप इन समस्याओं पर विचार करें और स्वतंत्र निर्णय पर पहुँचें। इन निष्कर्षों को आप पर हठात लादा नहीं जा सकता, यह दूसरी बात है कि कुछ हद तक इनके संबंध में घटनाओं की ऐसी प्रेरणा हो कि उसकी उपेक्षा न हो सके। यह न समझिये कि आप यहां परदेसी के रूप में हैं, क्योंकि आप भारत के उसी प्रकार रक्त और मांस हैं जिस तरह कि और लोग हैं, और भारत को जो भी पेश करना है, उसमें भाग लेने का आपको पूरा हक है। लेकिन जो हकदार बनना चाहते हैं, उन्हें जिम्मेदारियों में भी हाथ बँटाना चाहिये। वास्तव में यदि कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ स्वीकार कर ली जायँ तो अधिकार तो उन्हीं से पैदा होते हैं। स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिकों की भाँति इस महान देश के निर्माण में और दूसरों की भाँति, जो भी जीत या हार हमारे सामने आवे, उनमें भाग लेने के लिये मैं आपको आमंत्रित करता हूँ। वर्तमान काल के दुःख और उसकी विपत्तियां दूर होंगी। भविष्य ही विचारणीय है, विशेषकर नवयुवकों के लिये, और वह भविष्य आपका आवाहन कर रहा है। इस पुकार का आप क्या उत्तर देंगे?
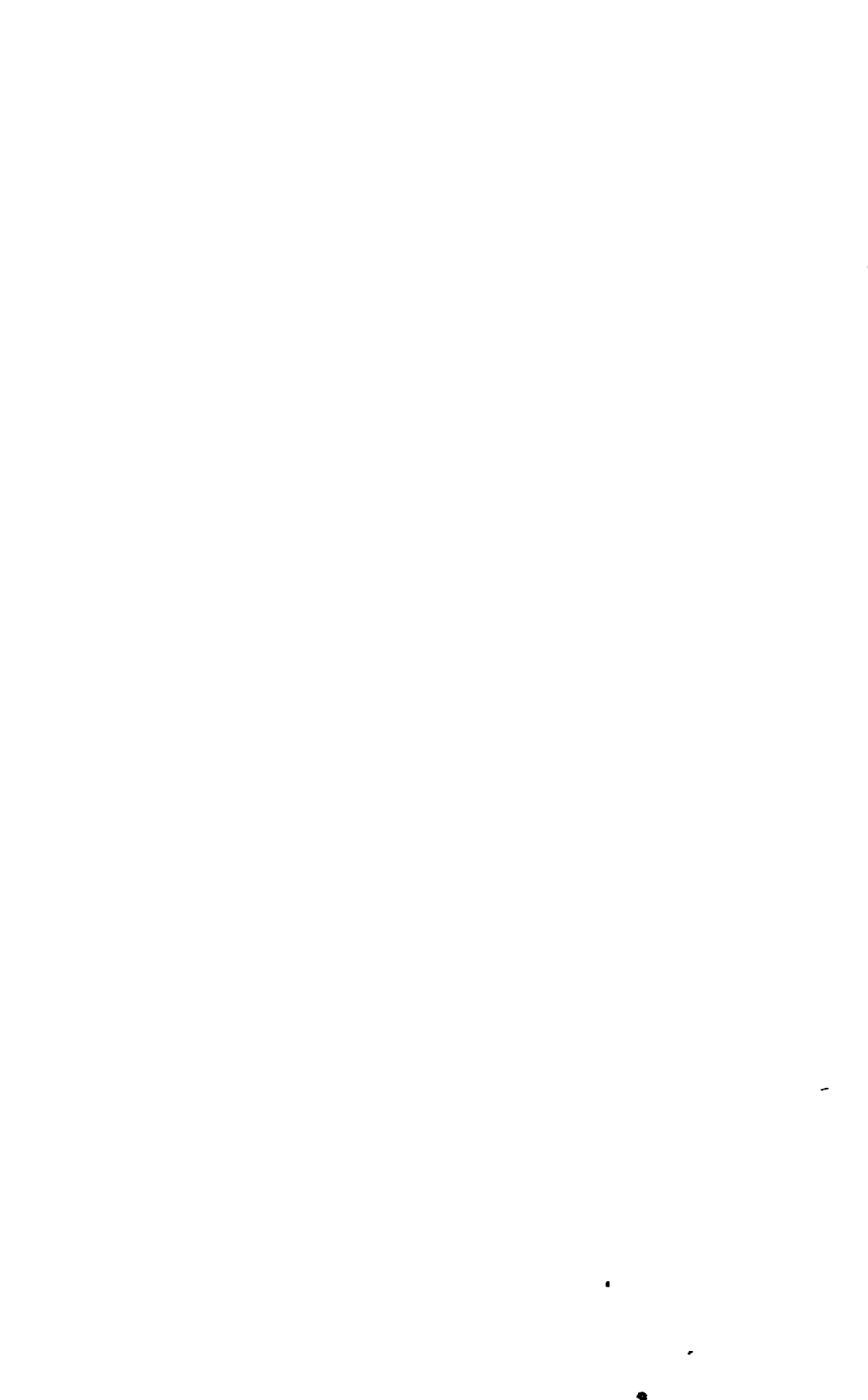
काम का समय

तत्रभवान्, श्री प्रधान मंत्री, कुलपति जी, विश्वविद्यालय के सदस्यो और मित्रो,

आज आपने बहुत से ओजस्वी भाषण सुने, और आपने बहुत से सम्मानित व्यक्तियो को देखा, और मैं नही जानता कि एक और भाषण सुनने पर विवश होना आप पर बोझ होगा या और कुछ। मुझे बताया गया कि कल आपने डा० राधाकृष्णन का एक अत्यन्त वाग्मितापूर्ण भाषण सुना। दुर्भाग्य से मैं मौजूद न था। और शायद बहुत से भाषणो का और बहुत सी भली सलाह का दिया जाना देनेवाले अथवा सुननेवाले के लिये बहुत अच्छा न हो। फिर भी, मुझे एक कार्य-विशेष और कर्तव्य को निभाना है और मैं अनुमान करता हूं कि आपका काम और कर्तव्य इस समय जो मैं कहूँ उसे सुनना है।

मुझे आपको याने इस विश्वविद्यालय को, उस सम्मान के लिये धन्यवाद देना है जो आपने मुझे दिया है। सच तो यह है कि अपने देशवासियो से मुझे इतना सम्मान और प्रेम मिला है कि उसमें थोडी सी वृद्धि होने से विशेष अन्तर नही आता। आपने मुझे इतना प्रेम प्रदान किया है कि मुझे संदेह है कि किसी दूसरे को कभी ऐसा सौभाग्य मिला हो। और जहाँ इस बात ने स्वभावतः मेरे हृदय मे उत्साह उत्पन्न किया है और मुझ पर बहुत असर डाला है, इसने मुझे उलझन में भी डाला है, और कभी कभी कुछ भयभीत किया है। इसलिये यद्यपि लखनऊ युनिवर्सिटी द्वारा 'डाक्टर' की पदवी का दान—यदि मैं ऐसा कह सकूं—मुझ में कोई विशेष अन्तर नही ले आता, फिर भी लखनऊ से, इस विश्वविद्यालय ने और मेरे प्रिय मित्र और साथी, श्री कुलपति से निमंत्रण पाना मेरे लिये विशेष प्रिय रहा है, और मैंने इसका आदर किया और मेरे दिल में गर्मी आई, और मैंने यहाँ आना चाहा, और मैं यहाँ आया। क्योकि और और जगहो में और कामो में चाहे मैं जितना फँसा होऊँ, मै उन दिनो को—शायद मेरे सब से क्रियाशील दिनो को—नही भूल सका हूं, जो मैंने लखनऊ या इलाहाबाद के आस पास या इस प्रांत के और हिस्सो में बिताये है। मेरे काम के, सरगर्मियो के, और मजबूरी की बेकारी के बहुत से दिन लखनऊ और इलाहाबाद में बीते है। इसलिये नई दिल्ली में रहते हुए उन पुरानी जगहो में, जिनका बीते दिनो से सबध है, पहुँचने की घर पहुँचने जैसी आतुरता होती है। और मैं यहाँ कभी-कभी, बहुत कम आता हूँ और पुरानी मूरतें

लखनऊ विश्वविद्यालय के विशेष (रजत जयन्ती) दीक्षांत समारोह पर लखनऊ में, २८ जनवरी, १९४९ को दिया गया अभिभाषण।

देखता हूँ और फिर मुझे उन पुराने दिनों की याद आती है। और मैं देखता हूँ कि उन पुरानी सूरतो में कुछ तब्दीलियाँ आ गई है, और तव मुझे खयाल आता है कि मुझमें भी वहुत तब्दीली आई है, इसलिये यहाँ मित्रो के वीच आने में मुझे प्रसन्नता है, और मै आपको, न केवल इस अतिरिक्त सम्मान के लिये जो आपने मुझे दिया है, धन्यवाद देता हूँ वल्कि इतने वीते हुए वर्षो में जो सव सम्मान और प्रेम मुझे आपने प्रदान किया है उसके लिये धन्यवाद देता हूँ।

मै सोचता रहा हूँ कि मै आप से किस विषय पर वोलूँ। मै आपको क्या सलाह दे सकता हूँ? लेकिन आप इसे चाहे सलाह समझें या और कुछ, मै आपसे उस वात पर कुछ कहना अवश्य चाहता हूँ, जो मेरे मन में है और जो मुझे अकसर परेशान करती है, और जिसके सम्वन्ध में मै समझता हूँ आप सवको परेशान होना चाहिए, क्योकि हम कठिनाई और हलचल के जमाने से गुजर रहे है। और हममें से हर एक का यह कर्त्तव्य है, विह इस जिन्दगी में चाहे जिस जगह पर हो, और उसका चाहे जो धधा हो, कि वह इन वड़ी समस्याओ के विषय में, जिनका हमें सामना करना है, विचार करे और, उनके प्रति अपना कर्तव्य सोचे, और यह सोचे कि उसे क्या करना है, और क्या नही करना है। जव मै भारत की इन वड़ी समस्याओ को देखता हूँ, जव मै उस अपार प्रेम और आस्था को देखता हूँ जो भारत के लोगो ने मेरे प्रति दिखाई है, तो मेरा मन अपनी अनुपयुक्तता की भावना से भर जाता है। कोई भी आदमी ऐसी समस्याओं को निवटाने के लिए कैसे पर्याप्त हो सकता है? समस्याये तो निवटानी ही है, उन्हें एक न निवटाएगा तो दूसरा निवटाएगा, लेकिन कोई भी व्यक्ति इतने विश्वास और प्रेम का पात्र कैसे हो सकता है। मै यह अनुभव करता हूँ। लेकिन एक वात के वारे में मेरा विश्वास कभी डिगा नही है, वह है भारत की उपयुक्तता के विषय मे। और चूँकि मुझ में यह विश्वास है, (मै व्यक्तिगत और निजी रूप से उपयुक्त होऊं या नही; मेरी समझ में इसका महत्व नही, जव तक कि मै अपनी सारी शक्ति अपने कार्य और कर्त्तव्य में लगा रहा हूँ, मै अपने भरसक इतना ही कर सकता हूँ, और इतना ही आप भी कर सकते है)—इसलिए उस विश्वास और यकीन के साथ मै चला जा रहा हूँ, यद्यपि कभी कभी आत्मा थकी हुई सी जान पड़ती है, और कभी कभी यह खेद होता है कि हमारे वड़े-वड़े सपने वैसे नही उतर रहे है जैसा कि हम चाहते थे कि वे उतरे। किसी प्रकार हो यह रहा है कि जव काम करना है, जव ठोस काम, महान कार्य हमें पुकार रहा है, उस समय हमारा ध्यान तुच्छ झगड़ो के कारण और होने वाली तरह-तरह की गलत वातो के कारण, दूसरी तरफ खिचता है। जवकि नई पीढ़ी के लोग, जिनके कंधों पर कि भारत को, उसकी लंबी यात्रा में एक मंजिल आगे वढ़ाने का काम आने वाला है—

ऐसे ढंग से पेश आते हैं जिसे कि मैं समझ नहीं पाता, तो मुझे आश्चर्य होता है; और वे राजनीति में भाग लेने की और इधर-उधर की बातें करते हैं। मुझे ताज्जुब होता है कि जब सारा भारत काम की पुकार कर रहा है, श्रम की पुकार कर रहा है, निर्माण की पुकार कर रहा है, तब उनका ध्यान दूसरी ही दिशा में जा रहा है, वे दूसरी ही दिशा में काम कर रहे हैं और ऐसी भाषा बोलते हैं जो मेरी समझ में नही आती। तब मैं सोचता हूँ और आश्चर्य करता हूँ, "क्या मैं इस पीढ़ी से जुदा हो गया हूँ? मैं सही मार्ग पर हूँ या वे ठीक मार्ग पर हैं?" कौन गलती पर है और कौन सही रास्ते पर, यह मैं नहीं जानता। हो सकता है मैं गलत रास्ते पर हूँ। जो भी हो, मैं अपनी ही बुद्धि के अनुसार कार्य कर सकता हूँ।

यह ऐसा समय है जब काम करने की जरूरत है, जब परिश्रम करने की जरूरत है, शांति की जरूरत है, साथ मिलकर उद्योग करने की जरूरत है, जबकि राष्ट्र की सारी केंद्रित शक्तियो की राष्ट्र के महान कार्य मे जरूरत है। पर हम कर क्या रहे हैं? इसमें सन्देह नहीं कि हममें से बहुत-से लोग, इसी उद्देश्य से कार्य रहे हैं, और इस उद्देश्य में अपनी पूरी शक्ति लगा रहे हैं। इसमें संदेह नही कि राष्ट्र आगे बढ़ रहा है और तरक्की कर रहा है। फिर भी जब मैं अपने चारों तरफ देखता हूँ तो मैं काम का वातावरण नहीं देखता, काम की मनोवृत्ति नही पाता। केवल बात, केवल अलोचना, दूसरे की बुराई और नुक्ताचीनी, तुच्छ दलबंदियाँ और इसी तरह की बातें मिलती हैं। मैं इसे सभी वर्ग में, ऊपर, नीचे, नई पीढ़ी के और पुरानी पीढी के लोगो मे पाता हूँ। और तब जैसा मैंने कहा है, अपनी अवस्था का ध्यान करके मैं किंचित् विचलित होता हूँ, क्योंकि आखिर मुझे अब कुछ ही वर्ष जीना है और मेरी एकमात्र अभिलाषा यह है कि अपने अन्तिम दिनो तक अपनी पूरी शक्ति से काम करूँ और जब मेरा काम पूरा हो जाय तो मैं कूडा-करकट में फेंक दिया जाऊँ। जब मेरा काम पूरा हो जाय, तब मेरे बारे में आगे चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। काम और धंधे का तो महत्व है, पर जिनका काम समाप्त हो गया है और जो उठ गये हैं उनकी सोच का और उनके विषय में चिल्ल-पों मचाने का समय नहीं है। इसलिए सब से अच्छी तरह जो मैं कर सकता हूँ, अपना काम करता जाऊँगा।

लेकिन फिर उसके बाद क्या होगा? जबकि मैं और मेरे साथी जिन्होंने अच्छा हो या बुरा, भारतीय मंच पर, या इस प्रान्त में पिछले बीस, तीस या अधिक वर्षों तक काम किया है उठ जायेंगे तो निश्चय ही दूसरे लोग हमारी जगह लेंगे क्योंकि राष्ट्र तो चलता ही रहता है, चलता ही रहता है। राष्ट्र की मृत्यु नही होती। पुरुष और स्त्रियाँ आते और जाते हैं,

लेकिन राष्ट्र चलता ही रहता है। इसमें कुछ सनातन गुण है। और निश्चय ही भारत ऐसे राष्ट्रो मे है जिसके विचारो मे, विकास मे और ह्रास मे एक सनातनता है। इसलिए हम लोग चले जायँगे, और जिस बोझ को अच्छी तरह हो या बुरी तरह, जैसे भी हो, हमने वहन किया है, वह दूसरो के कधों पर पड़ेगा। वे कधे कौन-से है ? क्या मै. यहाँ आपकी प्रशसा करने आया हूँ या आपसे प्रशसा सुनने ? यह हम बार-बार कर चुके है—आपने मेरी प्रशसा की है और हो सकता है मैने आपकी प्रशंसा की हो। यह काफी नही, हमें अपना समय एक दूसरे की तारीफ में और गले मिलने में नही नष्ट करना चाहिए, जबकि आगे पूरा करने के लिए काम पड़ा हुआ हो। काम करने का समय होता है, और खेल-कूद का भी, उसी तरह जैसे कि हँसी का और आँसू बहाने का समय होता है। और आज राष्ट्र के लिए काम करने का समय है, क्योकि अगर मै कहूँ तो इस पीढ़ी को कठोर परिश्रम का दंड मिला है आप चाहे जितना हाथ पैर मारें, इससे बच नही सकते। हम सब को कठिन परिश्रम का दंड मिला है। लेकिन हम क्या काम करते है, और उसे किस भावना से करते है, इसमें बड़ा अन्तर आ जाता है। यदि यह अच्छा और परिश्रमपूर्ण काम है, तो यह एक ऊपर उठाने वाली, उल्लास और शक्ति देने वाली चीज है। आपको कितना कठिन परिश्रम करना पड़ता है, इसकी परवाह नही। लोग आकर मुझसे कहते है कि इतनी मेहनत न करो, तुम काफी सोते नही हो। इसकी क्या चिन्ता ? जिसकी चिन्ता होनी चाहिए वह बिल्कुल दूसरी ही चीज है। कठिन परिश्रम करने से कोई मरा नही है, बशर्ते कि वह अच्छे उद्देश्य के लिए काम कर रहा हो, और जी लगाकर काम कर रहा हो। इसके विपरीत लोग मानसिक थकावट और दूसरे कारणों से मर जाते है। इसलिए आपको और मुझे काम मे लगना है। पर किस तरह के काम मे ? काम के विषय मे आपकी कैसी कल्पना है ?

आज लोग यह कल्पना करते हुए जान पड़ते है कि प्रदर्शन के नाम पर इधर-उधर सड़को पर चक्कर लगाना काम है; या काम रोक देना-चाहे वह पुतलीघर में हो चाहे स्कूल में या और कही और उसे हड़ताल बताना, या कोई दूसरे ही प्रकार का प्रदर्शन काम है। अब हो सकता है कि इसका कही-कही उपयोग हो; निश्चय ही है। लेकिन मै यह आप से कहता हूँ, और पूरी सचाई से कहता हूँ कि जिस तरह की बाते आज भारत मे हो रही है, उससे बड़े अपराध की मैं कल्पना नही कर सकता। मै आपसे हँसी नही कर रहा हूँ। मुझे चन्द साल और काम. करना है और मै भारत को महान और शक्तिशाली और सपन्न राष्ट्र देखना चाहता हूँ, जो न केवल अपने निवासियो के प्रति बल्कि इस विस्तृत संसार के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करता हो। और जब मैं अपने नवयुवको को उस प्रकार का व्यवहार करते देखता हूँ, जैसा कि वे करते

है जब मैं नवयुवकों को और मिरगी की मरीज लड़कियों को गलत रास्ते पर देखता हूँ तो मैं आपसे कहता हूँ मुझे गुस्सा आता है। क्या वह सब काम जो हमने किया है बिल्कुल इस कारण नष्ट हो जायगा, कि कुछ पागल लोग इस तरह की फिजूल बातें करते हैं और बेहूदे तरीके से पेश आते हैं? यहाँ हो क्या रहा है? क्या आजादी और जन-सत्ता और स्वतन्त्रता के विषय में यही आपकी धारणा है? मैं इस मामले से आश्चर्य में हूँ। मैं आपसे इसके बारे में साफ-साफ कहना चाहता हूँ, इस तरीके पर हम अपने राष्ट्र का निर्माण न कर सकेंगे। हमारे देश के सामने जो कठिनाइयाँ हैं, क्या आपको उनकी कल्पना है? हमलोग जो सरकार के अंग हैं, गलतियाँ कर सकते हैं, बहुत-सी गलतियाँ कर सकते हैं। मुझे सरकार से अलग हो जाने में कोई संकोच न होगा और मुझे पूरा यकीन है कि यू० पी० सरकार के लोगो को भी अपने-अपने पदो से अलग हो जाने में संकोच न होगा। आप कल्पना करते हैं कि जिन लोगो को आप ने अधिकार के पदो पर बिठाया है, उन पर आपने कितना बोझ डाल दिया है? उनकी आलोचना आप जरूर कीजिए। लेकिन जो सबसे बडी सजा आप भारत में किसी व्यक्ति को दे सकते हैं, वह उसे किसी अधिकार के पद पर बिठाना है।

लेकिन समस्यायें क्या हैं? आपको उनका सामना करना है, उन पर विचार करना है, और न केवल भारत के संबध में बल्कि सारी दुनिया के संबंध में, और ऐसी दुनिया के संबंध में जिसका कुछ अजब रवैया है। जो दृश्य आज आप संसार में देख रहे हैं, वह आश्चर्य में डालनेवाला है। आप देखेंगे भावना की सुन्दर उठान को, अच्छे रचनात्मक उद्योगो को, साथ ही आप पायेंगे कि इस समय सारे संसार में कदाचित इतने सदाशय लोग हैं जितने कि संसार के इतिहास में पहले कभी नही थे। इसके साथ आप बुरी शक्तियो को भी देखेंगे, विच्छेदकारक शक्तियो को, लड़ाकू शक्तियो को, और तरह तरह के प्रभावो को काम करते पावेंगे। इन सब चीजो में आपस का संघर्ष है और मैं नही जानता, न आप ही जानते हैं कि इस संघर्ष का परिणाम क्या होगा। लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि जब तक हममें जीवन और शक्ति है, तब तक हम भारत में, और अन्यत्र बुरी शक्तियो का मुकाबला करेंगे। हम भली शक्तियो के पक्ष में हैं, उन शक्तियों के पक्ष में हैं जो मनुष्य की आत्मा को मुक्त करती हैं, उसका दमन नहीं करती।

समस्या है क्या? आप समस्या का जवाब अपनी वाद-विवाद सभाओं में और अपने प्रदर्शनों द्वारा देने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन क्या आपने समस्या को कोई रूप भी दिया है, प्रश्न का निर्माण भी किया है? बहुत से लोग बिना जाने हुए कि प्रश्न क्या है उसका उत्तर पाना चाहते हैं। यह एक अजीब-सी बात है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हम उत्तर की तलाश करते हैं और

विना जाने हुए कि प्रश्न क्या है—ससार के सामने जो प्रश्न या समस्या है उसे समझे विना उसका उत्तर देते है।

हाँ, तो संसार एक वड़ी जगह है। फिर भी आप भारत की समस्या को ससार की समस्या से अलग नही कर सकते। आप युक्त प्रान्त या लखनऊ की समस्या को इस वृहत्तर समस्या से अलग नही कर सकते। इसलिये आपको इस वड़ी समस्या की कम-से-कम एक अस्पष्ट कल्पना तो होनी ही चाहिए।

और यदि मानव इतिहास के इस महान परिवर्तन काल मे मुझे कुछ कहना है तो वह यह है कि यदि आप किसी समस्या को समझना चाहते है तो उसे आपको इतिहास के प्रसंग में समझना पड़ेगा, उसके अतीत पक्ष को जानना पड़ेगा, यह देखना पड़ेगा कि इसका विकास किस रूप मे हुआ है और इसकी जडे कहाँ है। यह आपके और मेरे लिए अच्छा न होगा कि हम इस समय चन्द नारे लगाएँ और उसे समस्या का ज्ञान या समस्या का हल समझे। नारे अच्छे हो सकते है क्योकि कभी-कभी वे एक विचार को थोड़े शव्दो मे केंद्रित कर देते है, नारो का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन किसी नारे को एक समस्या या किसी समस्या का हल समझ वैठना अपने को धोखा देना है।

मै आपसे कहना चाहूँगा कि ससार की समस्याओ, भारत की समस्याओं, और जिन समस्याओ का हमे सामना करना पड़ता है उनके विविध पहलुओ के वारे में मेरे क्या विचार है, क्योकि मुझे इन समस्याओ से वरावर निवटना पड़ता है यद्यपि मै अपनी अनुपयुक्तता जानता हूँ। फिर भी मुझे इनसे निवटना पड़ता है, इसलिए कि यह मेरा काम है। इसलिए मै उनके वारे मे वरावर विचार करता रहता हूँ, उनकी चिन्ता में रहता हूँ, उनके विषय में वातें करता रहता हूँ, विचार विनिमय करता रहता हूँ, और मेरा दिमाग उनके विविध पहलुओ से हैरान हो गया है, और यदि समय हो तो मै इन पहलुओ को आपसे वताना चाहता हूँ। मै उनके वारे में आपसे कहना चाहता हूँ, क्योकि मेरा विश्वास है कि इस देश में अगर आपको जनसत्तात्मक ढंग पर चलना है और इसके अतिरिक्त मुझे दूसरा तरीका मालूम नही, तो हमें एक दूसरे से अपनी कठिनाइयाँ वतानी होगी, हमें एक दूसरे को समझना होगा, अपने विचारो को एक दूसरे पर प्रकट करना होगा और अपनी आपत्तियाँ और कठिनाइयाँ एक दूसरे से जतानी होगी। इस लिए मै इन सव वातों को आपसे वताना चाहूँगा, लेकिन मेरी जिन्दगी वहुत छोटी है और मै यहाँ, वहाँ सव जगह नही पहुँच सकता। लेकिन मै कम से कम आपके सामने कुछ सकेत रखना चाहता हूँ।

इस समस्या को देखिए। क्षण भर के लिये भारत को भूल जाइये, इस समस्या

के मोटे पहलुओं को इतिहास के प्रवाह में देखिए, हम कहाँ पर पहुँचे हैं? मैं बहुत पीछे नहीं जा रहा हूँ बल्कि यही डेढ़ सौ वर्ष पहले, जबकि पश्चिमी दुनियाँ में औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई और वह सौ या अधिक वर्षों तक चलती रही। वह एक विशेष विकास पर आधारित थी, समाज के पूँजीवादी ढांचे के एक नए रूप पर, औद्योगिक पूँजीवाद पर आधारित थी। अब, औद्योगिक पूँजीवाद ने क्या करना चाहा, उसका उद्देश्य क्या था? उसका उद्देश्य था संपत्ति का और अधिक उत्पादन, अधिकतर उत्पादन। उससे पहले दुनिया बहुत गरीब थी, उत्पादन सीमित था। वह दरिद्रता के स्तर पर टिक-सी गई थी। औद्योगिक पूँजीवाद ने संसार की संपत्ति को उत्पादन के एक नए साधन द्वारा बढ़ाना चाहा। इसके भीतर कुछ कठिनाइयों और असंगतियों के बीज हैं। हम उनसे कैसे बच सकते हैं? औद्योगिक पूँजीवाद ने विविध कारणों से तरक्की की, और अपने आगे की समस्याओं को हल किया। यह याद रखिये कि यह पूँजीवाद अतीत युग की महत्तम सफलताओं में रहा है। इसने उत्पादन की समस्या का हल किया। लेकिन उसे हल करने में उसने और असंगतियाँ तथा कठिनाइयाँ पैदा कीं। जब लोग एक या दूसरे प्रकार के नारे लगाते हैं—बिना यह समझे हुए कि एक विशेष क्रम एक युग के लिए तो अच्छा हो सकता है और वही दूसरे युग के लिए बुरा हो सकता है, तो उनकी समझदारी का मैं कायल नहीं हो पाता। इससे केवल उनके मस्तिष्क की अस्पष्टता का पता चलता है। अब, आप आज के प्रश्नों को, इस प्रकार अपने मस्तिष्क को अस्पष्ट अवस्था में रखकर हल नहीं कर सकते। अब, जो हुआ वह यह था कि उत्पादन की समस्या केवल सिद्धान्त रूप में हल हुई-व्यवहारतः कुछ ही देशों में और सिद्धान्त रूप में दुनिया में सर्वत्र। लेकिन ज्योंही आप उत्पादन की समस्या को हल करते हैं, मूलतः तत्काल एक दूसरी समस्या अपना सिर उठाती है, अर्थात् जो कुछ उत्पादन हुआ है उसके वितरण की समस्या। इस प्रकार एक संघर्ष उत्पन्न हुआ और यह संघर्ष बहुत समय तक उग्र इसलिए नहीं हुआ कि यह औद्योगिक पूंजीवाद, एक मानी में, संसार के केवल एक भाग में पनपा, अर्थात्, यूरोप और अमरीका के कुछ भागों में, और इसके सामने शेष सारी दुनिया खेल खेलने, फैलने और यों कहना चाहें तो शोषण करने को पड़ी थी। इसलिए एक प्रकार का संतुलन बना रहा, क्योंकि वह इस प्रकार फैल सकते थे। नहीं तो पश्चिमी दुनिया में और भी पहले संकट उपस्थित हो जाता। लेकिन क्रमशः पश्चिमी दुनिया में संकट आया, एक बड़ा संकट आया, जिसके परिणाम स्वरूप तीस-चालीस साल पहले पहला विश्वव्यापी युद्ध हुआ। यह पहला युद्ध था, जिसने कि कमोबेश स्थिर या अस्थिर दिखने वाली संसार की अर्थ-व्यवस्था को उलटा। तबसे, पहले महायुद्ध के बाद से, यह व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकी है, और शायद अभी बहुत समय तक स्थिर न हो सकेगी, जब तक कि बहुत सी बातें ठीक न हो जायं। और मूलतः स्थिरता का प्रश्न उत्पादन की वृद्धि का, उन सब देशों में

जहाँ यह उत्पादन हो रहा है और उसका विकास हुआ है, वहा उत्पादन की वडी मात्रा में वृद्धि का ही प्रश्न नही है, वल्कि न्यायपूर्वक वितरण की समस्या के हल करने का भी है।

अव मैं जानवूझकर उन शब्दो का प्रयोग नही कर रहा हूँ जिनके विशेष अर्थ आपके मस्तिष्क मे है, अर्थात् समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद आदि का। हमें वास्तविक समस्या पर विचार करना चाहिए और अस्पष्ट शब्दो मे, जिनके सौ अर्थ हो सकते है, समस्या के हल को नही खोजना चाहिए।

तो इस सन्तुलनहीनता और अव्यवस्था के फलस्वरूप आपने एक के वाद दूसरा विश्वव्यापी युद्ध देखा। और मैं नही जानता, आप तीसरा युद्ध भी देख सकते हैं, यद्यपि एक अजीव वात यह है कि इन युद्धो से समस्या का हल नही निकलता वल्कि वह कही और जटिल वन जाती है। मैंने एक तीसरे सभावित युद्ध की चर्चा की है। व्यक्तिगत रूप से मैं समझता हूँ कि निकट भविष्य में या दो तीन वर्षो मे यह नही होने जा रहा है। मैं युद्ध की कोई संभावना, कोई गुमान नही देखता। इस वात से न डरिये कि लड़ाई सामने आ गई है। फिर भी कोई नही कह सकता कि युद्ध उठ गया, या पुराना पड़ गया या होगा ही नही।

अव, आप जरा अपने मस्तिष्क में, इस युद्ध के घधे को, नए युद्ध के चित्र को लाइए। यदि युद्ध होता है, तो इसमें सदेह नही कि इसके परिणामस्वरूप वड़े से-बड़े पैमाने पर महत्तम विनाश होगा, जितना किसी भी पुराने युद्ध में हुआ है, उससे कही अधिक। इसका अर्थ मानवता तथा नगरों के विनाश के अतिरिक्त, मानव-जाति ने युगो मे जो कुछ निर्माण किया है उसका विनाश होगा; एक वात यह तो साफ है कि इसका अर्थ खाद्य के उत्पादन का सीमित हो जाना होगा। पिछली लड़ाई के समय से ही खाद्य का प्रश्न ससार में एक वड़ा प्रश्न वन गया है। जैसा आप जानते है भारत में यह हमारी एक प्रमुख समस्या रही है। अगर दूसरा युद्ध हुआ तो खाद्य का उत्पादन इतना सीमित हो जायगा कि संभवतः सारी दुनिया में करोड़ो आदमी भूख के मारे मर जायंगे. लोग युद्ध के वारे में जरा हल्के ढग से सोचते है। दूसरा विश्व यापी युद्ध इतना अनर्थकारी होगा कि ऐसी स्थिति का मानवता ने कभी अनुभव नही किया है और यह न समझिये कि भारत या समार का कोई भाग इस तवाही से वच सकता है। कुछ ज्यादा तवाह हो सकते हैं, कुछ कम ; लेकिन युद्ध में कौन विजयी होता है इससे तवाही में कोई अन्तर न पड़ेगा, क्योकि विनाश सभी का होगा, घोर तवाही समान रूप से सारे ससार पर आवेगी। इस युद्ध के विजेता के सामने एक तवाह दुनिया होगी, और उसे सामने देखना सुखकर न होगा।

तो ये है हमारी समस्याएँ। अगर हम समझते हैं कि हम उनका हल युद्ध द्वारा कर सकते है– व्यक्तिगत रूप से मै समझता हूँ कि ऐसा नही हो सकता –तो यह गलत धारणा है। यह सही है कि दुनिया अपनी समस्याओ का हल करती है, उसी तरह जिस तरह कि हर एक व्यक्ति अपनी समस्याओ का हल करता है, जीते-जी नही तो मरकर,। मरने पर तो समस्या हल हो ही जाती है। इस तरह दुनिया की समस्या भी हल होगी, हो सकता है कि करोड़ो की मौत के वाद या कुछ ऐसी ही घटना के अनन्तर, हल हो, लेकिन यह हल प्राप्त करने का सही दिमागी तरीका नही है।

इस तरह इन समस्याओ के हल करने मे, एक ओर यदि हम युद्ध की लहर और वढती हुई हिंसा को देखते है, तो हम पाते है कि इससे समस्या हल नही होती वल्कि और उलझ जाती है और हल और भी जटिल वन जाता है। दूसरी ओर, समस्या का हल निकालना ही है। यदि हम इसका हल नही निकालते, तो और समस्यायें हमें दवा कर मार डालेंगी। तो हम इस विपय में किस तरह आगे वढें?

अगर लोग समझते है कि हम जहाँ के तहाँ वने रहेगे और चीजें अपने आप ठीक हो जायंगी तो वे गलती करते है। अगर वे समझते है कि हम इस तरह उनको हल कर लेंगे और एक वडी विपत्ति को वचाते हुए हल पा लेंगे, तो उनकी स्यिति का विश्लेषण विल्कुल गलत है।

अव इतना कहने के वाद मै आपका ध्यान एक दूसरी दिशा में लौटाना चाहता हूँ। विज्ञान के विकास ने इस संसार में जो परिवर्तन किए है, उनके फलस्वरूप ज्ञान में वहुत प्रचुर वृद्धि हुई है, इतनी प्रचुर कि वहुत कम लोग, शायद ही कोई, उसे पूरी तरह हृदयगम कर सकते है। वह इतनी अधिक है कि आदमी का मस्तिष्क उस सवको अवगत नही कर सकता। मै नही कह सकता, कोई असाधारण प्रतिभावाले भले ही उसे हृदयंगम कर लें, लेकिन साधारण वुद्धि के लोगो की शक्ति से यह वाहर है। मानव ज्ञान का सारा क्षेत्र अति विस्तृत है। वैज्ञानिक ज्ञान का क्षेत्र लीजिए, विज्ञान की एक विशेष शाखा के क्षेत्र को ही ले लीजिए—उतना अंश जिसकी पूरी जानकारी के लिए उसे विशेपज्ञ होना पड़ता है वह अपने विषय में विशेपज्ञ तो हो जाता है, लेकिन शायद जीवन के और विभागो की ज्यादा जानकारी उसे नही होती। इसलिए एक उच्च कोटि के विशेपज्ञ के वारे में, वह वैज्ञानिक हो चाहे यत्र शिल्पी, वहुत करके ऐसा होगा कि वह जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पहलुओ से अनजान होगा। दूसरे शव्दो में एक अच्छा वैज्ञानिक होते हुए भी वह वुरा नागरिक हो सकता है। पर वह अच्छा नागरिक भी हो सकता है। विज्ञान

तथा औद्योगिक सभ्यता की वृद्धि के साथ ज्ञान-भंडार इतना बढ गया है कि उसे अवगत करना कठिन है, इसलिए विशेषज्ञता की वृद्धि हुई। विशेषज्ञता की वृद्धि के साथ मानव-जीवन का समन्वयात्मक दृष्टिकोण, जिसे मानव-जीवन का दार्शनिक दृष्टिकोण भी कह सकते हैं, और उससे सवधित समस्याएँ पृष्ठभूमि में पड़ गई। और हमारे राजनीतिज्ञ भी पीछे रह गये। वे विशेषज्ञ हो सकते हैं-चुनाव जीतने के विषय मे या तात्कालिक समस्याओ से निवटने के विषय में, पर उनके पास न तो समय ही है न अवकाश कि वे इन समस्याओ के वृहत्तर पहलुओ पर ध्यान दें। हम इस कठिनाई को कैसे पार करे? मै नही जानता, मै इसको आपके सामने रख रहा हूँ।

सयुक्त राज्य अमरीका जैसे देश को ले लीजिए, जो यंत्रशिल्प की दृष्टि से सवसे उन्नत देश है, और इसलिए भौतिक साधनो की दृष्टि से सवसे शक्ति-शाली। वह सपत्ति का, जो शक्ति है, उत्पादन कर सकता है। लेकिन इसे देखते हुए मै ऐसा अनुभव करता हूँ कि इस वृद्धि ने ही अमरीक के लोगो के लिए—हाँ कुछ व्यक्तियों की वात छोड़िए-यह कठिन कर दिया है कि साधारण व्यक्ति अपने क्षेत्र मे विशेषज्ञ होने के अतिरिक्त कुछ और रह जाय। वह व्यक्ति वहुत अच्छा होता है. एक अमरीकी इजीनियर, एक अमरीकी डाक्टर को ले लीजिए। वह अपने क्षेत्र मे इतना अच्छा होता है कि उसके पास किसी दूसरी दिशा में अच्छा होने का समय नही रहता। अमरीका को समझ लेना वहुत अच्छा होगा, क्योकि अमरीका एक विशेष प्रकार के विकास का, जिस ओर कि ससार वढ रहा है, सर्वोच्च प्रतीक है। दूसरे भी इस दिशा में गए है, लेकिन उतनी दूर तक नही।

अव भारत मे औद्योगीकरण अवश्यंभावी है, हम औद्योगीकरण की कोशिश कर रहे है, हम औद्योगीकरण करना चाहते है, औद्योगीकरण होना भी चाहिए-और अधिक सपत्ति, और अधिक उत्पादन-यह सव ठीक है। लेकिन, क्या हम कुछ विशेषज्ञो या विशेष सगठनो को ही स्थापित करके यह समझने जा रहे है कि समस्या हल हो गई? हमे विशेषज्ञ तो उत्पन्न करने है, लेकिन हमें इस समस्या की जानकारी न केवल आज के अत्यन्त विस्तृत प्रसंग मे, वल्कि इतिहास के विस्तृत प्रवाह के प्रसंग मे होनी चाहिए।

तव, शायद हमे उसे समझने की कोशिश तो करेगे; फिर, वाद मे, हम उसका उत्तर देने की भी कोशिश कर सकते है। यह जाहिर है कि ऐसी जटिल समस्या किसी नारे द्वारा या लखनऊ की सड़को पर प्रदर्शन करके नही हल हो सकती, मै आपके मनन के लिए कुछ विचार दे रहा हूँ, क्योकि इस समस्या पर अनन्त

विवाद हो सकता है, और वह भी ऐसा कि कोई नतीजा न निकले। लेकिन मैं केवल यह चाहता हूँ कि आप अनुभव करें कि समस्या कितनी कठिन और जटिल है और आज के तथा इतिहास के प्रसंग में, वह काफी व्यापक और पुरानी है। अब जिस संसार में हम रह रहे हैं उसका और इन सघर्षों का कुछ मोटे ढंग से परिचय प्राप्त कर, भारत पर आइए।

भारत में डेढ़ साल हुए हमने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। एक मानी में राजनैतिक दृष्टि से हमारा ध्येय प्राप्त हुआ। इसकी कसौटी यही हो सकती है कि आपकी सरकार को घरेलू या विदेशी क्षेत्र में किसी काम के करने की स्वतंत्रता है या नही? मैं तो यहाँ पर किसी ऐसे कानून के होने की वात नही कहता जिससे आपके सविधान को वलि प्र.प्त हो वह तो स्वतत्रता का दिखावा मात्र हो सकता है। मैं समझता हूँ कि यह विल्कुल साफ है कि युद्ध या शाति में, हम जो कुछ करना चाहें उसमें कोई वात हमें रोकने या वाधा डालने वाली नही है-सिवाय इस के कि जिस तरह और देशो को परिस्थितियो का सामना करना पडता है, हमें भी करना पडेगा। उससे हम वच भी नही सकते। वहुत से देश है, जिनके मैं यहाँ नाम ले सकता हूँ जो नाम के लिए सौ फी सदी स्वतंत्र है और व्यवहार में सौ फी-सदी स्वतंत्र नही है, क्योकि वे इतने कमजोर है कि जो चाहें नही कर सकते, और वे राजनैतिक या आर्थिक या किसी और रूप मे किसी दूसरे देश की सदिच्छाओ पर निर्भर रहते है।

अव, साधारण रूप में, हमें अनेकानेक समस्याओ का सामना करना पड़ता जो पिछले १५० वर्ष के अंग्रेजी शासन में इकट्ठी हो गई, क्योकि अंग्रेजी शासन एक वाहर से लादी गई चीज थी, और इसने साधारण रूप में सामाजिक सवंधो के सुलझाने और हमारी समस्याओ के हल में, जो शाति-पूर्वक हो, चाहे हिंसात्मक ढग से, वाधा डाली, नही तो कुछ-न-कुछ हो गया होता। लेकिन वाहरी दवाव ने उस समन्वय के क्रम को रोका जो देश में समय समय पर होते रहते है। फल यह हुआ कि ज्यो ही व्रिटिश सत्ता उठ गई सव समस्याएं भी उठ खड़ी हुईं चाहे वे रियासतो की समस्यायें हों, चाहे कोई और। उन्हें हल करने की माँग होती है और हमें उनका सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ, यह उस समय होता है, जवकि दुनिया एक भयंकर विश्वव्यापी युद्ध के परिणामों से संभल भी नही पाई है। आर्थिक और वित्त संवंधी क्षेत्रो में हमारे यहाँ विश्वव्यापी युद्ध से उत्पन्न सभी समस्याएँ मौजूद है। और फिर भारत स्वतंत्र होता है, पर उसका विभाजन हो जाता है: पर एक जीवित वस्तु के दो टुकड़े हो जाते है, जिससे भयंकर खून-खरावा होता है और अनेक

प्रकार की वस्तुओ की हानि होती है। सभी चीजों के टुकडे हो जाते है, हमारी सेना, हमारी डाक सवधी नौकरिया, तार सवधी नौकरिया, टेलीफोन सवधी नौकरियां सभी बट जाती है, सारी सरकारी मशीन के यकायक दो टुकडे हो जाते है, यह एक आश्चर्यजनक क्रिया थी, और इसका परिणाम अन्य बातों के अतिरिक्त एक विराट पैमाने पर लोगो का घर छोडकर दूसरी जगह जाना और हत्याकाड आदि भी था। अब, हमारे सामने शरणार्थियो की एक वहुत वडी समस्या है, सभी वर्गो के साठ लाख लोगो की देखभाल का भार अपने ऊपर है। इसमें मध्य वर्ग के लोग है, श्रमिक वर्ग के लोग है, व्यवसायी है और ऐसे लोग है जिन्होने आजन्म कोई काम ही नही किया है। जरा इन सव समस्याओ को देखिए। जब आप बैठकर भारत सरकार की या उत्तर प्रदेश की सरकार की आलोचना करते है, तव इन समस्याओ पर विचार करने की कोशिश कीजिए।

कल जब मै हवाई अड्डे से आ रहा था तो कुछ शरणार्थियो ने मेरी मोटरगाडी रोकने की कोशिश की। मुझसे कहा गया कि वे हमसे आज मिलना चाहते है। मै जहा तक होगा उनसे मिलूगा। लेकिन जब ये शरणार्थी--जिनसे कि हमारी सबकी हमदर्दी है--यह कहते है कि हमें यह सहायता नही मिली या वह सहायता नही मिली तब कभी आपने यह विचार करने की कोशिश की है कि इन साठ लाख शरणार्थियो मे से कितने बसाये जा चुके है? जिस काम को हम लोगो ने कर लिया है, उसे भी विचार करने की कोशिश कीजिए। मै आपसे कहता हूँ कि शरणार्थियो के बसाने का जो काम हमने कर लिया है वह आश्चर्यजनक है। मै आपसे कहता हूँ कि इतना बडा काम इतिहास के बड़े-से-बड़े कामों में अपनी जगह रखता है। लेकिन जो कुछ आप हमेशा सुनते है वह यह है कि हमने अमुक कार्य नही किया। मै इसकी चिन्ता नही करता। जो काम हमने नही किया, उसे मै सुनना चाहता हूँ, जिसमें कि हम उसे भूल न जायें। हमें उसकी याद बनी रहे। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन इस पर भी विचार करने की कोशिश कीजिए कि कितना काम हो चुका है, और राष्ट्रीय जीवन के इस क्षेत्र में कितना काम हो रहा है, और हमेशा यही न सोचिए कि क्या नही हो पाया है। सबसे पहले उन समस्याओ का खयाल करने की कोशिश कीजिए जिनका कि सरकार को सामना करना पड़ा है, वे सभी बातें जो मैंने अभी बताई है, और उसके बाद देखिए कि कितना काम हो गया है, और कितना होना बाकी है फिर हम आप उसे पूरा करने की पूरी कोशिश करे। उसके बाद फिर क्या हुआ है और क्या नही हुआ उसकी बात चलावें।

आखिरकार आपको समझना चाहिये कि खास कर एक जनसत्तात्मक देश में, आप सरकार से यह आशा नही कर सकते कि वह कानून बना दे और आपके

सभी काम हो जायँ। यह एक आश्चर्य की बात है कि आप और मैं और हममें से बहुतेरे विचार करने की उस आदत को नही छोड सकते, जिसे हमने ब्रिटिश शासन में सीखा था। आधे दर्जन झडे लेकर इधर से उधर चक्कर लगाने का यह धंधा ब्रिटिश शासन में उपयुक्त हो सकता था। आज इसकी उपयुक्तता बहुत कम है—मैं यह न कहूँगा कि बिल्कुल ही नही है। मै विचार की उस आदत की बात कर रहा हूँ जिसे ब्रिटिश सरकार ने अपने को माँ-बाप सरकार जताकर हममें पैदा करने की कोशिश की, अर्थात् सरकार ही सब कुछ करेगी, लोगो को केवल किसी सरकारी पदाधिकारी के पास प्रार्थनापत्र भेजने की जरूरत है और वह उस पर आज्ञा दे देगा। जन सत्तात्मक सरकार में इस तरीके पर काम नही होता।

एक ऐसी सरकार, जिसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं से निबटना होता है, उस सरकार से, जो मुख्यतः पुलिस राज्य है बहुत भिन्न तरीके पर काम करना होता है। पुलिस राज्य को केवल शांति बनाए रखना, कर वसूल करना और कुछ और छोटे-मोटे काम करना होता है। आज हमें टेढी सामाजिक और आर्थिक समस्याओ को निबटाना है। ये समस्याएँ सरकारी फरमान या आज्ञापत्र या हुक्मनामे से नही निबट सकती। इनको निबटाने के लिए सही कानून होने चाहिए। मै मानता हूँ कि सरकारी काम ठीक ढग से हो उसका ठीक ढग से तो होना ही उचित है। लेकिन ऐसे आर्थिक मामलो में सरकारी उद्योग की एक सीमा होती है। यह तो जनमत का काम है, उसकी मनोवृत्ति और उनसे प्राप्त सहयोग ही इन समस्याओं को इस पार या उस पार लगावेंगे। मैं आपसे कहता हूँ कि हमारे अच्छे-से-अच्छे कानून और सरकारी काम बेकार होगे नही तो कम-से-कम उनका असर कम हो जायगा यदि जनता में काम करने की इच्छा न हो और वह इस उद्देश्य में सहयोग न देवे। और मैं यह भी कहता हूँ कि एक कमजोर सरकार, यहाँ तक कि एक बुरी राजनैतिक सरकार भी ज्यादा बड़े नतीजे दिखा सकती है अगर उस उद्देश्य में जनता सहयोग देती है।

तो मुख्य बात यह है कि काम और सहयोग की मनोवृत्ति का जनता में कैसे विकास किया जाय। और आज यदि हम भारत में किसी व्याधि में पड़े है तो वह है सही मनोवृत्ति का अभाव—चाहे वह श्रमिक में हो, चाहे मिल मालिक में हो और चाहे नई पीढी के लोगो में। लोग हड़तालो और प्रदर्शनो और इसी प्रकार के उपायो से अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकेंगे यह मनोवृत्ति बिल्कुल गलत है, और मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि वे लोग भी जिन्हें कि ये बातें अच्छी तरह समझनी चाहिए, किसी तरह इसके फेर में पड़ जाते है और किसी तरह इस प्रकार की चीजो को प्रोत्साहन देते है। मै आपसे कहता

हूँ कि भारत के वर्त्तमान और भारत के भविष्य के लिए, इस मनोवृत्ति के कायम रहने से खतरनाक कोई दूसरी वात नही ।

मुझे भारत के भविष्य मे असीम विश्वास है । यदि मुझमे यह विश्वास न होता तो शायद जो काम मैंने किया है वह न कर पाता। लेकिन यह असीम विश्वास रखते हुए मै आपसे कहना चाहता हूँ कि आज हमे काफी मुश्किल समस्याओं का सामना करना है। हमे आपस मे एक दूसरे को धोखे मे न डालना चाहिए। हमे वहुत कठिन समस्याओ का सामना करना है, हमें अपने को ऊचे उठाना है, अनेक प्रकार से अपने वधनो से ऊपर उठना है। आपको दूसरे देशो से सोना, चाँदी और धन न मिल जायगा। हमे स्वयं इनका उत्पादन करना है। आप कैसे पैदा करेंगे—हडतालो तथा इसी तरह की वातो से ? आप मजदूरी और तनखाहे वगैरा कैसे वढावेंगे, जैसा कि हम चाहते है? रुपया कहा से आएगा, रुपया आता कहा से है? यह कर द्वारा आता है, आप ही की जेवो से, दूसरे की जेवो से नही । यह वहुत सीधी-सी वात है । इस पर विचार कीजिए । आप माँगे करते है। कुछ विद्यार्थी मेरे पास आते है और विना झेपे हुए यह कहते है कि उनके खयाल मे उन्हें युनिवर्सिटी कमीशन का सदस्य होना चाहिये था जिससे कि वे अपनी माँगे उसके सामने रख सकते, तो मुझे हैरत होती है । वे वरावर मांगो की वाते करते है। अव, भारत की भी आपसे कुछ मागें हो सकती हैं। आप इसे भूल गए ऐसा जान पड़ता है। और मैं समझता हूँ कि समय आ गया है कि आपसे जो मांगे हो सकती है— आपकी कृतज्ञता की, आपके कर्त्तव्य और काम और कठिन श्रम की— उन्हे आप याद रक्खें। भारत में वहुत कम लोग है, जो इसका खयाल करते है और इसे पूरा करने के लिए मेहनत करते है। हर एक व्यक्ति मागें पेश करता है, हर एक एतराज करता है, हर एक आलोचना करता है और हर एक यह समझता है कि अगर उसकी मागो का पूरा होना मुमकिन हो, तो सव कुछ ठीक हो जायगा । वह इसे भूल जाता है कि उसकी मांगो के पूरा होने के मानी यह है कि कोई दूसरा अपनी मागो से वाज आवे, क्योकि मागें एक दूसरे के खिलाफ पडती है।

इन सव समस्याओ पर विचार कीजिए। जो कुछ मै देखता हूँ वह एक अजीव-गरीव चीज है। यह जाहिर है कि उत्तराधिकार में हमें एक खास ढाँचा मिला हुआ है, एक खास राजनीतिक ढांचा, शासन सवधी ढाचा, न्याय सवधी ढाचा आर्थिक ढाचा आदि, हमे उसे वदलना है। पर हम उसे कैसे वदलने जा रहे है ? वदलने के दो तरीके हो सकते है। एक है, उसे टुकड़े-टुकड़े कर डालना और फिर से निर्माण करना, आप चाहें तो उसे तोड़ डालिए और एक नई स्लेट लेकर उस पर नए सिरे से लिखिए। पर वास्तविकता यह है कि जीवन मे नई स्लेट नहीं

मिला करती, न कभी मिली है और न मिलेगी। आप अतीत से बिल्कुल मुक्त कभी नहीं हो सकते। फिर भी आप कमोबेश नई स्लेट पर लिख सकते हैं। मौजूदा सरकारी सगठन या आर्थिक सामाजिक ढांचे के नाश के परिणाम-स्वरूप होने वाली कुछ वस्तु तो आप पा सकते हैं। अगर हम यह निश्चय करते हैं कि राष्ट्र की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि हमारा जो वर्तमान ढांचा है उसे तोड़ डालें, तो आइए यही करें और परिणाम को समझते हुए उसे समाप्त कर डालें। चूंकि मैं निजी रूप से इससे सहमत नही हूँ, मैं चाहता हूँ आप यह अनुभव करें कि इस विषय में स्पष्ट होने की आवश्यकता है। न हम आज तोड़-फोड़ कर नया निर्माण करने की—बुनियाद से लेकर निर्माण करने की—कोशिश कर रहे हैं, न हम अधिक, से अधिक तेजी से मौजूदा ढाचे को बदल कर, उसे इच्छानुसार रूप दे रहे हैं। हमें दोनों में से एक बात चुननी है, क्योंकि यहाँ बीच का मार्ग भयावह है। न आप पुराने ढांचे को समाप्त ही कर डालते हैं जिससे कि पुन-र्निर्माण आरंभ कर सकें और न आप परिवर्तन के क्रम को ही चलने देते हैं। इनमें से एक भी नही हो पाता, और दशा बराबर बिगड़ती जाती है और हम क्रमश. खातमे की ओर जा रहे हैं। यदि आप प्राचीन के विनाश के मार्ग को अपनाते है और कुछ लोगो के कथनानुसार, नए सिरे से निर्माण करते हैं तो इसके परिणाम क्या है? परिणाम साफ-साफ ये हैं कि अगर आप सफल होते है तो पहले तो एक महान सघर्ष होता है, क्योंकि कुछ लोग इसका विरोध भले ही न करें, पर कुछ तो करेंगे ही। मतलब यह कि तुरन्त, जैसा हम चाहते हैं, वैसा विनाश सभव नही और निरंतर सघर्ष चलता है। धीरे-धीरे प्रचीन का विनाश हुआ तो बहुत ही समय लग जाता है और दूसरे काम नही हो पाते।

इसका यह तात्पर्य है कि अगर आप प्राचीन के विनाश मे सफल हुए तो शायद आप को साफ स्लेट मिल जाय, लेकिन बिल्कुल साफ स्लेट, जैसा मैंने बताया, मिलना असभव है। विनाश का क्रम, राष्ट्र को हर एक मानी में—फौजी, आर्थिक, रुपये-पैसे की दृष्टि से—कमजोर भी कर देता है। इसलिए विनाश करने के पथ को अपनाने पर भारत, अचानक, स्वतन्त्र देश के रूप में अपने नवीन जीवन की एक नाजुक घड़ी में कमजोर हो जाता है। मैं नही कह सकता कि इसके क्या नतीजे होगे। एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से जो भारत के राज्य के लिए जिम्मेदार है, मैं अपने राष्ट्र को कमजोर करने का और बुरी नीयत वाले देशो और बुरी नीयत वाली शक्तियो को आकर अपने देश को तबाह करने देने का साहस नहीं कर सकता। इससे मैं अपनी स्वतंत्रता भी जोखिम में डाल सकता हूँ। स्वतन्त्रता न केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से और फौजी दृष्टिकोण से बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से जोखिम में पड जायगी। अगर हम कमजोर और असहाय हो गये, और हमारी फाके की हालत हो गई, और हम बेकार हो गए तो हम क्या करेंगे? हम जलूस भले ही निकालें और नारे

भले ही लगाएँ, हम इन लाखो आदमियों के पेट कैसे भरेंगे जो क्रमश: इतने नीचे स्तर पर पहुँच चुके हैं और जो इतने कमजोर है कि दुनिया के सामने खडे नही हो सकते ?

मै आपसे कहता हूँ कि यही है अनिवार्य परिणाम, तात्कालिक परिणाम अन्तिम नतीजा, या जो भी कहिये किसी भी ऐसे क्रम का, जो आधुनिक ढाँचे को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहता है, कि राष्ट्र कमजोर हो जाता है, हमारी स्वतत्रता खतरे में पडती है, और बुरी शक्तियाँ, बुरे देश परिस्थिति से अपना लाभ उठाते है। मै नही चाहता कि ऐसा हो। यदि यह नाश हुआ तो यह पीढी—और जब मै यह पीढ़ी कहता हूँ तो मेरा मतलब अपनी पीढी से नही बल्कि नई पीढ़ी से है, नवयुवको और नवयुवतियो की पीढी से है, जिन्होने अपनी उपाधियाँ प्राप्त की है और कल या परसो नागरिक बनेंगे—मै दुहराऊँगा कि यदि नाश हुआ तो यह पीढी बरबाद हो जायगी। जैसा मैने अभी कहा, हमें कठिन परिश्रम का दंड मिला है, यह सच है। लेकिन यदि आपने भारत में जो कुछ संगठन है, उसका नाश आरभ किया तो आपको कोई कल्पना नही कि आपको क्या दंड मिलेगा। यह संभव है कि इस पीढी के खतम होते-होते भारत की भीतरी शक्ति के अन्दर से कुछ और रूप विकसित होकर सामने आवे।

लेकिन तत्काल आपको यह विचार छोड़ देना चाहिए। इसलिए यदि आप यह विचार छोड देते है तो आपको सतर्क रहना चाहिए, तब आपको ऐसे सभी कामो से बचना चाहिए जो स्थिति को विगाड़ सकते है, और जो वर्तमान में है उसे ध्वस्त कर सकते है। बुराई को अवश्य नष्ट कर डालिए—बुराई से लड़िए। इसलिए आपको वर्तमान ढाँचे को नष्ट कर देने की दिशा में नही, बल्कि उसे जितनी जल्दी सभव हो बदलने की दिशा मे प्रयत्न करना है।

इसका एक दूसरा पहलू भी सामने रखना चाहता हूँ। हिंसा और अहिंसा, शांतिपूर्ण तरीको और हिंसात्मक तरीको की कसौटी एक अच्छी कसौटी है, क्योकि यदि आप शातिपूर्ण तरीको को उपयोग करते है, तो मेरी समझ में आप बहुत गलत मार्ग पर नही जा सकते; चाहे आप उन तरीको का गलत ध्येयो के लिए ही उपयोग क्यो न करें फिर भी आप सुरक्षित है और रोक-थाम रहती है। शांतिपूर्ण ढंग स्वत: गलत कामो पर रोक की भाति है, अगर आप हिंसात्मक तरीके का उपयोग करते है, तो हिंसात्मक तरीका एक विदेशी बैरी और किसी देश के विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध चाहे जितना उचित हो, वह एक अलग ही बात है (वस्तुत: विदेशियो के विरुद्ध भी जहां तक हुआ हमने शांतिपूर्ण तरीको

का ही उपयोग किया) लेकिन एक ऐसे प्रश्न पर जिस पर जनता को निर्णय करना चाहिए, हिंसात्मक तरीको का उपयोग, वह भी विदेशी के विरुद्ध नही बल्कि कुछ अपने ही लोगो के विरुद्ध, एक महा भयानक चीज है। मै इस समय इस प्रश्न के दार्शनिक या सिद्धान्त सबंधी पहलू पर बहस नही करना चाहता, न हर देश के लिए इसे अनावश्यक बताना चाहता हूँ। लेकिन यह अवश्य कहूँगा कि भारत की जैसी स्थिति है उसमें हिंसात्मक तरीको का उपयोग, सबसे बड़ा देशद्रोह है, जिसका कि कोई भारतीय अपराधी हो सकता है। हममें एकता उत्पन्न करनेवाली मजबूत शक्ति है, साथ ही हममें सभी तरह की विच्छेदक और जुदा करनेवाली प्रवृत्तियां भी है। हमने सांप्रदायिकता के विरुद्ध लड़ाई की है और हमने साप्रदायिकता से हानि भी उठाई है। हमारे यहा प्रातीयता और ऐसी अनेक प्रवृत्तिया है, जो जुदा करने वाली है और अब, इस क्षेत्र में यदि हिंसा किसी भी रूप में किसी भी प्रकार से होती है, और लोग हिंसात्मक तरीके ग्रहण करते है तो परिणाम निश्चय ही यह होगा कि हिंसा का दमन किया जायगा और शीघ्र ही उसे रोका जायगा, क्योकि हर एक सरकार को हिंसा का दमन करना ही पड़ता है। कोई भी सरकार हिंसा को न रोकने का जोखिम नही उठा सकती। जो कुछ मैंने सुना है, उसके आधार पर मै आप से कहूँगा कि उत्तर प्रदेशीय सरकार ने परिस्थिति को देखते हुए यहा बडी कमजोरी बरती है। जो कुछ हुआ है उसके बारे में बहुत नारे बुलन्द हुए है। यदि मै यहा अधिकार में होता तो उन लोगो के खिलाफ, जो लखनऊ की सड़को पर अशिष्टताए कर रहे है, ज्यादा सख्त कार्रवाई करता। नौजवानो और नवयुवतियो का आखिर यह क्या धधा है कि पुलिस पर हमले करें और उन्हे थप्पड़ मारें और बम फेंकें और लाठियो से खिलवाड़ करें? क्या हमारे नवयुवक और नवयुवतिया शिष्टता और अनुशासन के स्तर से इतना गिर गए है, इतने बेसमझ हो गए है कि उनका ऐसा बर्ताव हो? और इसे आप स्वतत्रता कहते है! स्वतत्रता की ऐसी कल्पना मेरी नही है, स्वतत्रता की यह कल्पना मेरी कभी नही रही है। अगर आप इस तरह पेश आते है, तो यह समझिए आप अपने देश, शहर और राष्ट्र का अहित कर रहे है।

जो कुछ मैंने सुना है वह एक हैरत की बात है। और मुझे आश्चर्य है कि समझदार नवयुवक और युवतियां इन कृत्यो की मूर्खता—मूर्खता ही नही, इसके अपराध को नही देख पाते। क्या हमलोग नासमझ और पागल लोगों का एक गिरोह बन जायेंगे, और ऐसे नारे लगाएंगे जिनके मानी हम नही समझते कि क्या है? यही स्वतत्रता की कल्पना है? मै चाहता हूँ कि आप इस पर गौर करें कि हम कहा जा रहे है? क्योकि इतनी बड़ी दुनिया में कोई भी सरकार इस तरह की बातें बर्दाश्त नहीं कर सकती; एक सरकार उठ सकती है और उसकी जगह दूसरी सरकार आ सकती है, लेकिन अगर कोई सरकार अपनी आंखो के सामने हिंसा होते देखती है, तो उसको उसे दमन करना होगा, और जब तक कि शासन

उसके हाथ मे है वह हिंसा का दमन करेगी। इसके बारे मे कोई सदेह न होना चाहिए, मर्द, औरत, बच्चे जो भी ऐसा करे उनके विरुद्ध हमे कार्रवाई करनी पडेगी। औरते चुन ली जायगी, बच्चे चुन लिए जायगे, आप इस तरह की बातो की किसी तरह इजाजत नही दे सकते। मै लखनऊ की पुलिस की प्रशसा करता हूँ और इसे मै सार्वजनिक रूप से कहूँगा कि वह अच्छी तरह पेश आई, और इतने संयम से काम लिया। मेरे पास आइए, और मुझसे बात कीजिए और मुझसे पूछिए कि कोई आपके मुंह में थप्पड लगाए तो आपको क्या करना चाहिए ? क्या आपको ईसामसीह की तरह दूसरा गाल उसके सामने कर देना चाहिए ? हम सब ऐसा कर सकें तो यह रहने लायक एक दूसरी दुनिया ही हो जाय। लेकिन यह जाहिर है कि पुलिस के वर्ग से यह अपेक्षा नही की जाती कि वह दूसरा गाल भी आपके सामने कर देगा। इसलिए, इन महान समस्याओ को समझिए जिनका कि हमे यहां सामना करना पड़ रहा है, और जिन्हे हल करने के लिए कठिन परिश्रम चाहिए।

अब एक दूसरी बात लीजिए। भारत सरकार या प्रातीय सरकार के पास रुपयो की एक खास निश्चित रकम है। हम इससे बहुत काम लेना चाहते है। वही रुपया हम दो बार या तीन या चार बार नही खर्च कर सकते। सभी तरह की मागें आती है। हो सकता है कि कभी-कभी हम गलत खर्च कर देते है, लेकिन हमने एक रकम को खर्च कर दिय। तो हम उसे फिर खर्च नही कर सकते। जब रुपया हो ही नही तो आप लायेगे कहाँ से ? आप कठिन परिश्रम से रुपया पैदा कर सकते है। इसलिए समस्या कठिन परिश्रम और उचित वितरण की हो जाती है। इन सभी समस्याओ, सभी पहलुओ पर ध्यान देना पडता है. मै चाहता हूँ कि विद्यार्थी अवस्था में ही इन बातो पर आप पूरी वस्तुस्थिति और पूरे तथ्यो को सामने रखते हुए विचार करे। कम से कम आप खास बातो पर विचार कर सकते है और ऐसा करना चाहिए। आपके अध्यापक आपकी मदद कर सकते है। इसके बाद आप अपने को वह भार वहन करने के लिए तैयार कीजिए जो कल आपके कधो पर पड़ेगा। विद्यार्थी मेरे पास आते है, और पूछते है कि 'हम लोग राजनीति मे भाग लें या न ले ?' मै बराबर कहता हूँ, जरूर भाग ले। लेकिन राजनीति है क्या ? राजनीति की यह आश्चर्यजनक कल्पना है कि आप सडको पर जुलूस के साथ घूमते फिरे। आप ब्रिटिश शासन के दिनो की आदतो को छोड़ ही नही पाते। जब किसी देश के जीवन मे सकट आता है, जैसे कि पश्चिमी देशो के जीवन में महायुद्ध के रूप मे आया था, तब एक खास उम्र से ऊपर का प्राय. प्रत्येक विद्यार्थी, वह चाहे आक्सफोर्ड का हो चाहे कैंब्रिज या लन्दन या अन्य युनिवर्सिटियो का, या तो स्वय सेना मे भरती हुआ या भरती किया गया, और उसे युद्ध में जाना पड़ा। उसे कालिज छोडना पडा। अपने देश और अपने लोगो के लिए लड़ना पड़ा। चाहे वह अंग्रेज हो या फ्रासीसी या जर्मन, सभी अपने देश की रक्षा के लिए लड़ने के

लिए सेना में भरती किए गए। अंब भारत के स्वतन्ता की लड़ाई मे लगने पर मैं एक ऐसे सकट काल की कल्पना कर सकता हूँ, जब कालिज वन्द हो जायें और विद्यार्थी वाहर आ जायें, और इस तरह की वातें हों, लेकिन ऐसा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संकट और खतरे के समय के लिए है। यदि इसी तरह का व्यवहार रोज की वात हो जावे—मानो यह कोई आदर्श है जिसे कि लोगो को नकल करना है—तो वेशक इस काम का नतीजा जो कुछ भी हो, जो लोग इसमें लगते है यह तो साफ है कि वे अपने को आगे के किसी उपयोगी घघे के लिए शिक्षा द्वारा नही तैयार कर रहे है। वात यह है कि भारत का कारवार आगे चल कर जैसा और जगहों में है, प्रशिक्षित लोगो के हाथो में होगा, और अन्त में अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक लोगों के हाथो में होगा जिन्होंने प्रौद्योगिक विज्ञान और विज्ञान मे प्रथम कोटि की शिक्षा पाई है। ससार मे किसी देश का दर्जा इस वात पर निर्भर नही करता कि वहाँ की जनसख्या कितनी है, या वहाँ करोडो लोग वसते है, वल्कि इस वात पर है कि वहाँ चोटी के कितने आदमी और औरते है, जो कुछ करके दिखा सकते है और उचित नेतृत्व कर सकते है, और कितने और प्रमुख लोग है जो किसी वड़े देश का काम चला सकते है। अन्त में यह विशेष योग्यता है जिसकी गिनती होती है, अगर्चे संख्या भी कुछ अशो में आवश्यक है। क्या आप इसका अनुभव करते है कि आपही लोगो में से ये चोटी के लोग, पुरुष और स्त्रियां आवेंगे या आना चाहिए? लेकिन यदि शिक्षाकाल को प्रदर्शन करने का समय समझा जाय—सिवाय उस समय के जव कि जैसा मैंने कहा कि राष्ट्र संकट में हो, जवकि सभी वातो को छोड़कर ऐसा करना पडता है—तव आप भविष्य के लिए अपने को तैयार नही कर रहे है। और फिर जिस समस्या का मुझे सामना करना पडता है वह आगे आती है। मैं आपसे वताता हूँ कि मेरा सवसे वड़ा सिरदर्द यह है कि भारत में सर्वोच्च कोटि के लोग पर्याप्त सख्या में कैसे मिले ? उनकी संख्या वहुत ही कम है।

जव मैं यह कहता हूँ, तो मैं जानता हूँ कि भारत मे सवसे अच्छी और वहुत ही उपयुक्त सामग्री है, और जो कुछ भी है वहुत अच्छा है। मैं आपसे तीन विभागो की वात वताना चाहता हूँ जिनका कि मुझे निजी अनुभव है। भारतीय सेना, नौसेना और हवाई सेना से मुझे वहुत काम पड़ा है। और यह मेरी राय है, जिसका कि विदेशी विशेषज्ञो ने समर्थन किया है, कि हमारी रक्षा संवंधी सेवाओ के नवयुवक भारतीय अफसर प्रथम कोटि के अफसर है, न केवल अनुशासन की दृष्टि से, वल्कि मानसिक योग्यता की दृष्टि से भी। मानसिक योग्यता हो, इसका महत्व है, क्योंकि युद्ध अव कसरत और कवायद की वस्तु नही रह गया है, इस घघे में मानसिक योग्यता का मूल्य है, और इस विषय के वडे योग्य निर्णायको ने हमें वताया है कि वे युवक भारतीय

अफ़सर की मानसिक योग्यता देखकर दग रह गए है। अब यह एक सतोष की बात है। मैंने साहस और बहादुरी जैसे गुणो की चर्चा नही की। ये गुण अच्छे और बहुत जरूरी है। लेकिन अन्त मे साहस और बहादुरी रहते हुए भी मानसिक योग्यता का महत्व है।

एक दूसरी बात लीजिए। भारत सरकार के वैज्ञानिक अनुसधानविभाग से भी मेरा सम्बन्ध है, और कुछ हद तक परोक्ष रूप से और ऐसे ही कभी प्रत्यक्ष रूप से, मै युवक वैज्ञानिको से मिलता हूँ या उनके विषय में सुनता हूँ। मेरा अपना खयाल है, और इसका विशेषज्ञो ने समर्थन किया है, कि हमारे यहाँ प्रथम कोटि के युवक वैज्ञानिको का एक बहुत अच्छा दल है, और यह कि उन्हे हमारी प्रयोगशालाओ और विश्वविद्यालयो मे आगे की शिक्षा और उचित प्रेरणा का सुयोग मिले, तो हमारे यहाँ और बहुत से प्रथम कोटि के आदमी हो सकते है; तात्पर्य यह कि प्रतिभा है, उसके विकास की आवश्यकता है। यदि अवसर मिले तो एक ओर तो यह प्रच्छन्न प्रतिभा है, जो प्रकट हो सकती है, दूसरी ओर लोगो के दिमाग ऐसे कामो की ओर खिच रहे है जो उनके जो भी गुण है उन्हें विकसित नही होने देते। यह एक बड़ी बात है, और भारत के लोगो के मस्तिष्क मे यह कशमकश चल रही है।

इसलिए मै चाहता हू कि आप इस समस्या पर उसकी समग्रता में दृष्टि डालें और केवल यही न देखें कि क्या ठीक है और क्या गलत है, बल्कि यह देखे कि कहाँ पर आपको अपनी पूरी शक्ति लगानी है।

अन्त मे इस समस्या के एक और पहलू को मै यहाँ रखना चाहता हू, अगर्चे वास्तव मे इसके अनेक पहलू और दिशायें है। यदि मै कहू तो यह नैतिक पहलू है। यह मेरा विश्वास और यकीन है कि आज की ये संसार-व्यापी समस्याये केवल रुपये-पैसे या आर्थिक साधनो से या केवल जिसे हम राजनीतिक साधन कह सकते है उनसे हल न हो सकेंगी। उनके पीछे आत्मा का महान सघर्ष है जो और संघर्षो में—आर्थिक या राजनीतिक सघर्षो में लक्षित होता है, और यह चाहे आज हल हो चाहे कल, जब तक आत्मा का यह सघर्ष दूर नही होता, तब तक किसी भी देश मे किसी प्रकार शांति की संभावना नही। और अच्छा होगा कि हम इस बात को सदा, और विशेष कर आज स्मरण रक्खे।

परसो महात्मा गाधी के निधन की पहली बर्षी है। उनको दिवंगत हुए एक साल बीत गया। हम सबके लिए और देश के लिए यह कठिन वर्ष रहा है, और फिर भी मै अनुमान करता हूं कि उनकी मृत्यु ने, उनके जीवन से भी

अधिक हमें उन वातो पर विचार करने का अवसर दिया है जिन के लिए वे दृढ़ता से खड़े थे। और मेरा विश्वास है कि मूलतः वे जिस आदर्श के लिए दृढ़ थे, जब तक हम उसे समझते नही, और उस पर आचरण नहीं करते, तब तक हमें सफलता न मिलेगी, या यदि इसी वात को सकारात्मक रूप में कहूं तो यह होगा कि यदि हम उसे समझते हैं और उस पर अमल-करते है तो हमारी सफलता निश्चित है। अतएव मै इस नैतिक पहलू पर, उसके ससार-व्यापी प्रसग में, और भारत के निकटतर प्रसंग में जोर देना चाहता हूं। आखिर हमें इसी क्षेत्र में काम करना है और भारत काफी वड़ा क्षेत्र है।

जहाँ-तहाँ भारत के नेतृत्व के संवंध में वहुत कुछ वातचीत होती है। मै ऐसी वातचीत को प्रोत्साहन नही देता। जानवूझ कर नेतृत्व के विषय में वातें करना केवल आडंवरपूर्ण मूर्खता है। हमे अपनी ओर देखना चाहिए, और अगर हम अपनी ठीक-ठीक देख-भाल कर सके तो हमे और देशो की सेवा करने के अवसर मिलेंगे, नेता वनकर और उन पर रोव जमा कर नही, वल्कि इस लिए कि वह खुद आकर हमारी सेवाओ की इच्छा करेंगे। लेकिन इससे पहले कि हम औरो की सेवा करना चाहे या दूसरो का पथ-प्रदर्शन करना चाहे, हमें ऐसा कर सकने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

भारत ने आज ससार में कई कारणो से वड़ा नाम पाया है। लेकिन सवसे मुख्य कारण महात्मा गाधी है। उन्होंने ही भारत को इतनी प्रतिष्ठा दी है, और यह प्रतिष्ठा भारत की सेना या नौसेना या सपत्ति के कारण नही मिली है, वल्कि इस कारण कि हम में से जो सवसे महान थे, उन्होंने नैतिक क्षेत्र में ससार की, ससार के राजनीतिज्ञो की क्षुद्रता दिखा दी। इसलिए भारत को यह प्रतिष्ठा यो मिली कि लोगो ने भारत की एक विशेष नैतिकता के सिलसिले में कल्पना की। और वे ठीक थे, इस मानी में कि भारत ने गाधी को उत्पन्न किया, यद्यपि हम में से अधिकतर छोटे लोग है, और उनका अनुसरण करने के अधिकारी भी नही है। इसलिए हमें इस समस्या पर नैतिकता के प्रसग में विचार करना चाहिए। और फिर मै इस वात पर लौट कर आता हू कि हममें आपस में चाहे जितना मतभेद हो और मै मतभेद से घवड़ाता नही—लेकिन चाहे हममें मतभेद हो या नही हमें अपने मन में साफ समझ लेना चाहिए कि हम गिरे हुए साधनो को न ग्रहण करेंगे, हम हिंसात्मक साधनो को न अपनाएँगे और हम अशिष्ट साधनो का उपभोग नही करेंगे। हम अपने देश को अशिष्टता के प्रदर्शन द्वारा, गिरे हुए कामो द्वारा या जहाँ-तहाँ हुई हिंसा द्वारा वड़ा नही वना सकते। जव राष्ट्र युद्ध के समय आपस में हिंसात्मक उपायों का प्रयोग करते है, तो वही क्या कम वुरा है? लेकिन एक सकीर्ण घरेलू क्षेत्र में,

जैसे सड़को पर और इसी प्रकार से हिंसा कहीं अधिक कुत्सित हो जाती है। इसलिए मैं आप से अनुरोध करूँगा कि आप इन सब बातो पर विचार करे और यह अनुभव करे कि हम अपने देश और संसार के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण समय में रह रहे है। हम पर इस समस्या और इस प्रश्न को समझने की एक बड़ी जिम्मेदारी है, जिसमे हम विचार कर सके कि वह कैसे हल हो सकता है और इस प्रसंग मे हमारे लिये उचित कार्य क्या होगा।

उद्योग

उत्पादन हमारी पहली आवश्यकता है

डा० मुकर्जी, मित्रो और साथियो, मै विशेषकर इस अवसर पर, आपको इस प्रकार संबोधन करने का साहस करता हूं, क्योकि कदाचित् हमारी कोई भी दूसरी बड़ी समस्या ऐसी नही, जिसमे कि मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना की इतनी आवश्यकता हो, जितनी कि उद्योग, श्रम और देश के साधारण आर्थिक संगठन की समस्या है। यह मेरी कुछ ढिठाई है कि इस सम्मेलन में और उन समितियों में जो आप पिछले कई दिनो से कर रहे है, पहले हिस्सा न लेकर, इस करीब-करीब आखिरी दर्जे पर आकर और वह भी मानो कुछ उपदेश देने के लिए, शरीक हुआ हूं। आप लोगो में से बहुत-से अपने-अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ है, चाहे वह श्रम का क्षेत्र हो और चाहे उद्योग का। यद्यपि मेरी इन मामलो में बड़ी दिलचस्पी है और शायद कभी-कभी विशेषज्ञो की अपेक्षा भी इस मानी में अधिक अच्छी स्थिति में हूं, कि एक साधारण आदमी सारी तस्वीर को अपने कार्यक्षेत्र के एक विशेषज्ञ की अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंग से देख सकता है। फिर भी मै पसंद करता कि पिछले कुछ दिनों के आपके विचार-विनिमय में भाग लेने का अवसर मुझे प्राप्त होता और मै इस सभा के विचार और जो लोग इस विचार-विनिमय में भाग ले रहे है, उनके विचारो की प्रगति से परिचित हो सकता।

यह स्पष्ट है कि इन बहुत महत्वपूर्ण मामलो में मतभेद है। और लोगो के दृष्टिकोणों के गहरे भेद है। एक ओर आदर्श कहलाने वाली चीजें है, दूसरी ओर जिसे व्यावहारिक दृष्टिकोण कहते है वह है। मैंने पाया है कि यह व्यावहारिक कहलाने वाला दृष्टिकोण प्रायः कम से कम व्यावहारिक होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण के लिए यह आवश्यक नही कि जहां आप है उससे एक गज से आगे आप देख ही न सकें, बल्कि इसके लिए तो आवश्यक है कि आप और आगे भी देख सकें। तो, इस तरह के भेद है और यह समझना कि इन्हे जादू से दूर किया जा सकता है और यह समझना कि केवल सदभावना से या अच्छे परामर्श द्वारा पूरा मतैक्य पैदा हो सकता है, एक फिजूल सी बात होगी। फिर भी मै समझता हूं कि दृष्टिकोण के भेदो को दूर किए बिना भी अगर हम यह समझ जायें कि घटनाओ के विशेष प्रसंग में यह आवश्यक और बहुत वाञ्छनीय है कि लोग मिल-जुल कर काम करें, तो हम एक वातावरण तैयार करते है जो हमें कुछ

नई दिल्ली में औद्योगिक सम्मेलन के अवसर पर, १८ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

स्थायी न सही, कम-से-कम अर्द्धस्थायी या स्वल्पकालिक परिणामों पर पहुँचा सकने में सहायक होता है।

अव, यह दृष्टिकोण भिन्न क्यो है? मै अनुमान करता हूँ कि कुछ तो इस कारण कि जीवन के प्रति, जीवन के ध्येयो के प्रति, सामाजिक व्यवस्था आदि के प्रति आदमी के दृष्टिकोण में कुछ अन्तर होता ही है; लेकिन इन वड़ी वातों को छोड़ कर वहुत मोटे ढग से कहा जाय तो भेद इसलिए उत्पन्न होते है कि विविव वर्गो का उद्देश्य कोई-न-कोई लाभ प्राप्त करना होता है। पूँजीपति कुछ लाभ विशेप चाहेगे, श्रमिक कुछ और चाहेगे और भोक्ता, उत्पादक, सभी स्वभावतया अपने अपने वर्ग के लिए कुछ न कुछ लाभ चाहते है।

लेकिन एक समय आता है, जव कि विरोधी वर्ग आपस मे लड़ते जाते है और पुरस्कार गायव हो जाता है और वह किसी के लिए भी वच नही रहता। इसलिए ऐसे समयो मे यह आवश्यक होता है कि अपने उत्साह को या पुरस्कार जीतने की विशेप इच्छा को आदमी संयत करे और इस तरह पुरस्कार को वचा ले। यह आवश्यक नही कि पुरस्कार पाने की आशा ही छोड़ दी जाय, वल्कि यह कि प्रथम वस्तुओ को प्रथम स्थान दिया जाय। अर्थात् पुरस्कार को वचा लिया जाय; फिर या तो मैत्रीपूर्ण ढंग से भविष्य के लिए निर्णय पर पहुँचा जाय, और अगर यही ठीक मालूम हो तो उसके लिए लड़ लिया जाय; लेकिन जव कि लड़ाई से स्वयं पुरस्कार खतरे मे पड़ रहा हो, तव स्पष्ट है कि लड़ाई द्वारा उसे प्राप्त करने का उपाय वड़ा दुर्भाग्यपूर्ण और मूर्खता-पूर्ण सिद्ध होगा।

आप सभी जानते है कि पिछले कुछ महीनो के भीतर भारत सभी तरह के घोर संकटो मे से होकर गुजरा है और हमें वहुत वड़ी-वड़ी समस्याओ का सामना करना पड़ा है। कई तरह के वड़े चीर-फाड के वाद भी हम जीवित है, और संभवत. इस तरह की चीर-फाड़ में हमे अव न पड़ना होगा। लेकिन इस चीर-फाड़ के परिणाम इतने भयानक हुए है कि हममें से किसी ने नही समझा था कि वह इतने वुरे होगे। हम जानते थे कि परिणाम वुरे होगे। इसी से हमने चीर-फाड़ का विरोव किया और जिसे कठवैद्यो का इलाज कहेगे, उसका विरोव किया, लेकिन दुर्भाग्यवश कभी कभी सुनियन्त्रित घरो में भी कठवैद्यो की चल जाती है। परिणाम यह हुआ कि चीर-फाड़ हुई, और आपने देखा कि कितन और कैसे-कैसे उलटे-पलटे इसके परिणाम हुए। हम उन परिणामों के असर को अभी दूर नही कर सके है, और हमें उनसे भी वड़ी समस्याओ का सामना करना है।

जव कि एक ओर हमें इनका सामना करना पड़ा, दूसरी ओर हमने

देखा कि क्रमश. अधिकाधिक बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति उत्पन्न हो गई है। हम वितरण की समस्याओ की बात करते है, और वह ठीक भी है। वास्तव में हमारी अधिकांश कठिनाइयाँ, संघर्ष और मुख्य विचार-धाराए वितरण से ही संबद्ध है। वितरण निस्सन्देह महत्वपूर्ण है, फिर भी वितरण की क्रिया तो स्पष्टत. यह है, कि वितरण के योग्य कुछ ठोस वस्तु भी हो। इस तरह हम पुन. उत्पादन की समस्या पर पहुँचते है। उत्पादन पहली आवश्यकता हो जाती है, लेकिन इसके साथ वितरण का बहुत निकट संबंध है। वास्तव में आप दोनो को अलग नही कर सकते। उत्पादन कई बातो पर निर्भर है, और इन में से एक सबसे महत्व की बात है उत्पादन की मनोवृत्ति। यंत्रादि के रूप में जो भी साधन हमारे पास हो, उनके अतिरिक्त, कौशल होना चाहिए, क्षमता होनी चाहिए और उत्पादन की मनोवृत्ति होनी चाहिए। यदि इस मनोवृत्ति की कमी है, तो अनिवार्य रूप से उत्पादन गिरेगा, जैसा कि वह गिर गया है।

अब, आप पिछले कुछ महीनो का या कुछ वर्षो का चाहे जिस प्रकार विश्लेषण कीजिए। बहुत सी बातें है। एक तो युद्ध के परिणाम है--कठिन श्रम के बाद एक थकान की-सी भावना। राजनैतिक उथल-पथल के परिणाम है, इसी तरह देश के विभाजन के, सांप्रदायिक झगड़ो के और इसी तरह की और बातो के। लेकिन कहना चाहिए कि शायद एक प्रमुख बात जिस का कि औद्योगिक संबंधो में हमें सामना करना पड़ रहा है, वह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है, जो कि श्रमिक को अनुभव कराती है कि उसको उसके श्रम का उचित बदला नही मिल रहा है, और यह कि हर किसी प्रकार से उसे बराबर दबाया जा रहा है। इससे मालिक वर्ग में यह भावना पैदा होती है कि उनके सामने तरह तरह के खतरे है,-श्रमिक पूरा उद्योग नही कर रहा है, वह केवल हडताल की धमकियां देता है और काम ढीला करता है, इत्यादि इत्यादि। इस तरह वे एक दूसरे के समीप विश्वास के साथ नही आते, बल्कि एक चरम विरोध भाव से आते है।

हम इस स्थिति से कैसे पार पावें? एक तरफ तो मैं समझता हूँ कि यह कहना बिल्कुल सच है कि श्रमिको या श्रमिको के कुछ वर्गो की प्रवृत्ति यह है कि वे राष्ट्र के सामने आई हुई कुछ कठिनाइयो से लाभ उठाएं, हडताल करें, काम बन्द करें या ऐसे वक्त मे काम ढीला करें जब इन की गहरी क्षति होती है। अगर इस तरह की बात श्रमिको की तरफ से होती रही--जिनके पक्ष में निस्संदेह देश के बहुसंख्यक लोगो की सहानुभूति है--तो एक बड़े श्रमिक दल और शेष देश के बीच एक दीवार खड़ी होना शुरू हो जायगी। और इस प्रकार की दीवार को बढ़ने देना बहुत अच्छा नही है।

इतनी बात तो हुई श्रमिको के विषय में। जहा तक कि मालिको या पक्ष

हैं, मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस बयान पर कोई आपत्ति न करेगा कि पिछले युद्ध के समय में, मालिको के एक वर्ग ने ठीक आचरण नही किया। वास्तव में उनका आचरण बहुत ही बुरा और बहुत ही स्वार्थपूर्ण रहा है। और किसी से उचित सौदा करने की बात तो बहुत दूर, वह अधिकतर अपने नफे की बात ही सोचते रहे हैं और कुछ नही। मुझे अब भी यह समझ मे नही आया कि भारत में इतने बड़े और भारी टैक्सो के बावजूद कुछ व्यक्तियो या वर्गो ने इतनी बड़ी संपत्ति कैसे जुटा ली ? कुछ उपाय और संगठन ऐसा करना है कि मनुष्यों के साथ ऐसा शर्मनाक व्यवहार न हो और राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाली ऐसी नफाखोरी रोकी जा सके।

इस तरह श्रमिको के विशेष वर्ग या मालिको के विशेष वर्ग के दोष ढूंढ़ निकालना सहज है। लेकिन हमे केवल दोष नही ढूढना है, बल्कि उन्हे दूर करने के उपाय ढूंढने हैं। आप हर एक आदमी को देवदूत नही बना सकते। अगर लोग इतने उन्नत हो जाएं और उस तरह आचरण करने लगें, तो हमारे सामने समस्याएँ ही न रह जायेंगी। एक इलाज यह है कि हम ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दें जिनमें कि उन लोगो के लिए जो देवदूत नही है, रहना कठिन हो जाय और वे अपने रास्ते में कठिनाइयां पावे। अर्थात आप न्याय्य व्यवहार और ईमानदारी के प्रति आकर्षण पैदाकर दे और उससे भिन्न आचरण करने वाले यह पाएं कि उन्हें असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

उन लोगों की बात छोड़ दी जाय जो कि व्यवहार और ईमानदारी में कसौटी पर ठीक नही उतरते। वास्तविक कठिनाई तब होती है, जब कि ईमानदार लोगो में आपस में संघर्ष होता है। अगर वह पूरी तरह से ईमानदार है, उनकी भिन्न भिन्न रायें है, तो वह संघर्ष में आयेगे। साधारणतः वह लोग, जो ईमानदार नही है, वह आपस के मतभेदों को जल्दी दूर कर लेते है, क्योकि कोई मजबूत चीज नही होती जिसे कि वे पकड़े रह सके। उनके साथ कोई लंगर नही होता, जो उन्हें स्थिर रक्खे। वे बस तिरते रहते है, और इस तरह घटनाओ के दबाव में, वे समझौता कर लेते हैं। लेकिन ईमानदार लोग जो अपने मन्तव्यो में खूब दृढ होते है, समझौता नही करते क्योकि वे समझते हैं कि उनके मत से भिन्न तरीका गलत है। अब, मैं मान लेता हूँ कि हममें से जो लोग यहां अधिकतर विद्यमान है, वे ईमानदार हैं और ऐसे हैं जिन्होंने इन विषयो पर विचार किया है, और इन पर अपने दृढ मत रखते हैं; इसी कारण वे दूसरे व्यक्ति का मत स्वीकार करने में जरा कठिनाई अनुभव करते है।

फिर भी एक बड़ी बात हमारे सामने है: वह यह कि आज भारत में हमारे सामने अनेक तरह के संकट उपस्थित हैं। यद्यपि इनमें से कुछ अगली

पक्ति में आ गए है, तथापि वास्तव में हमारी सब से बड़ी समस्या यह है कि क्रमशः राष्ट्र की उत्पादन शक्ति शुष्क हो रही है। इसके हम पर राजनैतिक, आर्थिक और सभी प्रकार के असर पड़ते है और इसी से क्रमशः खतरों का मुकाबला करने की हमारी शक्ति क्षीण होती जाती है। इसलिए अपनी उत्पादन शक्ति जब को शुष्क हो जाने से आपको बचाना है।

मुझे विश्वास है, आप इन बातो पर विचार करते हैं, और आपने इन विषयो पर कई प्रस्ताव स्वीकार किए है। हमें अपना उत्पादन बढ़ाना है; हमें अपनी राष्ट्रीय संपत्ति और राष्ट्रीय आय की वृद्धि करनी है, और तभी यह संभव होगा जब कि हम अपनी जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा कर सकें।

जहाँ-तहाँ मौजूदा सम्पत्ति का अधिक न्यायसंगत वितरण करके, हम स्थिति को कुछ हद तक ठीक कर सकते हैं। इसे करना चाहिए परन्तु मैं इसलिए नहीं कि इससे रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने में विशेष अन्तर आवेगा—अन्तर तो आवेगा लेकिन कुछ विशेष नही— लेकिन इसे करना चाहिए, चूकि यह उन्नति के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और यदि ऐसा नही होता तो यह भावना बराबर बनी रहती है कि लोगो के साथ न्याय नही हो रहा है, और तब वे जो काम करते है, जी लगाकर नही करते। इसलिए, यह सबसे पहले आवश्यक हो जाता है कि जहाँ कही भी घोर विषमताएँ हो, वहाँ इन विषमताओं को कम करने के उद्योग में हम लगें। लेकिन अन्त में, अधिक सम्पत्ति सभी प्रकार और ढंग के माल के अधिक उत्पादन से ही आवेगी।

अनुमानत', आप लोगो में से बहुत से बड़े उद्योगो के प्रतिनिधि हैं, और मुझे संदेह नही कि बड़े उद्योगो द्वारा उत्पादन आवश्यक है। लेकिन वर्तमान घटनाओ के प्रसंग में मै कहना चाहूँगा कि जब हम उत्पादन की वृद्धि के विषय में बात करते है—वह चाहे अन्न का हो, चाहे किसी दूसरी वस्तु का—तब यह आवश्यक है कि हम छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन को भी खूब प्रोत्साहन दें। इस विषय पर अक्सर इस तरह विचार किया जाता है, जैसे बड़े और छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादनों के बीच कोई स्वाभाविक संघर्ष हो। शायद, इस तरह इस सवाल को और तरीके से सोचा जा सके। लेकिन संघर्ष के इस खयाल को अलग रख कर यह मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि विशेषकर आजकल और संभव है आगे भी, छोटे और बड़े दोनों को साथ ही साथ चलना पड़े। और खासकर स्वल्पकालीन योजना के अन्तर्गत आज सभी प्रकार की चीजो के छोटे पैमाने पर होने वाले उत्पादन को बहुत अधिक बढाने की आवश्यकता है, क्यो कि सभी तरह की चीजों की कमी है। इस समय हमारी वास्तविक आवश्यकता यह है कि एक ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण उप-

स्थित किया जाय, और एक इस प्रकार का सगठन हो कि जिससे दोनो तरह के उत्पादनो के पारस्परिक संघर्षो का निपटारा हो सके।

अब,जब कि हम और दुनिया के साथ साथ कुछ सकटों का सामना कर रहे है, और साथ ही हमारी कुछ अपनी खास मुसीवतें भी है, तो हमें कैसे आगे वढ़ना चाहिए ? जो पहला विचार किसी के मन मे उठता है वह यह है कि इस टूटती हुई दुनिया में जो कि फिर एक विशाल संघर्ष की ओर बढ़ रही है, जितनी जल्दी हम भारत को अपने पैरो के सहारे खडा करते है, उतना ही अच्छा है। यदि इस समय हम अपना पूरा जोर लगा सकेगे और जीवित रह सकेंगे तभी निकट भविष्य में प्रभाव रहेगा। कोई भी, वड़े से वड़ा विशेषज्ञ भी यह नही कह सकता कि कव तक यह अनिश्चित शांति दुनिया में वनी रहेगी। हम आशा करते है कि यह वहुत वर्षों तक वनी रहेगी, लेकिन यह किसी समय भी भंग हो सकती ह। और यदि ऐसा होता है, तो आप अनुभव करेंगे कि सभी तरह की अप्रत्याशित वातें हो सकती है। और अगर ..शाति भग हुई तो वह हमे ऐसा हिला देगा जैसा कि आज तक किसी अन्य वात हमें नही हिलाया है।

सवाल यह है कि इस आकस्मिक संकट का सामना हम कैसे करे ? यह कभी हो सकता है कि हम कोई घटना घटने से पहले आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से एक दृढ़, संतुलित भारत का निर्माण कर लें जिसका अपना काफी मजवूत रक्षा संगठन हो। याद रखिए कि आज रक्षा सगठन के क्या अर्थ होते है। लोग फौज और नौ-सेना और हवाई शक्ति की वात करते हैं। स्पष्ट है कि रक्षा का तात्पर्य इन से ही है। लेकिन फौज और नौ-सेना और हवाई शक्ति से कही अधिक रक्षा का अर्थ उद्योग और उत्पादन है। नही तो सारे संसार के सिपाही भी भारत का कुछ भला न कर सकेंगे। लोग अनिवार्य फौजी सेवा की वात करते है। एक दृष्टि से, मै, साधारणतः अनिवार्य फौजी सेवा के पक्ष में नही हूँ। लेकिन मै इस मानी में इसके पक्ष में हूँ कि यह जनता को कुछ अधिक अनुशासन सिखावेगी। शारीरिक उन्नति की दृष्टि से भी मै इसके पक्ष मे हूँ।

लेकिन अनिवार्य सैनिक शिक्षा की वात, रक्षा की दृष्टि से, कोई विशेष महत्व नही रखती। क्योंकि वास्तविक समस्या यह नही है कि लोगो में युद्ध की मनोवृत्ति पैदा की जाय, वल्कि वह यह है कि उन्हें लड़ाई के साधन प्राप्त हो। अगर आपके यहाँ करोड़ो आदमी दकियानूसी हथियार और लाठियाँ लिए हुए हो, तो उससे वहुत लाभ नही होगा। आपको युद्ध के सभी मुख्य साधनो का उत्पादन कर सकना चाहिए। वास्तव मे युद्ध में हथियार और सभी तरह की चीजे आवश्यक है। अगर आप औद्योगिक दृष्टि से मजबूत है तो आप अपनी फ़ौज, नौ-सेना और हवाई शक्ति थोड़े

हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी, बंगलोर में श्री नेहरू
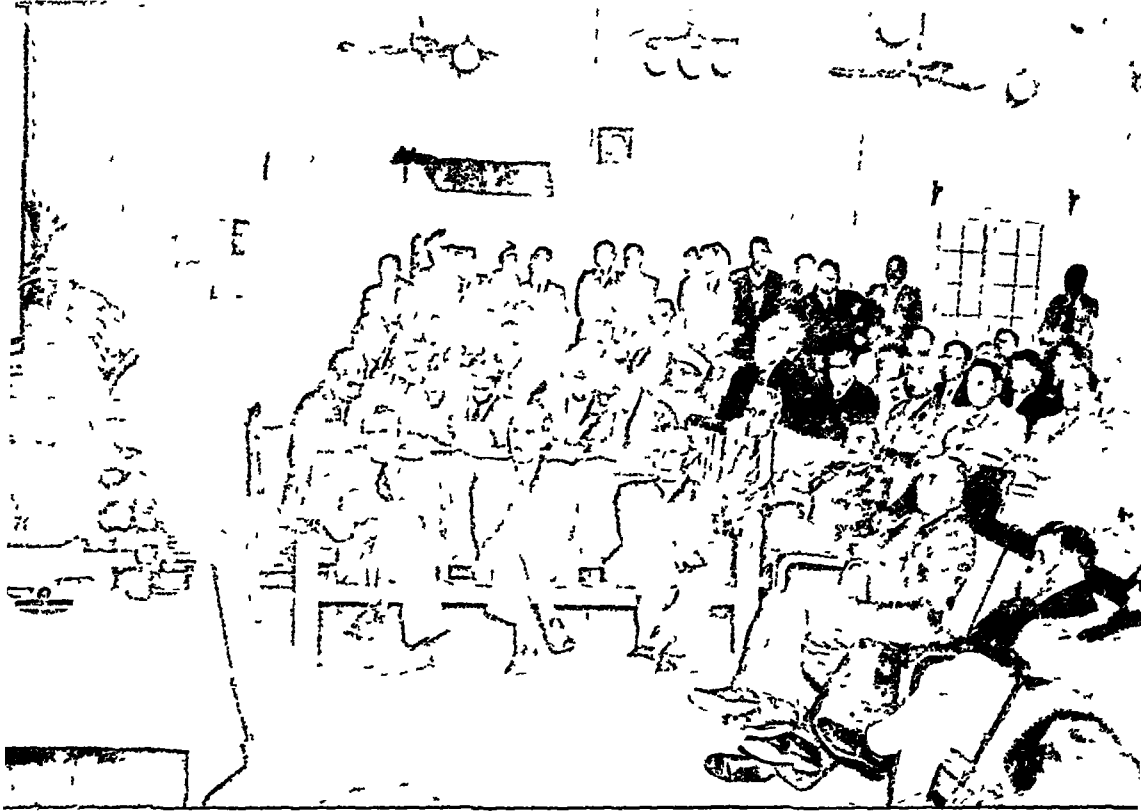
ई दिल्ली मे सिंचाई के केन्द्रीय वोर्ड के उन्नीसवे वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए

नई दिल्ली में फेडरेशन आफ इंडियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री के वार्षिक अधिवेशन में
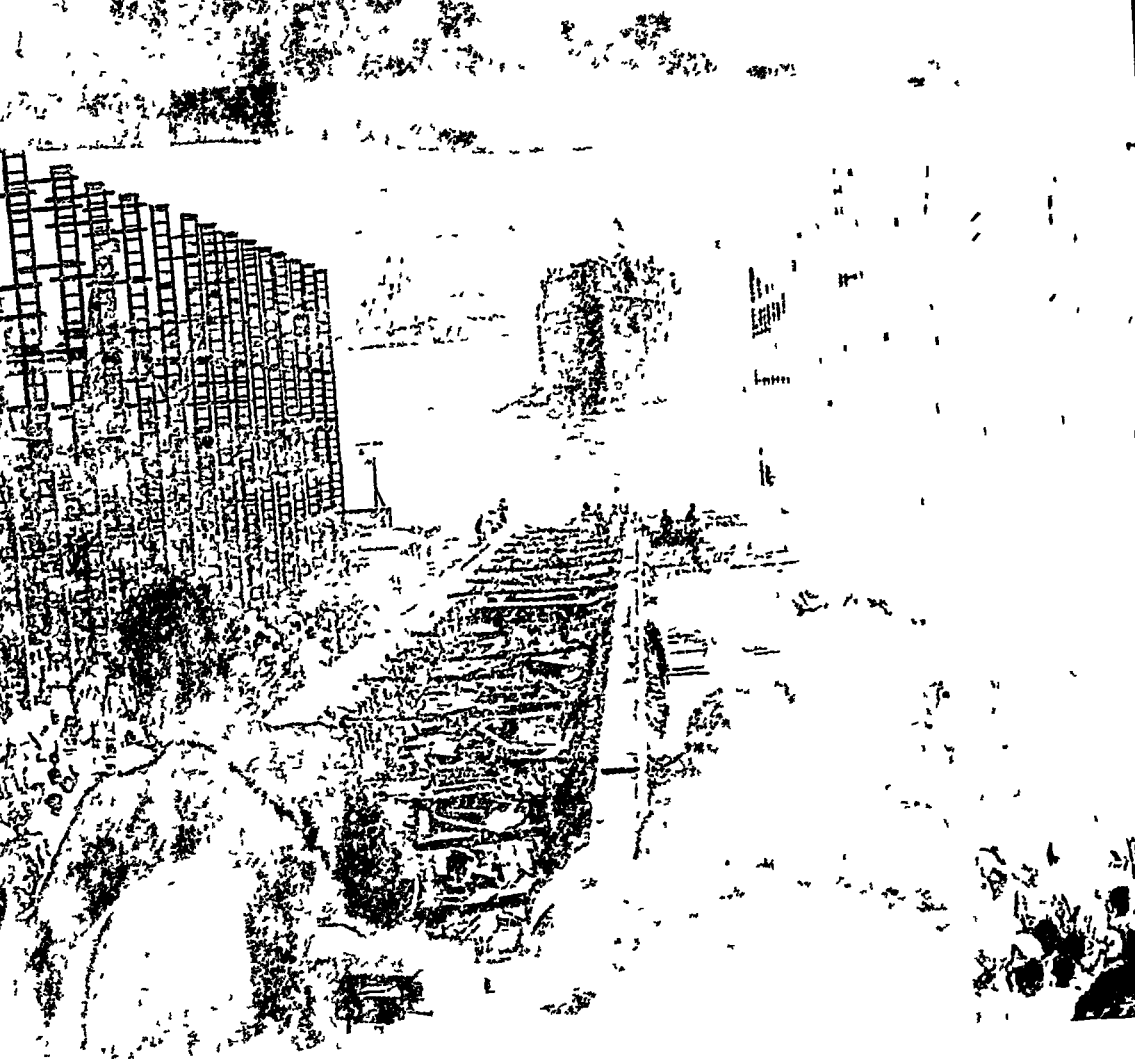
'जल उषा' को समुद्र में उतारते समय

समय मे तैयार कर सकते हैं। अगर आप अपने जंगी जहाज, और सब कुछ विदेश से खरीदने पर निर्भर करते हैं और वह स्रोत शुष्क हो जाता है, और कुछ हजार आदमी 'युद्ध, युद्ध' चिल्लाते रहते है, तो वह बिल्कुल बेकार है। इसलिए, अन्तिम विश्लेषण करने पर यह लड़ाई का मामला भी आपको उत्पादन, और बड़े-छोटे उद्योगों की उन्नति की आवश्यकता पर पहुँचाता है।

पिछले युद्ध के जीतने में कई बातों ने मदद दी थी। लेकिन मेरी समझ में अन्तिम कारण दो ही थे - अमरिकी उद्योग की आश्चर्यजनक क्षमता और वैज्ञानिक अनुसन्धान। इन्ही दो चीजो ने युद्ध जीतने में जैसी मदद थी उतना सिपाहियो तथा औरो चीजों ने नही। इसलिए बाहरी और भीतरी, हर एक दृष्टि से उत्पादन के ढीले पड़ने को रोकना चाहिए और नए व्यवसायो के निर्माण द्वारा इसे तेजी से आगे बढाना चाहिए। हमें बेकारी की, और रहन सहन के स्तर को उठाने की समस्याओ के हल करने में लगना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि उद्योग के क्षेत्र में शान्ति हो। वहाँ शान्ति हुए बिना यह करना असम्भव होगा। और मै यह मानता हूँ कि इस सम्मेलन का उद्देश्य यह है कि कम से कम कुछ काल तक उद्योग के क्षेत्र में शान्ति रहे, जिसमें कि हमे दम लेने का अवसर मिले।

मै अभी एक प्रस्ताव पढ रहा था, जिसके मसविदे में तीन साल की अवधि बताई गई है। किसी विशेष अवधि में मेरी दिलचस्पी नही, और कुछ समय से मेरे मन में दीर्घ-कालीन उद्देश्यो की बात—सिवाय एक आदर्शवादी रूप में—उठी ही नही है। मै अपने लिए कुछ दिन या कुछ सप्ताह आगे का कार्यक्रम नही बना सकता। मै नही जानता कि मै कहाँ रहूँगा। इसलिए मेरी इसमे ज्यादा दिलचस्पी नही है कि यह अवधि दो साल की हो या तीन साल की।

तात्पर्य यह है कि भारत के लिए यह बहुत बडी बात होगी, अगर आप सब, और वह लोग जिनके आप प्रतिनिधि है, इस परिणाम पर पहुँचे कि इस प्रस्ताव को अवसर देना चाहिए और कुछ काल के लिए ऐसा समझौता होना चाहिए कि कोई हड़तालें न हो और कोई बहिष्कार न हों। और ऐसा आप किस तरह कर सकते है ? स्पष्ट है कि जब तक कि कोई ऐसी संस्था या सगठन न हो, जो कि झगडो का सबधित लोगो के लिए सन्तोषप्रद या कमोबेश सन्तोषप्रद—क्योकि जब दो पक्षो में झगडा हो तो १०० प्रतिशत किसी का सन्तोष नही हो पाता—निबटारा न कर सके, तब तक यह आशा रखना बहुत कठिन है। मै अनुमान करता हूँ कि इस तरह का सगठन या योजना तैयार करना आदमी की बुद्धि या इस सरकार की बुद्धि के भी बाहर की बात नही होनी चाहिए। जब भी ऐसी योजनाएँ पेश होती है, तो यह एक अजीब बात है कि दोनो तरफ से आपत्तियाँ की जाती है।

अभी उस दिन मैं कलकत्ते मे था। वहाँ असोसिएटेड चेंवर्स आफ कामर्स के सभापति श्रोताओ से वार वार कहते रहे कि सरकार को किसी प्रकार से बीच में पड़ना या हस्तक्षेप करना न चाहिए। उन्होंने समझा कि अगर सरकार अलग खड़ी रही तो उद्योग की उन्नति होगी। मुझे यह सुनकर बहुत कुतूहल हुआ, क्योंकि मैंने समझ रखा था कि यह विशेष दृष्टिकोण अब धरती से उठ गया है। लेकिन कलकत्ते में यह अब भी मौजूद है। कम से कम, श्रमिक वर्ग सरकार का हस्तक्षेप साफ साफ चाहता है। जब श्रमिकों से पंचायती या अदालती फैसले के लिए कहा जाता है, तो वे उसका स्वागत करते हैं। लेकिन इस विषय में उनकी कल्पना यह है कि यदि वे सफल होते हैं तब तो ठीक है। नही तो वे जो चाहें करने के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसी मनोवृत्ति को मैं समझ सकता हूँ। यह पुराने समय का एक अवशेष है। लेकिन व्यवहारतः अगर आप फैसलो को इस दृष्टि से देखते हैं तो पंचायती या अदालती फैसला असंभव हो जाता है। इसलिए यदि हम एक नियमित निष्पक्ष संगठन बना सकते हैं, और मैं समझता हूँ कि बना सकते हैं यद्यपि यह मानी हुई बात है कि आधुनिक संसार में यह संगठन श्रमिको के पक्ष मे झुकेगा—तो हम इन कठिनाइयो को, या जो कठिनाइयाँ समय समय पर उठें, उन्हें दूर कर सकते हैं।

मैं इस समय भविष्य की आर्थिक नीति और राष्ट्रीयकरण के गुण-दोष के विषय में अन्तिम निर्णय के सम्बन्ध में नही कह रहा हूँ, यद्यपि ये प्रश्न भी अनिवार्य रूप से उठते हैं। इस समय तो मेरी समझ में पहला कदम यह होना चाहिए कि छोटे छोटे भेदों का आपस मे निवटारा हो जाय, और हम नीति सम्बन्धी बड़े ध्येयो पर विचार करते रहे। नीति सम्बन्धी बड़े ध्येयों के विषय में मैंने अभी कुछ कलकत्ते में तथा कुछ और जगहों पर कहा है। उसे मैं यहाँ न दुहराऊँगा।

एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से बोलते हुए, जिसका कि उद्योग के समाजीकरण में विश्वास है, मैं यह कहना चाहूँगा कि आजकल अकसर वर्तमान उद्योगो को ही सरकार के अधिकार मे लाने की बात पर ध्यान दिया जाता है, न कि राज्य-द्वारा या राज्य के अंकुश में नए उद्योगो के निर्माण पर। बहुत से मामलो मे, यह जरूरत पड़ सकती है कि बुनियादी किस्म के मौजूदा उद्योगो को, राज्य अपने हाथ में ले ले। लेकिन मेरी राय से इस समस्या के विषय में यह बहुत अच्छा रहेगा कि राज्य अपना अधिक से अधिक ध्यान मौजूदा ढंग के नए उद्योगों पर दे, और उन पर पूरा नियन्त्रण रखे, क्योकि तब राज्य के साधन, आगे की ओर संयमित उन्नति के लिए उपयोग में आवेंगे, न कि केवल एक मौजूदा चीज पर अधिकार करने के लिए। यह जरूर है कि कभी कभी ऐसा भी करना पड़ता है।

अगर मुझसे पूछा जाय तो मैं यह कहना चाहूँगा कि कुछ हद तक मेरा चिन्तन

एक वैज्ञानिक झुकाव लिए हुए होता है, और मैं स्थिर की अपेक्षा गतिशील ढंग से विचार करने की कोशिश करता हूँ। मौजूदा उद्योग, जिसके विषय में अधिकतर लोग क्या पूंजीवादी, क्या समाजवादी और क्या साम्यवादी, एक दम गतिहीन ढंग से विचार करते हैं, मानो सदा इसी रूप में चलता जायगा, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि वह बिल्कुल दकियानूसी हो गया है, और उसके अधिकांश भाग को नष्ट कर देने की आवश्यकता है।

यदि आप किंचित् गतिशील ढंग से विचार करें, तो आप देखेंगे कि हम परिवर्तन के एक बड़े युग में से गुजर रहे हैं, जब कि शक्ति के बिल्कुल नए स्रोतों को उपयोग में लाया जा रहा है। आज न सिर्फ औद्योगिक क्रान्ति या विद्युत् क्रान्ति के ढंग की चेष्टाएं हो रही हैं, बल्कि उससे भी दूर के परिणाम रखने वाली बातें हो रही हैं। अगर औद्योगिक क्रान्ति के समय कोई उससे पूर्वकाल की स्थिति को ही ध्यान में रखते हुए यह सोचता कि हमें अमुक चीजें प्राप्त करनी हैं, तो कुछ समय बाद, जब कि नया युग आ गया और शक्ति के नए साधन अस्तित्व में आ गए, तब नई व्यवस्थाओं में उसे अपने लिए कोई जगह न दिखाई दी होती। इसी तरह हम एक नए व्यावसायिक युग के सन्निकट हैं और चाहे दस या पन्द्रह या बीस वर्ष लगें—इस से अधिक समय तो मेरी समझ में क्या लगेगा—उत्पादन के हमारे बहुत से तरीके बिल्कुल दकियानूसी हो जायँगे, और जिस चीज पर आप अधिकार करने की सोच रहे हैं उसका, सम्भव है, तब कोई मूल्य ही न रह जाय। इसे चेतावनी समझिए। मैं उम्मीद करता हूँ कि ऐसा कहने से लोग इतना न डरेंगे, कि वे किसी व्यवसाय में पूंजी लगाने का खयाल छोड़ दें। लेकिन आज आदमी को इन परिवर्तनों के बारे में बहुत सतर्क रहना पड़ता है, और उसे बीते हुए समय की न सोचकर आगे की सोचना चाहिए, क्योंकि अतीत मर चुका और बीत चला, हम उसके पास लौट कर नहीं जा सकते, और वर्तमान भी बहुत तेजी से बदल रहा है। यदि आप भविष्य की दृष्टि से देखें, तो हमारे आज के बहुत से संघर्ष अनावश्यक जान पड़ेंगे। तब कम से कम, एक नया पहलू आप को दिखाई देगा, जिससे पुराने ढंग की लीक से आप बाहर आ जायँगे।

मैं नहीं कहता कि आप अपने विचारों और विश्वासों को छोड़ दीजिए। आप उन पर टिके रहिए। केवल यह अनुभव कीजिए कि आपको विशेष विचार-धारा के लिए भी पनपने का अधिक अवसर उस समय मिलेगा, जब कि शान्ति स्थापित हो और अगले साल दो साल के लिए हम इसी समय कुछ इकट्ठा कर लें, और इस बीच में हम अपनी उन दूसरी नीतियों का विकास करें। अगर आप लड़ लेना चाहते हैं, तो उसके बाद लड़ भी लीजिए। लेकिन कम से कम कुछ ऐसी चीज भी सामने हो जिसके लिए लड़ाई की जा सके। नहीं तो जिस चीज के लिए हम लड़ें, वही गायब हो जाय; तो यह बात न तो अच्छी ही होगी और न अक्लमन्दी की ही।

कल रात मैंने सुना--इसे अखबारो मे मैंने खुद नही देखा है--कि बम्बई में यह घोषणा हुई है कि निर्णयिक व्यवस्था की स्थापना के और कट्रोल उठाने के विरुद्ध एक दिन की हड़ताल होगी जिसे साकेतिक हडताल कहा गया है, और मै इन दो बातो के विषय में यहाँ कुछ न कहूँगा। लेकिन मुझे किसी भी संगठन के लिए, चाहे उसके जैसे भी विचार हों, यह एक आश्चर्यजनक रूप से गैरजिम्मेदारी की बात जान पड़ती है, कि वह इस समय और इस ढंग से हड़ताल संगठित करे, चाहे वह एक ही दिन भी तथा सांकेतिक ही क्यो न हो। इससे यह दिखाई देता है कि राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय आर्थिक, मानवी और वास्तव मे किसी भी स्थिति को समझने का ज़रा भी प्रयत्न नही किया गया। मै किन्ही लोगों की, उनसे हर मामले पर बात किए बिना आलोचना नही करूंगा लेकिन मै मानता हूँ कि मेरी समझ में यह नही आता कि किस तरह कोई जिम्मेदार आदमी इस तरह की सांकेतिक हडताल की बात कर सकता है, जब कि बराबर इसकी सम्भावना है कि इससे और बड़ी समस्याये, और बड़े सघर्ष उठ खड़े हो। और जब कि हम सब इस कठिन स्थिति में एक मार्ग निकालने की कोशिश मे लगे हुए हैं, चाहे वह अल्पकालिक रास्ता ही क्यो न हो, इस तरह की साकेतिक हडताल मे पड़ना मुझे बहुत अनुचित और बड़े दुर्भाग्य की बात जान पड़ती है।

अब यह हड़ताल, जैसा मैंने अभी सुना है, बाध्य निर्णय और कंट्रोल के उठाने के विरुद्ध है। इन मामलो पर मतभेद हो सकता है। लेकिन जहाँ तक कंट्रोल उठाने का विषय है, हमने एक नीति की घोषणा की है, जोकि बहुत ही सतर्क नीति है। कट्रोल का विषय बहुत ही जटिल और कठिनाई का है, और उसके बारे में रायें अलग-अलग हैं। जिस निर्णय पर सरकार पहुँची है, वह निर्णय बहुत विचार के बाद किया गया है। तिस पर भी, हमने इस का प्रबन्ध कर रक्खा है कि यदि कोई बात ठीक न बैठी, तो हम पुरानी स्थिति पर लौट जायें, या अपनी परिस्थिति पर फिर से विचार करें। कट्रोल उठा लेने पर भी हमने कंट्रोल का पूरा यंत्र बना रक्खा है। अब हम सही मार्ग पर हैं या गलत मार्ग पर, यह एक अलग बात है। हो सकता है हम गलत मार्ग पर हो। लेकिन इन मामलो मे आगे बढ़ने का एक ही तरीका है, वह यह कि जैसे भी भूल जान पड़े उसे सुधारने के लिए तैयार रहे। हम इसके लिए तैयार हैं। लेकिन जो बात मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ वह यह है: यह समझा जाता है कि यह सरकार लोकप्रिय सरकार है, और जनता के एक बहुसंख्यक भाग की प्रतिनिधि है। यदि ऐसा है, और यदि सरकार इस तरह का कोई काम करती है, तो उन लोगो को जोकि इस काम का विरोध करते है, किस ढंग से अपना काम करना चाहिए? या तो वे बहुसंख्यक हैं या अल्पसंख्यक। यदि वे बहुसंख्यक है तो उनके लिए सरकार को खतम कर देना बहुत आसान है। अगर वह स्वल्पसंख्यक है तो वे जो कुछ भी करना चाहे उसका यह अर्थ होता है कि वे बहुसंख्यको पर बल प्रयोग करने की कोशिश कर रहे

है। और अल्पसंख्यकों को कुछ समय के लिए सफलता भी मिल जाय तो इसका अनिवार्य परिणाम यह हो सकता है कि बहुसंख्यकों को क्रोध आ जाए और वे अल्पसंख्यकों के पीछे पड़ जाएँ।

आखिर अगर आप झगड़ा शुरू करते हैं और समाज का एक वर्ग दूसरे के खिलाफ बल प्रयोग करना चाहता है, तो दूसरा वर्ग भी वैसा कर सकता है। अर्थात् वर्ग के संकीर्णतम दृष्टिकोण से भी यह धंधा बुद्धिमानी का नहीं है और न इससे कुछ लाभ ही है। बल्कि इससे समाज की बड़ी हानि होती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस तरह की सांकेतिक हड़ताल न की जायगी, क्योंकि एक दिन के उत्पादन की इससे हानि ही नहीं होती, बल्कि इससे अनेक छोटे-छोटे संघर्ष हो सकते हैं। अगर्चे हड़ताल चाहने वालों का अपनी इच्छाओं को किसी दूसरे ढंग से प्रकट करना उचित हो सकता है, जैसे सभाएँ करके या शान्तिपूर्वक प्रदर्शन द्वारा यह दिखाना कि वह कंट्रोल का उठना या वाध्य निर्णय नापसन्द करते हैं।

जिन लोगों के ऐसे विचार हों, उनसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे अपने निश्चयों पर पुनर्विचार करें और एक उदार ढंग से, या मैं कहूँ कि एक अधिक विवेकयुक्त ढंग से यह सोचने का प्रयत्न करें कि उनके कामों के क्या परिणाम होंगे। यह हो सकता है कि बहुत सी बातें ऐसे कारणों से होती हैं, जोकि सतह पर दिखाई नहीं देते। जैसे कोई चुनाव होने जा रहा हो और लोग समझते हों कि यदि वह एक विशेष प्रकार से आचरण करेंगे तो इन चुनावों में—वह चाहे म्यूनिसिपैलिटियों के हों चाहे कार्पोरेशन के और चाहे प्रान्तों के—उन्हें मदद मिलेगी।

अन्त में, यह हम सब के विचार करने की बात हो जाती है कि क्या हम किन्हीं छोटे चुनावों का ध्यान रक्खें, या किन्हीं स्थायी और बड़े हितों का। हाँ, अगर हमारी दिलचस्पी इनमें से पहले में, यानी चुनावों तथा छोटी छोटी बातों में है, तो बड़ी बातों के विषय में कुछ कहना फिजूल है। हम उन्हें न समझ सकेंगे। मुझे विश्वास है कि इस देश में, पर्याप्त मात्रा में, इस बात के पक्ष में निश्चय और बुद्धि है कि इन छोटी कठिनाइयों को दूर कर बड़े प्रश्नों का सामना किया जाय। इसलिए, मैं दुबारा यही कहूँगा कि मैं आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन से बहुत ठोस नतीजा निकलेगा, यानी हम लोग दोस्ती के ढंग से आगे बढ़ेंगे, हम लोग उद्योग के क्षेत्र में एक काल के लिए किसी प्रकार का शान्ति-समझौता करेंगे, हम इस बात का उपाय करेंगे कि हर एक के साथ जहाँ तक संभव हो न्याय हो, और इस बीच हम लोग बैठ कर बड़ी नीतियों के सम्बन्ध में विचार करेंगे।
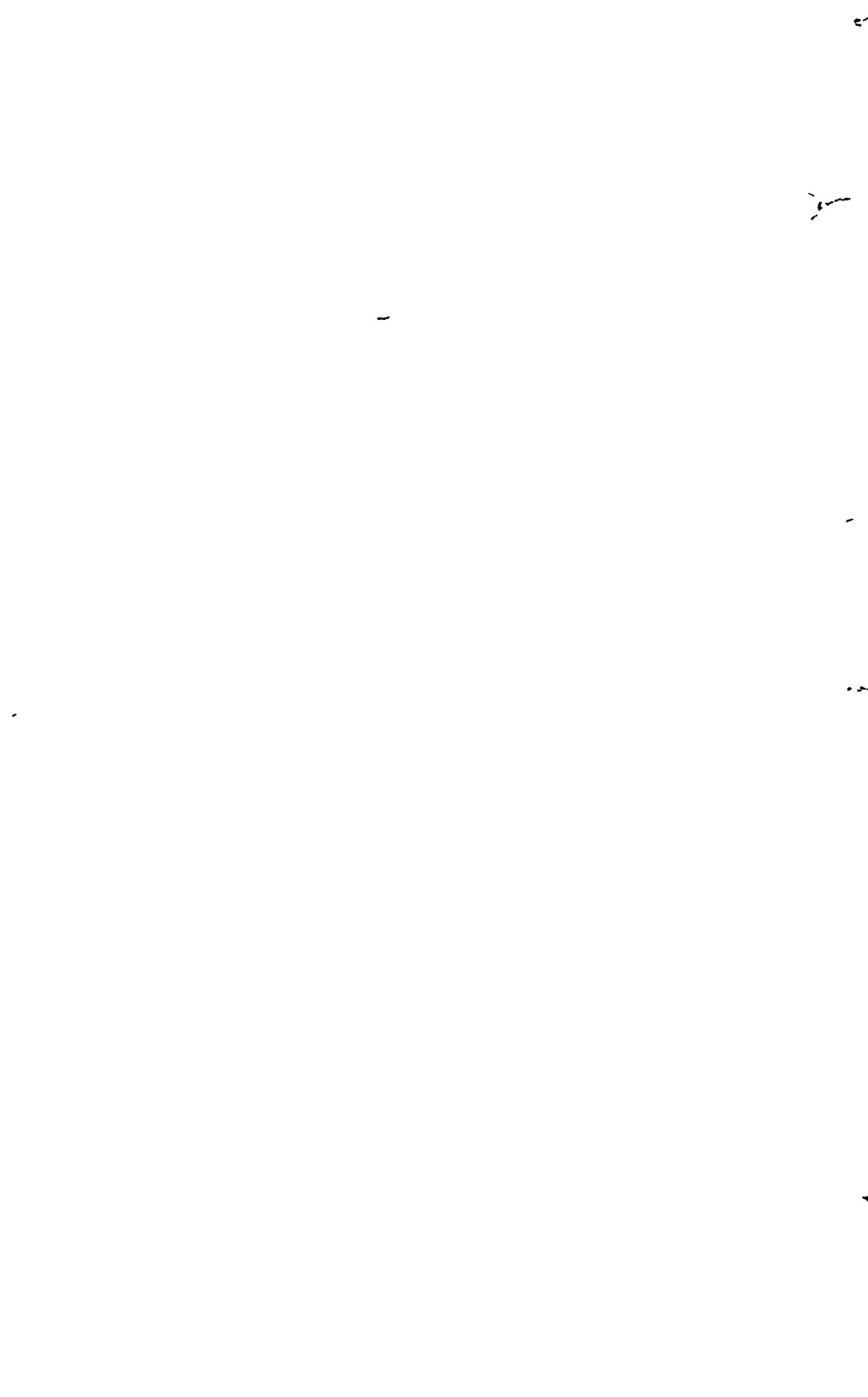
उत्पादन बढ़ाओ या खत्म हो जाओ

मित्रो और साथियो, आज उत्पादन सम्बन्धी सकट के बारे में कुछ कहने की मुझसे अपेक्षा की जाती है। लेकिन मेरे दिमाग में और बाते और दूसरे सकटो के विचार भरे हुए है। हम बहुत सी वस्तुओ के उत्पादन की बात करते है, लेकिन शायद सबसे महत्व की चीज जो कि कोई राष्ट्र पैदा कर सकता है, वह है भले और सच्चे मनुष्य और स्त्रियां । भारत में ऐसा एक व्यक्ति है जो कि अपनी भलाई, सचाई और आत्म-शक्ति से इस प्राचीन देश को आलोकित करता है, और हम निर्बल, भूल करने वाले नश्वरो पर अपना प्रकाश डालता है, और हमें भटकने से रोकता है। हम सही मार्ग से काफी भटक गए है, और अपने उत्तराधिकार को और अपने भले नाम को हमने नष्ट किया है। अब यह सब बातें बहुत हो चुकी। हमें अब रचना, निर्माण, सहयोग और अपने बंधु मनुष्यो के प्रति सद्भावना के पथ पर आगे बढना चाहिए ।

उत्पादन का अर्थ है सम्पत्ति। यदि हम उत्पादन नही करते तो हमारे पास काफी सम्पत्ति नही होगी। वितरण भी उतने ही महत्व का प्रश्न है, जिसमे कि कुछ थोडे व्यक्तियो के हाथो में सम्पत्ति एकत्र न हो जाय। फिर भी, वितरण की बात सोचने के पहले उत्पादन होना चाहिए ।

आप जानते है कि हमें आज बहुत सी समस्याओं का—आर्थिक समस्याओं का और दूसरी समस्याओं का—सामना करना है। नियंत्रण और मुद्रास्फीति के, और इसी तरह के अन्य भी बहुत-से प्रश्न हैं। युद्धकालीन अर्थव्यवस्था से शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था पर लौटने का क्रम बहुत मन्द रहा है। और वास्तव में उन्नति के बजाय बहुत बार अवनति हुई है। अब, यह बहुत ही गम्भीर विषय है, जिस पर कि हमें विचार करना है, क्योंकि जैसे जैसे इस तरह की बातें होती रहती है, वैसे-वैसे हमारी अर्थव्यवस्था में एक व्यापक ह्रास आता है। उससे सारे भारत, सारे राष्ट्र की हानि होती है। इसी के साथ, आज हमें एक बहुत बड़े पैमाने पर लोगो के एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर बसने की और विशालसख्यक शरणार्थियो की महान समस्याओ का सामना करना है। शरणार्थी उत्पादन नही कर रहे हैं। पूर्वी पजाब बहुत उत्पादन नही कर रहा है, और दुर्भाग्य से ये लोग देश के लिए एक बोझ बने हुए

---

१८ जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली से प्रसारित एक बातचीत।

है। यह बात नही कि वे बोझ बनना चाहते हैं, यह बात भी नही कि वे उत्पादन के अयोग्य हैं, लेकिन स्थितियो ने उन्हे इस दुखद अवस्था मे वरवस डाल दिया है। इसलिए हमे उत्पादन के बारे मे, अब तक उस पर जो विचार किया गया है उससे भी अधिक गहराई से विचार करना है।

हम चाहते है कि हमारे खेतो से, पुतली घरो से और कारखानो से सम्पत्ति का एक प्रवाह निकले, जो देश के करोड़ो व्यक्तियो तक पहुँचता रहे, जिससे कि हम आखिरकार भारत के सम्बन्ध के अपने स्वप्नो को पूरा हुआ देख सकें।

हम स्वतंत्रता की बात करते हैं, लेकिन जब तक आर्थिक स्वतंत्रता न हो, तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता हमें बहुत आगे नही ले जा सकती। वास्तव में, एक भूखे आदमी के लिए या एक बहुत गरीब देश के लिए स्वतंत्रता का कोई मतलब नही रहता। गरीबो के लिए, चाहे वह राष्ट्र हो, चाहे व्यक्ति हो, संसार मे जगह नही है। इसलिए हमें अपना उत्पादन बढाना चाहिए, जिसमें कि हमारे पास काफी सम्पत्ति हो जाय और उचित आर्थिक योजना द्वारा हम उसका ऐसा वितरण करे कि वह करोड़ो व्यक्यो तक, विशेषकर सर्वसाधारण मनुष्यो तक पहुँच सके। तब न केवल करोड़ो व्यक्ति समृद्ध होगे, बल्कि देश सम्पत्तिशाली, समृद्ध और शक्तिशाली होगा। बहुत से लोग तरह तरह के खतरो से डरते है और ऐसे भी लोग है जोकि दूसरे देशो से लड़ाई की बात, असयत ढंग से, कर बैठते है। मै आशा करता हूँ कि ऐसी कोई लड़ाई न होगी।

फिर भी, एक नए देश को, एक नए राज्य को, जिसने कि अभी हाल मे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की हो—अपनी स्वतंत्रता और आज़ादी की रक्षा पूरी सावधानी से करनी चाहिए। यह ठीक ही कहा जाता है कि स्वतंत्रता के लिए निरन्तर चौकसी का मूल्य चुकाना होता है। हम इसे किस तरह कार्यान्वित करे? जब तक हमारे पास लगाने को धन न हो हम सुधार की या निर्माण और विकास सम्बन्धी योजनाओ को किस तरह कार्यान्वित करे? हम उधार से प्राप्त रुपयो पर अधिक समय तक नही रह सकते, उसके लिए साख होनी चाहिए। हम मे वह शक्ति होनी चाहिए कि उस धन को उचित दिशाओ मे लगा सके। इन सब के लिए उत्पादन, वह भी तात्कालिक वर्तमान में उत्पादन, की आवश्यकता है, जिसमें हम अपनी सब से बड़ी आवश्यकताओ को पूरा कर सके, जिससे हम विकास सम्बन्धी उत्पादक योजनाओ मे लगाने के लिए कुछ बचा सकें। इसलिए हम उत्पादन की बुनियादी आवश्यकता पर लौट कर आते है। अब, उत्पादन के लिए कठिन और निरन्तर मेहनत की आवश्यकता है। उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि काम न रोका जाय, हड़ताले न हो, और न मज़दूरो का बहिष्करण हो।

मै आखिरी व्यक्ति होऊँगा जो कि श्रमिको के हड़ताल के अधिकार से इन्कार करे। क्योकि मै जानता हूँ कि हड़ताल का अस्त्र एक बहुत मूल्यवान् अस्त्र रहा है, जिसके द्वारा श्रमिको ने अधिकतर देशो मे क्रमश शक्तिशाली और प्रमुख स्थान बना लिया है। फिर भी ऐसे समय होते है जब कि हड़ताले खतरनाक हो जाती है, जब कि वे न केवल देश के हित को हानि पहुँचाती है, बल्कि स्वय मजदूरो के हितो के लिये भी नुकसानदेह साबित होती है। आज भी एक ऐसा ही समय है, और इसी कारण कुछ समय हुए, दिल्ली के एक सम्मेलन में सरकार, मजदूरो और उद्योगपतियो के प्रतिनिधियो ने प्राय: एकमत से यह निश्चय किया था कि हम सब के बीच तीन वर्षो की विराम-सन्धि होनी चाहिए, जिसके बीच हड़ताले बन्द रहे। यह स्पष्ट है कि यदि हमने ऐसा करने का निश्चय किया है तो हमारे पास इसे कार्यान्वित करने के लिए संगठन होना चाहिए, नही तो कुछ इस निर्णय से लाभ उठाना चाहेगे। इसीलिए उस सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया था कि एक ऐसा सगठन बनाया जाय जिससे कि श्रमिक, मजदूर या किसान को उसके हक मिले, उनके साथ वाजिब व्यवहार हो और वे प्रबन्ध में भी कुछ भाग ले सके; विशेषकर जहाँ तक उनकी अपनी आवश्यकताओ का सम्बन्ध है। यदि हम कोई ऐसा उचित और निष्पक्ष संगठन बना सके तो हड़तालो की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी।

बेशक, एक सुव्यवस्थित राज्य मे, जहां के हर एक को उसका हक प्राप्त हो, हड़तालो और बहिष्करणो की कोई आवश्यकता न रहेगी। हड़ताल और बहिष्करण आर्थिक व्यवस्था के किसी मूलवर्ती दोष के सूचक है। सच यह है कि हमारी आर्थिक व्यवस्था में आज बहुत से दोष है, न केवल भारत मे बल्कि दुनिया के और भागो में भी। हमे इस सबको बदलना है, लेकिन बदलने की क्रिया मे हमे इस बात के लिए सावधान रहना है कि जो कुछ अभी हमारे पास है उसे भी नष्ट न कर दें। इस बात का भय है कि जल्दी में कुछ कर डालने से कही हम अपने ध्येय से और भी दूर न पहुँच जायें। इसलिए, वर्तमान समय मे, जब कि यह सब सकट हमारे सामने है, हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारे व्यवसाय मे एक उपद्रवहीन शान्ति की स्थिति कायम रखी जाय, जिसमें सब लोग मिलजुल कर देश के उत्पादन-कार्य मे और विकास की महान योजनाओ द्वारा देश के निर्माण में, सहयोग दें।

आप जानते है कि हमारे सामने यह योजनाएँ बहुत समय से रही है। दुर्भाग्य से, उनमे से अनेक अभी तक कागजी योजनाएँ ही बनी हुई है। समय आ गया है कि हम उन्हे कार्यान्वित करें। उनमें नदी घाटी की महान योजनाएँ भी है जो कि न केवल देश में आबपाशी करेंगी, नदियो की बाढो को रोकेंगी, जल-विद्युत् शक्ति का उत्पादन करेंगी, मलेरिया तथा अन्य बीमारियो को रोकेंगी, बल्कि साधारणतया ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करेंगी, जिनमे वेग के साथ उद्योगो का विकास हो, और जिससे हमारी कृषि में आधुनिकता आवे। क्या आप जानते है कि भारत की इतनी बड़ी जन-

सख्या होते हुए भी यहाँ बहुत-से वड़े वड़े भू खण्ड हैं, जहां कि आदमी नही बसते, क्योकि इन भू-खण्डों में या तो पानी की कमी है या धरती को सुधारने की आवश्यकता है ?

हमारी वर्तमान संपूर्ण आवादी को पूरा पूरा काम मिल सकता है, वेकारी दूर हो सकती है और उसके साथ ही देश की संपत्ति में वृद्धि हो सकती है। जिस देश मे सव के पास धंधे हो तो उसे आवश्यकता से अधिक आवादी वाला देश नही कहा जा सकता। हम इस प्रयत्न मे है कि सब को काम मिले। अगर हम अपनी कोशिश सफल होना चाहते है तो हमे आर्थिक और श्रमिक क्षेत्रो में निरन्तर संघर्ष के विचार को छोड़ देना पड़ेगा। लेकिन, जैसा कि मैंने वताया, यह तभी हो सकता है जव कि श्रमिक को उसका हक प्राप्त हो, और उस का शोषण न किया जाय।

हमे इस उद्देश्य से कुछ उपाय शीघ्र ही करना है। कुछ हद तक यह हो भी चुका है, लेकिन अभी वहुत कुछ करना वाकी है। इस बीच हमें इस तीन साल की विराम-सन्धि को पूरी तरह अमल में लाने का निश्चय करना चाहिए।

इसलिए, आइए, हम काम मे, इस कठिन काम मे लग जाएं। हमे उत्पादन करना चाहिए। लेकिन जो कुछ उत्पादन हम कर रहे हैं, वह व्यक्तिगत जेवो के लिए नही वल्कि राष्ट्र के लिए, जनता के रहन-सहन के स्तर को उठाने के लिए और साधारण मनुष्य के हित के लिए करना है। अगर हम ऐसा करेंगे तो हम भारत को तेजी से उन्नति करता हुआ देखेंगे, और इस तरह हमारी वहुत सी समस्यायें हल हो जायँगी। भारत के पुर्ननिर्माण का काम हमारे लिए कोई सहज काम नही है। यह वहुत वड़ी समस्या है। यद्यपि हम वहुत से लोग है और हमारे देश मे साधनो की कमी भी नही है; योग्य, समझदार और परिश्रमी व्यक्तियों की भी कमी नही है। हमें इन साधनो का, और भारत के इस जन-वल का उपयोग करना है।

यह सव शान्ति पर भी निर्भर करता है, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति पर, राष्ट्रीय शान्ति पर, आर्थिक शान्ति पर, श्रमिक वर्ग की शान्ति पर और औद्योगिक शान्ति पर। हमें यह शान्ति प्राप्त करनी चाहिए। इस समय मैं आप से विशेषकर औद्योगिक शान्ति के विषय मे कह रहा हूँ, और आइए हम सव इस उत्पादन के उद्योग में लगें और यह स्मरण रक्खें कि यह उत्पादन केवल व्यक्तियों को अमीर वनाने के लिए नही, वल्कि राष्ट्र को सम्पन्न करने के लिए है। क्योकि यदि भारत जीवित रहता है, तभी हम भी जीवित रहते है। जय हिन्द।

हमारी आर्थिक नीति

श्रीमान्, इस वाद-विवाद के आरम्भ में ही मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा, जिससे कि सरकार की इस सम्बन्ध की साधारण नीति मालूम हो जाय। माननीय प्रस्तावक ने राष्ट्रीय कांग्रेस के, स्वयं मेरे, और दूसरो के पहले दिये गये अनेक वक्तव्यो के हवाले दिये हैं, और फिर उन्होने सरकार के सदस्यो के अन्य वक्तव्यो की ओर ध्यान आकर्षित किया है, और दोनो के बीच की कुछ विषमताओं को गिनाया हैं। यदि विभिन्न वक्तव्यो का मिलान किया जाय तो हो सकता है कि जुदा जुदा दृष्टिकोण और कुछ विषमताएं मिलें, लेकिन मेरी समझ में वस्तुस्थिति यह है (और इसके लिये मैं अपने को दोषी स्वीकार करता हूं) कि सरकार ने, सरकार की हैसियत से, इस सभा या देश के सामने इन मामलो पर कोई पूर्ण रूप से व्यवस्थित नीति पेश नही की हैं। यह नही कि सरकार इनको बहुत महत्वपूर्ण नही समझती। लेकिन सीधा कारण यह है कि अनेक प्रकार की घटनाओ ने हमे किंचित् व्यस्त कर रखा था, और, अगर मैं बहुत आदर पूर्वक कहू, तो इनका निवटारा, जिस रूप में कि माननीय प्रस्तावक ने सुझाव दिया है, एक प्रस्ताव द्वारा नहीं हो सकता। इस प्रस्ताव में तो गोलमोल ढग से राष्ट्रीयकरण की ओर सभी वातो पर इसी समय से अमल की वात कही गई हैं। यह अपेक्षाकृत कही जटिल प्रश्न है। हम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारें—साम्यवादी नाम या किसी और नाम से—लेकिन यदि हमें इन समस्याओ को हल करना है तो यह अस्पष्ट भाषा में नही हो सकता। हमें इनको निश्चय के साथ हल करना चाहिये। सरकार का काम दूरकालीन नीतियो पर विचार करना अवश्य है, लेकिन उससे भी अधिक उसका कर्तव्य तात्कालिक वातो को देखना है। साथ ही यह देरी इसलिये भी हुई

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में १७ फरवरी, १९४८ को दिया गया भाषण।

जिस प्रस्ताव के संबंध मे प्रधान मंत्री ने यह भाषण दिया, उसे काजी सैयद करीमुद्दीन ने प्रस्तुत किया था और वह इस प्रकार था—

"इस संसद का मत है कि इस देश की आर्थिक रूप-रेखा मुख्य उद्योगो के राष्ट्रीयकरण, सहयोगी तथा सामूहिक खेती, और देश के भौतिक साधनो के समाजीकरण पर आधारित साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल होगी और भारत सरकार उपर्युक्त सिद्धांत को इसी समय से स्वीकार करेगी।"

कि हम कितनी ही अन्य कठिनाइयो का सामना करना पड़ा, इसी कारण बहुत से मामलों को हमें स्थगित रखना पड़ा है।

उदाहरण के लिये हमारी इच्छा थी कि हम एक योजना-कमीशन की नियुक्ति पर विचार करे, जिसे कुछ साधारण निदेश हो और जो फिर यह स्थिर करे कि हम किन किन बातो को सब से पहले हाथ में ले, और किस तरह हमारे आर्थिक जीवन के विविध अगो को समन्वित किया जाय। मुझे यह कहते हुए खेद है कि हम ऐसा नही कर सके। हम आशा करते है कि जल्दी ही हम इस दिशा मे कुछ कर सकेगे। इस बीच, जैसा कि इस सभा को मालूम है, हमने एक छोटे पैमाने पर एक पुनर्वास और विकास ('रिहैविलिटेशन एड डेवलपमेंट') बोर्ड नियुक्त किया है, जो कि यद्यपि मुख्यत शरणार्थियो के पुनर्वास से संबध रखता है, तथापि विकास कार्यो से भी उसका घनिष्ठ संबध है, और उसे विकास सबधी विविध योजनाओ पर भी विचार करना पडेगा और शरणार्थियो के पुनर्वास की दृष्टि से कार्यक्रम निश्चित करना होगा।

पिछले कुछ वर्षो मे, इस विषय पर कई बार मुझे अपने विचारो को प्रकट करने का अवसर मिला है, और कुछ वर्षो तक मै राष्ट्रीय आयोजन समिति का अध्यक्ष था, जहां ऐसे सब मामले विचारार्थ आते थे। इस समिति मे हम लोगो ने बहुत-सा अच्छा काम किया था। दुर्भाग्य से इस काम का फल एक अंतिम रिपोर्ट के रूप मे सामने नही आया। लेकिन बहुत सी उपसमितियो द्वारा प्रकाशित रिपोर्टें और हमारे बहुत से प्रस्ताव, हमने जो कुछ काम किया था, उसके साक्षी है।

मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि उप-समितियो की इन रिपोर्टो में से बहुत सी, उन लोगो के लिये जिन्हे उनमे दिलचस्पी हो, आज भी प्राप्य है। यदि वे इन रिपोर्टो को और अन्य सामग्री को जो हमारे पास है, पढ़े, तो उन्हे पता लगेगा कि ये प्रश्न अत्यन्त जटिल है, आपस में मिले-जुले है, और उन्हे एक सूत्र मात्र से हल नही किया जा सकता।

यह फारमूला अपने उपयोग करने वाले की मानसिक प्रवृत्ति को केवल एक संकेत भर देता है। यह ठीक है, लेकिन एक सरकार अस्पष्ट फारमूलों द्वारा अपने विचार नही बता सकती। सरकार को प्रश्न के हर एक पहलू पर विचार करना होता है, विशेषकर इस बात पर कि वह तत्काल क्या कर सकती है।

अब, यह सब को अच्छी तरह मालूम है, और हमने इस पर अक्सर जोर भी दिया है कि आज हमारे सामने उत्पादन, यानी देश की संपत्ति को बढ़ाने का प्रश्न सब से महत्वपर्ण प्रश्नो में से एक है। हम और बातो की भी उपेक्षा नही कर सकते,

फिर भी उत्पादन सब से पहले आता है, और मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि जो कुछ भी हम करें, सर्वप्रथम, उत्पादन के दृष्टिकोण से उस पर विचार करना चाहिये। यदि राष्ट्रीयकरण से उत्पादन में वृद्धि होनी है तो हम कदम कदम पर राष्ट्रीयकरण करेंगे। अगर उसके द्वारा ऐसा नही होता, तो हमें देखना चाहिये कि हम किसी तरह ऐसा कर सकते है कि उत्पादन में रुकावट न आवे। आज यही मुख्य बात है।

पर यह इतना सहज नही है, जैसा कि माननीय सदस्य समझने जान पड़ते हैं, अर्थात् यह कि हम कानून बना दें और फिर जैसे किसी जादू से नतीजे पैदा हो जाय। ऐसा कदम तो शायद हमें किसी आफत की ओर ले जाय, और वस्तुत एक भीषण संकट उठ खडा हो। इसलिये यह केवल एक विशिष्ट आर्थिक दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेने का प्रश्न नही है, बल्कि समय निर्धारित करने का, सब से जरूरी आवश्यकताओ को निश्चित करने का, उन्हे किस तरह, किस ढग से और कब कार्यान्वित करना है, इन सब का भी प्रश्न है। किसी पद्धति को दूर करना, या तोड़ना मात्र ही काफी नही है, आपको उसकी जगह पर दूसरी पद्धतियां स्थापित करनी है। इन सब बातो को ध्यान में रखना चाहिये।

जो प्रस्ताव माननीय सदस्य ने सामने रक्खा है, उसमें सभी तरह के दोष हैं। उनमें वे दोष भी है जो वह हम पर लगा रहे थे। यह प्रस्ताव भी अस्पष्ट है। सिवाय इसके कि वह उनके हृदय की भलाई प्रदर्शित करता है, उसका कोई अर्थ नही निकलता। वह खेती तथा उद्योग में सर्वत्र इसी समय राष्ट्रीयकरण की बात करते हैं। मैं इसकी कल्पना भी नही करता कि कोई सरकार, आर्थिक प्रश्नो के विषय में उसके चाहे जो भी विचार हो, इस तरह का प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकती है। हममें से बहुतों का—और, अपने बारे में मैं कह सकता हूं कि मेरा भी—विश्वास है कि न केवल भारत की बल्कि संसार के और हिस्सों की आर्थिक व्यवस्था में भी, तेजी से परिवर्तन करने का समय आ गया है। मै समझता हू कि हमारे मित्रो और देशवासियो में और दूसरे देश वालो में भी बहुत से लोग अभी तक उस शब्दावली में विचार करते है जो कि एक बीते हुए युग के उपयुक्त थी। वे, जिसे हम उन्नीसवी सदी की आर्थिक विचार-धारा कह सकते हैं, उससे चिमटे हुए हैं। यह सभव है कि अपने समय में वह बहुत अच्छी रही हो, लेकिन आज वह अधिकाश रूप में लागू नही है। मैं समझता हूं कि आज की दुनिया की बहुत सी बुराइयो का कारण यह है कि आज की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था, जो उन्नीसवी सदी में विकसित हुई थी, अब बीसवी सदी के मध्य की परिस्थितियों के अनुकूल नही रही।

इसलिए हम पाते है कि सारे संसार में एक आर्थिक बेचैनी फैली हुई है, और

सम्भवत: हमारी वहुत सी राजनैतिक मुसीवतों का कारण यह है कि समझदारी से हम समय की गति के साथ अपने को व्यवस्थित नही कर पाये हैं। जो भी हो, जिस वात पर हमें विचार करना है वह यह नही है कि हम कितनी ध्वंसकारी आलोचना कर सकते हैं बल्कि यह कि स्थिति को सँभालने के लिये हम कितने रचनात्मक कार्य कर सकते है। जो कुछ हम कर सकते है, वह अधिकांश हमारे अपने देश की परिस्थितियो पर निर्भर करता है : कुछ अंश मे वाहरी दुनिया की परिस्थितियों पर भी, क्योंकि इन सव घटनाओ की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया होती है।

अपने देश की परिस्थितियों पर विचार करते हुए हमे तरह तरह की वातो को देखना है। हमे उसी के अनुसार योजना वनानी है, और समझदारी से एक एक पग आगे वढना है, जिससे कि हम अपने पास की किसी ऐसी चीज को न तोड़ वैठे, जिसकी जगह पर हम कोई दूसरी अधिक अच्छी चीज वना पाते। चीजो को तोड़ फोड़ देना काफी आसान काम है पर निर्माण करना उतना आसान नही है। यह वहुत सभव है कि आर्थिक व्यवस्था को वदलने की कोशिश मे आपको एक आवी-तवाही के समय का सामना करना पड़े। आप उत्पादन को ही, जो कि आज हमारा ध्येय है, रोक सकते है। सभव है कि अन्त में, वहुत रफ्ता रफ्ता आप एक नये प्रकार की व्यवस्था का निर्माण कर ले। लेकिन इस समय तो आप मौजूदा व्यवस्था को तोड़ देंगे। और इस समय, जव कि हमें अपनी सारी शक्ति उत्पादन मे लगानी है यह वाछित न होगा।

माननीय सदस्य ने एक विशेष रिपोर्ट का हवाला दिया है जो कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की एक उप-समिति द्वारा, जिसका कि मै अध्यक्ष था, प्रकाशित की गई थी। मै सिफारिश करूंगा कि वह तथा अन्य सदस्य इस रिपोर्ट को ध्यान से पढ़े। क्योकि यह रिपोर्ट वड़ी सावधानी से तैयार की गई है। पर यह किसी भी हालत में अन्तिम रिपोर्ट नही थी। यह ऐसी रिपोर्ट थी, जिस पर कि पहले तो काग्रेस की कार्यकारिणी समिति को और वाद में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी को विचार करना था। स्वयं रिपोर्ट मे कहा है कि वह केवल एक कच्चा खाका है, और इन सब वातो पर योजना कमीशन को, जिसे वनाने की सिफारिश इस रिपोर्ट में की गई है, विचार करना होगा।

इस रिपोर्ट में सुरक्षा संवंधी व्यवसायों और मूल व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण के वारे में कुछ और वात पेश की गई थी। अव, यह विल्कुल सच है कि जहां तक राष्ट्रीय कांग्रेस का सम्वन्ध है, उसने यह सिद्धांत १७ वर्ष हुए स्वीकार किया था, अर्थात् सुरक्षा सम्वन्धी और मूल व्यवसायों व सार्वजनिक उपयोगिताओं का राष्ट्रीय-करण, स्वामित्व और नियंत्रण करना। मुझे अव भी विश्वास है कि ऐसे व्यवसायों

का हमें किसी न किसी समय राष्ट्रीयकरण करना पड़ेगा। उस के बाद से कांग्रेस ने अपने विविध प्रस्तावों में यह भी संकेत किया है कि राष्ट्रीयकरण के इस क्रम को और दिशाओं में कुछ आगे बढ़ाना चाहिये। लेकिन जब आप उसे कार्यान्वित करने पर आते हैं, तब आप को यह विचार करना पड़ता है कि इनमें किसे पहले चुना जाय, और वर्तमान आधारभूत ढांचे को गिराये बिना और उत्पादन के कार्य में वस्तुतः बाधा डाले बिना उसे कैसे कार्यान्वित किया जाय।

इस रिपोर्ट की, जिसका मैंने हवाला दिया है और जो कांग्रेस की आर्थिक योजना उप-समिति द्वारा प्रकाशित हुई थी, बड़ी आलोचनाएं हुई हैं, या कम से कम, दोनों ही पक्षों से कुछ न कुछ बातें कही गई हैं। कुछ लोगो का खयाल है कि यह काफी आगे नहीं जाती, और दूसरे यह समझते है कि यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन का आरंभ है, जो कि हमारी आर्थिक व्यवस्था को उलट-पलट देगा, और जो वास्तव में एकाएक साम्यवाद पर आ कूदने के समान है। परन्तु वास्तव में यह दोनों में से किसी प्रकार की चीज नहीं है। यह साम्यवाद से बहुत दूर है। यह एक ऐसे क्रम को जारी करना है जो कि आज सारी दुनिया में चल रहा है, जिसमें कि संसार के पूंजीवादी शायद उनमें से सब से बड़े यानी संयुक्त राज्य अमरीका को छोड़कर सभी देश शामिल है। दूसरे देशो में आप कुछ जगहों पर इस क्रम को चलता हुआ पायेंगे और कुछ देशो में और देशो की अपेक्षा गति ज्यादा तेज है। इस रिपोर्ट में साम्यवाद के प्रति एक दृढ़ प्रवृत्ति मिलती है, और कुछ उद्योगो को औरों की अपेक्षा शीघ्रतर समाजीकरण के लिये नामांकित कर दिया गया है। इस रिपोर्ट में भी यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि हर एक कदम इस प्रकार बढ़ाना चाहिये कि हमारे राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में रुकावट न पड़े।

मैं इस रिपोर्ट के एक दो अंश इस सभा को पढ़कर सुनाना चाहूंगा। पहला यह है "इस बात पर जोर दिया जाता है कि यह रिपोर्ट एक ब्योरेवार नक्शा नहीं है, बल्कि योजना का एक खाका मात्र है, जिसमें कि विस्तार की बातें स्थायी योजना कमीशन को, जिसकी कि सिफारिश की गई है, बनानी होंगी।" इसके बाद इसने विशिष्ट और मूल उद्योगो को बताया है, और यहां मैं कहना चाहूंगा कि 'मूल उद्योग' शब्द का उपयोग बहुत अस्पष्ट है। 'मूल उद्योग' क्या है, इसके संबन्ध में मतभेद हो सकता है, चाहे हम एक उद्योग की चर्चा कर रहे हो, चाहे बहुतो की। यह अस्पष्टता जान-बूझकर रक्खी गई है। क्योंकि इन उद्योगो की परिभाषा देने की अवस्था बाद में आवेगी, जब कि स्थायी कमीशन द्वारा इस विषय पर विचार होगा। उनकी परिभाषा देने के अतिरिक्त, उनके राष्ट्रीयकरण का और उसके लिये समय निश्चित करने का प्रश्न भी उसी कमीशन पर, या जो भी अधिकारी इस पर विचार करे उसके निर्णय पर, छोड दिया जायगा।

एक और विषय की चर्चा भी इस रिपोर्ट मे हुई है। हमने विशेष रूप से कहा है कि कुछ स्पष्ट प्रमुख महत्व के उद्योगो के अतिरिक्त, हम उचित समझते है कि राज्य विशेष प्रकार के नये उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करे, या उसे आरंभ कर दे। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय मे जव तक अनिवार्य न हो, मौजूदा उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की कोशिश कर हमें अपने साधनों को क्षीण न होने देना चाहिये, वल्कि अपने साधनो की रक्षा करके नये उद्योगों को आरभ करना चाहिये।

मैंने उसे एक वहुत ठीक सिद्धान्त समझा, क्योकि, आखिरकार, हम जो भी करे, उसे हमें अपने साधनों के अनुसार सीमित रखना होगा। हमे यह चुनना होगा कि पहले किस काम को शुरू करे। यदि हम केवल वर्तमान उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने मे ही अपने साधनो को व्यय कर दे (संभव है कि उनका राष्ट्रीयकरण राष्ट्र के हित के लिये हो) तो यह भी मुमकिन है कि तत्काल हमारे पास कोई और साधन वच न रहे, और साथ ही हम निजी उद्योग के क्षेत्र को भी विगाड दे। इसलिये राज्य के लिये यह कही अच्छा होगा कि कुछ खास आवश्यक नये उद्योगो पर वह ध्यान दे, न कि वहुत से पुराने उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने में हमारी शक्ति लगे, यद्यपि, जैसा मैंने कहा है, कुछ खास प्रमुख उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया भी जा सकता है।

इसमे वहुत से लाभ है। एक तो यह कि, जैसा मैंने कहा, राज्य के साधन नये उद्योगो मे, उत्पादन की आवश्यकताओ के अनुसार, लगाए जा सकते है, और वर्तमान प्रवन्ध में जव तक नितान्त अनिवार्य न हो, हस्तक्षेप नही करना चाहिये। जो कुछ नया कार्य राज्य करेगा, वह निर्माण रूप मे, उत्पादन में वृद्धि करना होगा, न कि केवल पुराने उद्योगो का हस्तांतरित करना। कुछ काल वाद,—जिसका कि रिपोर्ट में संकेत है—पांच साल, या ऐसे ही किसी काल के वाद, इस प्रश्न पर पुनर्विचार किया जा सकता है, और हम यह देख सकते है कि हमें इसके अतिरिक्त और क्या करना चाहिये।

अव, इस पांच वर्ष की कालावधि देने का क्या उद्देश्य है? वास्तव मे, चाहे जो भी काल निर्धारित कर दीजिये, उसका वर्तमान वदलती हुई गतिशील दुनिया में थोडा ही महत्व है। यह किसी को भी मालूम नही, और मुझे संदेह है कि इस सभा का कोई सदस्य यह वता सकेगा, कि भारत मे दो या तीन साल वाद ही, चाहे राजनैतिक, और चाहे आर्थिक क्षेत्र में, क्या होगा। इसलिये समय-क्रम या कार्यक्रम निर्धारित करने से विशेष सहायता नही मिलती, सिवाय इसके कि एक उद्देश्य सामने रहता है।

पांच वर्ष का समय इस लिये यों रक्खा गया है कि उन लोगों को जो कि इन परि-वर्तनों की संभावना से कुछ विचलित हो रहे हों, एक प्रकार से आश्वासन प्राप्त हो जाय, अर्थात् यह कि हम वर्तमान चीजों को उलट-पलट नहीं कर रहे है, उन्हें प्रायः जैसा का तैसा छोड़ रहे है। वल्कि हम दूसरे क्षेत्रो का विस्तार कर रहे है और यह क्षेत्र कमोवेश निर्धारित हैं। इस तरह की शिकायत न हो सके कि कोई ऐसी वात की गई है जिससे वर्तमान ढांचा उलट दिया गया है। मुझे इस रिपोर्ट की मोटी रूप-रेखा की उद्योगपतियो तथा औरो द्वारा की गई आलोचनाएं पढकर आश्चर्य हुआ, क्योकि मेरी समझ में इस रिपोर्ट ने, देश के सामने उपस्थित वहुत सी समस्याओं पर उद्योगपतियो के और दूसरों के दृष्टिकोण से भी विचार किया था। हमने उनके हित की वहुत सी वातो का ध्यान रक्खा था। हो सकता है कुछ वातें रह भी गई हो, जिन पर वाद में विचार हो सकता है। लेकिन साधारणतया हमने सावधानी से इस वात का ध्यान रक्खा कि देश में कोई अचानक परिवर्तन न हो; यह न हो कि वर्तमान ढांचा विना उसके स्थान पर दूसरा प्रवंध किये हुए, उलट-पलट हो जावे।

इस रिपोर्ट के तैयार होने के वाद इस सभा ने रिजर्व वैंक और इंपीरियल वैंक ऑफ इडिया के राष्ट्रीयकरण का निश्चय किया। इस तरह से परिवर्तन होते ही रहते हैं। यह हो सकता है कि यदि हम सव जगहो में, वड़े वड़े परिवर्तनो की वातें करें, तो कोई भी परिवर्तन न होने पावे, क्योकि यह केवल कागजी निश्चय होगा, जिसे सहज में कार्यान्वित न किया जा सकेगा। इस लिए मेरा निवेदन है कि इस मामले को निवटाने का उचित तरीका इस तरह का प्रस्ताव पास करना नही है। वल्कि तरीका यह है कि जो कुछ नया काम किया जा सकता है उस पर हम ध्यानपूर्वक विचार करें, और साधारण नीति, साधारण दृष्टिकोण या साधारण ध्येय निर्द्धारित कर लिये जाएं। अन्तिम ध्येय पर, हो सकता है कि वहुत विचार करने की आवश्यकता न हो। लेकिन उन वहुत-सी वातो पर जो उस ध्येय तक पहुँचती है, समय समय पर विचार करना आवश्यक हो सकता क्योकि उस वीच सभी तरह के परिवर्तन हो रहे हैं।

मिसाल के लिए, यदि मैं इस विषय का एक पहलू भी इस सभा के सामने रक्खूं, तो मैं यह कहूँगा कि निर्माण कला और विज्ञान में इतनी महान और इतने वेग से उन्नति हो रही है, कि वहुत थोड़े ही काल में, यह कहिए कि १५ वर्षों में, आधुनिक उद्योग की सारी कल्पना ही पूरी तरह वदल जायगी। तव शक्ति के नए स्रोतों का पता लग चुका होगा और शक्ति के ये नये स्रोत आज के उत्पादन के तरीको को उलट-पलट देंगे। १५० वर्ष पहले इंग्लिस्तान और शेष यूरोप में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई थी, उससे भी कही अधिक।

यह सब महान परिवर्तन होने जा रहे है, और मै पाता हूँ कि हम में से बहुत से लोग, चाहे हम अपने को समाजवादी या साम्यवादी या पूजीवादी या किसी और नाम से पुकारते हों, इन बड़े परिवर्तनो से, आश्चर्य जनक रूप से अनजान है। वास्तव मे वे इससे इतने अनजान है कि नए तरीको से अधिक संपत्ति के अस्तित्व में आने की बात न सोचकर वे केवल उद्योगो के स्वामित्व को बदलने की बात ही सोचते है, जो कि निश्चय ही बराबरी स्थापित करने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पग हो सकता है।

वितरण बहुत आवश्यक है। लेकिन उससे भी आवश्यक है हमारा प्रगतिशील भविष्य। नई परिस्थितियो में सारे संसार मे शक्ति के नए साधन हमारे कृषि और उद्योग में समान रूप से क्रान्ति उत्पन्न कर सकते है। अतः राज्य के लिए जो बात मेरी समझ में सब से अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि उत्पादन के वर्तमान साधनो का चाहे जो रूप रहे, उत्पादन के इन नए और नवीन प्रकार के साधनों को राज्य के हाथों में रहना चाहिए। हमें इन्हे व्यक्तियो के हाथों में पहुँच कर व्यक्तिगत एकाधिकार में पड़ने से बचाना चाहिए। और वर्तमान साधनों का जहां तक मामला है, हमे पग-पग आगे बढ़ना चाहिए और उत्पादन में कमी आने को, और जहा तक सभव हो, आर्थिक ढाचे मे व्याघात उपस्थित होने से रोकना चाहिए।

यह सभा जानती है कि नदियो की घाटियो से संबन्ध रखने वाली हमारी कई बडी बड़ी योजनाएं या विचार है। इन योजनाओ के अन्तर्गत बड़े जलाशयों का निर्माण, जल-विद्युत् से परिचालित कार्य, आबपाशी की नहरें, धरती के क्रमिक क्षय को रोकना, मलेरिया की रोक थाम आदि आदि बातें है। इन योजनाओ में विशाल धन लगेगा और इनमे जो सब से महत्व की बात है, वह यह है कि ये भविष्य की उन्नति का आधार बनेंगी। इन से हमारे खाद्य का प्रश्न बहुत हद तक हल होगा और व्यावसायिक तरक्की के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, वह भी इनसे प्राप्त होगी। आपको यह शक्ति एक बार प्राप्त हो जाय तो आप काफी तेजी से आगे बढ़ सकते है। इसलिए सरकार ने इन नदी घाटी योजनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का निश्चय किया न कि अपनी शक्ति को छोटी मोटी अस्थायी बातों में नष्ट करने का। यदि हमें इन बड़ी योजनाओं पर अपनी शक्ति को केन्द्रित करना है, तो क्या यह हमारे लिए उपयुक्त होगा कि हम अपनी शक्ति इस या उस उद्योग पर अधिकार करने में लगाएँ—जिससे संभव है कि कुछ अन्तर आए, या न भी आए; जो कि थोड़ी बहुत उलट-पलट भी कर दे, लेकिन जो उस बुनियादी आधारशिला पर हमें न पहुँचा सके, जिस पर कि भविष्य में हमारे उद्योग को टिकना है? इसलिए राष्ट्रीयकरण की दृष्टि से भी हमें बुनियादी बातो को पहले उठाना चाहिए। सब से प्रथम हमें महत्व की बातो को, तथा समय-क्रम

को निर्द्धारित कर लेना चाहिए और राष्ट्रीय अर्थनीति के किसी अंग को लेकर, समय परिपक्व होने पर ही उसका राष्ट्रीयकरण करना चाहिए। समय कव परिपक्व होगा, यह मैं नही वता सकता। हमें न केवल धन की आवश्यकता है, वल्कि कुशल और शिक्षा प्राप्त लोगो की भी आवश्यकता है।

वास्तव में, अन्तिम विश्लेषण स यही सिद्ध होता है कि चाहे व्यवसाय के सम्वन्ध में और चाहे जीवन के और विभागो के सम्वन्ध में यही वात महत्वपूर्ण है। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे यहां आज जीवन के सभी क्षेत्रो में काम सीखे हुए लोगो की कमी है। जीवन के हर एक विभाग में, विज्ञान में, उद्योग में, हमारे यहाँ वहुत ऊँचे दर्जे के व्यक्ति उत्पन्न हुए है। हमारे यहां संसार के कुछ वहुत ही अच्छे वैज्ञानिक है। फिर भी वह थोड़े हैं। वह काफी नही है। इस सभा को याद होगा कि सरकार ने कुछ समय हुआ एक वैज्ञानिक मानवशक्ति समिति ('साइंटिफिक मैन पावर कमिटी') नियुक्त की थी, क्योकि जो भी हमारे यहां वैज्ञानिक मानवशक्ति है उसे उपयोग में लाने, उसे वढाने को हम वहुत ही अधिक महत्व देते है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दी और उस पर सरकार ने विचार किया। उसकी वहुत सी सिफारिशें स्वीकार कर ली गई। हम अपने विशेषज्ञो और अन्य लोगो को वड़ी संख्या में शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशो में भेज कर और अपने विद्यार्थियों को सिखाने के लिये वाहर से विशेषज्ञो को वुलाकर अपने वैज्ञानिको की सख्या वढाना चाहते हैं। ये सव वास्तविक आधार और नींव है, जो कि भविष्य की उन्नति के लिए डाली जा रही है। दूसरा सैद्धान्तिक और काल्पनिक रास्ता, अर्थात् यह कहना कि हम ऐसे वड़े वड़े परिवर्तन करने जा रहे है, हमारी वहुत मदद नही करता। यह काल्पनिक रास्ता लोगो को, जो नही समझ पाते कि हमें करना क्या है, एक विल्कुल गलत तस्वीर देता है। इसलिए मेरा निवेदन है कि इस तरह का प्रस्ताव हमें विल्कुल मदद नहीं देगा। मै आशा करता हूँ कि इस अधिवेशन में किसी समय, यदि समव हुआ, तो हम इस सभा के सामने कुछ निश्चित प्रस्ताव या औद्योगिक योजना के विषय में नीति सम्वन्धी वक्तव्य प्रस्तुत कर सकेंगे। स्वाभाविक है कि जो भी योजना हम स्वीकार करेंगे, उसे इस सभा का समर्थन प्राप्त होगा।

•

कांग्रेस उप-समिति की रिपोर्ट की फिर चर्चा करूँ, तो यह कहा जा सकता है कि स्वभावत अगर कोई योजना, चाहे वह आर्थिक हो या कोई दूसरी, अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की अन्तिम अनुमति प्राप्त करती है, और वह कमिटी आदेश देती है कि वह योजना स्वीकार की जाय तो इस सभा में हम में से अधिकांश उस आज्ञा से वँधे हुए है। किसी भी स्वीकृत योजना को निश्चय ही इस सभा का अन्तिम समर्थन होना चाहिए। लेकिन हम में से अधिकतर लोग

उस योजना के समर्थन के लिए पावन्द होगे, जो कि स्पष्ट और निश्चित रूप में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी द्वारा, सामने रक्खी जायगी और उसे हम इस सभा की स्वीकृति के लिए यहा पेश करेगे । लेकिन अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी आखिर कोई कार्यकारिणी समिति नही है : अधिक से अधिक वह एक नीति निर्द्धारण करने वाली समिति है । वह साधारण नीति का निर्देश करेगी, और फिर स्वभावतः इस सभा या सरकार का यह काम होगा कि उसे सुविधानुसार समय-क्रम दे कि, कौन कार्य सर्व-प्रथम करना है और यह निश्चय करे किस गति से करना है ।

यह सभा जानती है कि भूमि व्यवस्था के सम्बन्ध मे हमारी साधारण नीति यह रही है कि ज़मीदारी प्रथा का अन्त कर दिया जाय। इस कार्य की गति मन्द रही है, इस-लिए नही कि हमारी मेहनत की कमी है, वल्कि इसलिए कि अनेक प्रकार की कठि-नाइयां उठ खड़ी हुई है । फिर भी मै आशा करता हूँ कि यह मामला काफी जल्द पूरा हो जायगा। यह भी उन आधार शिलाओ मे से एक है, जिस पर हम और चीजो का निर्माण कर सकते है। सामूहिक और सहकारी खेती की चर्चा हुई है । मै इस देश मे सामूहिक और सहकारी खेती का होना पसन्द करूँगा । मै आशा करता हूँ कि हर हालत में अगर वड़े पैमाने पर नही, तो कम से कम एक छोटे पैमाने पर हम सहकारी ढग से, और हो सकता हो तो सामूहिक ढग से, इसे करें। लेकिन यह स्पष्ट है कि इसके पहले कि आप उन्हे सोच सके आपकी वर्तमान भूमि व्यवस्था का, जोकि भारत के अधिकांश भागो में जारी है, अन्त करना पडेगा । सव से पहले वड़ी ज़मीदारियो की प्रथा का, और वाद में हो सकता है कि उसकी और कुछ वातो का हमें अन्त करना पड़े । और यह कोई सहज काम नही है ।

यह कुछ थोड़े से आदमियो की, जिन्हे आप पूजीपति कह सकते है, नापसन्दगी की वात नही है; सम्भवत. वहुत से किसान भी, जिन्हो ने भूमि का स्वामित्व प्राप्त किया है, इसे नापसन्द करेंगे । यह स्पष्ट है कि जो भी निर्णय हम करें उसके लिए वहुसंख्यक लोगो की रज़ामन्दी आवश्यक है । हम इसे वहुत वडी संख्या में अपने किसानो के गले के नीचे ज़वर्दस्ती से नही उतार सकते । हमें उन्हे अपनी राय का वनाना है । ऐसा करने का सव से अच्छा उपाय यह है कि हम उनके सामने सहकारी खेती के सजीव उदाहरण पेश करें और यह दिखावें कि वह कैसे चलती है। तभी हम उनका मतपरिवर्तन कर सकते है । भारत एक विशाल देश है। हम यहां एक साथ कई ग्राम्य व्यवस्थायें चला सकते है, और उनमें से जो देश के लिए सव से अच्छी होगी, वह क्रमशः स्वयमेव होती जायगी । सहकारी व्यवस्थाओं के भी कई प्रकार है । मै तत्काल यह नही वता सकता कि उनमें किस प्रकार की व्यवस्था सव से उपयुक्त है । हो सकता है कि देश के किसी एक भाग के लिए एक प्रकार

की व्यवस्था उपयुक्त हो और दूसरे भाग के लिए दूसरे प्रकार की ।

इसलिए अन्त मे मै इस सभा को यह आश्वासन दिलाऊँगा, कि जहा तक हमारा सम्बन्ध है, हम अपने औद्योगिक कार्यक्रम के विषय में नीति सम्बन्धी विशेष वक्तव्य तैयार करने के लिए उत्सुक है। वर्तमान अवस्था में ऐसा वक्तव्य हमें बहुत आगे पहुँचावेगा, ऐसा मेरा खयाल नही है। बहुत आगे की सोचने में अभी जोखिम है। गैर-सरकारी सगठन बहुत आगे के भविष्य को देख सकते है, लेकिन किसी सरकार के लिए बहुत आगे के सम्बन्ध में अपने को बांध देना निरापद नही है। मै और लोगो को, जो इस सभा में नहो है, यह आश्वासन दिलाना चाहूँगा, कि हम जो भी करें, उत्पादन का ध्येय हमारे सामने सर्वप्रथम है। हम इसे परम आवश्यक मानते है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन, उन लोगो के आपस के पूर्ण सहयोग पर निर्भर करता है, जो इस काम में लगे हुए है। यह स्पष्ट है कि हम देश के औद्योगिको की सदिच्छा चाहते है । अकसर यह प्रश्न पूछा जाता है कि "क्या आपके पास उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के लिए योग्य व्यक्ति मौजूद है?" सच बात तो यह है कि, जैसा मैने अभी बताया, हमारे पास पर्याप्त लोग नही है। लेकिन इस प्रश्न पर मुझे ज़रा आश्चर्य होता है, क्योकि व्यवहार में तो उन्ही व्यक्तियो का उपयोग होता है, चाहे उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो चाहे न हो। काम तो वही लोग करेगें और उनमे उद्योग के मुखिया भी शामिल है, उनकी प्रबन्ध और कार्य कराने की विशेष योग्यता की आवश्यकता भी शामिल है। अब, आवश्यक यह है कि चाहे जो योजना हम प्रस्तुत करें, हमें उसके पक्ष में अधिक सदिच्छा प्राप्त होनी चाहिए। हमें उत्पादन पर उसका बुरा असर नही पडने देना चाहिए। साथ ही, जिस दिशा में हम चाहते है, उसमें हमें भविष्य की उन्नति की नीव डालनी चाहिए। इसी दृष्टि से हम ने उप-समिति की रिपोर्ट तैयार की थी। यह एक ऐसी रिपोर्ट है जिस पर आपको तथा देश को विचार करना है। हमने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि मौजूदा कार्य मे कोई व्याघात न आने पावे, न कोई उलट-पलट की बात हो, लेकिन क्रमश, फिर भी काफी वेग से, अर्थ-व्यवस्था के उन अगो में, जिनमें राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन हो सकता है, परिवर्तन किया जाय। बाद में और परिवर्तन भी हो सकते है। इसलिए मै माननीय सदस्य से यह अनुरोध करूँगा कि एक ऐसे प्रस्ताव पर, जो प्रकट रूप में कार्यान्वित नही हो सकता है, वह जोर न दें।

अकेला सही रास्ता

महोदय, मुझे इस सभा से क्षमा मांगनी है कि मैं इस बहस के अवसर पर यहां बराबर उपस्थित नही रहा हूँ। लेकिन कभी कभी और कामों के भारी तकाजे होते है। मैं यहां बराबर मौजूद रहना पसन्द करता, क्योंकि इस विषय में मेरी गहरी दिलचस्पी है, और यहां सदस्य क्या कहते हैं, उसे मैं सुनना चाहता। मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से सदस्यो ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है और वह इसकी तारीफ में या कम से कम इसके पक्ष में बोले है। कुछ ने इसे नापसन्द भी किया है और कुछ ने इसे सख्त नापसन्द किया हैं। इस मतभेद पर मुझे प्रसन्नता है और यदि माननीय सदस्यो में से किसी ने, किसी ह्विप या अपने दल की कार्यकारिणी के अन्य निर्देश के कारण, अपना मत दबा लिया है, तो उसका मुझे खेद है।

कार्य योजना के सैद्धान्तिक पहलुओं से काफी समय से मेरा स्वयं सम्बन्ध रहा है। मैं अनुभव करता हूँ कि उसके सिद्धान्त और अमल के बीच एक बड़ा अन्तर है जैसा कि जीवन की अन्य बातो के विषय मे है। सिद्धान्त कवित्वमय होता है, जैसा कि, यदि मैं कह सकता हूँ, मेरे माननीय सहयोगी, प्रस्ताव के प्रस्तावक का भाषण था। लेकिन हम जब उस कवित्व को व्यवहार में लाना चाहते है तो तरह तरह की कठिनाइयां उठ खड़ी होती हैं। साधारणतः कठिनाइया सभी जगह होती है, लेकिन भारत में जैसी परिस्थिति है, पिछले सात या आठ महीनो में जो कुछ हुआ है, उसके बाद, किसी व्यक्ति को, वह जो कदम भी बढ़ाता है, उसमें बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है, जिस से मौजूदा ढांचा टूटने न पावे। विनाश और टूट-फूट काफी हुई है, और मैं इस सभा के सामने निश्चय ही यह स्वीकार करूँगा, कि मैं इतना साहसी और बहादुर नही कि और आगे भी विनाश में लगूँ। मैं समझता हूँ कि भारत में बहुत सी चीजों की तोड़-फोड़ करने की अब भी गुंजाइश है। उन्हे निस्सन्देह दूर करना पड़ेगा। फिर भी यह अपना अपना देखने का ढंग है। क्या हम ऐसा करने जा रहे है कि हमारे सामने साफ स्लेट आवे, जिस पर से सब कुछ मिट गया हो, जिसमें कि हमें नए सिरे से लिखने का सुख प्राप्त हो? ऐसी स्लेट पर जिस पर

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली में, उद्योग और रसद विभाग के मंत्री माननीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव पर, ७ अप्रैल १९४८ को दिया गया भाषण।

कुछ और न लिखा हो ? यह काम करने का सहज ढंग जान पड़ता है, अगर्चे शायद साफ स्लेट कभी रही नही है ; उस समय भी जब कि लोगो ने कल्पना की कि स्लेट साफ होने जा रही है ।

मै यह नही कहना चाहता कि किसी को साफ स्लेट से आरम्भ करने की कभी कोशिश ही न करनी चाहिए । लेकिन आदमी को देश का और उसकी हालत का ध्यान रखना पड़ता है, और यह देखना पड़ता है कि कौन सा रास्ता पसन्द करने लायक है, किसमें कम खतरा है । मुझे जान पड़ता है कि दुनिया की और भारत की जो अवस्था है, उसमे जिसे साफ स्लेट पर लिखने की कोशिश कहेगे——यानी जो कुछ हमारे यहां है उसे मिटा कर——तो वह निश्चय ही हमें तरक्की के निकट न लायेगी, बल्कि उसमे बहुत देर कराएगी । आर्थिक तरक्की लाना तो दूर रहा, यह हमें राजनैतिक दृष्टि से इतना पीछे फेंक सकती है कि आर्थिक पहलू ही हमारी निगाह से ओझल हो जाय । हम इन दो चीजो को अलग नही कर सकते । हम एक बड़ी राजनैतिक उथल-पुथल और मथन मे से गुजरे है, और अगर अपनी पसन्द की किसी चीज को पाने की कोशिश मे हम एक कदम आगे बढ़ते है, तो साथ ही दूसरी दिशा में कुछ कदम पीछे हट जाते है, तो सब मिलाकर हम कुछ घाटे ही मे रहते है, नफे मे नही । इस लिए स्लेट की सफाई की बजाय यह हो सकता है कि हम यहा वहा कुछ मिटाने की और उस जगह पर कुछ और लिखने की और वह भी क्रमशः——मै आशा करता हूँ कि बहुत धीमी गति से भी नही, फिर भी बहुत तोड़ फोड़ और बोझ से बचते हुए——पूरी स्लेट की लिखावट बदलने की कोशिश कर सकते है । हो सकता है कि मुझ पर हाल की घटनाओ का असर पड़ा हो, लेकिन मैंने अधिकाधिक यह अनुभव किया है कि किसी भी वस्तु को, जो उत्पादन कर सकती है, या जिसमे अच्छा श्रम करने की क्षमता है, मिटाना उचित नही । बनाने मे तो बहुत समय लगता है, मिटाने मे बहुत समय नही लगता । इसलिए यदि यह सभा और यह देश समझता है कि हमें मिटाने की भावना से अधिक निर्माण की भावना को लेकर आगे बढ़ना चाहिए, तब वह दृष्टिकोण अनिवार्य रूप से भिन्न होगा । आपके क्या आदर्श है यह दूसरी बात है । लेकिन उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए भी क्या इसे आप सबसे आसान तरीका समझते है कि जो कुछ है उसे मिटाकर साफ कर दिया जाए, तब नए सिरे से काम आरम्भ किया जाय ? या यह कि अपने मौजूदा साधनो और सामान को देखते हुए पुरानी इमारत को जितनी तेजी से सम्भव हो, नई इमारत मे बदला जाय ? इसमें सन्देह नही कि हमे मौजूदा इमारत को बदलना है और जितना जल्दी हो सके, उतना जल्दी ।

जो माननीय सदस्य अभी मुझसे पहले बोले है, उनका भाषण मै सुन रहा था; उद्योग या टैक्स पर, और जहां कही बोझ डाले गए है, उनके बारे में उनके मातम को मै सुन रहा था । सच्ची बात यह है कि यह मातम, दुनिया के सम्बन्ध में एक विशेष

दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसका कि, मुझे भय है, अब लौटना नामुमकिन है। मै आदर्शवादी ढग से नही, वरन् केवल व्यावहारिक ढंग से विचार कर रहा हूं; और कहता हूं कि उसे आप लौटा नहीं सकते। उद्योग पर और अधिक बोझ पड़ने जा रहे है क्योंकि खुद राज्य पर, उसकी सामाजिक समस्याओ का इतना बडा बोझ है। राज्य को उसे हल करना है, नही तो वह समाजवादी राज्य नहीं बन पाएगा, और मुमकिन है कि यह पुलिस राज्य बन जाय या कोई और राज्य उसकी जगह ले ले। राज्य को अपनी समस्याओ का सामना करना है, और अगर उसे ऐसा करना है, तो इसके लिये उसे आवश्यक साधन भी प्राप्त करने होगे। स्वभावतः उद्योग पर बोझ बढ़ता ही जायगा। वास्तव में यह आपके या मेरे या किसी और के सोचने से ऐसा नही हो रहा, बल्कि अनिवार्य रूप से घटनाओ का प्रवाह ऐसा है कि वह राज्य को अधिकाधिक निर्माणात्मक उद्योगो का सगठन करने वाला बना रहा है न कि व्यक्तिगत पूजीपति को या किसी और को। जहा तक मैं तटस्थ रूप से देख सकता हूँ, यह बिल्कुल अनिवार्य है। मैं नफे के उद्देश्य को बिल्कुल अलग नही कर रहा हूँ। मै नही कह सकता कि एक सीमित अर्थ में यह कब तक चलेगा, लेकिन व्यापक अर्थ में यह समाजवादी राज्य की नई कल्पना से अधिकाधिक संघर्ष में आएगा। यह संघर्ष चलता रहेगा, और जीत एक पक्ष की ही होगी, और यह स्पष्ट है कि राज्य की जीत होगी, न कि उस वर्ग की जोकि उद्योगो में कोरे नफे के उद्देश्य का समर्थक है। यह एक अनिवार्य विकास है। आप उस विकास का सामना कैसे करेंगे? तो क्या आप उसकी गति तेज़ करने की कोशिश करेंगे, जैसा कि हम में से बहुत से लोग चाहते है? क्योकि आर्थिक पहलू या विशेषज्ञ के पहलू को अलग रखते हुए भी, मैं विश्वास करता हूँ, कि हम ऐसी स्थिति में पहुँच गए है, जो हर एक संवेदनशील मनुष्य को खलने वाली है। आज का सवेदनशील मानव समाज उस बड़े अन्तर को, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच में है, उनके बीच के भेदभाव को, एक ओर अवसर की कमी और दूसरी ओर अपव्यय को सहज में सहन नही कर सकता। यह इतनी अशिष्ट बात जान पड़ती है और अशिष्टता का समर्थन करने से बुरी वस्तु किसी देश या व्यक्ति के लिए नही है। यदि मै कहूँ तो अब से पचास या सौ वर्ष पहले यह बात इतनी अशिष्ट नही थी। यद्यपि नफे का उद्देश्य उस समय भी बहुत जोरो पर काम कर रहा था, और यद्यपि उस समय अब से ज्यादा कष्ट था; फिर भी दृष्टिकोण दूसरा था। तब शायद सामाजिक मूल्याकन ही दूसरा था। लेकिन आज की दुनिया के प्रसंग में इस प्रकार का उद्देश्य न केवल आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक अनुचित, बल्कि किसी भी संवेदनशील दृष्टि से अशिष्ट हो गया है। इसलिए परिवर्तनो का होना अवश्यभावी है।

तो फिर यह परिवर्तन आप कैसे करने जा रहे है? जैसा कि मैंने कहा, मैं तो चाहूँगा कि बिना विनाश और अवरोध के यह परिवर्तन लाया जाय। क्योकि विनाश

और अवरोध के मार्ग से भविष्य में चाहे कुछ भी फल मिले, आज निश्चय ही उनसे नुकसान होगा। वह उत्पादन को रोकेंगे। उनसे सम्पत्ति का उत्पादन कम होगा। लेकिन यह निश्चित नही कि आगे भी आप इनके द्वारा अधिक तेज़ी से काम कर सकेंगे। इसलिए, आदमी को समझौता करना पड़ता है। यद्यपि मै इस प्रसंग में या किसी भी प्रसंग में समझौता शब्द से नफरत करता हूँ, तब भी इससे वचा नही जा सकता।

अव हमें अर्थ-व्यवस्था की परिवर्तन कालीन स्थिति पर विचार करना है, उसे चाहे जिस नाम से पुकारिये, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था या किसी और नाम से। यह हमें ऐसा कार्य करने पर विवश करती है, जिसमें कि देश की सम्पत्ति निरन्तर वृद्धि पाती रहे, साथ ही देश मे उस सम्पत्ति का अधिक न्याय-संगत वितरण हो सके। क्रमशः ऐसी स्थिति पर हम पहुँचेगें, जिसमें कि सारी अर्थ-व्यवस्था का भार-केन्द्र ही वदला हुआ होगा। अव, मुझे स्वय संदेह है कि ऐसे परिवर्तन विना संघर्ष के या वारवार होने वाले सघर्षों के हो सकेंगे, क्योंकि विशेष हितों पर अधिकार या विशेष विचार रखने के अभ्यस्त लोग सहज में नए विचार स्वीकार नहीं करते और कोई भी अपने पास की चीज को छोड़ना नही चाहता। कम से कम कोई वर्ग ऐसा करना पसन्द नही करता; व्यक्ति कभी कभी ऐसा करते है। यह संघर्ष वरावर हो रहे है। लेकिन वात यह है कि ये संघर्ष प्राय कुछ वेवकूफी के संघर्ष होते है, क्योकि ये घटनाओ की प्रवृत्ति को वदल नही सकते। अधिक से अधिक ये संन्घर्ष इस क्रम में देर लगा सकते है। और देर करने का संभावित परिणाम यह होता है कि जो लोग निहित-स्वार्थों को पकड़े रहते है, उन्हें, अन्त में और भी घाटे का सौदा करना पड़ता है।

अव, एक दूसरा पहलू है जिस पर कि मै चाहूँगा कि यह सभा विचार करे। यह एक अजीव वात है कि हमारे खूव जोशीले क्रान्तिकारियों में से वहुत से लोग, जो कि आदर्शवादी संसार की कल्पना करते है, जव संसार की समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का अवसर आता है, तो अद्‌भुत रूप से रूढिवादी दिखाई देते है। मै अपना कथन स्पष्ट कर दूं; मैंने 'वैज्ञानिक' शब्द का एक संकीर्ण अर्थ में प्रयोग किया है। हमारे अधिकतर मित्र—समाजवादी अथवा साम्यवादी—वरावर इस रूप में चिन्तन करते है कि उत्पादन की प्रणाली जैसी है, वह वैसी ही वनी रहेगी। अवश्य ही इसे वह स्वीकार न करेंगे। वह कहेगे, "नही, यह वदल रही है।" लेकिन वास्तव में वे अपनी योजनाएं एक गतिहीन संसार पर आधारित करते है, न कि एक परिवर्तन शील संसार पर, जिसमे कि उत्पादन के नए ढंग, नई प्रणालियां काम में आवेंगी। उदाहरण के लिए वे भूमि व्यवस्था के वदलने की वात सोचते है। यह विल्कुल ठीक है, क्योकि सामंती भूमि व्यवस्था को समाप्त होना चाहिए, तभी आप एक नए समाज का निर्माण कर सकेंगे। यहां तक तो वहुत ठीक, भूमि-व्यवस्था को जरूर वदल दीजिए।

वह उद्योगो पर अधिकार प्राप्त करने की सोचते है, क्योकि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का अर्थ यह होता है कि बड़े उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व हो। ठीक; बहुत अच्छा। लेकिन वह इसे नही सोचते कि उत्पादन के तरीको में महान परिवर्तन हो रहे हैं, जो कि संभव है वर्तमान औद्योगिक ढांचे को, या धरती को जोतने के तरीको को बिल्कुल दकियानूसी बना दें। वह कहते है, "तुम इस या उस चीज़ पर अधिकार क्यो नही कर लेते ?" क्या उन वस्तुओ पर अधिकार करने में धन व्यय किया जाय, जोकि ९० प्रतिशत दकियानूसी हो चुकी है ? वास्तव म, यन्त्र कौशल की उन्नति की दृष्टि से इस तरह की दकियानूसी मशीनों, पुतली घरो और अन्य यंत्र-घरो पर अधिकार करना पैसो की सोलह आना बरबादी सिद्ध हो सकती है। यह सही है कि जब तक नए पुतली घर और नए यान्त्रिक तरीके व्यवहार में नही आते, तभी तक इन का उपयोग है। और अगर आपके पास अपार धन और साधन हो तो जरूर उन पर अधिकार कर लीजिए और नई चीजो को आगे बढ़ाइए। लेकिन अगर आपके साधन सीमित हैं, तब जो खास बात है, वह यह है कि एक गति-हीन यन्त्र कौशल का विचार न करके परिवर्तनशील यन्त्र-कौशल की बात सोचिए। राज्य द्वारा नए तरीकों पर अधिकार करने का चिन्तन कीजिए, पुराने तरीको पर नही सिवाय इसके कि जब पुराने तरीके बाधक होते हो, और आपकी योजना और उन्नति को रोकते हों।

अब, ज़ाहिर है कि भारत में जो स्थिति है, उसमें हमारे साधन असीमित नही है। धन कहा से आवे, कैसे आवे, और कैसे अन्य यान्त्रिक या बाकी साधन आवें— इनके बारे में हमें बहुत सोचना पड़ता है। अगर ऐसा है तो इस विषय में एक निर्द्धारित पूर्वापर कार्यक्रम के अनुसार हमें कार्य करना है। अगर आप चीजो पर अधिकार करना आरम्भ कर भी दें—मान लीजिए कि हम बहुत से उद्योगो पर अधिकार करने का निश्चय करते हैं—और आप यह प्रस्ताव पास कर देते हैं, तब भी मुझे पूरा यकीन है कि जब इसे हम व्यवहार में लाएंगे तो एक एक करके इन उद्योगो को अधिकार में लाने में बहुत समय लग जायगा। आप चाहे जितनी तेजी करें, फिर भी इसमें काफी समय लगेगा। यह दूसरी बात है कि आप 'साफ स्लेट" का क्रम बरतें, जिसमें कि पुरानी चीज़ें बुहार कर फेंक दी जायं और आप नई का निर्माण करें। इसलिए आपको यह विचार करना पड़ेगा कि प्रथम क्या काम हाथ में लिया जाय; कौन सा उद्योग और कौन सी सेवाएं पहले ली जायें; उसके बाद आपको रुपए का प्रबन्ध करना होगा। एक संगठन बनाना होगा; यंत्र कुशल काम करने वालो का प्रबन्ध करना होगा, आदि, आदि। अतएव समय लगता है। और जब आप अतिरिक्त उद्योगों और नए उद्योगो और नई पुरानी योजनाओ को मिलाने की सोचें तो और भी समय लगेगा। मुझे अपने मन में कोई संदेह नही है कि सरकार का प्रथम चुनाव केवल नई चीजों का होना चाहिए, जब तक कि पुरानी चीजें राह में बाधा के रूप में नहीं आती।

उन बड़ी नदी घाटी योजनायो को मैं बहुत ही अधिक महत्व देता

हूँ, जो कि तैयार की गई है, और जिनमें से पहली, यानी दामोदर घाटी योजना इस ससद से स्वीकृत भी हो चुकी है, दूसरी भी जल्द ही यहां पेश होने वाली है । मैं समझता हूँ कि आपके सभी मौजूदा उद्योगो की अपेक्षा वह कही अधिक महत्व की है। यह एक नई चीज़ है, जिसे कि आप विल्कुल नए सिरे से खड़ा करेंगे । नई धरती खेती के काम में आवेगी, वहुत सी नई चीजें हैं जिनका कि नदी घाटी योजना द्वारा जनित विशाल शक्ति की सहायता से निर्माण किया जायगा । मै इसे पूर्णतया राज्य के अधिकार में करना चाहूँगा, लेकिन इस का संचालन, जैसा कि प्रस्ताव में वताया गया है, सार्वजनिक संस्थान या कार्पोरेशन के नमूने पर होगा । मै आशा करता हूँ कि यह सार्वजनिक संस्थान किसी सरकारी विभाग की अधीनता में सचालित न होकर पूर्णतया या अशतया स्वन्तत्र सगठन के रूप मे सचालित होगा । मै आशा करता हूँ कि यह उन लोगो द्वारा संचालित न होगा, जो कि विभागीय लीको मे पड़े हुए है, वल्कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा चलाया जायगा जिनमे कल्पना है, उत्साह है और क्रियात्मक शक्ति है; उन लोगों द्वारा नही जो मिसलों पर लिखते है, वल्कि उन लोगो द्वारा जो काम करते हैं। अव, इन नदी घाटी योजनाओं की दिक्कत यह है कि भारत के साधन उनको शीघ्र कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त नही हैं । क्या मैं उन्हे अधूरा रहने दू और इन में देर होने दूं और यह सोचू कि एक ट्रैमवे का वन्दोवस्त, या कोई दूसरी चीज़ जहा-तहां कैसे अधिकार में लाई जाय ? ट्रैमवे का वन्दोवस्त आप चाहिए तो हासिल कर लीजिए, लेकिन मै ट्रैमवे के वन्दोवस्त को या इसी तरह की किमी चीज़ को पहला स्थान नही देना चाहता ।

अव, इस प्रस्ताव में, जो कि आपके सामने रक्खा गया है, कई सूचिया दी गई हैं । पहली सूची, दूसरी सूची आदि । जिनमें यह वताया गया है कि सरकार ने क्या क्या किया है और वह क्या करना चाहती है । नदी घाटी योजनाओ का कुछ साधारण ढंग से वयान हुआ है । लेकिन स्मरण रखिए कि इस साधारण वयान का क्या अर्थ है, इसका अर्थ यह है कि राज्य देश भर मे, महान साहसी कार्यों को उठाने जा रहा है जो कि देश के उद्योगो का संचालन करेंगे, और जो कुछ आपने अधिकार में किया है वह एक गौण और छोटी वस्तु हो जायगी । ये नदी घाटी योजनाएं राज्य द्वारा नियंत्रित है और ये देश की अर्थ-व्यवस्था और उद्योगो का पूरी तौर पर नियत्रण करेंगी । यदि आप इन सव वातों को अच्छी तरह समझ लें तो यह क्रम तेज़ हो सकेगा, लेकिन यदि हम केवल दिखावटी योजनाएं सामने रखते है, तो हम उनके किसी हिस्से को पूरा न कर सकेंगे। तव वास्तव मे हम सिवाय कागजी वातो के और सिद्धान्तो को उपस्थित करके, आगे नही वढ़ेंगे। इसलिए अस्पष्ट योजना के काव्य से उतर कर हमें गद्यमय वयान पर आना पड़ता है। क्योकि यह एक गद्यमय वयान है, इसमे कविता वहुत कम है सिवाय मेरे उन माननीय मित्र की कविता के, जिन्होने कि आरम्भ में भाषण दिया था। यह निश्चित रूप से एक गद्यमय वयान है। जानवूझ कर

यह गद्यमय है। यह सभा जानती है कि ऐसे प्रस्ताव में भाषा का अलंकरण ले आना कठिन नहीं, जिससे कि यह जनता के लिए बहुत सुन्दर ध्वनि रखता और, बिना किसी प्रकार से सरकार को बन्धन में लाए हुए, कान और आंख को अच्छा लगने वाला होता और यह प्रभाव डालता कि हम लोग कैसे अच्छे हैं। तो, ऐसा हमने जानबूझ कर नहीं किया। क्योंकि अपनी समझ में, हमें क्या करना चाहिए और निकट भविष्य में हम क्या कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में हम इसे एक गद्यमय बयान बनाना चाहते थे। कितना हम कर सकेंगे, यह इस सभा पर और बहुत सी अन्य बातों पर निर्भर करेगा। लेकिन, कम से कम, यह एक ऐसी चीज है जिसे कि हमारा करने का इरादा है, केवल ऐसी चीज़ नहीं, जिसे कि एक संगठित योजना का रूप देकर जनता के आगे आडम्बर के साथ घुमा देना है।

इसकी गति कई बातों पर निर्भर करेगी। मैंने इन नदी घाटी योजनाओं की चर्चा इसलिए भी की है कि मैं इन्हें बहुत महत्व देता हूँ। अब, मान लीजिए दामोदर घाटी योजना खूब सफल होती है और यह हमारे हाथ में है, तो, यह राज्य के दृष्टिकोण से औद्योगीकरण के दृष्टिकोण से इसकी अपेक्षा कहीं बड़ी चीज़ है कि यह सभा और आधी दर्जन ऐसी योजनाएं स्वीकार करे, जोकि कार्यान्वित न हो। इसलिए पहले कदम का मूल्य है। यदि हम राज्य के आश्रय मे एक उद्योग आरम्भ करते हैं, तो हमें चाहिए कि उसे पूर्णरूप से सफल बनाएं, बजाय इसके कि इस या उस चीज़ पर अधिकार करने की कोशिश करें और कई चीजो का सत्यानाश कर दे। निश्चय ही एक बार आपने अच्छी नींव डाल दी, तो आगे बढना आसान होगा। अब, यह स्पष्ट है कि यह सरकार या यह सभा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकती है और अब से पाच या दस वर्षो में क्या होगा, -इसका समय-निर्धारण कर सकती है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि हम वेग से होने वाले परिवर्तन और तब्दीली के युग में रह रहे हैं, और कोई आदमी इसका जिम्मा नहीं ले सकता कि आगे चलकर कब और क्या होगा। कोई इसका जिम्मा नहीं ले सकता कि लड़ाई होगी या शांति रहेगी। शान्ति रहते भी क्या होगा, इसका जिम्मा भी कोई ले सकता होगा, क्योंकि भारत में चीजें तेजी से बदल रही हैं। हम पिछले आठ महीनों मे तेजी से होने वाले परिवर्तनो के बीच रहे हैं, और कई तरह से यह बड़ा अवांछित और अहितकर परिवर्तन रहा है। फिर भी जब हम दस वर्ष कहते हैं तो यह समझकर कहते हैं कि जो कुछ हम देख रहे हैं, यह उसके आधार पर है। और हम दस वर्ष इसलिये कहते हैं कि हम जहां तक देख सकते हैं, इस बीच राज्य के हाथो में पूरा काम भरा होगा। यह केवल आश्वासन दिलाने के लिये नहीं है। अगर्चे हम सभी चालू उद्योगो को आश्वासन दिलाना चाहते हैं जिसमें कि वह उचित ढग से कार्य कर सकें। लेकिन मूलतः हमारे पास बहुत कुछ करने को है और उसे हम अच्छी तरह करना चाहते हैं। लेकिन चाहे मैं आश्वासन दूं, चाहे यह सभा आश्वासन दे, अन्त में घटनाएं

ही गति का निर्द्धारण करेगी। घटनाएं तेजी से घट सकती हैं या धीमी गति से। घटनाएं हमारी आर्थिक व्यवस्था को तोड़ फोड़ सकती है या कुछ और ही हो सकता है। यही नही, सैकड़ो वातें हो सकती हैं।

जव हमसे कहा जाता है, और मै अनुमान करता हूं कि यह ठीक ही है, कि देश की पूजी सशंक है और वह सामने आ नही रही है, या कि हम निजी उद्योगों या सार्वजनिक कर्जो के लिये धन नही पा रहे है, आदि, तो यह सचाई है। लेकिन, यह भी, मेरा खयाल है कि, इन्ही परिवर्तनशील स्थितियो के कारण है। हम क्या करते है या क्या नही करते इसका कारण उतना नही है। यह स्पष्ट है कि देश अलग नही खड़ा रह सकता। या तो हम उद्योगपति को आगे वढने का उचित क्षेत्र और उचित अवसर देते है, और यदि वह आगे नही वढ़ता तो हम उसके विना ही आगे वढ़ते है। हम चीजों की दुर्व्यवस्था नही देख सकते, न व्यवस्था का अभाव ही देख सकते है। इसलिये कि उसे डर है कि काफी नफा नही होता, या कुछ और न हो जाय। लोग इंतिजार नही कर सकते। हम उसे उचित अवसर, उचित क्षेत्र और उचित नफा देते है। यदि वह अपनी पूरी शक्ति नही लगाता तो उसी काम को किसी दूसरे को करना होगा। शून्य की स्थिति नही रह सकती। यह भी है कि अगर उद्योगो का अच्छा प्रवध नही होता या प्रवंध ही नही होता, या धीमा काम होता है या काम वन्द कर दिया जाता है, तो फिर हमें यह विचार करना होगा कि हम क्या करें। क्योकि वह दिन वीत गया जव कि किसी उद्योग ने काम वन्द कर दिया और वह रुक गया। इसलिये कि या तो मालिक ने या श्रमिकों ने दुर्व्यवहार किया। आज समाज को इस तरह पीड़ित नही किया जा सकता। समाज को देखना होगा कि श्रमिको के साथ न्याय होता है, लेकिन यह वात दूसरी है। इसलिये, इस प्रस्ताव मे इसके वारे में वहुत कुछ कहा गया है, और यह शायद प्रस्ताव का सव से महत्वपूर्ण अंश है, अर्थात् सभाओ और समितियो के संवंध में। क्योकि जव तक आप श्रमिको के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नही करते, तव तक उनके दुर्व्यवहार करने पर आप उन पर सख्ती नही कर सकते। उसके वाद भी लोग दुर्व्यवहार कर सकते है, इसलिये मैं चाहूंगा कि यह सभा इस प्रस्ताव पर इस प्रसंग में विचार करे। और भी वहुत से विषय है, जिनके वारे में यहां कहा जा सकता था, लेकिन मैंने कुछ नही कहा है। मुझे सदेह नहीं, कि यदि यह सभा जुट जाय तो वह इस वयान में कुछ हेर-फेर कर सकती है। लेकिन मेरा निवेदन है कि इस वयान का जो मूल दृष्टिकोण है, वही सही दृष्टिकोण है और वही वर्तमान समय में व्यावहारिक मार्ग है, और मै आशा करता हूं कि यह सभा इसे अपनी स्वीकृति देगी।

हमें मिलजुल कर शक्ति लगानी चाहिए

सभापति महोदय, और फेडरेशन के सदस्यो, कल आपके सभापति के पद से दिये गये भाषण में आपने अनेक समस्याओ की चर्चा की है। आपने विदेशो की घटनाओ और घरेलू समस्याओ का जिक्र किया है विशेष कर जिनका इस देश के वाणिज्य, व्यापार और उद्योग पर प्रभाव पड़ता है। मुझे खेद है, मैं इस भाषण के सुनने के लिये मौजूद न था। लेकिन मैंने उसे पढा और उससे लाभ उठाने की कोशिश की। आप मुझ से यह आशा न करेंगे कि मै उन सभी विषयो पर, जो आपने उठाये है, कुछ कहूँ। क्योकि वह एक जटिल कहानी हो जायगी। लेकिन आपकी आज्ञा से, अपनी समस्याओं के कुछ मोटे पहलुओ के विषय में मैं कुछ कहना चाहूँगा।

सब से पहले, जो कुछ मैंने हिन्दुस्तानी मे कहा है, उसे दुहरा लूं। वह यह है कि जिस तरह अभी आपने मुझे प्रशसा और प्रेम और विश्वास के साथ संबोधित किया है, उस तरह संबोधित होकर मुझे बहुत सान्त्वना मिलती है। फिर भी मेरा ऐसा खयाल है कि मै जब भी, आज जैसी सभाओ में आता हू तो मुझे और मेरी सरकार को इस तरह समझा जाता है, जैसे कि हम न्यायालय के समक्ष पेश किये गये कैदी हो। हमारे सब कुसूर और भूलें, त्रुटिया और कमिया, हमारे सामने तीव्र ढग से रक्खी जाती है। रक्खी ही नही जाती, बल्कि कभी कभी यह संकेत भी किया जाता है कि यद्यपि हम ऐसी अवस्था में पहुंच गये है, जहां हमारा सुधार हो ही नहीं सकता, फिर भी एक कर्तव्य का पालन किया जा रहा है। ऐसा आज जैसी सभाओं में ही नही होता, बल्कि संसद भवन मे भी यही होता है—हमारे सहयोगी तक ऐसा करते है, विरोधियो की मै नही कहता। मैं आलोचना का तो स्वागत करता हूं, और हमारी—विशेष कर मेरी—त्रुटिया जो आप बताते है, इस बात का स्वागत करता हूं। वास्तव में कभी कभी मै खुद उनकी गिनती कर लेता हूं। मै समझता हूं कि यह एक व्यक्ति तथा राष्ट्र के लिये अच्छी बात है कि वह हमेशा यह जानने की कोशिश करे कि कहा वह गलती पर है, और उसे सुधारे। आलोचना से कभी डरना नहीं चाहिये। मैं आलोचना का स्वागत करता हूं। मैं उसका उतना स्वागत तब नहीं करता, जब कि उसके पीछे हमारी बदनीयती

फेडरेशन आफ़ इंडियन चैबर्स आफ़ कामर्स के २२वें वार्षिक अधिवेशन, नई दिल्ली में, ४ मार्च १९४९ को दिया गया भाषण।

का संकेत किया जाता है। स्वभावतः इसे कोई भी पसन्द नही करेगा। लेकिन मै इस तरह की आलोचना, सभी तरह की सभाओ में जहा पहुंचता हूं, पाता हूं सिवाय एक के जिसके बारे में अभी कहूगा। हमारी आलोचना उद्योगपति, पूजीपति, व्यवसाय के कर्णधार करते है। हमारी आलोचना श्रमिको के नेतागण यह कह कर करते है कि हम उन्हे दवा रहे है। हमारी आलोचना शरणार्थी या स्थानान्तरित लोग इसलिये करते है कि उनकी काफी सहायता नही हो रही है। हमारी आलोचना प्रांतीय सरकारें इसलिये भी करती है कि हम उनकी सहायता नही कर रहे है। हमारी आलोचना इसलिये भी होती है कि हम पूरी किफायत नही कर रहे है और सेक्रेटेरियट के बढ़े हुए कर्मचारीगण को हम कम नही कर रहे है। हमारी आलोचमा इसलिये होती है कि हम कर्मचारियों की छटनी कर रहे हैं, और और विविध तरीको से हमारी आलोचनाए होती है। हमारी विदेशी नीति की आलोचना होती है, हमारे घरेलू नीति की आलोचना होती है। यदि (कट्रोल) नियन्त्रण लगाए जाते है तो हमारी आलोचना होती है, यदि नियन्त्रण उठा लिये जाते है तो भी हमारी आलोचना होती है। अब, मै मानता हू, कि यह एक स्वास्थ्यसूचक चिन्ह है।

मैने कहा था कि एक प्रकार की सभा मे मेरी आलोचना नही होती, यानी इस देश की साधारण जनता की सभाओ मे। वह हमारी आलोचना नही करते, और मै चाहूगा कि इस बात पर आप एक क्षण विचार करे। हम सरकार की हैसियत से आज इसलिये विद्यमान है कि हममे जनता का विश्वास है। उदाहरण के लिये, मै वहा न हूगा, अगर मुझे यह सदेह हो कि भारत के लोग, भारत के साधारण लोग--हममे विश्वास नही रखते। और यह उनके प्रेम के कारण है कि हम इस बोझ को कधो पर उठाये हुए है। और आप जानते है कि यह बोझ कोई हलका बोझ नही है, कोई सुखद बोझ नही है। फिर भी हम उसे ढो रहे हैं, कुछ तो इसलिये कि इसे हम अपना कर्तव्य समझते है कि जब तक एक मजिल पूरी न हो जाय, तब तक इसे वहन करे। ऐसे समय तक जब तक हम इसे दूसरो को, जिनके कंधे ज्यादा मजबूत हों और जो इसे वहन करने के ज्यादा योग्य न हो, न दे सकें। लेकिन मुख्यतया इसलिये कि हम भारतीय जनता के बहुत संख्यक लोगो का अपने में विश्वास पाते है।

अब, जैसा मैने कहा, आलोचना का हम स्वागत करते है। लेकिन जब हमारी आलोचना मित्र लोग या विरोधी लोग करते है, तो हमारा दृष्टिकोण भारत की इस अथवा उस समस्या पर क्या होना चाहिये? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि बदलती हुई स्थितियो में हम अच्छी तरह अपने को बिठा नही सके है। जब मै "हम" कहता हू, तो इसमें देश के सभी प्रकार के लोगों के वर्गों को सम्मिलित कर लेता हू, जिसमे उद्योगपति और श्रमिक दोनो ही हैं,

व्यवसायी और मुझ जैसे राजनीतिज्ञ, कांग्रेस वाले तथा अन्य लोग भी हैं । हम लोग अपने विचारो की संसार से, जैसा कि वह है, संगति स्थापित नही कर सके हैं। यह एक भीषण रूप से कठिन कार्य है, क्योकि यद्यपि विचार तेज गति वाला होता है, फिर भी जिस तरह के परिवर्तन-काल से होकर हम गुजरते रहे हैं और अब भी गुजर रहे हैं, उसमें मस्तिष्क घटनाओ से पिछड़ जाता है । मनुष्य के विचार घटनाओ से पीछे रह जाते हैं। हममें से अधिकतर लोगो ने अपने विचारो को, वह चाहे राजनैतिक विचार हो, चाहे अर्थ-सम्बन्धी, भारत जैसा कुछ वर्ष पहले था, कम से कम शासन के इस हेर-फेर से पहले था, उसी ढाचे में ढाल रक्खा है। हमने राजनैतिक कार्यों के प्रति अपने दृष्टिकोण को, इस अदूर अतीत के अनुसार बना रक्खा है। हम यह अनुभव नही करते कि अनेक कारणो से, विशेषकर पिछले महायुद्ध के कारण, ससार में बडे परिवर्तन हुए हैं। वास्तव में घोर परिवर्तन हुए हैं जैसा कि आप सब जानते हैं और आपने स्वय कल अपने भाषण में कहा था—एशिया के भिन्न भागो मे, चीन, बर्मा, इडोनेशिया, और और जगहो में। अब अगर ससार इतना बदल गया है तो निश्चय ही हमारे चिंतन में अन्तर आना चाहिये, हमें उसे समझना चाहिये और उन परिवर्तनो के अनुकूल अपने को भी ढालना चाहिये । समस्याओ को देखने का हमारा ढग अब तक यह रहा है कि सरकार की घोर आलोचना की जाय। वह सरकार उस समय ब्रिटिश सरकार थी। यह एक आदोलनकारी ढग था, जो ठीक ही था। क्योकि हमारा पहला कर्तव्य यह था कि उस सरकार को उलट दिया जाय, उसे हटाकर बाहर कर दिया जाय और देश में अपनी सरकार कायम की जाय । इसलिये हम लड़े, अपने हाथ-पैर मारे और हम कामयाब हुए। परन्तु अब, यह ढग भारत की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त नही रहा। फिर भी हममें से अधिकतर लोगो पर उसी ढंग का असर बना हुआ है। हम उससे मुक्त नही हो पाते। मैं देखता हू कि संसद में हमारे बहुत से सहयोगी केवल इसी ढग पर काम कर सकते हैं। वह किसी दूसरे ढंग पर चल ही नही पाते। वह हमारे प्रिय सहयोगी हैं, यह सब ठीक है। लेकिन उनमें बदलती हुई स्थिति की पहचान न देखकर कुछ चिन्ता होती है। यदि किसी देश या उसके निवासी, उन चीजो को, जिस रूप में वे हैं, नही समझ पाते, तो वे चीजें, उन्हे छोड़कर दूर चली जाती है या उनके बावजूद भी अलग हो जाती हैं। आप घटनाओ पर विजय या नियन्त्रण नही पा सकते, न उन पर असर डाल सकते हैं, जब तक कि आप उन्हे अच्छी तरह समझ न लें । \२\३

आप में से बहुत से अपने अपने कार्य-क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं, और, निस्सन्देह, जब आप घटनाओ का काफी ध्यानपूर्वक विश्लेषण करते हैं, शायद और बहुत से लोगो से अधिक, आप उन घटनाओ के समझने में अपने पूरे अनुभव का उपयोग करते हैं। फिर भी, यह बहुत सम्भव है कि जो प्रस्तावनाएं लेकर आप चल रहे

हो, वे हमेशा ठीक न हों। यह हो सकता है कि आपके विचारो के आधार-रूप कोई ऐसा बात हो, जो कि अब प्रासंगिक नही रही। हो सकता है कि आप आज की गतिशील दुनिया का ध्यान रखते हुए विचार न कर रहे हो, वल्कि एक स्थिर संसार की कल्पना वनाकर विचार कर रहे हो। इस स्थिति के कारण, मै अनुभव करता हू कि आज भारत के वातावरण में एक महान अवास्तविकता आ गई है, चाहे मै आपसे वात कर रहा हूं, चाहे श्रमिको से, चाहे किसी और से।

जव मै यहां वैठा हुआ था, तो आपके फेडरेशन के एक सदस्य ने, जो कि कोई प्रस्ताव पेश कर रहे थे या उसका समर्थन कर रहे थे, व्यावहारिक दृष्टिकोण के वारे में कुछ कहा था। क्योकि अवश्य ही उद्योगपति और व्यवसायी व्यावहारिक होने का गर्व करते है। राजनीतिज्ञ भी व्यावहारिक होने की वात करते है। लेकिन जो वात मुझे हैरत में डालती है वह यह है, कि जिनका सर्वस्व 'व्यावहारिक होना' है, उनके गिर्द क्या हो रहा है, उसके वारे में भी ये लोग कभी कभी अद्भुत रूप से अज्ञान रखते है। व्यावहारिक होने की उनकी कल्पना यह है कि संसार कभी वदलता नही। और जो उनके पूर्वज अतीत काल मे करते आये है, उसी का अनुसरण करना चाहिये। यह है व्यावहारिक होना। जिस तरह कि, यदि मै उस वर्ग को ल जिसका कि मै कहा जा सकता हूं, अर्थात् राजनीतिज्ञो का, तो वह भी वड़े ठोस-दिमाग के और व्यावहारिक कहे जाते है। चूकि वह ठोस दिमाग के और व्यावहारिक होते है, इसलिये लोग उन्हे मजवूर करके दुनिया में एक वड़ा युद्ध करा देते है। विषम समस्याओ को निवटाने में वह वड़ी संलग्नता दिखाते है और श्रम करते है। उन्हे हल करने में वे असफल होते है और फिर दूसरा युद्ध होता है और नई समस्याएं उत्पन्न होती है। और इसी-तरह चक्र चलता रहता है। इस तरह से चक्र चलता है और हम सभी व्यावहारिक होने का दावा करते है। अव, निश्चय ही इस दृष्टिकोण में कुछ भूल है। इसलिये, मैं उन लोगों से, जो अपने को व्यावहारिक और ठोस दिमाग का कहते है, कुछ ऊव गया हूं। उस ठोस-दिमागी का अर्थ अकसर लचकीलेपन का नितान्त अभाव भी होता है।

दूसरी चीज लीजिये। आज चाहे विदेशी क्षेत्र को देखिये, चाहे घरेलू क्षेत्र को, जो वात हर एक व्यक्ति जानता है, वह यह है कि सव चीजे आपस में परस्पर सम्वद्ध होती है। आज आप उन्हे अलग अलग नही कर सकते। आप भारत की समस्याओ पर आज इस तरह नही विचार कर सकते, मानो उनका संसार की समस्याओ से राजनैतिक अथवा आर्थिक दृष्टि से कोई सम्वध ही न हो। इसके अर्थ यह होते है कि हम संसार के दूसरे हिस्सों में, जो कुछ हो रहा है, उसे समझें। यह आसान वात नही है, क्योकि दुनिया के दूसरे भागो में भी, जिसे व्यावहारिक समझा जाता है, उसकी वही पूजा चल

रही है। फल यह होता है कि लोग उन्हीं रास्तों पर चले जा रहे हैं, जिन पर बीते हुए समय में प्रत्यक्ष रूप से बरबादी हुई है। मुझे यह कहना चाहिये था कि यद्यपि तत्काल बुद्धिमानी का प्रदर्शन करना कठिन हो सकता है, फिर भी निश्चय ही जो बात अतीत काल में बार बार बरबादी करा चुकी है उससे बचने में अधिक बुद्धिमानी की जरूरत नहीं। लेकिन एक अजीब बात है कि हमने ऐसा नहीं किया।

बात यह है कि हम एक रास्ता पकड़े हुए चले जा रहे हैं जब कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह बरबादी की तरफ ले जाने वाला है। अब, अगर यह सच है कि हम सब ने अपनी अक्ल बिल्कुल खो दी है, और ऐसी चीज के चंगुल में फंसे हैं जो कि दुखान्त घटना के ढंग की है, एक अनिवार्य विपत्ति है, तब हमें जो करना चाहिये, वह यह है कि इस विपत्ति, का एक गौरवपूर्ण रीति से सामना करें। या इसका यदि कोई और रास्ता है, तो वह रास्ता हमें ढूंढना चाहिये, चाहे वह सब से अच्छे नतीजे न ला सके। अब, भारत को देखते हुए, जो जटिल समस्याए हमारे सामने हैं, और वे बहुत सी है, और उनमें से कितनी ही बड़ी-बड़ी समस्याए हैं । पिछले डेढ़ साल या इससे अधिक समय को देखते हुए, जिसमें कि सरकार काम कर रही है, मुझे इस बात को चेताना है कि बहुत सी चीजें हैं, जो हमने बुरे ढंग से की है । बहुत सी चीजें है जिन्हें हम करना चाहते थे और अभी तक नही कर सके है। हमने अपने सामने जरा ऊंचे आदर्श रक्खे और हम उन्हें, जैसा कि हम आशा करते थे, प्राप्त नही कर सके। यह बिल्कुल ठीक हैं। फिर भी, इस बड़े देश के प्रधानमन्त्री की हैसियत से एक निश्चयात्मक ढंग से बोलते हुए, मै कहूंगा कि मै सरकार की ओर से क्षमा-याचना का भाव लेकर मै आपके सामने नही आया हूं । जो कुछ मेरी सरकार ने किया है, उसका मुझे गर्व है, और मै समझता हूं कि हमने अपनी समस्याओ का साहस के साथ, बिना उत्तेजना के, सामना किया है उन समस्याओं का जिन्होने बहुत सी सरकारो को और बहुत से लोगो को पराभूत कर दिया होता। यह सही है कि हमने भूलें और गलतिया की है। लेकिन अगर आप देश पर एक व्यापक दृष्टि डालें, वह चाहे विदेशी सम्बन्धो के क्षेत्र में हो,चाहे घरेलू क्षेत्र में हो, और एक क्षण के लिये अपनी दृष्टि भंवरो और जलावर्तों और जलावरोधों से हटा लें, तो आप देखेंगे कि मुख्य धारा आगे बहती चली जा रही है और काफी तेजी से आगे बढ रही है। मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह देश आगे बढ़ रहा है और भविष्य में तेजी से आगे बढ़ेगा। इस देश में बहुत से लोग हैं, जिनका मुख्य काम, मुझे जान पड़ता है, अपने देश की निन्दा करना, अपने लोगो की निन्दा करना, सरकार की निन्दा करना और करीब-करीब सभी चीजो की निन्दा करना है । मैने कहा कि मै आलोचना की चिन्ता नहीं करता, वह चाहे जितनी कड़ी हो, कितनी ही निरन्तर हो। हम चाहते हैं, आप कहना चाहे तो कह लें कि हम विरोध भी चाहते हैं । मुझे इनकी

चिंता नही । लेकिन यह अत्यधिक निराशा की भावना मुझे अच्छी नही लगती, और भारत के भविष्य के विषय मे अशुभ वचनो का प्रयोग मुझे अच्छा नही लगता। मै मानता हूँ कि केवल आशावादी होना और वस्तुस्थिति को न देखना मूर्खता है। लेकिन यह उससे कम मूर्खता नही कि निराशावादी हुआ जाय और अपने ऊपर सभी प्रकार की आपत्तियो के आने की कल्पना की जाय। इसलिए बावजूद उन कठिनाइयो के जिनका हमे सामना करना पडा है, और बावजूद उन बेशुमार आलोचनाओ के जो कि हमारे विषय में होती रही है, जब मै भारत और उसके भविष्य का विचार करता हूँ तो अपने हृदय को दृढ पाता हूँ। इसका यह अर्थ नही कि हम आत्म-तुष्टि का रुख ले लें। इससे बड़ी कोई मूर्खता न होगी। हमारे सामने बड़ी समस्याये है, और उन्हे हल करने के लिए हमें कठिन परिश्रम करना है। लेकिन यदि हमे इन समस्याओ को एक लोकतन्त्रात्मक ढग से हल करना है। तो इसके लिये और जनता और केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच तथा भारत के सभी दल और वर्ग के लोगो में अ पस मे, बहुत अधिक सहयोग की आवश्यकता है। इसके लिए, हमें अपने आप पर, जो कार्य हमारे सामने है उसमे, और अपने देश के भविष्य में. विश्वास रखना चाहिये। जैसा कि मै कह चुका हूँ, आलोचना अवश्य होनी चाहिये, लेकिन ऐसी नही जिसका उद्देश्य रुकावट डालना हो, बल्कि ऐसी जो रचनात्मक और हमारे कार्य मे सहायक सिद्ध हो। हमे पुराना दृष्टिकोण बदलना होगा, और अपनी समस्याओ को समझने के लिए एक नया, अधिक सजीव दृष्टिकोण ग्रहण करना पड़ेगा।

अब मै आप से एक दूसरा और बड़ा कठिन प्रश्न पूछना चाहता हूँ, जोकि मेरे और मेरी सरकार के सामने सदा मौजूद रहता है। अगर मै कहूँ, तो हम लोग राजनीतिक दृष्टि से गांधी जी के सिद्धातो के बीच जन्मे और पले है। यद्यपि हमने गांधी जी के विचारो को न तो अहिंसा के विषय मे न अर्थशास्त्र के विषय मे, पूरी तरह ग्रहण किया। फिर भी हमने उनमे से बहुतों को ग्रहण किया जो हमारे देश के लिए उपयुक्त थे---और हो सकता है संसार के लिए भी कुछ हद तक उपयुक्त हो। अब आप जरा ऐसे लोगो की कल्पना कीजिये कि जो सदा शान्तिपूर्ण तरीको को ग्रहण किये हुए अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई चलाते रहे हो, उन्हे हद दर्जे की हिंसा का, और राज्य की हथियारबन्द शक्ति का सामना करना पड़ा हो। ऐसा करने म हमे कोई प्रसन्नता नही हुई, और इससे हमारे मन मे बड़ी समस्यायें और संघर्ष उत्पन्न हुए। हम लोग एक सरकार की हैसियत से शान्ति और व्यवस्था के लिए जिम्मेदार थे, और यदि हम शान्ति और व्यवस्था नही कायम रख सकते थे, तो सारे देश के छिन्न-भिन्न होने का भय था। उस जिम्मेदारी को छोड़ देने का या किसी दूसरे रूप में कार्य करन का हमे अधिकार न था। लेकिन हमारे मन मे सदा यह संघर्ष और

ख्याल रहा है कि महात्मा गांधी ने जिन बड़े सिद्धांतो को हमें निभाया था उनके विषय में हम कपटपूर्ण व्यवहार कर रहे थे । हम बातें तो गांधी जी के सिद्धान्तो की करते थे पर हर कदम पर हम उनको अमल में लाने में असफल होते थे। यह एक कष्टकर परिस्थिति थी। परन्तु देश में उस समय जो वस्तुस्थिति थी उसे देखते हुए हमें एक विशष प्रकार से कार्य तो करना ही था। मैं नहीं कह सकता कि हमने इससे भिन्न कार्य किया होता तो वह अच्छा होता। हम लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार काम किया, और किसी समय भी महात्मा गांधी के संदेश की यथार्थता या सत्य से इन्कार न करते हुए, हमने वह किया जिसे कि हम अत्यन्त आवश्यक समझते थे। अब जो प्रश्न बार-बार अपने विविध रूपो में हमारे सामने आता है वह यह है कि हम एक व्यापक रूप में नागरिक स्वतंत्रता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। जब तक कि नागरिक स्वतंत्रता का खूब विस्तार न हो, देश में असली स्वतंत्रता नही हो सकती। पर हम लोगो को बड़ी संख्या में, बिना मुकदमे की सुनवाई के, बंदी कर रहे हैं, और हमारी कुछ राज्यीय सरकारें ऐसे ढंग का कानून बना रही हैं जिस पर कि पुराने समय में हमें बहुत ही आपत्ति थी। इसे भाग्य की विडंबना ही समझना चाहिये कि हमें ऐसा करना पड रहा है। फिर भी हमने ऐसा किया है, और एक आकस्मिक ढग से नही, बल्कि पूर्ण विचार के बाद किया है; हमारे लिए यह एक गहरी चिंता का विषय था। अब हमें इसके बारे में क्या करना चाहिये? लोग हमारे पास आते है और नागरिक स्वतत्रता के के नाम पर उलाहना देते हैं; वे हमारे मनो में एक सहानुभूति की प्रतिध्वनि पाते है। पर वस्तुस्थिति यह है कि अगर हम ऐसी कार्यवाही न करें, तो देश में इससे कही बुरी बातें घटित होती हैं—गड़बड़ी और दुर्व्यवस्था होती है। इतना ही नही, देश के कुछ भागो में भीषण हत्याए तक हुई हैं। और अगर कोई एक बात है जिसको कि यह सरकार, जब तक कि वह अपने को सरकार कहती है, या जब तक कि उसके कुछ भी अधिकार शेष है, संभवत इजाजत नही दे सकती, तो वह सुचिंतित हत्या और किसी दल द्वारा किया गया विध्वस-कार्य है। मैं किसी प्रकार के सिद्धात के प्रचार पर आपत्ति नही करता, बशर्ते कि उसके अतर्गत हिंसा का प्रचार न हो। मै नही समझता कि नागरिक स्वतत्रता की किसी व्याख्या के अंतर्गत हिंसा का प्रचार और हिंसात्मक काम आ सकते है। पिछले डेढ़ वर्ष में हमें घोर हिंसा के विविध रूपो से निबटना पड़ा है, चाहे वह हिंसा अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर के प्रारम्भिक दिनो में पजाब या दिल्ली में हुई हो, और चाहे बाद में साम्प्रदायिक संगठनों द्वारा की गई हो, या चाहे कुछ श्रमिक दलों द्वारा और बहुत हद तक भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ वर्गो द्वारा पहले मुख्यतया हैदराबाद के आसपास सरहद के दोनो ओर और फिर पश्चिमी बंगाल में और दूसरी जगहों में की गई हो। मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि नागरिक स्वतंत्रता की हमारी कल्पना अब भी यही है कि हम सभी वर्गो के लोगो को अपने सिद्धांतो के प्रचार की पूरी स्वतंत्रता दें, बशर्ते कि वे हिंसात्मक कार्यो

से वचे रहे। हमें इसकी चिंता नही कि हम उन सिद्धांतों से सहमत है या नही; यदि उनका परिणाम हिंसात्मक नही तो हम उसके प्रचार की इजाजत देंगे। लेकिन यदि वैसा है, यदि किसी दल के प्रचार का उद्देश्य हिंसा या विध्वंस है, तव उसकी आज्ञा न होगी, और यदि इस कारण नागरिक स्वतंत्रता को सीमित करना पड़ता है तो वह सीमित की जायगी क्योकि कोई दूसरा उपाय ही नही। कलकत्ते मे कुछ दिन पहले जो भयानक काड हुआ था उसे आप सव जानते है। वात केवल यही तक नहीं कि कुछ लोगों की जानें गईं यद्यपि वह भी वहुत वुरा है। हम लोग वड़े पैमाने पर मृत्यु के अभ्यस्त हो गये है। लेकिन जिस वात से मैं सवसे अधिक विचलित हुआ वह यह भावना थी कि लोग जानवूझ कर इस तरह की वातें कर सकते है। वह पृष्ठभूमि कसी है जिसके भीतर से ऐसा वीभत्स व्यापार प्रकट हो सकता है? हमारी जनता में जो कि साधारणतः नम्र और एक दूसरे के प्रति सदय है, किस प्रकार ऐसी मनोवृत्ति विकसित हो जाती है कि वह इस तरह के भयानक कर्म कर सके?

जो हो, हमें ऐसी वातों का सामना करना है और इस तरह की घटनाओं को फिर से होने से रोकना है, भले ही हमें कितने ही आदमियो को मुकदमे की सुनवाई के वाद या विना मुकदमे के ही जेल में भरना पड़े, क्योकि यदि यह क्रम जारी रहता है तो सभी प्रकार का नियमित जीवन समाप्त हो जाता है। केवल कुछ गुंडे वच रहते है, जो कि प्रवल होकर समाज पर अत्याचार करते है। हम गुंडपन को इस देश में किसी तरह नही पनपने देंगे। यह वड़े दुःख की वात है कि इस तरह की वात लोगों के मन में श्रमिक वर्ग या श्रमिकों के संवंध में वैठे, क्योंकि मुझे विश्वास है कि भारत का श्रमिक, भारत का मजदूर वर्ग एक वहुत अच्छा मजदूर वर्ग है। वे कभी-कभी चाहे उत्तेजित या गुमराह हो जायें, लेकिन उनसे उचित व्यवहार किया जाय तो वे वड़े काम के लोग है और आखिर उन्ही के वल पर तो आप भारत का निर्माण करेंगे। उन लोगो से आपको निवटना है और उनके साथ न्यायोचित और अच्छा व्यवहार करना है। और जिस वात से मुझे वहुत दुःख पहुँचा है वह यह है कि लोगों के दिमागो में इन भयानक कृत्यो में से कुछ का श्रमिकों अथवा श्रमिक संघो के कार्य के साथ संवन्ध है। यह घातक सिद्ध होगा। हमारी सरकार ने श्रमिको के संगठनो, श्रमिक संघो आदि को प्रोत्साहन देने की कोशिश की है, क्योकि यह सवको भली भांति विदित है कि सभी दृष्टिकोणा से ज्यादा अच्छा यह है कि श्रमिक वर्ग उचित रूप में संगठित हो, उसे संगठन की स्वतंत्रता प्राप्त हो, उसे अपने हितों की रक्षा की स्वतंत्रता प्राप्त हो। यह स्थिति श्लाघनीय नही कि मजदूर असंगठित रहें, अपनी रक्षा न कर सकें और अपना काम ठीक से पूरा न कर सकें। इसलिए हमने उन्हें संगठित

होने के लिए प्रोत्साहन दिया है। जैसा कि आप जानते हैं, हमने झगड़ों का निपटारा करने के लिए, सुलह आदि कराने के लिए कानून बना दिये हैं, जिसमें जहां तक संभव हो हड़तालें टल सकें। जो कानून हमने बनाया है उसके कुछ अंशो पर आप में से बहुतो ने, शायद, आपत्ति की है। लेकिन हमारे सामने कोई दूसरा चारा नही है; या तो आप हड़तालें और बड़ी हड़तालें होने दें या कोई ऐसा संगठन बनावें जो कि झगड़ों का निपटारा कर सके। यह स्पष्ट है कि इनमें से दूसरा रास्ता बेहतर है, बशर्ते कि संगठन अच्छा हो, और उसका उद्देश्य किसी पक्ष को सताना न हो कर न्याय और निरपेक्ष व्यवहार हो। हम इस मार्ग पर चल रहे हैं और बावजूद कुछ श्रमिको और मालिको के गुमराह प्रयत्नो के, इसी मार्ग पर चलते रहने का इरादा रखते हैं। अच्छी सरकार का यह काम नही कि उत्तेजित होकर उद्देश्यो को छोड़ बैठे और थोड़े-से लोगों के दुराचरण की सजा बहुसंख्यक लोगों को दी जाय। ऐसा करना बहुत गलत होगा। फिर भी आज हमें स्थिति का सामना करना है, जिससे कि कुछ लोग और कुछ संघ और कम्यूनिस्ट पार्टी से संबद्ध कुछ अन्य सघ, अंतर्ध्वंस, तोड़-फोड़ और फूट डालने जैसी बुरी बातें न कर सकें। कुछ दिन हुए मैंने ससद में एक वक्तव्य दिया था जिसे आपने देखा होगा। अब हम इस स्थिति का सामना करने जा रहे हैं, और इस तरह के कार्यो का अन्त करने जा रहे हैं। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जिस बात की मुझे चिंता है वह यह नही कि हम इस स्थिति का कैसे सामना करें, क्योंकि हम इसका सामना करेंगे, हममें इसका सामना करने की काफी शक्ति है; चिंता की बात यह है कि इस तरह के संघर्ष अपने पीछे एक बुरा प्रभाव छोड़ते हैं, और दुर्भावना उत्पन्न करते हैं। एक तरह का ख्याल समाज के अन्य वर्गों में फैल जाता है कि औद्योगिक श्रमिक या रेलवे के श्रमिक अपराधी हैं। यह एक गलत ख्याल है और वास्तव में, उनमें से अधिकाश भले लोग हैं जो इस तरह का कोई उपद्रव नही करना चाहते। लेकिन जहां तक यह चुनौती हमारे सामने है, हमें उसका सामना करना पड़ेगा और हम करेंगे।

अब मैं खास तौर पर आप सब उद्योगपतियो और उन लोगो से, जिनका भारत के व्यापार से संबंध है, कहना चहूँगा कि पिछले दो-तीन सालो में इस बात को बहुत जोर देकर कहा गया है कि पूजी लगाने वाला, व्यापारी और उद्योगपति बहुत संवेदनशील होता है। वह एक भयानक रूप से सुकुमार प्राणी है और यदि उसकी शान में कोई गलत शब्द कहा गया, या व्याख्यान दिया गया तो उसका पारा एकदम चढ जाता है। पर उसके शरीर या दिमाग या आत्मा की संवेदनशीलता उसकी थैली की संवेदनशीलता के मुकाबले में कुछ नही है। मैं चाहूँगा कि आपलोग इस पर विचार करें, और पिछले साल या इसके लगभग जो बातें हुई हैं उनके विषय में सोचें।

आप सोचे कि किस तरह वह वर्ग, जिसके आप प्रतिनिधि है, वजेट से या किसी दूसरी घटना से या किसी और कार्यवाही से, जो घटित हुई हो या न हुई हो, भयभीत हुआ है। यह सब वार-वार कहा गया है, और इसमें निस्सदेह कुछ सत्य है। मुझे विश्वास है कि आप भयभीत हुए है। लेकिन क्या आप समझते है कि हर किसी से वार-वार यह कहने से कि जो कुछ भी हो रहा है उससे आप डर गए है आपकी प्रतिष्ठा देश में वढी है? क्या मै आपसे कहूँ कि इससे आपकी प्रतिष्ठा वढ़ने की वजाय लोग यह समझने लगे है कि आप डरपोक है, और आप की अवस्था ढल चली है। जब मै अवस्था ढलने की वात कहता हूँ तो मेरा तात्पर्य आपकी शारीरिक अवस्था से नही है, वल्कि इस वात से है—और यही एक सारभूत वात है—कि भारत के पूंजीपति, उद्योगपति आदि इतने उदार नही कि नये युग की नई समस्याओ का सामना कर सके, और आम तौर पर यह खयाल भी फैल रहा है कि वे कुछ सकुचित हृदय के लोग है और जरा-जरा सी वातो में घवड़ा जाते है और शिकायत करने लगते है और अपने-अपने आवरण में दुवक जाते है और दूसरो से सहायता माँगने लगते है। आपको सरकार से मदद मांगने का हक अवश्य है और आप उसे अवश्य मागिए। लेकिन आपके लिए या किसी भी वर्ग के लिए यह एक वुरी वात है कि इस प्रकार को कमजोरी और दुर्वलता का प्रभाव आप पर पड़े। आखिरकार आज की दुनिया में यह कहा जाता है कि अनेक आर्थिक विचार-धाराओं का सघर्ष हो रहा है। मुख्यतया ये दो है—एक ओर तो तथाकथित पूजीवादी विचार-धारा है, और दूसरी ओर तथाकथित साम्यवादी या सोवियत विचार-धारा है। मै समझता हूँ कि प्रश्न को सामने रखने का यह वहुत मोटा ढंग है। यह सत्य है कि समस्या को देखने के विविध आर्थिक दृष्टिकोण है, और हर एक पक्ष अपने दृष्टिकोण की यथार्थता का कायल है। लेकिन इससे अनिवार्य रूप से यह नतीजा नही निकलता कि आप इन दोनो मे से एक को स्वीकार करे। वीच के अन्य अनेक तरीके भी है। आप सव लोग जानते है कि पूजीवाद या औद्योगिक पूंजीवाद को जो कि ससार में लगभग १५० वर्ष पहले आया, एक वड़ी समस्या का सामना करना पड़ा था। वह थी उत्पादन की समस्या। उसने इस समस्या को, सिद्धान्त में और वहुत कुछ व्यवहार मे, दुनिया के अनेक भागो में हल कर लिया। इसलिए औद्योगिक पूजीवाद वावजूद अनेक प्रतिकूलताओ के, वहुत अधिक सफल रहा है। उसने उत्पादन की समस्या को हल कर लिया। अव, दूसरा प्रश्न उठता है: उसने जमाने की और समस्याओं को कहाँ तक हल किया? आज उसकी यह परीक्षा हो रही है कि वह वितरण की समस्या को भी क्या उसी तरह हल कर सकता है, जिस तरह कि उसने उत्पादन की समस्या को हल किया। यदि वह उस समस्या को हल नही कर सकता तो कोई और रास्ता निकालना पड़ेगा। यह सिद्धान्त का प्रश्न नही है; वह चाहे साम्यवाद का हो, चाहे समाजवाद का या पूंजीवाद का। यह कठोर तथ्य का प्रश्न है। भारत में अगर हम अपने देश की भोजन-वस्त्र, मकान आदि की वुनियादी समस्याओ

को हल नही करते, तो हम चाहे अपने को पूंजीवादी कहते हो या समाजवादी या साम्यवादी या कुछ और हम अलग कर दिए जायगे और हमारी जगह पर कोई दूसरा आएगा और उन्हे हल करने की कोशिश करेगा । इसलिए, अन्त में जमाने की ये बड़ी समस्याएं तर्क से या युद्ध से हल होने की नहीं, बल्कि ऐसे ही तरीके से हल हो सकती है जो प्रत्यक्ष परिणाम दिखाये। यह तरीका जो भी हो और जैसे भी काम पूरा हो तथा ऐसा आवश्यक परिवर्तन हो सके जिससे कि जनता को संतोष हो सके, वही ठीक समझा जायगा, और उसीसे आशा बंधेगी। यह आवश्यक नही कि वह तरीका कोई चरमपथी तरीका हो और ऊपर बताई गई दो विशिष्ट विचार-धाराओ में से एक के अन्तर्गत हो। यह दोनो के बीच का रास्ता भी हो सकता है । वास्तव में आप ससार में आज बहुत-से देशो में देखते है कि अन्य ऐसे तरीको को ढूढ निकालने की कोशिश हो रही है, जो कि पुराने ढग के पूंजीवाद से बिल्कुल जुदा है और जो उस तरफ झुकते हुए है जिसे कि साधारणतया समाजवाद कहा जाता है। वे बहुत तेजी से इसके निकट आ रहे है। हो सकता है कि भारत में भी हम कोई तरीका, कोई मध्यम मार्ग, ऐसा निकाल सकें, जो कि जनता की हालतो के अधिक अनुकूल हो । इसलिए मै इन 'वादो' से मोहित नही हूं, और मेरा दृष्टिकोण इस समस्या पर विचार करने के लिए कुछ सुस्ती का है (और मै कहना चाहूंगा कि देश का दृष्टिकोण भी ऐसा ही होना चाहिए) और मै इसके साथ जो 'वाद' लगा है उसे भूल जाना चाहता हूं। आज हमारे सम्मुख समस्या जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने, उनकी आवश्यकताओ को पूरा करने और उनके लिये ऐसे साधनो को प्रस्तुत करने की है जिससे वे अच्छा जीवन बिता सकें, और उनका जीवन न केवल भौतिक साधनो की दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विषयो की दृष्टि से भी, आगे बढ सके । दूर भविष्य में क्या होगा, यह मै नही जानता, लेकिन मै उन्हें ठीक मार्ग पर लगा देना चाहता हूं और इसकी मुझे चिन्ता नही कि वह कौन-सा 'वाद' है जो कि हमे उनको ठीक मार्ग पर लगा देने में सहायक होता है, बशर्ते कि वे ठीक मार्ग पर लग जायें। और अगर एक रास्ते पर चलने से हमें असफलता मिलती है, तो हम दूसरे रास्ते को पकड़ेंगे; हमें इस अथवा उस मार्ग के विषय में हठवादी न होना चाहिए। मार्ग में जो भी रुकावट आती है उसकी एकदम उपेक्षा करनी होगी, या उसे हटा देना होगा । पूरे आदर के साथ मै आपको बताना चाहूंगा कि अगर आप की मांगे जनता के हित में बाधक होती है, तो आप की मांगो की पूरी उपेक्षा कर दी जायगी। यह स्पष्ट है कि वे ऐसी न होंगी और उन्हे ऐसा न होना चाहिए, क्योकि आपके हित उनके हितो के साथ जुड़े हुए है । लेकिन यह मै आप ही के हित में कह रहा हूं कि मुझे इस पर आपत्ति है कि आप देश में घूमते फिरें और अपनी मांगें बताते फिरें और यह कहें कि आप का कितना माली नुकसान हुआ है।

आप अपनी थैली को भूल जाइये और अगर भूल नहीं सकते तो उसका जिक्र न कीजिए। यह बात आपके विरुद्ध पड़ती है। हमारे सम्मुख एकमात्र सच्ची कसौटी यह है कि कोई बात जनता के हित की है अथवा नही।

अव एक दूसरी भड़काने वाली वात को लीजिये। वह है राष्ट्रीयकरण की वात। भारत के प्रसग मे इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है? पारसाल किसी समय, मेरा खयाल है कि मैंने इस विषय पर भाषण दिया था। मुझे याद नही कि मै आपके सामने भी इस विषय पर वोला था या नही, लेकिन मैंने संसद् मे इस सम्वन्ध मे कुछ कहा था। और लोगो ने भी इस विषय पर कहा है। अभी उस दिन उपप्रधान मंत्री ने भी इस विजय पर कुछ कहा था। लोग समझते हैं कि सरकार एक नीति को पलट कर दूसरी नीत अपना रही है और साथ ही स्पष्ट निश्चय नहीं कर पा रही है कि उसे किधर वढ़ना है। हमें किसी वात पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता ही नही हुई, क्योंकि हमारे विचार इस विषय पर विल्कुल स्पष्ट रहे हैं। हमारे विचारों की स्पष्टता का कारण किसी प्रकार के सिद्धान्त नही थे—यद्यपि हर वात के पीछे एक सिद्धान्त होता है—वल्कि मूलतया कुछ व्यावहारिक कारण थे। हम समझते है कि भारत मे, आज की परिस्थितियो में कुछ वुनियादी उद्योगो पर राज्य का नियंत्रण होना चाहिए। कुछ तो इसलिए कि इन मूल और वुनियादी उद्योगो का निजी हितों द्वारा नियंत्रण इन उद्योगो के लिए भयावह है, और कुछ दूसरे कारणो से भी जिनके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नही। जहाँ तक कि और उद्योगों का सम्वन्ध है, वे निजी नियंत्रण मे रह सकते है, लेकिन यहाँ भी स्मरण रखना होगा कि जव एक राज्य अपने औद्योगिक और अन्य प्रकार के विकास के संवध में योजना वनाता है, तो योजना वनाना ही एक हद तक राज्य की ओर से नियंत्रण या निर्देशन का सूचक होता है, नही तो योजना वन ही नही सकती। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, १७ वर्ष हुए, राज्य द्वारा वुनियादी मूल उद्योगो और कुछ खास उद्योगो और सेवाओ के नियत्रण की नीति निर्धारित की थी। इस विषय का प्रारंभिक दृष्टिकोण यही है। दूसरी विचारणीय वात यह है कि किन चीजो को पहले उठाना चाहिए और किन्हें वाद मे? उद्योग संवंधी नीति पर एक वयान देते हुए हमने कुछ चीजें गिनाई थी, जिन्हें कि हमने समझा था कि तत्काल राज्य को ले लेना चाहिए या जिनका राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए (यदि आप इस शब्द का व्यवहार करना चाहे)। औरो के तथा कुछ वुनियादी और मूल उद्योगो के वारे मे भी हमने कहा था, कि हम उन्हें दस वर्ष तक, या हो कि सकता है कि इससे भी अधिक काल तक न छुएंगे। हमने ऐसा क्यो कहा? आप से विल्कुल स्पष्ट कहूँ कि जो लोग इन उद्योगो का नियंत्रण कर रहें हैं उनके प्रेमवश हमने ऐसा नही कहा, वल्कि इसलिए कि हमारे साधन सीमित थे। चूंकि हम लोग देश को औद्योगीकरण में सहायता देने के लिये

चिंतित थे, इसलिए हमने अनुभव किया कि जो साधन हमारे पास है उनका कहीं अच्छा उपयोग यह होगा कि उन्हें नए बुनियादी उद्योगों या नई योजनाओं में जो हमारी निगाह में थीं, लगाया जाय, न कि कुछ उद्योगो के स्वामित्व को निजी हाथों से बदल कर राज्य के नियंत्रण में फँसा दिया जाय। इसलिये भली भाँति सोच-विचार के बाद हमने निर्णय किया कि इन निजी उद्योगों को हम कायम रखेंगे और उनको सब तरह से प्रोत्साहन देंगे। हम नहीं जानते कि कब हम उनका राष्ट्रीयकरण कर सकेंगे। लेकिन इस बीच फौजी उद्योगों के अतिरिक्त, जिनका कि हर हालत में राष्ट्रीयकरण करना है, नए उद्योगों का एक राष्ट्रीय ढाँचा हम निर्माण कर लेना चाहते हैं। इसलिए यह हमारे साधनों के अच्छे-से-अच्छे उपयोग का तथा अन्य लोगों से, जिनमें कि उद्योग और व्यापार के और अन्य हितो के प्रतिनिधि भी होंगे, परामर्श करते हुए आगे बढने का प्रश्न है जिससे कि हम अपने पैसों का अच्छे-से-अच्छा लाभ उठा सकें और साथ ही मौजूदा हालतों को उलट-पलट न दें।

उप-प्रधान मंत्री ने उस दिन मद्रास या हैदराबाद में कुछ इस तरह की बात कही थी कि अपने वर्तमान साधनों को देखते हुए, कुछ चीजों का, जिन्हें कि हमने छोड़ दिया है, हम राष्ट्रीयकरण करने नहीं जा रहे है, क्योंकि अगर हम ऐसा करते है तो हम अपनी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के दूसरे विभागों के विकास को रोकते है। इसलिए, बिल्कुल व्यावहारिक दृष्टिकोण से, और इस दृष्टिकोण से भी कि जो काम आज हो रहा है और जिसे हम चाहते है कि जारी रहे, वह उलट-पलट न जाय, हम इस निर्णय पर पहुँचे। अब आपको और हमें और वास्तव में हम सबको एक दूसरे को समझना है, और अगर आप समझते हैं कि हम आपके हितों का नुकसान करने जा रहे हैं, तब स्पष्ट है कि सहयोग कठिन है। या, अगर हम समझते है कि आप अलग ही रहेंगे और हमारे अर्थात् राज्य के हितो को और अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचायेंगे तो भी हमारा—आपका कोई सहयोग नहीं हो सकता, क्योंकि जहाँ विश्वास का अभाव है वहाँ किसी प्रकार का सहयोग स्थापित हो ही नहीं सकता। हो सकता है कि हम और आप सदा सहमत न हो, लेकिन वस्तुस्थिति यह है, कि चाहे हम सहमत हों चाहे न हों, साधारण बुद्धि का तकाजा यह होना चाहिए कि हम मिल-जुल कर शक्ति लगावे। नहीं तो हममें से किसी का भी भला नहीं होना है। मैं चाहता हूँ कि आप इस विषय में विचार करें क्योंकि आप भली भाँति जानते है उद्योगपति और व्यवसायी लोग, चाहे उनकी गलती हो या न हो, आज जनसाधारण में बड़े अप्रिय हो गए हैं। वे अप्रिय इसलिए हुए है कि उनमें से कुछ लोगो ने ठीक व्यवहार नहीं किया है, और परिस्थितियों से लाभ उठाकर अधाधुंध नफ़ा कमाकर समाज को नुकसान पहुँचाया है। शायद अपेक्षाकृत थोड़े ही व्यक्तियों के इस तरह के व्यवहार ने सारे व्यवसायी समाज पर बुरा असर डाला

है । इसने उन्हे वदनाम किया है और मै ठीक-ठीक नही जानता कि यह वदनामी आप कैसे मिटायेंगे । लेकिन मै आप से कहता हूँ कि अ प अपनी प्रतिष्ठा को सुधारने का पूरा प्रयत्न कीजिए, क्योकि अन्त मे कानून या सरकारी रक्षा के वल पर हम वस्तुओं के उत्पादन मे वहुत आगे नही जा सकते, वल्कि इस कार्य से संवंधित विविध पक्षों की सद्भावना द्वारा ही ऐसा कर सकते है । यदि ऐसी कुछ भावना है कि व्यवसायी वर्ग ने जनसाधारण के प्रति उचित कार्य नही किया है, तो, क्या मै कहूँ कि, प्रायश्चित्त के रूप में आपको कुछ करना ही होगा, आर यह वात मै वडी गम्भीरता से कहता हूँ । मै मानता हूँ कि यह वड़ी गम्भीर वात है कि श्रमिक वर्ग ने कई जगहो पर भयानक रूप से दुर्व्यवहार किया है, और कलकत्ते की घटना वहुत वुरी है । हम इसकी आलोचना कर सकते है, लेकिन श्रमिक वर्ग का दुर्व्यवहार करना एक वात है—क्योकि आखिर उन्हे वहुत अच्छे आचरण की शिक्षा नही मिली है—तथा ऐसे लोगो का, जिन्हे कि दूसरों के लिए आदर्श स्थापित करना चाहिए, दुर्व्यवहार करना विल्कुल दूसरी वात है। यह वुराई श्रमिक वर्ग को दुर्व्यवहार करने का अवसर देती है, क्योकि वे देखते है कि दूसरे क्या करते है और इस तरह कुत्सित चक्र चलता रहता है। अतएव मै चाहूँगा कि आप इस पर विचार करें और इसका ध्यान रक्खें कि जो वाते आप जनता के सामने रक्खे वे ऐसी हो जिनमें जनता आपका स्वार्थ न देखे, वल्कि यह देखे कि आप समाज के हित मे काम कर रहे है, जैसा कि आप दूसरो से चाहते है; क्योकि आखिर हम लोगो को भारत में साथ ही डूवना या पार होना है, चाहे वह श्रमिक वर्ग हो चाहे उद्योगपति हों । आज भारत में यह देख कर आश्चर्य होता है कि कुछ ऐसे लोग या वर्ग है, जो उपद्रव और अनर्थ और अव्यवस्था उत्पन्न करना चाहते है, पर जिनका किसी 'वाद' से कोई सम्वन्ध नही । जहाँ तक मेरा सम्वन्ध है, मै यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई भी साम्यवादी, अगर वह ईमानदार है और अगर वह भारत के भविष्य के हित में सोचता है, कैसे इस प्रकार के कामो में लग सकता है, जिनमे कि आज भारतीय साम्यवादी दल लगा हुआ है । मैं साम्यवाद से सहमत हूँ या असहमत, इससे स्थिति में कोई अन्तर नही आता । लेकिन मै कहता हूँ कि भारत के कुछ वर्गों के कार्य,—उनके समाजवादी सिद्धान्त जैसे भी हों,—ऐसे है, जिनका भारत की भावी भलाई से कुछ भी वास्ता नहो । वे कुछ दूसरे ही विचारो पर आधारित है । मेरा विश्वास है कि वे भारत में अव्यवस्था उत्पन्न करने के निश्चित उद्देश्य पर आधारित है, जिससे कि शायद यह आशा की जाती है कि अन्त में कुछ नई चीज़ निकल आवे । यह एक अजीव दृष्टिकोण है, यानी भारत की चलती गाडी को रोकना और शायद एक या दो पीढ़ियो तक इस वात की प्रतीक्षा करना कि कुछ नतीजा निकल आवे । मेरा विश्वास है कि यह एक ऐसी चीज है, जिसे कि भारत के लोग कभी वर्दाश्त न करेंगे । हम कुछ ऐसे वर्गो का मुकावला करने को तैयार है जो कि भारत में वैसी अव्यवस्था और उपद्रव फैलाना चाहते है, जैसा कि उन्होने वर्मा तथा अन्य जगहो में किया है । इसका सभी को मुका-

बला करना है, और इसका मुकाबला तभी किया जा सकता है जब कि हर एक वर्ग अलग-अलग दिशा में जोर न लगा कर और केवल अपने स्वार्थ की बात न सोच कर, राज और जनता के हित की बात सोचे।

अब मैं खुराक की समस्या के सम्बन्ध में कुछ बातें कहना चाहूँगा। भोजन आज हमारे लिए एक बुनियादी समस्या बन गया है। यह एक ऐसा विषय है जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि हम स्थिति सँभालने में असफल रहे हैं। मैं समझता हूँ कि उस आसानी के कारण ही, जिससे कि हमें बाहर से खाने का सामान मिलता रहा है, हम इस समस्या का उचित ढंग से सामना नहीं कर सके हैं। मैं समझता हूँ कि हमें इस रूप में सोचना चाहिए कि एक निश्चित काल के बाद हम बाहर से अनाज नहीं मँगायेंगे यह अवधि हम चाहे तो दो वर्ष की रख लें, पर इससे मैं एक दिन भी आगे बढ़ना न चाहूँगा, और हमें यह निश्चय कर लेना चाहिए कि दो वर्ष के बाद जो अनाज हम पैदा करेंगे उसी पर अपना निर्वाह करेंगे या इस प्रयत्न में जान की बाजी लगा देंगे। अब अपने मन में मुझे पूरा विश्वास है कि मूलतः और बुनियादी तौर पर भारत की खुराक की समस्या कोई कठिन समस्या नहीं है। कुछ हमने उसे मुश्किल बना ही लिया है। आखिरकार अनाज की कमी, मेरा खयाल है, अब ६ % या ७ % के लगभग है। फसलें बुरी हो तो १० % मान सकते हैं। हम लम्बे समय की योजनाओं को, जो पांच, छ: या दस वर्षों में फल लाएँगी, अलग भी रखें तो भी यह सहज में सम्भव होना चाहिए कि अगले लगभग दो वर्षों के बीच उपज बढ़ाकर या नए रकबों पर खेती करके या खाने की आदतों में परिवर्तन करके ऐसा प्रबन्ध कर लें कि यह ७ या ८ % की कमी पूरी हो जाय, और मैं चाहूँगा कि केन्द्रीय सरकार और राज्यीय सरकारें तथा और लोग भी इसी प्रकार कार्य करें। जिस तरह इस समय काम चल रहा है उसी तरह चलाए जाना अर्थात् विदेशों से बहुत बड़ी मात्रा में अनाज मगा कर निर्वाह करना ठीक नहीं है।

मैंने आपका बहुत सा समय ले लिया और शायद मैंने उन सब बातों की चर्चा नहीं की जिनको कि आपके अध्यक्ष ने अपने भाषण में उठाया है। जैसा कि आपको मालूम है हम सब आज कल संसद में अपने बजट पर बहस कर रहे हैं और इस बजट का, हमारी की हुई और बातों की तरह सभी तरह के लोग बड़े जोरों से विरोध कर रहे हैं। यह बजट मूलतः एक ऐसा बजट है जो सावधानी बरतते हुए तैयार किया गया है, जिसमें जोखिम से बचने का प्रयत्न हुआ है और जो कि हमारे सुयोग्य वित्त-मंत्री के दिमाग से बहुत सोच विचार के बाद निकला है। इसकी आलोचना करना सहज काम है, लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हमने इस समस्या पर जान-बूझ कर इस दृष्टि से नहीं देखा है कि तत्काल नतीजे हासिल हो जायें, बल्कि इस दृष्टि से कि अगले वर्ष परिणाम निकलें। इस समय ऐसी बातें कहना या करना सहज

होता जो कि सरकार को कुछ अधिक जनप्रिय बना देती। यह बहुत आसान था। लेकिन लोकप्रियता हासिल न करके भविष्य में एक अधिक मजबूती लाने वाला रास्ता पकड़ने का साहस हमने दिखाया। कार्य करने के इस ढंग का जनता स्वागत करेगी या नही, यह मैं नही जानता, क्योकि लोग अक्सर आगे के वायदे की अपेक्षा तत्काल लाभ पसन्द करते है। लेकिन आखिरकार, सरकार की हैसियत से हमें आज की ही नहीं बल्कि आने वाले कल की और परसों की बातें भी सोचनी पड़ती है। हमें भारत की इस विशाल इमारत को दृढ़ नींव पर बनाने की बात सोचनी है। हमने पिछले साल-दो साल के बीच इस दृढ़ नीव के रखने की कोशिश की है। लेकिन नीव रखने का कार्य आरम्भ करने से पहले ही हमें दैत्यो जैसी बाधाओं और विघ्नो का सामना करना पड़ा, और उनसे लड़ना पड़ा और अगर उन्हे मार डालना नही तो कम से कम बेकार करना पड़ा। आगे भी बहुत से वन्य जंतुओ का हमें सामना करना है। फिर भी भविष्य के भारत की नींव आज पड़ रही है, और अगर हम उसे कुछ ऐसी बातें करके खतरे में डाल दें, जो कि सुखकर भले ही हों लेकिन जिनके प्रतीक्षित नतीजे कल कुछ न निकलें तो भविष्य में अपने विश्वास के प्रति हम झूठे होंगे। हम आखिर एक प्रकार की कार्यवाहक सरकार है, जो कि भारतीय गणराज्य की स्थापना की प्रतीक्षा कर रहे है। जब उसकी स्थापना हो जायगी हम भारत का भार उसको सौंप देंगे; और हम चाहेंगे कि हम एक ऐसे भारत का भार उसे सौंपें जिसने अभी ही एक अंश मे महत्ता प्राप्त कर ली है और जो वेग के साथ आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय दोनो ही क्षेत्रो में कहीं बड़ी प्रतिष्ठा के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

भारत की वैदेशिक नीति
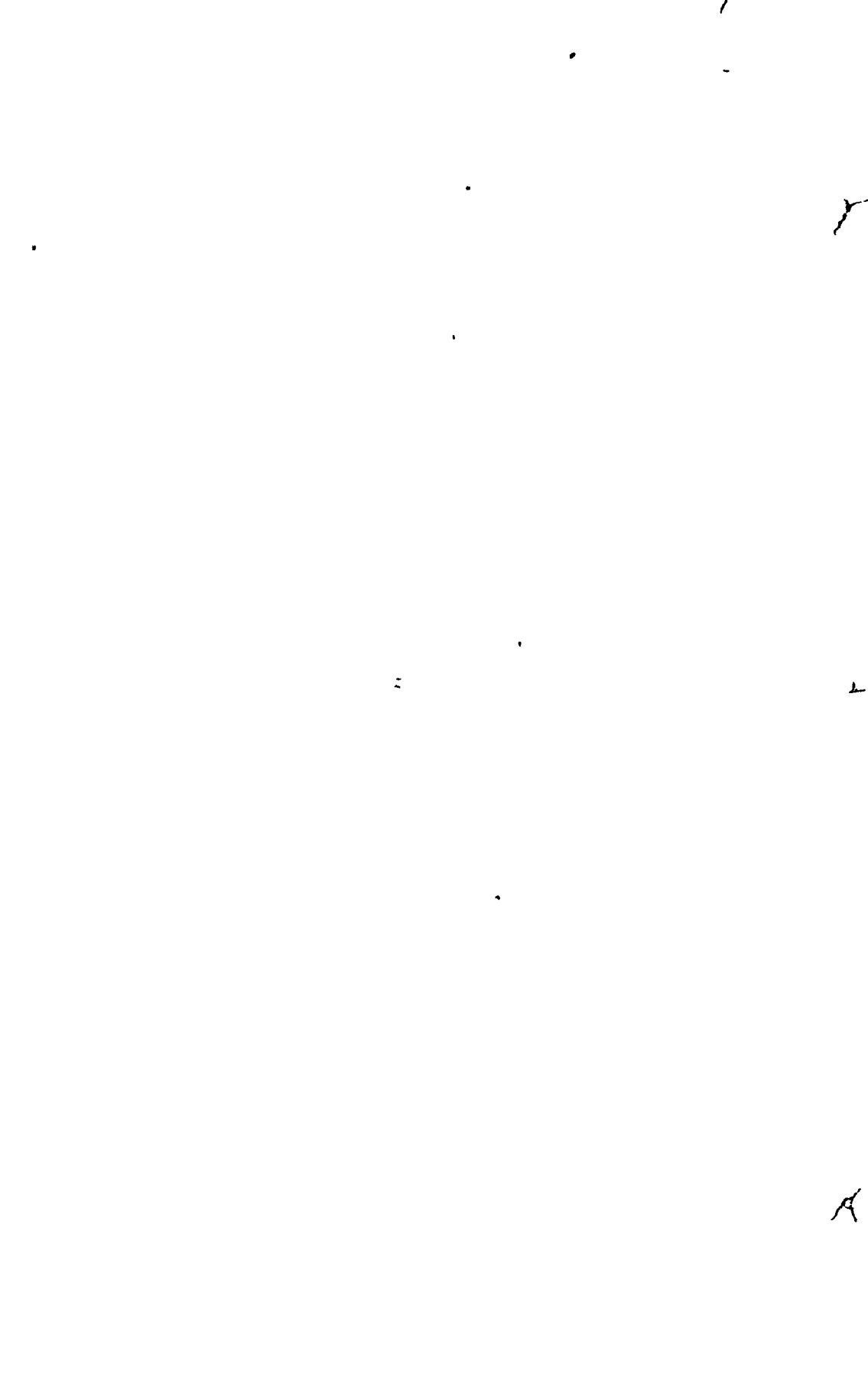
भारत की वैदेशिक नीति

महोदय, मैं इस अवसर का स्वागत करता हूँ। यद्यपि हम विदेशी मामलों के विषय में प्रत्यक्ष ढंग से नहीं, बल्कि कटौती के प्रस्ताव को लेकर विचार कर रहे हैं; फिर भी, इस सभा के लिए यह एक नवीन अवसर है और मैं समझता हूँ कि यह अच्छी बात है कि हम यह अनुभव करें कि इसके क्या अर्थ होते हैं।

इसके यह अर्थ हैं कि हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, केवल सम्मेलनादि करके नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को देश के तथा इस सभा के सामने निर्णय के लिये रखकर, प्रवेश कर रहे हैं। इस सभा के सामने कोई तात्कालिक प्रश्न नहीं है। लेकिन आगे चल कर निश्चय ही बड़े अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इस सभा को निर्णय करना होगा।

वादविवाद को और माननीय सदस्यों के भाषणों को सुनकर मैं यह समझ पाया हूँ, जैसा कि कदाचित् स्वाभाविक भी था कि कोई तात्कालिक विचारणीय विषय या विवाद का कोई खास प्रश्न हमारे सामने नहीं है, बल्कि केवल कुछ सद्भावना-पूर्ण आशाएँ हैं, कुछ अस्पष्ट आदर्श हैं और कभी-कभी, यह कहना चाहिए कि, संसार में जो बातें हुई हैं उनकी निन्दा है। यह एक अनिश्चित वादविवाद रहा है, जिसमें कोई ऐसी विशेष बात नहीं हुई जिसे ग्रहण किया जा सके। कई माननीय सदस्यों ने, भारत सरकार की ओर से गत वर्ष वैदेशिक मामलों में जो कुछ हुआ है उसके बारे में भले और उदार शब्द कहने की कृपा की है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ, लेकिन क्या मैं उत्तर में कह सकता हूँ कि मैं उनसे बिल्कुल असहमत हूँ?

मैं समझता हूँ कि भारत सरकार ने, पिछले वर्ष, जो कुछ उसे करना चाहिए था, नहीं किया। इसमें, कदाचित्, भारत सरकार का उतना दोष नहीं था, जितना परिस्थितियों का। जो भी हो, हमने जो कुछ करने का विचार कर रक्खा था, वह हम नहीं कर सके, अधिकांशतः इसलिए कि देश में अन्य परिस्थितियाँ खड़ी हो

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ४ दिसम्बर, १९४७ को दिया गया भाषण।

वैदेशिक मामलों और कामनवेल्थ संबंधों के मन्त्रालय के लिये व्यय की माग पर प्रोफेसर एन० जी० रंगा द्वारा रखे गए कटौती के प्रस्ताव के उत्तर में यह भाषण दिया गया था।

गईं, जो इसमें बाधक हुईं । हम अभी उन आन्तरिक तथा अन्य कठिनाइयों को दूर नही कर सके है । अपने वैदेशिक सम्बन्धो में हमारा स्वतंत्र हाथ नही रहा है, और इसलिए मै इस सभा से अनुरोध करूँगा कि इस अवधि के विषय में अपना निर्णय करते हुए वह उन बातो का ध्यान रखेगी जो न केवल पिछले तीन-चार दुःखद महीनो में, बल्कि पिछले वर्ष भर में देश मे हुई है । यह वह समय रहा है जब कि हम एसे आतरिक संघर्ष और अव्यवस्था के बीच से गुज़रे है, जिसने कि हमारी शक्ति का शोषण कर लिया है और हमें अन्य मामलों पर ध्यान देने का समय नही दिया है ।

यह हमारे पिछले वर्ष की राजनीति की मुख्य बात रही है, और निस्संदेह इसने हमारी वैदेशिक नीति पर इस रूप में असर डाला है कि हम अपना काफी समय और शक्ति उसे नही दे सके। तथापि मै समझता हूं कि हम उस क्षेत्र में आगे बढ़े है। फिर, यह माप करना कठिन है कि आप इस क्षेत्र में कितना आगे बढ़ सके। मेरे माननीय मित्र डा० खरे ने कई बातो की आलोचना की है, और इसका उन्हे पूरा अधिकार है, और उनकी आलोचना ने एक लिखित व्याख्यान का रूप लिया है जिसकी ओर आप का ध्यान आकर्षित नही किया गया ! माननीय डा० खरे के इस वाद-विवाद में प्रवेश करने से मुझे प्रसन्नता हुई, क्योकि विवाद कुछ भारी सा पड़ रहा था और उन्होंने उसमें प्रहसन और हास्य और साथ ही कल्पना का पुट दे दिया। जब ये माननीय सदस्य इस सभा में भारत सरकार के प्रतिनिधि थे, तब वे जो कुछ कहते थे उसे विशेष महत्व देना कुछ कठिन होता था । मै समझता हूं, ऐसा करना शायद अब उतना कठिन नही, या शायद हो भी ! इसलिए मै कुछ कहने का या उन्होने जो कुछ कहा है उसका उत्तर देने का साहस न करूँगा, क्योकि वह मुझे बिल्कुल असंगत और अर्थहीन जान पड़ता है ।

लेकिन हम और बातों पर आवे, तो आज वैदेशिक नीति के प्रमुख विषय का धुँधला-सा सकेत हमे उस रूप में मिलता है जिसकी चर्चा "आप इस गुट के साथ है या उस के ?" इस प्रश्न द्वारा करते है । पर ऐसा कहना विचारणीय विषय को अत्यधिक सरल कर देना है । माननीय मौलाना के लिए यह प्रवचन देना सहज है कि भारत इस झडे या उस झंडे के नीचे युद्ध करेगा। लेकिन एक जिम्मेदार सभा या एक जिम्मेदार देश, निश्चय ही, स्थिति को इस तरह नही देखता।

हमने पिछले वर्ष यह घोषणा की थी कि हम किसी खास गुट के साथ अपने को संबद्ध न करेंगे । इसका तटस्थता या अकर्मण्यता या किसी और बात से सम्बन्ध नहीं । अगर एक बड़ा युद्ध होता है तो कोई कारण नही कि हम उसमें कूद पड़ें । फिर भी आजकल संसारव्यापी युद्धों में तटस्थ रहना कुछ कठिन होता है ।

जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का कुछ भी ज्ञान है, वह यह जानता है। विचारणीय विषय यह नहीं है कि जब युद्ध हुआ तो क्या होगा। क्या हम मौलाना हसरत मोहानी की सलाह मान कर दुनिया से ऐलान करने जा रहे हैं कि जब लड़ाई होगी तब हम रूस का साथ देंगे ? वैदेशिक नीति या किसी प्रकार की नीति के बारे में क्या यही उनकी कल्पना है ? उनकी इस बात से मुझे जान पड़ता है कि उन्हें इसका आश्चर्यजनक रूप से अज्ञान है कि वैदेशिक मामलों का संचालन कैसे होता है । जहां तक हो सकेगा हम किसी युद्ध में सम्मिलित न होंगे; और जब यह तै करने का अवसर आयेगा कि हम किस तरफ शरीक हों, तो हम उस तरफ शरीक होंगे जिधर जाने से हमारा हित होगा। यही पर यह बात खतम हो जाती है।

विदेशी नीतियों की चर्चा करते हुए इस सभा को याद रखना चाहिए कि यह शतरंज के तख्ते की झूठी लड़ाइयां नही हैं। इनके पीछे सभी प्रकार की बातें होती हैं। अन्त में, वैदेशिक नीति आर्थिक नीति का परिणाम होती है, और जब तक भारत अपनी आर्थिक नीति का ठीक-ठीक विकास नही कर लेता, उसकी वैदेशिक नीति कुछ अनिश्चित, कुछ असंगत, कुछ अटकल लगाती हुई सी रहेगी। यह हम भले ही कहे कि हम शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में है, फिर भी, इससे कोई कुछ समझ नहीं सकता, सिवाय इसके कि यह एक सद्भावनापूर्ण आशा है। हम निस्सदेह शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में हैं। मै समझता हूँ कि इस विषय में कुछ कहा जा सकता है। जब हम कहते हैं कि हम एशियायी देशो की स्वतन्त्रता के पक्ष में और उन पर होने वाले साम्राज्यवादी नियंत्रण के विरुद्ध हैं तो इसमें कुछ अर्थ अवश्य है।

निश्चय ही इसका कुछ तात्पर्य होता है, लेकिन यह अनिश्चित वक्तव्य कि हम शान्ति और स्वतंत्रता के पक्ष में है, स्वत कोई अर्थ नही रखता, क्योंकि हर एक देश यही बात कहने के लिए तैयार है, चाहे उसका यह मतलब हो या न हो, तो फिर हम किस पक्ष में है ? वास्तव में, इस तर्क का विवेचन करने के लिए हमें आर्थिक क्षेत्र में जाना पड़ेगा। आज की जो स्थिति है, वह यह है कि यद्यपि हमें कुछ समय से सरकार के रूप में अधिकार प्राप्त है, फिर भी मुझे खेद है कि हम कोई रचनात्मक आर्थिक योजना या आर्थिक नीति नही प्रस्तुत कर सके है। इसकी जो सफाई मै दे सकता हूँ वह यह है कि हम एक ऐसे अजीब जमाने से गुज़रे हैं जिसने हमारी सारी शक्ति और सारा ध्यान खीच रक्खा था और इसी से ऐसा करना कठिन था। फिर भी यह हमें करना पड़ेगा, और जब हम यह कर लेगे तो हमारी विदेश नीति इस सभा में दिए गए सब व्याख्यानो की अपेक्षा उसके अधिक आश्रित होगी।

हमने विदेशी गुत्थियो से बचने का यत्न, किसी गुट में सम्मिलित न होकर

किया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह रहा है कि इन वड़े गुटों मे से एक का भी हमारी तरफ सहानुभूति का रुख नही है। वे समझते हैं कि हमारा भरोसा नही किया जा सकता, क्योकि हमें एक पक्ष या दूसरे पक्ष मे राय देने के लिए वाध्य नही किया जा सकता।

पिछले वर्ष जव हमारा प्रतिनिधि-मंडल सयुक्त राष्ट्र संघ में गया, तो वह पहला मौका था जव कि भारत से एक कमोवेश स्वतत्र प्रतिनिधि-मंडल वाहर गया हो। इसे कुछ संदेह की दृष्टि से देखा गया। लोगो को मालूम नही था कि यह क्या करने जा रहा है। जव उन्होंने देखा कि हम अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं तो उन्होंने इसे पसन्द नही किया। गत वर्ष हम संयुक्त राष्ट्र संघ में लोकप्रिय नही थे। मेरा आशय व्यक्तिगत रूप से लोकप्रिय होने से नही है, वल्कि अपनी नीति के सम्वन्ध में। वे ठीक-ठीक पता नही चला सके कि हम क्या हैं और हमारा उद्देश्य क्या है। पहले पक्ष के मन में यह सन्देह था कि हम वास्तव में दूसरे पक्ष से गुप्त रीति से मिले हुए है, और हम इस वात को छिपा रहे है, और दूसरे पक्ष ने समझा कि हम पहले पक्ष से गुप्त रीति से मिले हुए हैं, और हम इस वात को छिपा रहे है।

इस साल उनके रुख में कुछ परिवर्तन हुआ। हमने वहुत सी ऐसी वातें की जो दोनो पक्षों ने नापसन्द की, लेकिन यह उनकी समझ में आगया कि हम वास्तव में किसी गुट से मिले हुए नही है, और हम अपने दृष्टिविन्दु के अनुसार और अपनी समझ से किसी विवाद विशेष के गुण-दोष को देखते हुए काम करने की कोशिश करते हैं। स्पष्ट है कि उन्होंने इसे पसन्द नही किया, क्योंकि स्थिति आज यह है कि इन वड़ी विरोधी शक्तियो में आपस में इतना मनोविकार, इतना भय और आपस में एक दूसरे के प्रति इतना सन्देह है कि कोई भी जो उनके साथ न हो उनका विरोधी समझा जाता है। इसलिए अनेक अवसरो पर जो कुछ भी हमने किया उसे उन्होंने नही पसंद किया : फिर भी उन्होंने हमारा काफी आदर किया, क्योकि उन्होने अनुभव किया कि हमारी एक स्वतंत्र नीति है, हमको धमका कर इस या उस पक्ष में नही किया जा सकता। हम किसी दूसरे की भांति गलती कर सकते है, फिर भी हम अपनी नीति, और अपने कार्यक्रम पर दृढ़ रहेंगे। इस तरह एक ओर जहां हमने संभवत: अपने कुछ मित्रों को पिछले वर्ष से भी अधिक अप्रसन्न किया, वही सव के साथ हमारा अच्छी तरह निभाव हुआ, क्योकि उन्होंने समझा कि हमारा अपना एक पक्ष है।

हमने किस प्रकार कार्य किया इसके उदाहरण स्वरूप फिलिस्तीन का मामला ले लीजिए, जिसमें वड़ी दिक्कतें उपस्थित हुई, और आगे भी होंगी। हमने इस सम्वन्ध में एक विशेष रुख लिया, जो कि मोटे ढंग से संघीय राज्य की स्थापना के पक्ष में था जिसके अलग-अलग भागों को

स्वायत्तता प्राप्त हो। संयुक्त राष्ट्रों के सामने जो दो और रुख थे, उन दोनो का यह दृष्टिकोण विरोधी था। इनमें से एक विभाजन के पक्ष में था, जो कि अब हो गया है, और दूसरा एकात्मक राज्य के पक्ष में था। हमने संघीय राज्य का सुझाव दिया, जिसमें, स्वभावतः संघीय शासन में, अरबो का बहुमत होता, लेकिन अन्य प्रदेशो को, जिनके अंतर्गत यहुदी प्रदेश भी आते, स्वायत्त शासन प्राप्त होता। बहुत सोच-विचार के बाद हमने निश्चय किया कि यह न केवल समस्या का उचित और संगत हल था, बल्कि एकमात्र हल था। किसी दूसरे हल का परिणाम होता युद्ध और संघर्ष। फिर भी हमारा बताया हल—जो कि इस सभा को स्मरण होगा कि फिलिस्तीन कमिटी की अल्पसंख्यक रिपोर्ट में दिया हुआ हल था—संयुक्त राष्ट्रो में अधिकांश लोगो द्वारा पसन्द न किया गया। बड़ी शक्तियो में से कुछ विभाजन पर तुली हुई थी; इसलिए उन्होंने विभाजन पर जोर दिया और अन्त मे उनकी बात होकर रही। दूसरे लोग एकात्मक राज्य के लिये इतने उत्सुक थे और विभाजन रोकने के विषय मे, कम-से-कम विभाजन के प्रश्न पर दो-तिहाई बहुमत को रोक सकने के विषय में, इतने विश्वस्त थे कि उन्होंने हमारे सुझाव को स्वीकार नही किया।

जब किसी तरह अन्तिम कुछ दिनो में विभाजन अचानक अवश्यम्भावी हो गया, और उसके पक्ष में कुछ बड़ी शक्तियो के दबाव से मत पलटने लगे, तो यह अनुभव किया गया कि भारतीय हल कदाचित् सब से अच्छा था, और अन्तिम ४८ घंटो मे भारतीय हल को अग्रसर करने का प्रयत्न हमारे द्वारा नही, बल्कि उन लोगो के द्वारा हुआ, जो कि एकात्मक राज्य चाहते थे।

इस समय बात बहुत आगे बढ चुकी थी। कार्य-विधि संबधी कठिनाइया थी और बहुत से लोग जिन्होंने कि इस हल को स्वीकार किया होता, विभाजन के पक्ष में वचनबद्ध हो चुके थे। इसलिए, अन्त मे, दो-तिहाई बहुमत से विभाजन का निर्णय हुआ, और बहुत से लोगो ने मत दिए ही नहीं; परिणाम यह हुआ कि इस समय फिर कठिनाइया उपस्थित हो गई है, और भविष्य मे मध्य-पूर्व में बहुत उपद्रव की आशंका है।

मैं इस सभा को यह एक उदाहरण के रूप म बता रहा हूँ कि बहुत सी कठिनाइयो के बावजूद, और दोनो ओर के मित्रो के कहने पर भी कि हमें एक या दूसरे पक्ष के साथ मिल जाना चाहिए, हमने ऐसा करने से इन्कार किया, और मुझे कोई संदेह नही कि जो स्थिति हमने ग्रहण की थी वही ठीक थी और मुझे अब भी कोई संदेह नही है कि हमारा बताया हल ही सब से अच्छा हल होता।

यह स्थिति हमे बहुत से मामलों मे अपनानी पड़ती है। लेकिन इसका अनिव

रूप से यह अर्थ होता है कि हमे संयुक्त राष्ट्रो में और इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय वैठको मे अकेला रहना पड़ता है। फिर भी हमारे लिए एकमात्र सम्माननीय और सही स्थिति यही है, और मुझे पूरा विश्वास है कि इसी स्थिति को ग्रहण करके, अर्थात् किसी परिस्थिति पर तत्काल अपने पक्ष मे कोई मत प्राप्त करने के लिए सकुचित दृष्टि से विचार करके नही, वरिक दूरदर्शिता से विचार करके हम अपनी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को वढ़ा सकते है।

मुझे सन्देह नही कि शीघ्र ही दो तीन वर्षो के भीतर, ससार देखेगा कि हमारा यह रुख ठीक था और शक्ति के युद्ध मे भाग लेने वाली वड़ी शक्तियो द्वारा न केवल भारत आदर पायेगा, वल्कि वहुत से अपेक्षाकृत छोटे राज्य जो अपने को वेवस पाते है, कदाचित् अन्य देशों की अपेक्षा भारत की ओर नेतृत्व के लिए अविक देखेंगे।

क्या मै इस सम्वन्ध मे वता सकता हूँ कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सावारण सभा के पिछले अधिवेशन मे वहुत से वहुत मुश्किल और विवादग्रस्त विषय उठे थे, और हमारे प्रतिनिधि-मडल को आश्चर्यजनक रूप से जटिल परिस्थितियो का सामना करना पड़ा था? मै अपने प्रतिनिधि-मडल और विशेषकर उसके नेता की सराहना करना चाहूँगा। माननीय सदस्य अकसर राजदूतो, प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यो, और इसी प्रकार की नियुक्तियो के विषय मे प्रश्न करते है, और यह ठीक ही है, क्योकि इस सभा की ऐसी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियो मे दिलचस्पी होनी ही चाहिए। पर क्या मै इस सभा को वताऊँ, कि इन नियुक्तियो के करने से अधिक कठिन कोई काम नही, क्योकि यह केवल कुछ योग्य व्यक्तियो की नियुक्ति करना मात्र नही है, वल्कि विशेष व्यक्तियों की विशेष स्थानो पर, जिनमे वह ठीक वैठ सकें, नियुक्ति करना है, जो कि एक असाधारण रूप से कठिन काम है?

ससार की प्रमुख जगहो मे, आदर्श राजदूत को एक प्रकार का आदर्श पुरुष होना चाहिए। यह कठिनाई इस वात की नही है कि जटिल वातो को समझा जाय, वल्कि वड़ी कठिनाई यह है कि हर एक का मित्र वने रहते हुए अपने उद्देश्य को अग्रसर किया जाय। आखिर अभी तक हम विदेशी मामलो पर वाहर ही वाहर वहस करते रहे है—दूसरी सभाओ मे, या शायद यहा भी; और यह वहस किंचित् शास्त्रीय ढंग से कुछ इस तरह होती रही है जैसे कि कालेज की वाद-विवाद सभाओं मे होती है। अर्थात् हमने ऊँची-ऊँची नीतियो की वाते की है लेकिन उनसे साक्षात् निवटने के अवसर, जव कि हमे किसी प्रश्न पर 'हा' या 'न' कहना पड़े, और उसके परिणामो का सामना करना पड़े, हमें प्राप्त नही रहे है।

यदि यह सभा मुझे क्षमा करे तो मै कहूँगा कि आज के वाद-विवाद में भी वहुत

से भाषण शास्त्रीय ढग के थे, जिनमें कि उन महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर ध्यान नहीं दिया गया, जो आज दुनिया के सामने है, जिन का परिणाम शान्ति या युद्ध हो सकता है। लेकिन जब सभा को ऐसे प्रश्न का सामना करना पड़े, और जब किसी के सामने वास्तविकताएँ खड़ी हुई हो, तब केवल आदर्शवादी सिद्धान्तो पर निर्भर नही रहा जा सकता ।

वैदेशिक मामले आजकल नितान्त वास्तविकतापूर्ण है। एक गलत कदम पड़ने से या एक गलत वाक्याश कह देने से बड़ा अन्तर उपस्थित हो सकता है। पहली बात जो हमारे राजदूतो को सीखनी चाहिए वह है मुह बन्द रखना और सार्वजनिक भाषण न देना तथा निजी रूप में भी भाषण बन्द कर देना । यह बिल्कुल मौन रहने की ऐसी आदत है जो हमने अपनी जीवन-यात्रा मे नही डाली है । लेकिन इसका अभ्यास डालना पड़ेगा । निजी गोष्ठियो में भी मौन रहने की आवश्यकता है, जिससे मुह से कोई ऐसी बात न निकले, जिससे राष्ट्र का अहित हो, या जिससे अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य पैदा हो ।

मैं चाहूँगा कि यह सभा अब इस वास्तविकतापूर्ण पृष्ठभूमि में अन्तर्राष्ट्रीय मामलो पर विचार करे, न कि यह समझ कर कि कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग है, जो खिलवाड़ कर रहे है, और आपस में लड़ रहे है और अमेरिका या रूस या ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ राजनीतिज्ञ परदे के पीछे दूर पर छिपे हुए है। हम लोगो ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विषय मे इतनी बातें की है, कि हम इस आदत से मुक्त नही हो पाते ।

अन्तिम रूप मे जो काम की बातें है वे है किसी विषय के आर्थिक, राजनीतिक और विविध पहलुओ पर अधिकार प्राप्त करना तथा उन्हें समझने का प्रयत्न करना। आप जो भी नीति निर्धारित करें, किसी देश के विदेशी मामलो के सचालन की कला यह ढूढ निकालने में है कि देश के लिए सब से हितकर बात क्या है। हम अन्तर्राष्ट्रीय सदाशयता की बातें करें और ईमानदारी से करें। हम शान्ति और स्वतन्त्रता की बातें करें और ईमानदारी से करें। लेकिन अन्तिम विश्लेषण में हम यह पावेंगे कि कोई सरकार किसी देश का शासन करती है, तो उसके हित के लिए ही करती है, और किसी सरकार का यह साहस नही हो सकता कि वह कोई ऐसी बात करे जो दूर या निकट काल में स्पष्टतया देश के अहित में हो ।

इसलिए किसी देश का—चाहे वह साम्राज्यवादी हो या समाजवादी या साम्य-वादी—विदेश मत्री मुख्यतया उस देश के हित को ध्यान में रखता है। हा, एक अन्तर अवश्य है। कुछ लोग अपने देश के हित का विचार अन्य परिणामो की उपेक्षा

करते हुए या निकटस्थ लाभ की दृष्टि से कर सकते है। कुछ दूसरे लोग दूरदर्शिता की नीति का ध्यान रखते हुए अन्य देशो के हित को उतना ही महत्वपूर्ण समझ सकते है, जितना कि अपने देश के हित को। शान्ति के हित में काम करना अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योकि यदि युद्ध होता है तो सभी की हानि होती है। इसलिए दूर की दृष्टि रखते हुए, आत्महित की यह मांग हो सकती है और वस्तुतः होती भी है कि अन्य राष्ट्रो के साथ सहयोग तथा सदाशयता की नीति वरती जाय।

प्रत्येक समझदार व्यक्ति यह वात समझ सकता है कि यदि आज किसी देश की एक सकीर्ण राष्ट्रीय नीति है तो सभव है कि उससे लोगो को कोई तात्कालिक खुशी हो और उस खुशी मे आकर वे उस प्रकार का जोश दिखावे, जैसा कि साम्प्रदायिकता की पुकार से हुआ है; लेकिन ऐसी नीति वनाना राष्ट्र के लिए भी वुरा है और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी वुरा है, क्योकि आप अन्तिम भलाई को आखो से ओझल होने देते है, और इस तरह अपने ही हित को खतरे मे डालते है। इसलिए हम भारत के हितो को ससार-व्यापी सहयोग और ससारव्यापी शान्ति के प्रसग मे और यथासंभव विश्व-शान्ति की रक्षा को सर्वोपरि समझते हुए देखना चाहते है।

हम और देशों के साथ निकटतम मैत्री की भावना वनाए रखना चाहते है, जव तक कि वे स्वयं कठिनाइया उत्पन्न न करे। हम अमेरिका से मित्रता रक्खेगे। हमारा इरादा अमेरिका से सहयोग करने का है, और हम पूरी तरह सोवियत सघ से भी सहयोग करना चाहते हैं। जैसा कि इस सभा को मालूम है, कुछ समय से हमारे यहा अमेरिका के एक सुविख्यात प्रतिनिधि मौजूद हैं। दो-एक सप्ताह के भीतर सोवियत सघ के एक सुविख्यात प्रतिनिधि भी यहा सोवियत दूतावास मे, जो नई दिल्ली में खोला जा रहा है, आ जायँगे।

मै इस अवसर पर वैदेशिक मामलो के विषय मे और अधिक नही कहना चाहता, कुछ तो समय की कमी के कारण, और कुछ इस कारण से कि इन मामलो पर वहस करना कुछ कठिन है। कुछ माननीय सदस्य कदाचित् इस विषय पर कुछ कहना चाहे कि चीन, जापान, स्याम और पीरू में क्या हो, लेकिन मुझे भय है कि मेरे लिए इन विविध मामलों पर कुछ कहना ज़रा गैर-जिम्मेदारी की वात होगी। यह स्वाभाविक है कि भारत एशियायी देशो में शेष दुनिया की अपेक्षा कही अधिक दिलचस्पी रखता है। हमारे यहां एक एशियायी कान्फ्रेन्स हो चुकी है और इस समय हमारे यहां एक प्रमुख अतिथि अर्थात् वर्मा के प्रधान मंत्री, आए हुए है।

इस सिलसिले में क्या मै यह वता दू कि कुछ लोगो ने एक गलत धारणा वना रखी है? वे समझते है कि हम वर्मी शिष्टमडल से कुछ विशेष समझौते की वातचीत कर रहे

हैं। यह पूर्णतः सत्य नहीं है। उनका आना यहां मुख्यतया भद्रता के नाते हुआ है। साथ ही, हमने मोटे ढंग से विविध प्रश्नों पर, उन्हें समझने के लिए, आपस में विचार-विनिमय अवश्य किया है। हमने समान हित के बहुत से विषयों पर परामर्श किया है। हमने यह इस दृष्टि से नहीं किया कि इन जटिल मामलों पर तुरन्त कोई निर्णय हो जाय, वल्कि इस लिए कि भविष्य की बातचीत के लिए नींव रखी जा सके। क्या मैं यह भी बताऊँ कि बर्मा के प्रधान मंत्री की दिलचस्पी, हमारी ही तरह, न केवल बर्मा और भारत के बीच बल्कि एशिया के विविध देशों के बीच भी, निकटतर संपर्क स्थापित करने में है? हमने इस विषय पर भी विचार-विनिमय किया है, यद्यपि हम ने ऐसा अचानक निर्णय पर पहुँचने की दृष्टि से नहीं किया, क्योंकि इन बातों के आगे बढ़ने में कुछ समय लगता है। इस सबसे एशिया की नई प्रवृत्तियों का पता लगता है, जो कि एशियायी देशों को अपनी रक्षा के लिए और संसारव्यापी शान्ति को पुष्ट करने के लिए एक-दूसरे के निकट लाना चाहती है।

अब हम इस कटौती के प्रस्ताव के दूसरे भाग को देखें जो कि ब्रिटिश कामनवेल्थ (राष्ट्रमण्डल) में भारत के रहने के विषय में है। यह एक पुराना और दुःखद विषय है। मैं इस आलोचना से सहमत हूँ कि हम लोग इस दिशा में कुछ भी ठोस काम नहीं कर सके हैं। कनाडा में और अन्यत्र कुछ हुआ है, लेकिन अभी तक कुछ ठोस काम नहीं हुआ है। यह एक अजीब बात है कि यह विषय सरल होने की बजाय अधिकाधिक कठिन होता जाता है। अतीत में ब्रिटिश उपनिवेशों और अधिकृत देशों में भारत-निवासी व्यापारी, व्यवसायी, श्रमिक और शर्तबंद मजदूर आदि अनेक रूपों में गये हैं।

भारतीयों के परदेश में जा बसने का इतिहास, उनमें से छोटे से छोटे व्यक्ति का भी इतिहास, एक आश्चर्यकारी कथा की भांति पढ़ा जाता है। ये भारतीय किस प्रकार विदेशों में गए? एक स्वतंत्र देश के नागरिक न होते हुए भी, सभी संभावित असुविधाओं के बीच काम करते हुए भी, वे जहां कहीं गए, वहां उन्होंने अपनी योग्यता सिद्ध की। उन्होंने अपने लिए और जिस देश को अपनाया उसके लिए कठिन परिश्रम किया, और जिस देश में पहुँचे उसे लाभ पहुँचाया।

यह एक आश्चर्यजनक कहानी है और ऐसी बात है जिस पर कि भारत को गर्व हो सकता है। और क्या मैं यह बताऊँ कि उन गरीब शर्तबन्द मजदूरों ने, जो कि विषम परिस्थितियों में बाहर गए, अपने श्रम से किस प्रकार क्रमशः उन्नति की? यह भी सत्य है कि भारत एक ऐसा देश है जिसमें, बावजूद अनेक कमियों व अन्य

ऐसी ही वातों के, अपार शक्ति है, और जहाँ के लोग विदेशों में फैल सकते हैं। इससे चीन जैसे हमारे कुछ पड़ोसी देश किंचित् भयभीत होते हैं। चीन स्वयं एक ऐसा ही देश है जिसमें अपार शक्ति है और जिसकी अपार जन-सख्या है। फैलते हैं और हम अपनी संख्या के कारण तथा कभी कभी उस आर्थिक स्थिति के कारण जिस का हम वहां विकास करते हैं, दूसरों पर छा जाते है।

इससे स्वभावतः वे लोग भयभीत होते है जिनमे कि ऐसी शक्ति नही, और व इससे अपनी रक्षा करना चाहते है। और उन निहित स्वार्थो का भी प्रश्न उठता है जिनका विभिन्न देशो में विकास हुआ है। ऐसे प्रश्न उठे है, और जहां एक ओर हम स्पष्टतः विदेश-स्थित या प्रवासी भारतीयो के हितों की रक्षा करने के लिए कृत-संकल्प हैं, वही दूसरी ओर हम उन निहित स्वार्थों की रक्षा नही कर सकते, जो कि उन देशो के हितो के (जहां भी वे हो) विरोधी हों। यह एक वड़ी कठिनाई है। फिर भी सभी न्याय्य हितो की रक्षा करने के लिए, जो भी हम से हो सकेगा, हम करेंगे।

अव मैं इस सभा का और अधिक समय न लेकर केवल कुछ शब्द और कहना चाहूँगा। एक माननीय सदस्य ने, मेरा खयाल है श्री कामठ ने, दूतावासों द्वारा किए जाने वाले व्यय की चर्चा की है। अव सव से पहिले मेरे लिए यह वात एक छोटा सा सरदर्द वन गई है, और यह एक नई प्रवृत्ति है कि पुराने और नए समाचार-पत्र समान रूप से, वे-रोकटोक, आश्चर्यजनक ढग से, झूठी वातें छापने लगे है। उन सव की जानकारी रखना असंभव हो गया है। जो कुछ वे कहें उसका प्रतिवाद करते रहना अवांछनीय है। यह हो ही नही सकता। और नए प्रकार के समाचारपत्र और पत्रिकाएँ, जो कुछ लोगो ने हम पर लादी है और जिन्हें मैंने देखा है, न तो भारतीय पत्रकारिता के औरन किसी और ही चीज़ के स्तर को ऊँचा करने वाली है। इनमें न जाने कितनी कहानिया असत्य हैं। मेरा खयाल है, मैंने दिल्ली के एक पत्र में कहीं पढ़ा था कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने २०,००० रुपए और २०० साड़ियां श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित को उनकी मास्को-यात्रा के अवसर पर भेंट की। मैंने इन पत्रों मे श्री आसफ अली के विषय में तरह-तरह के अत्यन्त गर्हित और वे-बुनियाद और झूठे वक्तव्य पढ़े हैं।

खर्चे के विषय में मुझे यह कहना है कि श्री कामठ ने जो ५ लाख की रकम वताई है उसका वास्तविकता से कोई संवध नही है। मैं कह नहीं सकता कि यह रकम क्या है।

मेरा सुझाव है कि अगर श्री कामठ को कोई वक्तव्य देना हुआ करे तो वे उसे देने से पहले ठीक-ठीक वातों की जानकारी प्राप्त कर लिया करें।

जिस बात को मैं चाहूँगा कि यह सभा ध्यान में रक्खे, वह यह है कि इन राज-दूतों की नियुक्तियों में यह ध्यान रखना होता है कि उन्हें अपनी एक विशेष मान-मर्यादा कायम रखनी है। एक राजदूत को भेजकर हम उसके रहने के लिए घर का या घर के लिए फर्नीचर का या कम से कम साधनों का जिससे कि वह दूसरे कूटनीतिज्ञों से एक उचित स्तर पर मिल सके और उनकी मेहमानदारी कर सके, प्रबन्ध न करें, तो वह ठीक न होगा। मुझे इसमें संदेह है कि कोई भी देश, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, अपने दूतावासो को इतनी किफायत से चला रहा होगा जितनी किफायत से हम चला रहे हैं।

मास्को स्थित हमारे राजदूत द्वारा स्टाकहोम से फ़र्नीचर प्राप्त करने के संबंध में बड़ी आलोचना हुई है। मास्को में घर को किस प्रकार सामान से सजाया जाता है, शायद इसकी कल्पना माननीय सदस्य नही कर सकते। मास्को में सामान प्राप्त करना सहज नही। आपको खाली घर मिलता है। हमने भारत से सामान भेजने का विचार किया था, लेकिन जब तक कि हवाई जहाजों पर बहुत रुपये खर्च करके मेज-कुर्सिया न भेजी जायं, यह एक असम्भव सा काम था। यह सही है कि इसके बजाय रूसी फ़र्नीचर से घर सजाया जा सकता था। रूस के लोग—और उसके लिए उनकी पूरी सराहना होनी चाहिए—युद्ध के बाद उन कामो में, जिन्हें कि वे प्रमुख समझते हैं, ऐसे लगे हुए हैं कि वे अन्य साज-सामान पर समय नष्ट करने से इन्कार करते हैं। युद्ध में होने वाली भयानक यातना और विनाश के बाद, उन्हे अपने देश का पुनर्निर्माण करना है और वे अपनी शक्ति बड़े-बड़े कामो में केन्द्रित कर रहे हैं। पैवन्द लगे कपड़े और फटे जूते पहन कर वे आते-जाते हैं। उन्हें इसकी कुछ परवाह नही, लेकिन वे बाधो, जलाशयों, पुतलीघरो और अन्य चीजों का, जिन्हें वे आवश्यक समझते हैं, निर्माण करने में जुटे हुए हैं। इस लिए इन छोटे-मोटे सामानों को इस समय वहां प्राप्त कर सकना आसान नही है।

रूस में जो चीजें आपको मिल सकती है वे जारो के समय की पुरानी कारी-गरी की वस्तुएं हैं, जो कि भयानक रूप में मँहगी हैं। परिणाम यह है कि मास्को स्थित हमारे दूतावास को, अपनी कुर्सियों और मेजों के लिए, स्टाकहोम जाना पड़ा, और चूंकि दफ्तर के सामान आदि की शीघ्र आवश्यकता थी, हमारे राजदूत को स्वयं वहां जाना पड़ा। लेकिन इस सभा के सदस्यो को समझना चाहिए कि स्टाकहोम की यात्रा केवल फर्नीचर खरीदने के लिए नही थी। जब एक राजदूत कही जाता है तो वह अन्य काम भी करता है, किसी प्रकार की खरीदारी आदि का काम तो साथ में हो जाता है।

मैं इस सभा का उसके उदार विचारों और सद्भावना के उद्गारों के लिए जो कि हमारी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में (यद्यपि वह किंचित् अनि-

श्चित रही है) प्रकट किए गए है, कृतज्ञ हूँ । मै चाहता था कि यह एक अधिक निश्चित नीति होती । मै समझता हूँ कि वह अधिक निश्चित होती जा रही है, और क्या मै इस सम्बन्ध में कहूँ कि किसी भी देश की, जिसमें कि बड़ी शक्तिया भी सम्मिलित है और जिनकी विदेशी मामलो में लम्बी परम्परा है, कोई ऐसी नीति नही, जिसे कि एक निश्चित वैदेशिक नीति कहा जा सके, क्योकि सारा विश्व ही एक अनिश्चित स्थिति में है । हां, यदि आप इसे कोई निश्चित नीति समझते है कि एक देश दूसरे देश को कटु अप्रियता से देखे और उस पर संदेह करता रहे तो एक निश्चित नीति निर्धारित हो सकती है । लेकिन यह स्वयं कोई नीति नही है, यह केवल उत्तेजना और बदगुमानी है । नही तो, किसी देश की कोई बहुत निश्चित नीति नही है, और हर एक देश अपनी नीति को नित्य की परिवर्तनशील परिस्थिति में ढालता रहता है ।

भारत गुटबन्दी से बाहर है

महोदय, जो विविध सुझाव दिए गए हैं और आलोचनाएँ की गई हैं, उनमें मैंने दिलचस्पी ली है। मैं समझता हूँ कि यदि मैं इस जगह से नहीं बल्कि किसी दूसरी जगह से बोलता होता, तो सम्भवतः मैंने आपत्तियों की एक और लम्बी सूची प्रस्तुत की होती। इसलिए, माननीय सदस्यों ने, वैदेशिक मामलों के विभाग के प्रति जो शिष्ट व्यवहार का परिचय दिया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।

मैं चाहूँगा कि यह सभा भारत सरकार की विगत वर्ष की वैदेशिक नीति की आलोचना करते समय एक क्षण के लिए अपना ध्यान आज के किसी देश पर दे, और उसकी वैदेशिक नीति पर विचार करे—वह देश चाहे संयुक्त राज्य अमेरिका हो, चाहे ग्रेट ब्रिटेन हो, चाहे सोवियत रूस हो, चाहे चीन या फ्रांस हो। ये ही कुछ बड़ी शक्तियां मानी जाती हैं। जरा इनकी वैदेशिक नीति पर विचार कीजिए और मुझे बताइए कि क्या इनमें से किसी एक देश की भी वैदेशिक नीति किसी एक दृष्टिकोण से भी सफल हुई है? क्या वह विश्वव्यापी शान्ति या लोकव्यापी युद्ध को रोकने की दृष्टि से, या उस देश की निजी और अवसर से लाभ उठाने वाली दृष्टि से भी, सफल रही है।

मैं समझता हूँ कि अगर आप इस प्रश्न पर इस दृष्टिकोण से विचार करेंगे, तो आप देखेंगे कि उपर्युक्त हर एक शक्तिशाली देश की वैदेशिक नीति बुरी तरह से असफल रही है। हमें इन मामलों पर इस विशेष प्रसंग में विचार करना होगा। यह वास्तव में किसी एक शक्ति की वैदेशिक नीति की विफलता का प्रश्न नहीं है, यद्यपि दो या तीन बड़ी शक्तियां हैं जो कि विदेशी नीति पर शायद बहुत प्रभाव डालती हैं।

निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के क्रमशः बिगड़ने की जिम्मेदारी कुछ

संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ८ मार्च, १९४८ को दिया गया एक भाषण।

कटौती के दो प्रस्तावों पर, जिन्हें कि प्रोफेसर रंगा और सेठ गोविन्ददास ने, भारत की वैदेशिक नीति पर वादविवाद करने के लिए प्रस्तुत किया था, कुछ सदस्यों ने उस नीति के कुछ पहलुओं की आलोचना की, और संयुक्त राष्ट्रों के संगठन में एक गुट के साथ मेल कर लेने का पक्ष लिया। प्रधान मंत्री ने वादविवाद का उत्तर देते हुए यह भाषण दिया।

शक्तियों पर हो सकती है। भारत में, हमारी ज़िम्मेदारी बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हमने चाहे अच्छा अभिनय किया हो चाहे बुरा, लेकिन साफ कहा जाय तो हमारा इतना प्रभाव नही कि हम अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर बहुत प्रभाव डाल सकें। इसलिए, यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थिति बहुत बिगड़ी है, तो यह हमारी नीति के कारण नही। उस बिगड़ी हुई स्थिति से हमने भी उसी तरह हानि उठाई है, जिस तरह कि और किसी राष्ट्र ने, और मेरा खयाल है कि यह अस्पष्ट धारणा कि हमने हानि उठाई है इस सभा के सदस्यो को उन कारणों की खोज करने को प्रेरित करती है, जिन के कारण हमने हानि उठाई है।

मैं समझता हूँ कि इस विषय को देखने का यह बहुत अच्छा तरीका है, क्योंकि हमें अपनी भूल के कारणों को जानना चाहिए, और यह भी कि हम अपनी स्थिति को कैसे सुधार सकते थे, आदि, आदि। फिर भी मैं समझता हूँ कि वास्तविक बात यह है कि हमने जो भी नीति बरती हो, ये कारण उससे बाहर के हैं। दुनिया पर प्रभाव डालने वाले कारण इससे बड़े और अधिक गहरे हैं, और बड़े-से-बड़े राष्ट्र की ही भांति, हम भी इन शक्तियों द्वारा इधर-उधर खिंचते रहते हैं। यह ऐसी बात है, जिसे कि मैं चाहूँगा कि यह सभा अपने ध्यान में रक्खे।

एक दूसरी बात जो हम पर अधिक लागू होती है यह है कि उन दुर्घटनाओं के कारण जो कि भारत में १५ अगस्त, १९४७ से लेकर होती आई हैं, उन बातों का वजन घट गया या कुछ समय के लिए जाता रहा, जो हम बाहरी दुनिया में कर सकते थे। हमारी कुछ गिनती थी, यद्यपि वह बहुत ज्यादा नही थी और वह भी वस्तुतः प्रत्यक्षतः कम और प्रच्छन्न रूप से अधिक थी। लेकिन भारत और पाकिस्तान में १५ अगस्त के बाद जो घटनाएं घटी उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी प्रतिष्ठा को अचानक बहुत गिरा दिया। पाकिस्तान की बात मैं कहूं, तो स्वभावतः उसकी बड़ी गिनती नही थी, क्योंकि उसकी कोई पृष्ठभूमि नहीं थी; वह नवागंतुक था। वे हम थे, जिनकी गिनती थी—और इसी से उक्त घटनाओं से हमारी प्रतिष्ठा को ही सबसे अधिक धक्का पहुंचा।

इसी बात ने संयुक्त राष्ट्रों पर, जब वे पिछली अक्तूबर में दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न पर विचार करने बैठे, असर डाला। निश्चय ही भारत की घटनाओं ने संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा पर, जब कि उसमें दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न पर विचार हो रहा था, प्रभाव डाला। इसी तरह और मामलों में भी हुआ। ये सब बातें हमारी वैदेशिक नीति से कोई संबंध नही रखती।

जो विषय मैं इस सभा के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ वह यह है, कि यह

हमारे लिए अच्छा हो सकता है कि हम यह अथवा वह वैदेशिक नीति ग्रहण कर लें। इनमें से एक तटस्थता की नीति या, जैसा कि पंडित हृदयनारायण कुंजरू ने कहा था, अधिक निश्चयात्मक नीति हो सकती है।

लेकिन जो कुछ हुआ है उससे इस सब का कोई संबन्ध या सरोकार नहीं। उस पर कुछ अन्य ही बातों का प्रभाव पड़ा है। अगर आप चाहें तो कह सकते है कि यह गलती थी, लेकिन हम इन सब मामलो में किंचित् निष्क्रिय रहे है, और जिन बातो में हम सक्रिय रहे है वे वही बातें है जिनके विषय में कि माननीय सदस्य यह चाहते है कि हम अधिक सक्रिय हो। हम से कहा जाता है कि संसार के छोटे राष्ट्रों को हम अपने इर्दगिर्द इकट्ठा करें—लेकिन बात यह है कि यही सक्रियता (इसे आप आदर्शवादी कह सकते है; मैं नहीं समझता कि यह विशुद्ध आदर्शवादी है; मैं समझता हूँ, आप चाहे तो यों कह ले, कि यह अन्तत अवसरवादी है) और यही नीति जिसका कि हमने सरकार बनने से पूर्व अनुसरण किया था और कुछ हद तक सरकार बनने के बाद भी, अर्थात् जहा तक हो सके विभिन्न महाद्वीपो के कमजोर और दलित लोगों की हिमायत करना, बड़ी शक्तियो को रुचिकर नही रही है, क्योकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ये शक्तियाँ उक्त लोगो का शोषण करती और लाभ उठाती रही है। यही बात है जिसके कारण हम उनकी दृष्टि में अप्रिय बन जाते है।

और मामलो पर भी बहुत कुछ कहा गया है। इनमें एक इडोनीशिया का मामला है। इस सभा के समक्ष यह एक स्पष्ट उदाहरण है। हम वास्तविक सक्रिय सहायता के रूप में बहुत कम कर पाए है; हम ऐसा करने की स्थिति में नही है। लेकिन इडो-नीशियावालो के प्रति हमारी सहानुभूति है और इसे जितने सार्वजनिक रूप में कहना सभव था हमने कहा है। अगर हम इडोनीशियावालो के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते है और उनको थोड़ी बहुत सहायता देते है और इसको संसार की बड़ी शक्तियां बुरा मानती है, तो क्या हम अपनी सहायता वापस ले लें? क्या हम दब कर चुप हो जायें और कहे कि, "नही, इससे यह अथवा वह शक्ति नाराज हो जायगी," क्योकि इसमें कोई संदेह नही कि ऐसा करने से यह अथवा वह शक्ति नाराज होती है।

स्वभावतः सरकार की हैसियत से हम उतनी दूर नही जा सकते जितना कि हम एक गैर-सरकारी सस्था के रूप में जा सकते थे। गैर-सरकारी ढग से हम अपना मत यथासंभव स्पष्टता और अग्रसरता के साथ प्रकट कर सकते है। सरकार की हैसियत से बोलते हुए, हमें अपनी भाषा को नयत करना पड़ता है। हम कभी-कभी वैसे कार्य नही कर पाते जैसे कि हम अन्यथा करते। फिर भी, मुख्य बात यह है कि क्या हम इंडोनीशिया जैसे देश से, उसके स्वतंत्रता-संग्राम में

खुले तौर पर सहानुभूति रक्खें, या नही ? यह वात इंडोनीशिया के सम्बन्ध में ही नही वल्कि और देशों के सम्बन्ध में भी लागू होती है । हर हालत में, हमें विविध हितो के मूक विरोध का सामना करना पड़ता है । इनमें से कुछ ऐसे होते हैं जिनकी रुचि प्रत्यक्ष होती है, और कुछ अन्य ऐसे होते हैं जिनका कि परोक्ष रूप में लगाव है, क्योंकि ऐसे मामलों में प्रत्यक्ष और परोक्ष हित साथ साथ चलते है ।

यह बड़े अचरज की वात है कि इंडोनीशिया में सद्भावना-समिति (गुड आफिसेस कमिटी) जिसमें सभी भले लोग हैं, और संयोग से, जिसका मंत्री एक भारतीय ही है, किस रूप में काम करती रही है। जिस रूप में उसने कार्य किया है और उसके जो नतीजे सामने आए हैं वह विल्कुल सन्तोषजनक नहीं है । अगर यह सभा, सुरक्षा परिषद् के कश्मीर के विषय में इस वर्ष किए हुए कार्य या विचार से असन्तुष्ट है तो मैं समझता हूँ कि सद्भावना-समिति ने इंडोनीशिया मे जो कुछ किया है, उससे वह और भी असन्तुष्ट होगी । दुर्भाग्यवश ऐसी समस्याओं के प्रति उसका दृष्टिकोण ऐसा है कि उससे यह सभा हमारी पुरानी परम्पराओ और हमारे आदर्शो के कारण सहमत नही हो सकती ।

मैं इस गुट अथवा उस गुट की वात नहीं कर रहा हूँ; मैं स्वतंत्र रूप से गुटों के सम्वन्ध में, जैसे कि वे मुझे विश्व-रंगमंच पर प्रतीत होते हैं, कह रहा हूँ। हमें या तो अपनी नीति को साधारणतया सीमाओ को स्वीकार करते हुए चलाना है—क्योंकि उसे हम पूरी तौर पर नही चला सकते, फिर भी जितना चलाना है खुले ढंग से चलाना है—नही तो उसे छोड़ ही देना है । चाहे हम आदर्शवादिता और नैतिकता की दृष्टि से देखें, चाहे अवसरवादिता और संकुचित राष्टीयता की दृष्टि से, मेरी समझ में कोई भी अन्य वात इतनी हानिकारक नहीं हो सकती जितनी यह कि हम उन नीतियों को त्याग दें जिनका हम अनुसरण करते आए है—यथा दलित जातियों के प्रति किसी विशेष आदर्श पर दृढ़ रहना—और विशेष रूप से इनका त्याग किसी वड़ी शक्ति के साथ रहने के हेतु इसलिये किया जाय कि हमें उसका उच्छिष्ट प्रसाद मिल सकेगा । मै समझता हूँ कि राष्ट्रीय हित के अति सकीर्ण दृष्टिकोण से भी यह निश्चय ही एक वुरी और हानिकारक नीति होगी ।

यूरोप के कुछ छोटे देशों का या एशिया के कुछ छोटे देशों का , परिस्थितियों से मजवूर होकर कुछ वड़ी शक्तियो के आगे झुक जाना और विवश होकर उनके अनुचर वन जाना तो मैं समझ सकता हूँ, क्योंकि जिन शक्तियों का इन्हे मुकावला करना पड़ता है वे इतनी वड़ी होती हैं, कि इनके लिए कोई दूसरा सहारा ही नहीं

रह जाता। लेकिन मैं नहीं समझता कि यह बात भारत पर लागू होती है।

हम किसी दुर्बल या छोटे देश के नागरिक नहीं, और मेरे खयाल में, फौजी दृष्टि से भी आज की बड़ी से बड़ी शक्ति से हमारा भय खा जाना मूर्खता होगी। यह बात नहीं कि मैं किसी धोखे में हूँ। मैं समझता हूँ कि एक बडी शक्ति फ़ौजी दृष्टि से हमारे विरुद्ध हो जाती है तो हमारी क्या दशा होगी। मुझे कोई सदेह नहीं कि वह हमें नुकसान पहुँचा सकती है। लेकिन आखिर हमने इससे पहले, एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में, संसार की बड़ी से बड़ी शक्तियो में से एक का मुकाबला किया है। हमने उसका एक खास ढंग से सामना किया और उस ढग से हमें सफलता मिली है, और मुझे संदेह नहीं कि यदि बुरी से बुरी स्थिति आ जाय—और फ़ौजी तौर पर हम इन बड़ी शक्तियो का मुकाबला न कर सकें—तो यह कही बेहतर होगा कि हम उनके आगे सिर झुकाने के बजाय अपने ढंग से युद्ध करते रहें, न कि अपने सभी आदर्शों को खो बैठें।

इसलिए हमें इस या उस दल की सैनिक शक्ति से बहुत अधिक डरना न चाहिए। मैं नही डरता और मै संसार से इस देश की ओर से कहना चाहता हूँ कि हम इस या उस देश की सैनिक शक्ति से डरते नही। हमारी नीति न निष्क्रिय होगा और न नकारात्मक।

जो दो या तीन उदाहरण दिए गए है, उनसे शायद इस बात का सकेत मिल गया होगा कि कुछ माननीय सदस्यो के विचार किस दिशा में काम कर रहे थे, यद्यपि उसे स्पष्ट करने के लिये या तो उनके पास समय नही था या उनकी इच्छा नही थी। यह कहा गया है कि हमने संयुक्त राष्ट्रो में निषेधाधिकार का इसलिए समर्थन किया कि हम सोवियत गुट की दृष्टि में बुरे नहीं बनना चाहते थे। मैं इस सभा के सामने वस्तुस्थिति जिस रूप में वह मुझे स्मरण है, रखना चाहता हूँ। जैसा कि सभा को स्मरण होगा, निषेधाधिकार प्रत्येक पक्ष की सभी बड़ी शक्तियों की समान अनुमति से रक्खा गया था। यह इसलिए रक्खा गया था कि सोवियत रूस और अमेरिका के सहित बड़ी बड़ी शक्तियां नही चाहती थी कि आधे दर्जन छोटे देश मिल कर उनसे यह अथवा वह करने के लिए कहने लगें।

दोनों ऐसा अनुभव करते थे और इनमें से कोई भी छोटे राष्ट्रो के मिले-जुले बहुमत के सामने झुकना नही चाहता था। इसलिए इसे चार्टर या अधिकार-पत्र में शुरू से रक्खा गया। इस निषेधाधिकार का उपयोग हुआ या दुरुपयोग, इस विषय में मैं यहा न पड़ूँगा, लेकिन प्रश्न अब यह उठा है कि निषेधाधिकार को हटा लेना चाहिए। इसे कई बड़ी शक्तियो ने पसंद नही किया। यह इस गुट या उस गुट के

समर्थन का प्रश्न नही था। कोई भी गुट निषेधाधिकार का हटाया जाना पसंद नहीं करता था।

प्रश्न हमारे सामने यह था कि यदि संयुक्त राष्ट्रों के निर्णय या मतदान से निषेधाधिकार हटाया जाता, तो इसमें जरा भी संदेह नही था कि संयुक्त राष्ट्रो का अस्तित्व उसी क्षण समाप्त हो जाता। हमें चुनाव यही करना था कि हम निषेधाधिकार को रखें या उसे खत्म करने की हठ का समर्थन करके संयुक्त राष्ट्रसंघ को ही समाप्त होने दें। यह निषेधाधिकार को पसन्द करने का प्रश्न नहीं था। भारत की ओर से तथा वहुत से अन्य देशो की ओर से भी यह खुले तौर पर कहा गया कि हम निषेधाधिकार नापसन्द करते है और उसे हटना चाहिए। लेकिन हमें वताया गया कि यह वात सभी लोगो के मिले-जुले निर्णय से संभव थी।

मै श्री संतानम के इस कथन से सहमत हूँ कि संयुक्त राष्ट्रों का अस्तित्व उनकी त्रुटियों और कमज़ोरियो के वावजूद, एक हितकर चीज़ है। इसे सव प्रकार से प्रोत्साहन देना चाहिए और इसका समर्थन करना चाहिए और इसका एक प्रकार की विश्वव्यापी सरकार या विश्वव्यापी व्यवस्था के रूप में विकास होने देना चाहिए। इसलिए, हमने अपने प्रतिनिधियों को यह निर्देश दिया कि निषेधाधिकार के प्रश्न पर हद तक ज़ोर न दें, वल्कि यह कहे कि यद्यपि हम इसे पसन्द नही करते, फिर भी इसे उस समय तक वना रहना चाहिए जव तक कि यह प्रधान संवंधित वर्गों की एक प्रकार की आपस की रज़ामन्दी से न उठाया जाय।

इस प्रकार से विविध प्रश्न उठते है और हर एक प्रश्न पर उसके गुणदोष के अनुसार विचार करना होता है। मै नही जानता कि किसी माननीय सदस्य ने इन अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हमारे मतदान का विश्लेषण किया है। यदि वे गत वर्ष के संयुक्त राष्ट्रों या उसकी विविध कमेटियों और कौंसिल में उपस्थित किसी भी वड़े प्रश्न को लेकर यह देखेंगे कि भारत ने क्या किया तो उन्हे स्थिति की जानकारी प्राप्त करने में शायद मदद मिले।

यह अवश्य सत्य है कि अपने प्रतिनिधियों को हमारे निर्देश ये रहे हैं कि पहले प्रत्येक प्रश्न पर भारत के हितों को ध्यान में रखते हुए विचार करें, फिर उसके गुणों के अनुसार। मेरा मतलव यह है कि यदि भारत पर प्रभाव न पड़ रहा हो, तो स्वभावतः प्रश्न विशेष के गुणों के अनुसार विचार करे और कोई काम ऐसा न करें या कोई मत ऐसा न दें जिसका उद्देश्य केवल इस अथवा उस शक्ति को प्रसन्न करना हो, यद्यपि यह विलकुल स्वाभाविक है कि और शक्तियो से मैत्री वनाए रखने के

निमित्त हम ऐसा काम करने से बचना चाहते हैं जिससे उन्हें नाखुशी हो।

वास्तव में, उन्हें अपने अनुकूल करने का जहां तक सम्भव हो हम प्रयत्न करते हैं। औरों के झगड़ों में पड़ना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारी साधारण नीति यह है कि किसी के व्यक्तिगत झगड़े में न पड़ा जाय। अगर मैं कहूं तो मैं अधिकाधिक इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जब तक कि हमारे अपने हितों का उनसे उलझाव न हो अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों में हम जितना कम पड़ें उतना ही अच्छा है, और इसका सीधा कारण यह है कि यह हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल न होगा कि हम हस्तक्षेप तो करें लेकिन कोई प्रभाव न डाल सकें। या तो हम इतने शक्तिशाली हों कि हम प्रभाव डाल सकें, या हम हस्तक्षेप ही न करें। हर एक अन्तर्राष्ट्रीय मामले में टांग फंसाने के लिए हम उत्सुक नहीं। दुर्भाग्यवश, कभी कभी इससे आदमी बच नहीं सकता, और उसे विवश होकर खिंचना पड़ता है। उदाहरण के लिए, एक कोरिया समिति है। और यही नहीं कि हम उस समिति में हैं, बल्कि हमारा प्रतिनिधि उस समिति का सभापति भी है।

अब हम इससे एक दूसरी बात पर आते हैं, जिसकी कि एक माननीय सदस्य ने चर्चा की है। आज एक अजीब विपरीतता यह है कि जहां संयुक्त राष्ट्रों की अधिकृत मंत्रणाओं में हमारा शायद उतना प्रभाव नहीं है जितना कि होना चाहिए, वहां बाहरी गैर-जाब्ते की मंत्रणाओं में हमारा प्रभाव काफी बढ़ गया है। ऐसा क्यों है? क्योंकि लोग अधिकाधिक देखने लगे हैं कि संयुक्त राष्ट्रों के भीतर आदर्शवादी ढंग से या नैतिकता का पक्ष लेकर या दलितों, छोटे राष्ट्रों, एशियायी राष्ट्रों के हितों को लेकर बातें नहीं होतीं। इससे इनमें से अधिकाधिक लोग किसी और का समर्थन प्राप्त करने की खोज में रहते हैं, और इस खोज में प्राय. आप से आप उनकी दृष्टि भारत की ओर पड़ती है।

मैं और देशों से किसी मुकाबले की बात नहीं चलाना चाहता, और भारत में हमने हरगिज कोई ऐसी बात नहीं कर दिखाई है जिससे कि हमें किसी का नेतृत्व करने के योग्य समझा जाय। हम पहले अपना नेतृत्व कर लें, तभी दूसरों का नेतृत्व उचित रूप से कर सकते हैं, और मैं भारत का मामला इससे ऊंचे स्तर पर नहीं रखना चाहता। हमें अभी अपने को ही विशेष रूप से देखना है।

इसीलिए, अगर मैं कहूं तो वैदेशिक मामलों का मंत्री होते हुए भी मैं वैदेशिक मामलों में इस समय उतनी दिलचस्पी नहीं लेता हूं जितनी कि आन्तरिक मामलों में। विदेशी मामले आन्तरिक मामलों का अनुसरण करेंगे। वास्तव में यदि आन्तरिक मामले बिगड़ते हैं तो विदेशी मामलों का कोई आधार नहीं रह

जाता। इसलिए, मै सारे संसार में अपने प्रतिनिधित्व की सीमा का विस्तार नहीं करना चाहता। हमारा प्रतिनिधित्व इस समय ही काफी फैला हुआ है। यह भी हमें प्राय: परिस्थितियो वश करना पड़ा है, क्योकि स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में हमारा काम विना उस प्रतिनिधित्व के नही चल सकता। लेकिन जव तक कोई विशेष कारण न आ जाय, मै उसे और विस्तार देने के लिए उत्सुक नही हूँ।

यह होते हुए भी तथ्य यह है कि हम कुछ वातों पर टिके हुए है। जव हम वाहरी दुनिया के लोगो के सम्पर्क में आते है तो हम उनके साथ है या नहीं इसका हमें परिस्थिति देखकर निर्णय करना पड़ता है। मुझे कुछ भी सदेह नही, जैसा कि मैने अपने निवेदन के आरम्भ में कहा, कि विना किसी को अप्रसन्न किए हुए अपने प्रति संसार के करोड़ों लोगों की सहानुभूति और आशाओं को आकर्षित करने का प्रयत्न करने से आगे चल कर भारत का वड़ा हित होगा। दूसरों को अप्रसन्न करना या उनसे टक्कर लेना हमारा उद्देश्य नही। लेकिन दुनिया की हालत काफी वुरी है और लोगों का मुझ से यह कहना वहुत सहज है कि "आप तो आदर्शवादी वातें करते है, आपको व्यावहारिक होना चाहिए।"

क्या मै इस सभा को स्मरण दिलाऊँ कि इन वहुत से वर्षो में हमने लोगों और चीजों के व्यावहारिक होने के परिणाम देख लिए है? इस व्यावहारिकता से, जो निरन्तर संघर्ष का कारण वनती है और जिसका नतीजा यह सव कष्ट और दुख है, मेरा जी प्राय. भर गया है। अगर इसी को व्यावहारिक होना कहते हैं, तो हम जितनी जल्दी इस व्यावहारिकता से त्राण पा सकें उतना ही अच्छा है।

लेकिन व्यावहारिकता इसे नही कहते। यह घोर अव्यावहारिकता है। विना दाएं-वाएँ देखे चलना; प्रत्येक वर्ग का सिमट कर एक और छोटा गुट वना लेना, जिससे कि दूसरे वर्गों को पूरा खतरा हो; छोटे या वड़े राष्ट्रों को कुछ तात्कालिक लाभ पहुँचाकर अपने पक्ष में कर लेना—ये सव ऐसी ही वातें है। मै कभी न कहूँगा कि ऐसा करना हमारे देश के लिए पर्याप्त रूप में अच्छी वात होगी; और फिर ऐसा करने की हमें कोई विवशता भी नही। परिस्थितियों से मजवूर होकर हम अपनी स्वतंत्र नीति छोड़ सकते थे—क्योकि इसके मानी इस या उस देश की हितेच्छा में अपनी स्वतंत्रता छोड़ना ही होता है—लेकिन परिस्थितियों की हम पर कोई ऐसी मजवूरी नही है।

मै समझता हूँ कि आगे चलकर ही नही, वल्कि जल्द ही, मत की स्वतंत्रता और कार्य की स्वतंत्रता का महत्व स्वीकार किया जायगा। पर इसका यह अर्थ न लगाना चाहिए कि हमें विशेष कार्यो में विशेष देशो से निकट सम्पर्क

में न आना चाहिए। पंडित कुंजरू ने हमारे आर्थिक, फौजी तथा अन्य प्रकार के विकास की चर्चा की। निश्चय ही यह सभा अनुभव करती है कि इस सरकार की राय में भारत को आर्थिक और फ़ौजी दृष्टि से शक्तिशाली बनाने से अधिक महत्व की कोई बात नही—जहां तक फ़ौजी विकास का सवाल है बडी शक्तियो के मुकाबले में तो नही, क्योंकि वह हमारे सामर्थ्य से बाहर की बात है, फिर भी हम अपने को दूसरो के आक्रमणो से अपनी रक्षा के उद्देश्य से जितना मजबूत बना सकते है, उतना बनाना चाहिए।

हम यह सब करना चाहते है। हम दूसरे देशो की सहायता चाहते है; हम उसे प्राप्त करेंगे, और बहुत हद तक वह हमें मिलेगी भी और मैं नही जानता कि किसी बड़ी हद तक इसमें हमें रुकावट हुई हो। आर्थिक सहायता स्वीकार करने या राजनीतिक सहायता प्राप्त करने के विषय में भी, यह बुद्धिमानी की नीति नही है कि अपना सब कुछ एक ही दाव पर लगा दिया जाय। न अपने आत्मसम्मान का मूल्य चुका कर सहायता प्राप्त करनी चाहिए। तब कोई भी पक्ष आपकी इज्जत न करेगा; आप को कुछ छोटे-मोटे लाभ भले ही हो जायें, लेकिन अन्त में वे भी आपको न मिलेंगे।

इसलिए चाहे कोरी अवसरवादिता की दृष्टि से ही सोचिये, एक सीधी, ईमानदारी की और स्वतंत्र नीति ही सबसे अच्छी है। वह नीति किसी विशेष समय पर क्या होनी चाहिए, यह मेरे लिए या इस सभा के लिए बता सकना बहुत कठिन है, क्योंकि परिस्थितियां नित्यप्रति बदलती रहती है। हो सकता है कि किन्ही परिस्थितियो में हमें दो बुराइयो में से जो अपेक्षाकृत छोटी बुराई हो उसे चुनना पड़े—हमें सदा अपेक्षाकृत छोटी बुराई चुनना चाहिए।

इस देश में हम लोकराज के और एक स्वतंत्र पूर्ण सत्ताधारी भारत के पक्ष में है। अब स्पष्ट है कि इस लोकराज की वास्तविक और मौलिक कल्पना जिसके अन्तर्गत आर्थिक और राजनीतिक दोनो ही पक्ष आ जाते हैं—के विरुद्ध जो भी बात है उसका हमें विरोध करना चाहिए। हम किसी दूसरे विचार या व्यवहार के अपने ऊपर लादे जाने का विरोध करेंगे।

लेकिन कुछ माननीय सदस्यो के भाषणों में एक विचित्र उलझाव रहा है, जब कि एक ओर वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध, निर्बलो और दलितो के, समर्थन की बात करते है, दूसरी ओर वे हमसे चाहते है कि हम कमोबेश, यहा या वहां, एक शक्ति के पक्ष में ही रहे, जो कि साम्राज्यवाद के पक्ष में भी हो सकती है। हो सकता है कि हमें कभी इस या उस शक्ति के साथ जाना पड़े। मैं एक साम्राज्य-

वादी शक्ति के साथ हो जाने की भी कल्पना कर सकता हूँ—यह कहने में मुझे आपत्ति नहीं। कुछ निश्चित परिस्थितियों में दो बुराइयों में यह अपेक्षाकृत छोटी बुराई हो सकती है। फिर भी एक साधारण नीति के रूप में वह नीति न सम्मानपूर्ण है और न लाभदायक।

क्या मैं एक और मुख्य कठिनाई बताऊँ जो हमारे सामने है? भारत में अपने पिछले कारनामों के कारण अर्थात् साम्राज्यवाद-विरोधी कारनामो के कारण हम बहुत से वर्गों और बाहरी लोगों के विशेष प्रियजनों में नही रहे है। हम उनकी विरोधी भावना अभी दूर नही कर सके हैं। पूरी सदिच्छा रखते हुए भी, ये हमें पसन्द नहीं कर सके है। इन लोगों का जनता पर प्रभाव है, समाचार-पत्र उनके अधीन है। यह आश्चर्यजनक है कि किस प्रकार समाचार-पत्रो के सभी वर्ग—उदाहरण के लिए ब्रिटेन में—जानबूझ कर और बुरी तरह हमें गलत रूप में पेश करते हैं। अभी जब मैं यहां बैठा हुआ था, एक तार मुझे दिया गया, जो कि इस देश में स्थित एक विदेशी संवाददाता का तार था, और जिसमें लन्दन में स्थित अपने पत्र के लिए उसने एक लम्बा संवाद भेजा था। इससे अधिक घृणाजनक झूठी चीज़ मैंने नही देखी। मुझे आश्चर्य है कि किसी भी व्यक्ति को, जो कि यहां कुछ महीनों तक रह चुका हो, ऐसा समाचार भेजने का दुःसाहस कैसे हो सकता है; और अब समय आ गया है कि भारत सरकार इस विषय में दृढ़ता से पेश आवे।

हम भारतीय और विदेशी समाचारपत्रों के प्रति बहुत सहिष्णु रहे है। हमने अनावश्यक रूप से उन्हे बताया है कि अगर वे ऐसे समाचार भी भेजें जो कि हमारे लिए अत्यन्त अरुचिकर हो, तो भी हम कुछ न करेंगे। लेकिन झूठ की एक हद होती है, और कुछ संवादों में, मैं समझता हूँ, वह हद अब पहुँच गई है।

उक्त घटना की चर्चा मैंने इसलिए की है कि मैं चाहूँगा कि माननीय सदस्य परि-स्थिति को देखें। श्री कामठ ने अपने व्याख्यान के उपसंहार में एक प्रकार से कहा कि हमें इस या उस गुट में सम्मिलिति हो जाना चाहिए। उन्होंने कहा, "मै नही जानता कि किसमें, लेकिन इस या उस गुट में सम्मिलित हो जाओ।" मुझे याद पड़ता है कि बाद में उन्होंने एक गुट के प्रति अपना रुझान बताया, लेकिन पहले नहीं कहा। जान पड़ता है भाषण देते हुए उन्होने अपना विचार पलट दिया।

किसी एक गुट में सम्मिलित होने का क्या अर्थ है? आखिरकार इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि किसी विशेष प्रश्न पर अपना मत छोड़ दीजिए, और दूसरे पक्ष का मत ग्रहण कर लीजिए जिसमे कि वह प्रसन्न हो जाय और आप

उसकी कृपा पा सकें। जहां तक मैं देख सकता हूँ, इसके यही मानी है, और कुछ नहीं। क्योकि यदि हमारा मत उस गुट का भी मत है, तब मत छोड़ने का कोई प्रश्न ही नही; हम उस गुट या देश के साथ हैं ही। प्रश्न तभी उठता है जब हमारा उससे उस विषय में हो; इसलिए हम अपना मत छोड़ देते हैं और उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए उसका मत ग्रहण कर लेते है।

अब मैं इस बात से सहमत होने के लिए तैयार हूँ कि अनेक अवसरो पर, न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो में, बल्कि इस सभा में भी, आदमी को समझौते के खयाल से अपनी बात छोड़नी पड़ती है। ऐसे सम्मेलनों में अपने दृष्टिकोण को, कुछ विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए, अधीनस्थ करने की संभावना को अप्रासंगिक मानने के लिए मैं तैयार नही। यह पूर्णतया नियमित है और ऐसा अकसर किया जाता है। लेकिन किसी देश से कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से हेतु-सिद्धि का यह ढग सब से बुरा ढंग है और यदि इसे हम ग्रहण भी करना चाहेंगे तो कार्य-सिद्धि का यह सब से बुरा ढंग होगा।

वस्तुस्थिति यह है कि सैनिक दृष्टि से हमारी कमजोरी के बावजूद—क्योंकि यह स्पष्ट है कि हम कोई बड़ी सैनिक शक्ति नही है, न हम औद्योगिक दृष्टि से एक उन्नत शक्ति हैं—आज भी संसार के मामलो में भारत की गिनती है, और संयुक्त राष्ट्रों में या सुरक्षा-परिषद् में जो झंझट आप देखते है वह इसी कारण है कि भारत की गिनती है, न कि इस कारण कि उसकी गिनती नही है। यह एक तथ्य है, जिसे आप को याद रखना चाहिए। अगर हम यो ही एशिया या यूरोप में कही कोई छोटे से राष्ट्र होते, तो हमारी ज्यादा परवाह न की जाती। लेकिन, चूंकि हमारी गिनती है और चूकि भविष्य में हमारी अधिकाधिक गिनती होगी, इसी से जो कुछ हम करते है वह टीका-टिप्पणी का विषय होता है और बहुत से लोग इस बात को पसन्द नही करते कि हमारी इतनी गिनती की जाय। यह हमारे दृष्टिकोण का या इस या उस गुट से मिलने का प्रश्न नही है; यह तो केवल एक तथ्य है कि हम प्रच्छन्न रूप से एक बड़े राष्ट्र है और एक बड़ी शक्ति है, और संभवतः यह बात कुछ लोगो द्वारा नही पसन्द की जाती कि हमें मजबूत बनाने वाली कोई बात हो जाय।

ये विभिन्न बातें है जिन पर हमें विचार करना है। यह इतनी सीधी-सादी बात नही है कि बस हम एक प्रस्ताव द्वारा अपने को इस या उस संगठन से संबद्ध कर लें, और उस सगठन की सदस्यता की सब सुविधाएँ प्राप्त कर लें। इस तरह की बात होने नहीं जा रही है। मैं इस सभा से अवश्य यह निवेदन करूँगा कि अगर मैं साफ़-साफ़ स्वीकार करूँ तो मुझे कहना पड़ेगा कि पिछले वर्ष निश्चय ही बहुत कुछ ऐसा हुआ है जो कि अवांछनीय था, और जहा तक कि वैदेशिक मामलो

के विभाग का प्रश्न है, इसका काम बहुत अच्छा नहीं रहा। जहां तक हमारी सूचना सम्बन्धी सेवाएँ हैं, उनका भी काम बहुत अच्छा नही रहा। यह सब बिल्कुल सही है। लेकिन विदेशी नीति के सम्बन्ध में जो हमारा प्रमुख दृष्टिकोण है, और जहा तक उसका सम्बन्ध है, मै यह बिल्कुल नही देख पाता कि उसे किस तरह बदला जा सकता है। यह मै समझ सकता हूँ कि जैसे-जैसे अवसर उपस्थित हों, हम अपने को उसके अनुकूल ढाले—लेकिन हमारा जो प्रमुख दृष्टिकोण है, उसे, मै समझता हूँ, वैसा ही बना रहना चाहिए, क्योंकि आप चाहे जितना इस सम्बन्ध में विचार और विश्लेषण कीजिए, कोई दूसरा रास्ता ही नही है। किसी विशेष नीति को इसलिये ग्रहण करने का प्रश्न नही कि वह आदर्श रूप से सबसे अच्छी है; लेकिन मै यह निवेदन अवश्य करूँगा कि जिस नीति पर हम चल रहे हैं, उसे यदि छोड़ दे तो इस देश के लिए तनिक भी लाभ की और कोई नीति नही रह जाती।

अब दूसरी बात लीजिए। अभी मैंने सूचना सम्बन्धी सेवाओं आदि की चर्चा की है। श्री शिवराव ने एक या दो सुझाव दिए है, जिनका मै स्वागत करता हूँ। एक सुझाव उन विभिन्न प्रतिनिधि-मंडलो, शिष्टमंडलों आदि के सम्बन्ध में था, जो कि विदेशों में भेजे जाते हैं। हर एक मंत्रालय अपने प्रतिनिधि-मंडल को चुनता है, उसे सक्षेप मे अपने निर्देश देता है, और वह प्रतिनिधि-मडल एक विशेष सम्मेलन मे जाता है। अकसर ऐसा हो जाता है कि प्रतिनिधि-मंडलों को दिए गए निर्देश आपस में एक दूसरे से मेल नही खाते और कुछ संघर्ष हो जाता है, यहां तक कि दो प्रतिनिधि-मंडल अलग-अलग बातें कहते है। प्रायः यह भी होता है कि जो लोग बाहर भेजे जाते है, उनका चुनाव अच्छा नही होता। तो यह संघर्ष होता है, और आपस में मेल का अभाव रहता है। इसलिए हम श्री शिवराव के सुझाव के अनुसार विदेशी मामलों के विषय मे एक तरह का विभाग स्थापित कर रहे है। वास्तव में वह एक अधूरी अवस्था मे मौजूद भी है, और यह कान्फ्रेंस विभाग कहलाता है। प्रत्येक प्रतिनिधि-मंडल वैदेशिक मामलो के मंत्रालय द्वारा न चुना जायगा बल्कि संबंधित मंत्रालय द्वारा चुना जायगा। लेकिन जो भी प्रस्ताव होंगे उन्हें वैदेशिक मामलों के मंत्रालय का कान्फ्रेंस-विभाग काट-छांट कर ठीक करेगा, जिससे कि किसी प्रकार की परस्पर-विरोधी बात न हो जाय और संघर्ष न हो सके।

सूचना के संबंध में, मै इस सभा को बताना चाहूँगा कि वैदेशिक मामलों के मंत्रालय और सूचना तथा प्रसार मंत्रालय के बीच एक छोटी सी बहस चल रही है। अब तक विदेशों में सूचना का काम सूचना तथा प्रसार मंत्रालय के हाथ में रहा है। अब वैदेशिक सूचना नाम से जो कार्य हो रहा

है, उसे, जाहिर है, कि वैदेशिक मामलो के मंत्रालय के हाथ में होना चाहिए। वास्तव में ऐसा हर एक देश में हो रहा है। इंग्लिस्तान में वैदेशिक सूचना वैदेशिक विभाग के अन्तर्गत है, घरेलू सूचना सम्बन्धी सेवाओं के अन्तर्गत नही। दोनो भिन्न है, क्योंकि वैदेशिक सूचना को निरन्तर वैदेशिक मामलों के सम्पर्क मे रहना पड़ता है। हम निश्चय ही एक समझौते पर पहुँचेंगे और इसके लिए उचित प्रवन्ध करेंगे। लेकिन, दुर्भाग्य से वैदेशिक सूचना के सम्बन्ध में हमारे दृष्टिकोण में पिछले कई महीनों में बड़ी त्रुटि रही है। साथ ही मैं नही चाहता कि यह सभा ऐसी कल्पना करे कि अपनी सूचना सम्बन्धी स्थिति को सुधार कर हम कोई अद्भुत परिवर्तन कर लेंगे; क्योंकि दूसरे देशो मे और सरकारी विभागो मे लोग जिस रूप में विचार करते है, उसके कारण कही गहरे होते है, और केवल सूचना की कमी नही होती। श्री शिवराव ने बताया कि अमेरिका मे हमारा सूचना-कार्य चाहे जितना अच्छा हो, वह केवल एक छोटे सगठन तक सीमित है। इतना ही हम व्यय कर सकते है। इस समय पाकिस्तान का सूचना-कार्य, उसके अनुरोध पर, न्यूयार्क की ब्रिटिश इन्फ़ार्मेशन सर्विस ने ले रक्खा है, जो कि एक बहुत बडा संगठन है। अब इस कार्य की उपयुक्तता और समीचीनता पर निर्णय करना हमारा काम नही है। यह तो ब्रिटेन का काम है। अमेरिका में सूचना-कार्य इतने बड़े पैमाने पर सगठित होता है कि हमारे लिए उनसे होड़ करने का खयाल ही बेतुका होगा। मुझे ज्ञात हुआ है कि ब्रिटिश इन्फ़ार्मेशन सर्विस में न्यूयार्क में ६०० आदमी काम कर रहे है। निश्चय ही हम ६०० आदमी भेजने नही जा रहे। हम बड़ी कोशिश करेंगे तो शायद ६ आदमी भेजेंगे, यानी सौवां हिस्सा। और यह सारा सूचना-सम्बन्धी संगठन, दुर्भाग्य से, भारत-विरोधी आधारो पर पिछले कुछ वर्षो में तैयार हुआ है। इस सभा को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष हुए अमेरिका के ब्रिटिश सूचना-संगठन का एक मुख्य ध्येय भारत-विरोधी प्रचार करना था। वही लोग आज भी वहा काम कर रहे है। इसलिए वे जो भी प्रचार करते है, उसमे एक भारत-विरोधी झुकाव रहता है, वे इसे चाहे या न चाहें। हम इस लीक से निकल नही पाते। वास्तव में हमें यह कहते हुए दु.ख होता है कि कुछ भारतीय, जो कि भारत-विरोधी प्रचार-कार्य कर रहे थे, अब भी अमेरिका की ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विस में नियुक्त है।

अब क्या मैं इस सभा से इस बात की क्षमा मागू कि प्रवासी भारतीयो के बहुत से मामलो पर, जिनकी यहा चर्चा हुई—विशेषकर मेरे माननीय मित्र सेठ गोविन्द दास द्वारा—मैं नही बोल सका हूँ। मैं चाहूँगा कि यह सभा उस प्रश्न पर फिर इस पृष्ठभूमि में विचार करे कि यह प्रश्न वैदेशिक मामलो के विभाग का नही है, या ऐसा नही है कि इधर या उधर बिजली का बटन दबा देने से इस सभा द्वारा उसे हल किया जा सके। यह इससे कही ज्यादा जटिल है, और जब समय

आयेगा और आवश्यकता होगी तो हम इस अथवा उस नीति को ग्रहणकर लेगे, वशर्ते कि हमे दृढ़ विश्वास हो जाय कि ऐसा करना देश के हित में होगा।

जहा तक प्रवासी भारतीयों का मामला है, मैं केवल एक-दो शब्द कहूँगा। इनकी कठिनाइयों में से बहुत सी अब तक बनी हुई हैं और अभी उनके बने रहने की संभावना है। मुझे यह कहते दुख होता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग से हमें बहुत सहायता नही मिलती। यद्यपि मैं भारत सरकार के यहा के अटकावों का अभ्यस्त हूँ—और वे काफी आश्चर्य में डालने वाले है—फिर भी, ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग के यहा के अटकाव आश्चर्यजनक और आंखे खोलने वाले हैं।

मुझे याद है कि हमने उक्त विभाग को कुछ आवश्यक पत्र भेजे और स्मरण दिलाने के लिए तार भेजे। जवाब प्राप्त करने में हमे ठीक दस महीने लग गए। कुछ ब्रिटिश उपनिवेशों में वहा के भारतीयो को देखने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल भेजने का मामला था। वह बहुत सीधा सा मामला था, वह ऐसा नही था जिसमे कोई सिद्धान्तों का अटकाव हो; फिर भी, उन्हें उत्तर देने में दस महीने लग गए, और इस बीच में घटनाएँ घटती रही और कुछ किया नही जा सका। इस तरह हम इन सभी दफतरों में, क्या यहां और क्या वहां, लाल-फीते का प्रभाव पाते है।

लेकिन मुख्य कठिनाई नागरिकता की है। अब, ये प्रवासी भारतीय क्या है? क्या वे भारतीय नागरिक हैं? वे भारत के नागरिक होगे या नही? अगर वे नहीं है, तब उनमें हमारी दिलचस्पी सास्कृतिक दृष्टि से और मानवता के नाते होती है, राजनीतिक दृष्टि से नही। वह दिलचस्पी तो बनी रहती है। उदाहरण के लिए, फिजी और मारिशस के भारतीयो को ले लीजिए। क्या वे अपनी राष्ट्रीयता बनाए रखेंगे या फ़िजी अथवा मारिशस वाले बन जायँगे? बर्मा और लंका के बारे में भी यही सवाल उठता है। यह एक कठिन सवाल है। यह सभा उन्हे भारतीयो के रूप में मानना चाहती है, फिर भी यह चाहती कि जहा वे है वहा का पूरा मताधिकार उन्हें प्राप्त हो। ज़ाहिर है कि दोनों बातें एक साथ नही चल सकती। या तो वे दूसरे देश के नागरिक के रूप में मताधिकार प्राप्त करते है, या आप उन्हे बिना मताधिकार के भारतीय मानिए और उनके लिए विदेशियों को प्राप्त अच्छे-से-अच्छे अधिकारो की माँग कीजिए।

अन्त में एक और बात है। बिल्कुल आरम्भ में प्रोफ़ेसर रंगा ने भारत के ब्रिटिश कामनवेल्थ में होने के सम्बन्ध में एक प्रश्न किया था। जान पड़ता है कि वे समाचारपत्रों मे प्रकाशित कुछ संवादों से जो कि हाल में छपे है और जिनमें यह

कहा गया है कि एक प्रतिनिधि-मंडल इस विषय पर विचार-विनिमय के लिए भेजा गया है, धोखे में पड़ गए हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि लोग किस तरह कल्पना की उड़ान भरने लगते हैं। मैं समझता हूँ कि जिस प्रतिनिधि-मंडल का हवाला दिया जाता है वह रक्षा-मंत्रालय का प्रतिनिधि-मंडल है, जिनके नेता श्री एच० एम० पटेल हैं। उसका इस मामले से कोई सम्बन्ध नहीं; उसका संबंध केवल रक्षा सम्बन्धी मामलों से है और कुछ सामग्री से है, जिसे कि हम इंग्लिस्तान में तथा अन्यत्र खरीदना चाहते हैं। इस प्रकार के प्रश्न पर कोई विचार-विनिमय नहीं हुआ है। लेकिन जहा तक हमारी साधारण स्थिति है, उसकी परिभाषा इस संविधान परिषद् में शुरू शुरू में हो चुकी है और अन्त में इस पर संविधान परिषद् द्वारा ही निर्णय होगा। किसी समिति या व्यक्ति के इस पर बहस करने का और प्रारम्भिक निर्णय पर भी पहुँचने का कोई प्रश्न नहीं है। अन्तिम निर्णय जो भी हो, मैं विश्वास करता हूँ कि यह पक्की बात है कि भारत पूरी तरह से स्वतंत्र और पूर्ण सत्ताधारी गणतंत्र या कामनवेल्थ या राष्ट्र या आप जो कुछ कहे वह होगा।

पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम इस समस्या पर विचार न करें कि इंग्लिस्तान या ब्रिटिश कामनवेल्थ या किसी और दल से हमारे सम्बन्ध क्या हों। यह केवल एक सिद्धान्त का प्रश्न नहीं, बल्कि एक बड़ा व्यावहारिक प्रश्न है। फिर नागरिकता की बात है जिसका कि प्रभाव विभिन्न ब्रिटिश उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों पर पड़ता है। ठीक-ठीक किस प्रकार के हमारे सम्बन्ध हो, किस प्रकार की नागरिकता हो, जिसमें कि वे विदेशी न मान लिए जायें—इन सब प्रश्नों पर हमें विचार करना होगा। लेकिन यह बात इस प्रश्न से अलग है कि चाहे राजनीतिक या अन्य किसी दृष्टि से देखा जाय, भारत को पूरी तौर से स्वतंत्र देश होना चाहिए।
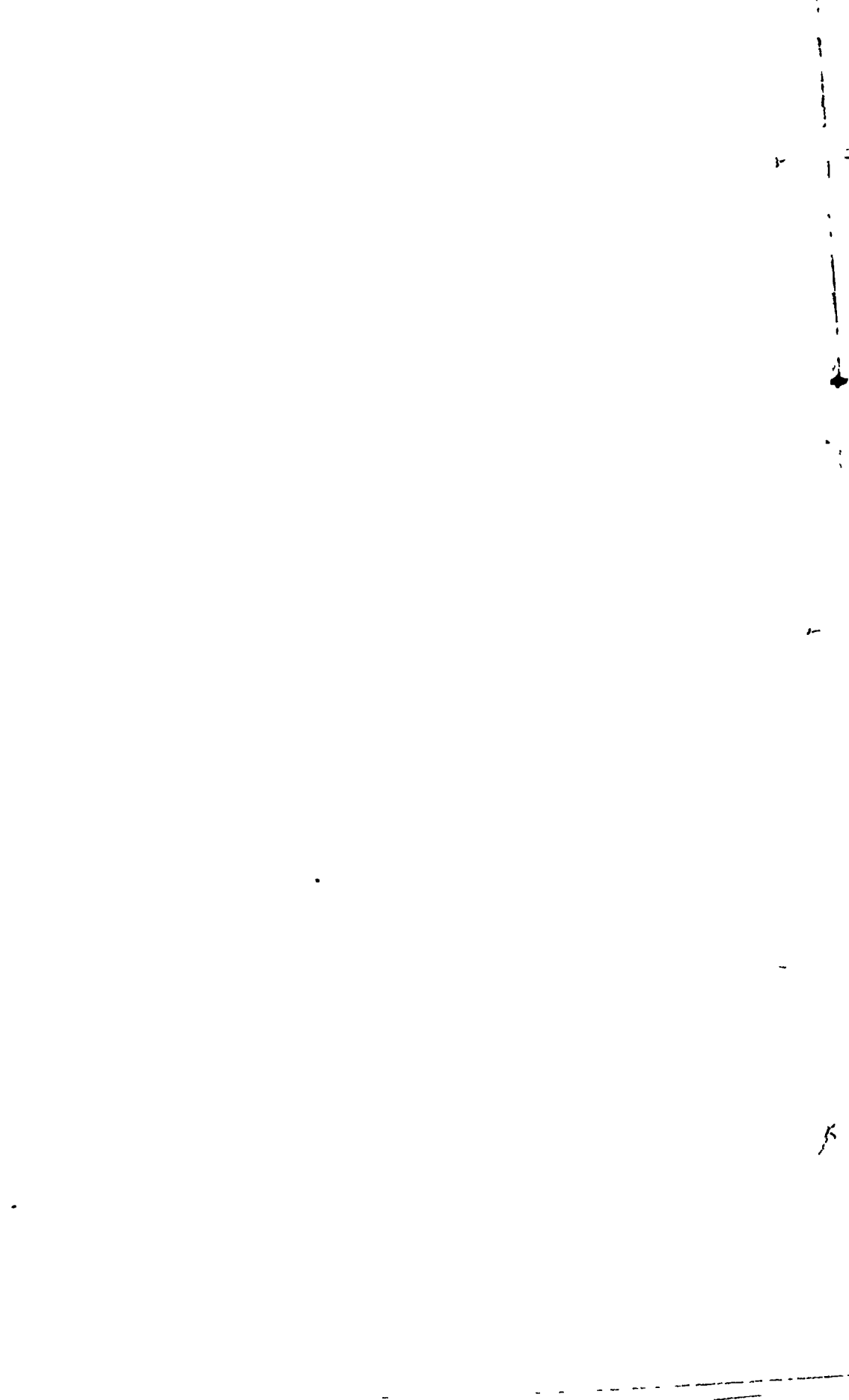
विदेशों में प्रचार की समस्या

महोदय, इससे पहले कि मैं विषय पर कुछ कहूं, मैं यूरोप में कुछ दिन पहले घटने वाली एक दु:खद घटना की चर्चा करना चाहता हूं। मेरा तात्पर्य चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के वैदेशिक मंत्री एम० जान मसारिक की मृत्यु से है। यह न केवल अपने आप में एक बड़ी ही दु:खद घटना है (जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं उनसे परिचित था और यह मेरी व्यक्तिगत क्षति है) बल्कि जिन परिस्थितियों में यह घटित हुई है, उसके घोर परिणाम हो सकते हैं। इस देश की सरकार और जनता की ओर से मैंने यहां पर स्थित चेकोस्लोवाकिया गणराज्य के राजदूत के पास सहानुभूति और समवेदना का संदेश भेजा है और मुझे विश्वास है कि यह सभा भी उस संदेश के साथ अपनी सहानुभूति जोड़ना चाहेगी।

वैदेशिक सम्बन्धों के मन्त्रालय से सम्बन्धित कटौती के प्रस्ताव के अवसर पर मैंने किंचित् अकस्मात् और संयोगवश अमेरिका-स्थित ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ (सूचना सेवाओं) की चर्चा की थी। वास्तव में मेरे सहयोगी श्री शिवराव ने इसका जिक्र किया था और मैंने उनके कथन का हवाला दिया था और कहा था कि वह पाकिस्तान सरकार के अनुरोध पर प्रचार का कार्य कर रही है। मैंने यह भी कहा था कि वह कुछ भारतीयों की सेवाओं का उपयोग कर रही है। अब अमेरिका की ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ ने इस वक्तव्य का प्रतिवाद किया है, और स्पष्ट रूप में यह कहा है कि पाकिस्तान की ओर से वे कोई प्रचार या प्रकाशन का कार्य नहीं कर रहे हैं, और उन्होंने अपने कर्मचारी वर्ग में किसी भारतीय को नियुक्त नहीं किया है। मुझे उनका वक्तव्य स्वीकार करना चाहिए और मैं इस बात पर खेद प्रकट करता हूं कि मैंने कोई ऐसा बयान दिया जो कि वस्तुत: ठीक नहीं था। मैं इस तर्क में नहीं पड़ना चाहता। लेकिन वस्तुत: वह ठीक हो या न हो, बहुत सी ऐसी बातों को बताना संभव है जो होती हैं, और केवल इसलिए होती हैं कि बहुत समय से होती आ रही हैं। एक लीक से बाहर निकलना कुछ कठिन होता है। कुछ समय हुआ एक प्रख्यात ब्रिटिश पत्रकार का कश्मीर के संबंध में एक लेख ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विसेज़ द्वारा न केवल अमेरिका में बल्कि विविध देशों में प्रचारित हुआ था। इस लेख में कुछ बातें थीं जो बिल्कुल झूठी

---

* संविधान परिषद् (व्यवस्थापिका), में १५ मार्च, १९४८ को दिया गया एक भाषण

थी। मिसाल के लिए एक वात लीजिए—यह लिखा गया कि भारतीय संघ में कश्मीर के सम्मिलित होने के वाद, और उससे चिढ़ कर कवायलियो ने कश्मीर पर हमला किया, जव कि वात इससे विल्कुल उलटी है। यह एक छोटी-सी वात है। मैं इसका जिक्र केवल यह दिखाने के लिए कर रहा हूँ कि जो लोग अव तक एक विशेष प्रकार के काम में लगे रहे हैं, स्वभावत. किसी समस्या को उसी पुराने दृष्टि-कोण से देखते हैं; क्योंकि एक लीक से वाहर आना किसी के लिए भी कठिन होता है। फिर भी पिछले अवसर पर यदि मैंने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जो कि ठीक नही था, तो मुझे दु ख है, और मै खेद प्रकट करता हूँ।

विदेशों में प्रचार के वारे में मुझे अधिक नही कहना है, सिवाय इसके कि मै श्री शिवराव के सुझावो में से वहुतों का स्वागत करता हूँ। इसे वैदेशिक प्रचार कहा गया है और शायद माननीय सदस्यगण समझें कि हमें विदेशों को प्रचार की किस्म के तथ्यों और आंकड़ों से भर देना चाहिए। मै नही समझता कि हमारे लिए ऐसा करना मुनासिव होगा, या यह कि हम ऐसा कर ही सकते हैं। मेरा यह खयाल नही कि इसे निरी सूचना या विज्ञापन का रूप देना चाहिए। हम ऐसा कर नही सकते, क्योंकि ऐसा करने के मानी होंगे वहुत वड़ी संख्या में इस कार्य में लोगों को नियुक्त करना, और इतने अधिक रुपये खर्च करना जो हमारे वस के नही है, इत्यादि। लेकिन मुख्य कारण जिससे कि मै ऐसा नही करना चाहता यह है कि मुझे यह तरीका विल्कुल पसन्द नही। यह तरीका अनिवार्य रूप से निमित्त-साधन का रूप ग्रहण कर लेता है, और हो सकता है कि कभी कभी इसका प्रभाव पड़े, लेकिन जव लोग यह अनुभव करने लगते है कि यह एक विशेष ढंग का अत्यधिक प्रचार है तो इसका मूल्य अधिकाधिक घटता जाता है। मै जनता के सामने, भारत मे भी और वाहर भी, वस्तुस्थिति रखना अधिक पसन्द करूँगा। स्वभावतः मैं उसे अपने दृष्टिकोण से रक्खूंगा और वस्तुस्थिति की पृष्ठभूमि भी देने की कोशिश करूँगा लेकिन जहां तक होगा तथ्य और केवल तथ्य ही समुख रखूँगा और दूसरों को निर्णय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दूगा। यह सही है कि जिस रूप में तथ्य लोगो के सामने रक्खे जाते है, उससे वड़ा अन्तर आ जाता है। आँकड़ो से हम प्रायः जो भी सिद्ध करना चाहते है, सिद्ध कर सकते है। हर हालत मे जनसूचना का यह धंधा, चाहे वह वस्तुस्थिति की सूचना का हो चाहे किसी और प्रकार की सूचना का, सर्वत्र एक वड़ी चतुराई का धधा है, और विशेषकर विदेशो में। इसकी आलोचना करना सहज है और मै समझता हूँ कि वहुत सी आलोचनाएं जो हुई है उनमे सार है। शायद यह भी सहज है कि ऐसी योजनाएं तैयार की जायें जो कि कागज़ पर वहुत अच्छी लगें लेकिन जो व्यवहारतः सफल न हों। जैसा कि मैंने इस सभा को पिछले अवसर पर जव इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ था; वताया था कि चूंकि वैदेशिक जन-सूचना की समस्या का वैदेशिक नीति से वड़ा घनिष्ठ सम्वन्ध है, इसलिए साधारणतः हर एक

देश इसका प्रबन्ध अपने वैदेशिक विभाग द्वारा करता है, न कि अपने आंतरिक सूचना विभाग द्वारा। यहा अनेक परिस्थितियो, विशेषत: युद्ध-जनित परिस्थितियों के कारण—क्योकि युद्ध काल में ही इधर हमारा ध्यान गया—वैदेशिक प्रचार हमारे सूचना विभाग का एक अग हो गया। जितना ही मैने इस पर विचार किया है उतना ही मैंने अनुभव किया है कि यह बहुत सन्तोषजनक व्यवस्था नही है। यह जाहिर है कि आन्तरिक सूचना सम्बन्धी संगठन और वैदेशिक प्रचार सम्बन्धी संगठन में अत्यन्त निकट का सहयोग होना चाहिए; लेकिन, मैं समझता हूं, यह कही अच्छा है कि वैदेशिक मामलों के मंत्रालय का वैदेशिक प्रचार के संगठन मे जितना हाथ रहा है उससे और अधिक हो।

जब श्री शिवराव विदेश में प्रचार-अधिकारियो की बजाय जन-सम्पर्क अधिकारियों की चर्चा करते है तो मैं उनसे सहमत हूं। उस से, जिस तरह का कार्य उन्हे करना चाहिए, उसका कही अच्छा बोध होता है। इस समय जो विविध वितरण-पत्र और अन्य सामग्री प्रकाशित हो रही है, उसका निस्संदेह कुछ उपयोग है, लेकिन मैं नही समझता कि जितना पैसा उन पर व्यय हो रहा है, उतना उनका मूल्य है। मेरी अपनी धारणा यह है कि ये सब वितरण-पत्र और पुस्तिकाएं और पर्चे रद्दी की टोकरी में पहुंच जाते है—और यह कोई इस समय की नही बल्कि बहुत पहले की धारणा है। इसकी एक वजह यह भी है कि,—मैंने स्वयं, सरकार के एक सदस्य की हैसियत से नही, बल्कि निजी तौर पर या कांग्रेस संगठन के सदस्य की हैसियत से विदेशो में एक प्रकार का प्रचार-कार्य किया है— ये पत्र और पुस्तिकाएं उन लोगों के अतिरिक्त, जो पहले से ही आपके अनुकूल है और जो इन्हे अपने लाभ के लिए रख छोड़ते है, बहुत कम लोगो को प्रभावित करती है। बिल्कुल एक दूसरे ही दृष्टिकोण से इस सारे मामलों को देखना होगा, अर्थात् मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, प्रत्येक सम्बन्धित देश की आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में सम्भवत: कार्य-प्रणाली फ्रांस से दूसरे ही ढग की होगी और मै समझता हूं बहुत भिन्न होगी, और सोवियत संघ में और भी भिन्न। अमेरिका में जिस प्रकार का पत्र प्रस्तुत किया जाय, उसमें इस बात का लिहाज होगा कि अमेरिका किस प्रकार की सूचना चाहता है। फ्रांस में वह इससे भिन्न होगा। मै इसे निश्चित रूप से कह सकता हूं। फ्रांसवालो का देखने का ढग दूसरा है और वे वस्तुओं का दूसरे ही रूप में मूल्यांकन करते है। इसी तरह जिस प्रकार की सूचना हम सोवियत संघ को भेजेंगे वह बिल्कुल भिन्न या प्राय. बिल्कुल भिन्न होगी। हमारे राजदूत का कहना है कि सोवियत संघ जिस प्रकार की सूचना हम से चाहता है वह प्राय: बिल्कुल आर्थिक सूचना होती है, जैसे कि हमारी विभिन्न योजनाओं में, विभिन्न स्कीमो में, बांधो, जलाशयो और नदी घाटी योजनाओ में, आबपाशी और शिक्षा के विषय में क्या हो रहा है। वे इन बातो

की सूचना चाहते है; इन में उन की दिलचस्पी है। विशेष रूप से राजनीति के सम्बन्ध मे कोई जिज्ञासा उनकी ओर से नही हुई है। यह हो सकता है कि वे जानबूझ कर इस तरह की जिज्ञासा करते है, क्योकि यह प्रायः सरकारी क्षेत्रो से की जाती है। लेकिन मेरा तात्पर्य यह है कि हर एक देश मे पहुँच का ढंग अलग होगा। किन बातो की आवश्यकता है और ठीक ठीक प्रचार किस प्रकार किया जा सकता है, इसे योग्य सार्वजनिक सम्पर्क अधिकारी और विदेशो के हमारे दूतावास ही बता सकते है, और इसके बाद उसको यहा के सूचना विषयक प्रबन्धो से सम्बन्धित किया जा सकता है। इसलिए मेरा निश्चित विचार है कि इन सब बातों पर पूरी तरह सोच-विचार करना होगा और वास्तव मे वैदेशिक विभाग और गृह विभाग इस पर विचार कर भी रहे है। हम सब अधिक व्यावहारिक और अच्छा तरीका निकाल लेने की आशा करते है। अनिवार्य रूप से, फिर फिर परीक्षा करके इस प्रश्न को हल करना होगा।

ठीक-ठीक तरीका अनुभव द्वारा ही सीखा जा सकता है, इसके अलावा कोई दूसरा उपाय नही। फिर यह भी है कि और देशों का, जो इस कार्य को वर्षों से करते रहे हैं, इस विषय में बहुत अनुभव है। वे इस काम में अपार धन व्यय करते है, बहुत अधिक संख्या में लोगों को नियुक्त करते है, और जिन देशो में वे काम करते है उनके सूचना-संगठनो से निकट सम्पर्क पहले ही स्थापित कर चुके हैं। उनके लिए यह कार्य सहज है। हम अपने अच्छे से अच्छे प्रतिभाशाली युवक को यहां से भेज सकते हैं। उसे ऐसे सम्पर्क स्थापित करने में समय लगता है जो केवल मेल-जोल न होकर मनोवैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार के भी हो। इसलिए यदि बहुत मार्के के परिणाम नही निकले हैं, तो सभा को यह समझना चाहिए कि यह ढेर के ढेर पैम्फिलेट, वितरण-पत्रक, व्याख्यान आदि पहुँचाने मात्र का कार्य नही है, बल्कि एक ऐसी चीज के विकास का कार्य है जो कि इससे अधिक जटिल और कठिन है। निश्चय ही, वर्तमान प्रबन्ध बहुत अच्छे नही है और उन्हें कुछ उस प्रकार से बदलना पड़ेगा जिनका सुझाव कि इस सभा में दिया गया है।

अब सूचना और रेडियो के सम्बन्ध में मै कहूँगा कि सूचना और रेडियो इन दोनों विषयों पर मंत्रालय ने मुझे पूरे-पूरे ब्यौरे दिए है जिनमें अनेक विशेष बाते है। मै उन्हे इस सभा के सामने पढूंगा नही, क्योंकि इसमें बहुत समय लग जायगा और जो बहुत से आकड़े दिए गए है उन्ही मे यह सभा फँस जायगी; लेकिन इस सभा को उन ब्यौरो को जानना अवश्य चाहिए, और मै मंत्रालय को सुझाव दूंगा कि वह उन्हे इस सभा के सामने और जनता के सामने उचित रूप में रक्खे, जिससे कि वह समझ सके कि क्या हो रहा है। मेरा अपना मत रेडियो की व्यवस्था के विषय में यह है कि हमें जहां तक

हो, ब्रिटिश नमूने पर यानी बी० बी० सी० के ढंग पर कार्य-संचालन करना चाहिए। अर्थात् अच्छा यह होगा कि हम सरकार की अधीनता में एक अर्ध-स्वायत्त संस्था कायम करें, जिसकी नीति अवश्य ही सरकार द्वारा नियंत्रित होगी, लेकिन जो अन्यथा सरकारी विभाग के रूप में नही बल्कि एक अर्ध-स्वायत्त संस्था के रूप में चलायी जायगी। मैं यह नही सोचता कि ऐसा करना तत्काल संभव होगा। मैंने इस सभा से केवल इसकी चर्चा की है। मेरा खयाल है कि हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए, चाहे हमारे सम्मुख बहुत सी कठिनाइया हों। वास्तव में बहुत से मामलो में हमारा उद्देश्य इस तरह की अर्द्ध-स्वायत्त संस्थाओ की स्थापना होना चाहिए, जिनमें नीति तथा अन्य बातो का नियंत्रण दूर से सरकार के हाथो में हो, लेकिन सरकार या सरकारी विभाग नित्य के कार्यक्रम मे हस्तक्षेप न करे। लेकिन यह तात्कालिक प्रश्न नही है। यह स्पष्ट है कि हमारी विभिन्न सेवाओ में समाचार-वितरण, भाषा के प्रश्न आदि में कौन सी नीति बरती जाय उस पर यहा होने वाले वादविवाद ने सभा के विचारो का सकेत दे दिया है। इससे सहायता मिलेगी। लेकिन इनका फल तभी निकलेगा जब समितियो आदि द्वारा इस तरह के वादविवाद शास्त्रीय स्तर पर नहो, फिर भी पूरे ज्ञान के साथ बराबर ध्यानपूर्वक होते रहे। कटौती के प्रस्तावो के सम्बन्ध में किए गए चलताऊ भाषणो द्वारा इस विषय पर ठीक ठीक विचार हो सकना वास्तव में असम्भव है। मुझे एक माननीय सदस्य से यह जानकर खेद है कि कुछ प्रान्तो में सलाहकार समितिया ठीक ठीक नही चल रही हैं। मैंने समझा था कि रेडियो के सम्बन्ध मे यह आवश्यक है कि ऐसी समितिया जल्द-जल्द काम करती रहे, उनसे सलाह ली जाय और उन्हे बताया जाय कि क्या हो रहा है और अधिकारी वर्ग और गैर-अधिकारी वर्ग के बीच साधारणतया परस्पर सम्बन्ध बना रहे। इस विभाग की स्थायी समिति से भी मैं कहना चाहता हूँ कि इस सभा मे जो प्रश्न उठाए जाते है उन पर वह विचार करे और उनके विषय में विभाग के पदाधिकारियो से परामर्श करे। उन से निबटने का यही उचित ढंग है। यह बहुत सन्तोषजनक तरीका नही है कि माननीय सदस्य यहां पर व्याख्यान दें और मैं या और कोई उठ कर उसका उत्तर दे दें और यही पर साल भर के लिए प्रसंग समाप्त कर दिया जाय। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस प्रकार का निकट सम्पर्क और इन विषयो पर मिल-जुल कर परामर्श भविष्य में अब तक की अपेक्षा अधिक होगा। अब भाषा आदि के प्रश्न को ले लीजिए। यह स्पष्ट है कि यह विषय ऊँचे स्तर पर विद्वानो के विचार करने का है। यह ऐसा प्रश्न नही कि उसे किसी राजनीतिक वादविवाद की सरगर्मी में निबटाया जा सके। विशेषकर किसी रेडियो-संगठन के लिए इस विषय पर विचार करने के लिए ऊँचे दर्जे के सलाहकारो की आवश्यकता है, जो भाषाओं आदि के विषय में जानते हो और जो उन्हे सलाह दे सके। इंग्लिस्तान मे अवश्य ही कोई ऐसा प्रश्न नही है,

कि किस तरह की भाषा का प्रयोग हो, परन्तु इंग्लिस्तान के अच्छे से अच्छे साहित्यकार सलाह देने के लिए नियुक्त होते हैं—जैसे बर्नार्ड शा और अन्य लोग। इन लोगों को भाषा के व्यवहार के सम्बन्ध में स्थायी सलाहकार समिति मे रक्खा गया है। मैं नही कह सकता कि बड़े बड़े साहित्यिको से हम परामर्श देने के लिए कहें तो परिणाम बहुत अच्छा ही होगा, क्योकि उनकी सलाह सभवतः दूसरे साहित्यिको के विषय में होगी और मेरे जैसे लोग समझ न पायेंगे कि क्या हो रहा है। इस संभावना की कल्पना की जा सकती है। फिर भी मेरा तात्पर्य यह है कि वे लोग, जो इस समस्या को तथा इसके शिक्षा संबंधी एवं सार्वजनिक पहलुओं को समझ सकते हैं, इस विषय पर निष्पक्षता के साथ विचार करे। उन्हें रेडियो मंत्रालय से संवद्ध कर लेना चाहिए, उनसे सलाह लेनी चाहिए तथा शब्द-सूची, शब्द-कोष आदि जो व्यवहार मे आ सके तैयार कराना चाहिए। हर एक देश मे ऐसा होता है, अगर्चे उनके यहा भाषा सम्बन्धी ऐसे विवाद नही चल रहे हैं जैसे कि यहां है। यही बात इस पर भी लागू होती है कि किस प्रकार के समाचार दिए जायं।

इस सभा मे इस विषय पर दो सम्मतियां नही हो सकती कि ग्रामीण प्रदेशो में रेडियो का विकास विशेष महत्व रखता है। मैं इस बात को ठीक-ठीक समझ नही सका हूँ कि, जैसा कि मेरे खयाल में श्रीमती कमला चौधरी ने बताया, ग्रामीण प्रदेशों के लिये किये जाने वाले प्रसारणो को अधिक समय दिया जाना चाहिये। मेरी समझ मे यह समय का प्रश्न ही नही है। मान लीजिए कि एक घंटा रोज़ की जगह पर आप पांच घंटे रोज़ देते है। पर ग्राम-निवासी तो केवल कुछ ही समयो पर सुन सकते हैं, और फिर एक बात हद से अधिक भी हो सकती है। न मैं यही ठीक समझता हूँ कि हमें अपने रेडियो के कार्यक्रम मे दूसरो को शिक्षा देने के ध्येय को ही ध्यान में रखना चाहिए। मैं नही कह सकता कि माननीय सदस्यो की, उन्हे सुधारने के लिए किए गए प्रयत्नो के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी। लेकिन मेरी इसके विरुद्ध बड़ी ज़ोरदार प्रतिक्रिया होती है। यदि कोई मुझे उपदेश देना चाहता है तो मैं उस उपदेश को न सुनूंगा। मैं समझता हूँ कि जन-साधारण की भी यही मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है; बहुत उपदेश देने का, आपके लाभ की बहुत सलाह देने का, बार-बार यह कहने का कि अच्छे आचरण करो, परिणाम बहुत अच्छा नही होता। हमें इस समस्या के सम्बन्ध में दूसरी तरह पर काम करना चाहिए। आप शिक्षा देना चाहते है तो दिल-बहलाव के ढग पर, मनोरजन प्रस्तुत करते हुए, हल्के-फुल्के ढंग से, और कभी-कभी आप चाहें तो बोझिल ढग से भी दीजिए,—ठीक वैसे ही जैसे आप बच्चे को देते हैं। मेरा सुझाव है कि ये सब बातें विशेषज्ञो के विचार करने की है। इसलिए मैं समझता हूँ कि यह वांछनीय होगा कि अलग-अलग समितियो के सदस्य

इन बातों पर विचार करें और अपन कार्यो को परस्पर संबंधित करते हुए, मंत्रालय को परामर्श दें। इसी तरह हम क्रमशः सुधार कर सकते हैं।

मुझे खेद है कि बहुत से विषय जो उठाये गए उन पर मैंने कुछ नहीं कहा, लेकिन उनसे निबटने के ढंग के विषय में मैंने मार्ग-दर्शक सुझाव दे दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का उदय

यह सभा हमारी वैदेशिक नीति और वैदेशिक मामलों और भारत पर पड़नेवाले उनके प्रभाव आदि के विविध पहलुओं में निःसन्देह दिलचस्पी रखती है। सम्भवतः आज के वादविवाद के सिलसिले में इनमें से कई बातों पर ध्यान दिलाया जायगा। लेकिन बजाय इसके कि मुख्य समस्या के छोटे-छोटे पहलुओं पर मैं कुछ कहूँ, मैं वैदेशिक मामलों और वैदेशिक नीति के कुछ साधारण पहलुओं पर जिस रूप में कि वे भारत पर प्रभाव डालते हैं और जिस रूप में हम उन्हें देखते हैं, कुछ कहना चाहूँगा।

उससे भी पहले, मैं न केवल वैदेशिक मामलों का, बल्कि स्वयं भारत के मामलों का एक प्रकार से सिंहावलोकन करना चाहूँगा। पिछले कुछ दिनों में हमने आय-व्यय सम्बन्धी प्रस्तावों की बहुत कुछ आलोचना सुनी है और सरकार की बहुत-सी त्रुटियों को कम या अधिक जोर के साथ बताया गया है। जहा तक मेरा सम्बन्ध है, मैं हर तरह की आलोचना का स्वागत करता हूँ और मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यह दुर्भाग्य की बात होगी कि यह सभा एक गति-हीन, एक अधीन सभा बन जाय, ऐसी सभा जो सरकार की सभी बातों पर केवल "हा" करनेवाली हो। स्वतंत्रता का मूल्य निरन्तर सतर्कता द्वारा चुकाना होता है, और इस सभा के हर एक सदस्य को सतर्क रहना चाहिए और सरकार को भी बेशक सतर्क रहना चाहिए। लेकिन अधिकार पद पाए हुए लोगों की एक प्रवृत्ति प्रायः यह होती है कि वे किञ्चित् आत्मतुष्ट हो जाते हैं। इसलिए मैं दुहराऊँगा कि मैं तो, इस सभा के माननीय सदस्यों की इस विषय में सतर्कता का और इस बात का स्वागत करता हूँ कि वे हमारा ध्यान हमारी त्रुटियों या भूलों या शासन की लापरवाहियों की ओर दिलाते हैं। साथ ही मैं आशा करता हूँ कि आलोचना सद्भाव से, मैत्रीपूर्ण ढग से, की जाती है और सरकार की नेकनीयती पर सन्देह नहीं किया जाता। यदि सरकार की नेकनीयती पर संदेह किया जाय, तो भी मुझे आपत्ति नहीं, बशर्ते कि यह स्पष्ट रहे कि विचारणीय विषय वही है।

पिछले दिनों इन आलोचनाओं को सुनते हुए या उनके विषय में पढ़ते हुए

संविधान परिषद (व्यवस्थापिका), नई दिल्ली, में ८ मार्च, १९४८ को दिया गया भाषण।

मैंने अनुभव किया है कि शायद हम विस्तार की बातो पर अत्यधिक ध्यान दे रहे है और मूल बातों को नही देख रहे है। हम आज भारत की पूरी तस्वीर को, और जो कुछ पिछले लगभग अठारह महीनों में हुआ है उसे नही देख रहे है। उसे जहा तक आप से हो सके आप तटस्थ होकर देखिए—मानो आप कुछ दूर पर हो और इस वदलते हुए दृश्य को देख रहे हों। मै समझता हूँ, अगर आप अपने को अव से डेढ साल पहले पहुँचा सके और देखे कि तव क्या हुआ और उसके वाद से अव तक क्या हुआ, तो आप पायेगे कि भारत में न केवल एक वड़ा परिवर्तन हुआ है, वल्कि वावजूद अपनी सव कठिनाइयो और संकटो के जिनसे होकर कि वह गुज़रा है, भारत अनेक प्रकार से आगे वढा है। हमारी सरकार को, और विशेपकर कुछ हद तक मुझे, भारी वोझो को वहन करना पड़ा है और हम उन्हें अव भी वहन कर रहे है और हमारे सामने वड़ी कठिनाइयां है। फिर भी मुझे अनुभव होता है कि हमने पूरी ईमानदारी के साथ कुछ हासिल किया है, हम विफल नही हुए है। और मै भविष्य की ओर—मेरा मतलव दूर भविष्य से नही है—पूरे विश्वास के साथ देखता हूँ और भारत के इतिहास के इस महान काल में उसकी सेवा कर सकने के अपने सौभाग्य पर एक विशेष रहस्यमयी भावना का अनुभव करता हूँ।

चूकि आपने आय-व्यय विपयक प्रस्तावो की चर्चा की है, मै कहूँ कि इस वजट में ही ऐसी वाते है, जो कुछ सदस्यों को रुचिकर न हों, और हो सकता है कि जहा तहां हम उनमें सुधार कर सकते थे, लेकिन मेरी समझ में वजट स्वयं हमारी शक्ति और राष्ट्र की शक्ति का सूचक है। मै समझता हूँ कि यह सभा और यह देश देखेगा कि जिस सावधानी और दूरदर्शिता से हमारे अर्थमन्त्री ने यह वजट तैयार किया है उसका पूरा पूरा लाभ हमें आने वाले महीनों और वर्षो में मिलेगा। हम सावधानी से आगे वढ़े है, क्योंकि स्पष्ट कहा जाय तो जो दायित्व हमारे हाथो में सौपा गया है, उसे हम जोखिम में डालने का साहस नही कर सकते। वहुत सी वातें जो हम करना चाहते थे, हमने नही कीं, क्योंकि भारत के भविष्य से या भारत के वर्तमान से हम जुआ नही खेल सकते। किसी विपय पर अपने विचारों या सिद्धान्तो को रखते हुए भी, यदि उनके अनुसार चलने में जोखिम या भय हो, तो आगे वढ़ने में सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए हम सावधानी से आगे वढे है। हो सकता है कि हम इस मामले में कुछ और अग्रसर होते तो कुछ जल्दी परिणाम प्राप्त हो सकते थे, लेकिन मै निजी तौर पर मौजूदा नाजुक वक्त में सावधानी की नीति से पूरी तरह सहमत हूँ। जहां-तहां कुछ छोटी वातों को अलग रखते हुए मै अपने सहयोगी अर्थ मंत्री के उस साहस, कल्पना और महान योग्यता की प्रशंसा करूँगा जिससे उन्होने हमारी समस्या को हल करने की चेष्टा की है।

भारतीय संघ एक शिशु राज्य है। वह केवल डेढ़ साल का नया स्वतंत्र राज्य है।

लेकिन स्मरण रखिए कि भारत एक शिशु देश नहीं। वह एक अति प्राचीन देश है जिसके पीछे हज़ारों वर्षों का इतिहास है—ऐसा इतिहास जिनमें कि उसने अपनी विस्तृत सीमाओं के भीतर ही नहीं, बल्कि संसार में और विशेषकर एशिया में एक जीवित-जागृत भाग लिया है। अब इस वर्ष या इससे कुछ अधिक समय में भारत का फिर से मानवीय क्रिया-कलाप के मुख्य प्रवाह के बीच आविर्भाव होने जा रहा है।

यह एक बड़े ऐतिहासिक महत्त्व की बात है। मैं कह सकता था कि इतिहास के इस प्रमुख प्रवाह में एशिया का आविर्भाव हो रहा है। एशिया ने अपने हजारों वर्षों के इतिहास में बड़े महत्त्व का भाग लिया है। यही बात भारत के विषय में भी निश्चित रूप से सही है; लेकिन पिछले लगभग दो सौ वर्षों में यूरोप में और उसके बाद अमेरिका में हुए विज्ञान और यंत्रकला के विकास के कारण एशिया पर यूरोप का प्रभुत्व स्थापित हो गया और संसार में एशिया के कार्यों में रुकावट आ गई। वह सीमित हो गया और बँध-सा गया। इस काल में भारत और एशिया में विविध आंतरिक परिवर्तन हुए। लेकिन आमतौर पर भारत और एशिया के और देश यूरोप के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व का सामना कर सके। अब वह काल समाप्त हो गया है और भारत मेरी समझ में अब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में आगे आ रहा है।

आज के प्रमुख प्रश्नों में एक यह है कि एशिया और यूरोप के परस्पर संबंधों का किस नए रूप में ठीक ठीक समन्वय हो। जब हम एशिया की बात करते हैं, तब याद रखना चाहिए कि अपनी किसी आकांक्षा के कारण नहीं; वरन् स्थितियों के वश में होकर, भूगोल के कारण, इतिहास के कारण, और बहुत सी और चीज़ों के कारण, भारत को अनिवार्य रूप से एशिया में एक महत्त्व का भाग लेना पड़ता है। और यही नहीं, भारत एक प्रकार से अनेक प्रवृत्तियों और शक्तियों के परस्पर मिलने की जगह और जिसे हम मोटे तौर पर पूर्व और पश्चिम कहेंगे उनके परस्पर मिलने की जगह बन जाता है।

आप जरा विश्व के मानचित्र को देखिए। अगर आपको मध्यपूर्व से संबंधित किसी प्रश्न पर विचार करना है तो भारत अनिवार्य रूप से आपकी दृष्टि के सम्मुख आ जाता है। अगर आपको दक्षिण-पूर्वी एशिया विषयक किसी प्रश्न पर विचार करना है, तो भी भारत की ओर ध्यान दिए बिना आप ऐसा नहीं कर सकते। यही बात सुदूरपूर्व के सम्बन्ध में समझिए। मध्यपूर्व का दक्षिण-पूर्वी एशिया से भले ही सीधा सम्बन्ध न हो, लेकिन भारत से दोनों ही का सम्बन्ध है। अगर आप एशिया के प्रादेशिक संगठनों की बात सोचते हैं, तो भी आपको विभिन्न प्रदेशों से सम्पर्क रखना होगा। और जिस

किसी भी प्रदेश की बात आपके विचार में हो, भारत की उपेक्षा नही की जा सकती ।

एशिया और यूरोप के परस्पर-सम्बन्धो को किस रूप मे ठीक-ठीक समन्वित किया जाय, यह आज के प्रमुख प्रश्नों मे से एक है। अब तक मुख्यतया अपने आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व के कारण पश्चिम ने एशिया की उपेक्षा की है या कम-से-कम जो महत्व उसे दिया जाना चाहिए था वह नही दिया है । एशिया को वास्तव में एक पीछे का आसन दिया गया और इसका एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ कि राजनीतिज्ञों ने भी होने वाले परिवर्तनों को नही पहचाना । मैं समझता हूँ कि इन परिवर्तनो की अब बहुत कुछ पहचान होने लगी है, फिर भी यह काफी नही है । संयुक्त राष्ट्रसंघ की समितियो मे भी एशिया की समस्याओ, एशिया के दृष्टिकोण, एशिया के किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के ढंग ने उतना उत्साह नही जगाया है जितना चाहिए था ।

किसी भी विषय पर एशिया और यूरोप के दृष्टिकोण की विभिन्नता का संकेत अनेक बातो से मिलता है । आज एशिया मुख्यतया उन समस्याओ मे लगा हुआ है जिन्हे हम मानवता सम्बन्धी तात्कालिक समस्याएँ कहेगे । एशिया के हर एक देश मे—जो कि कमोबेश कम विकसित देश हैं—मुख्य समस्या भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य की है। हम इन समस्याओ को हल करने मे लगे हुए है । अधिकार-लालसा-जनित समस्याओ से हमारा सीधा सबंध नही है । हम में से कुछ अपने मन में भले ही इसको सोचते हो।

दूसरी ओर विध्वस्त प्रदेशो मे यूरोप को भी इन समस्याओ के विषय मे निश्चय ही चिन्ता है । यूरोप में शक्तियो का सघर्ष और अधिकार-प्राप्ति से उत्पन्न समस्याएँ मानो उत्तराधिकार में मिली चीजे है। उन्हे अधिकार खो बैठने का डर बना हुआ है। साथ ही उन्हे यह भय भी सताता रहता है कि कोई अधिक अधिकार प्राप्त करके एक या दूसरे देश पर आक्रमण न करे । इसलिए यूरोपीय दृष्टिकोण यूरोप के पुराने सघर्षो के फलस्वरूप मिली विरासत है ।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नही कि हम एशियावासी किसी प्रकार से आचार या नीति की दृष्टि से यूरोपीयो मे श्रेष्ठतर है । कुछ बातों मे, मेरा खयाल है, हम अपेक्षाकृत बुरे है । फिर भी यूरोप में सघर्ष का एक सिलसिला चला आ रहा है ।एशिया मे कम-से-कम वर्तमान काल में ऐसी कोई बात नही है । एशियायी देशो में जहां-तहा अपने पड़ोसियो से झगड़े हो सकते है । लेकिन सघर्ष का कोई ऐसा बुनियादी सिलसिला नही है जैसा कि यूरोपीय देशों में है । एशिया के पक्ष मे यह एक बहुत बड़े लाभ की बात है, और भारत के लिए, तथा एशिया के अन्य देशो के लिए, यह बड़ी मूर्खता की बात होगी कि वे यूरोपीय सघर्षो के ढग के सघर्ष मे पडे । हमे यह जानना चाहिए कि ससार अधिकाधिक एकता की ओर बढ़ रहा है—शान्तिकालीन
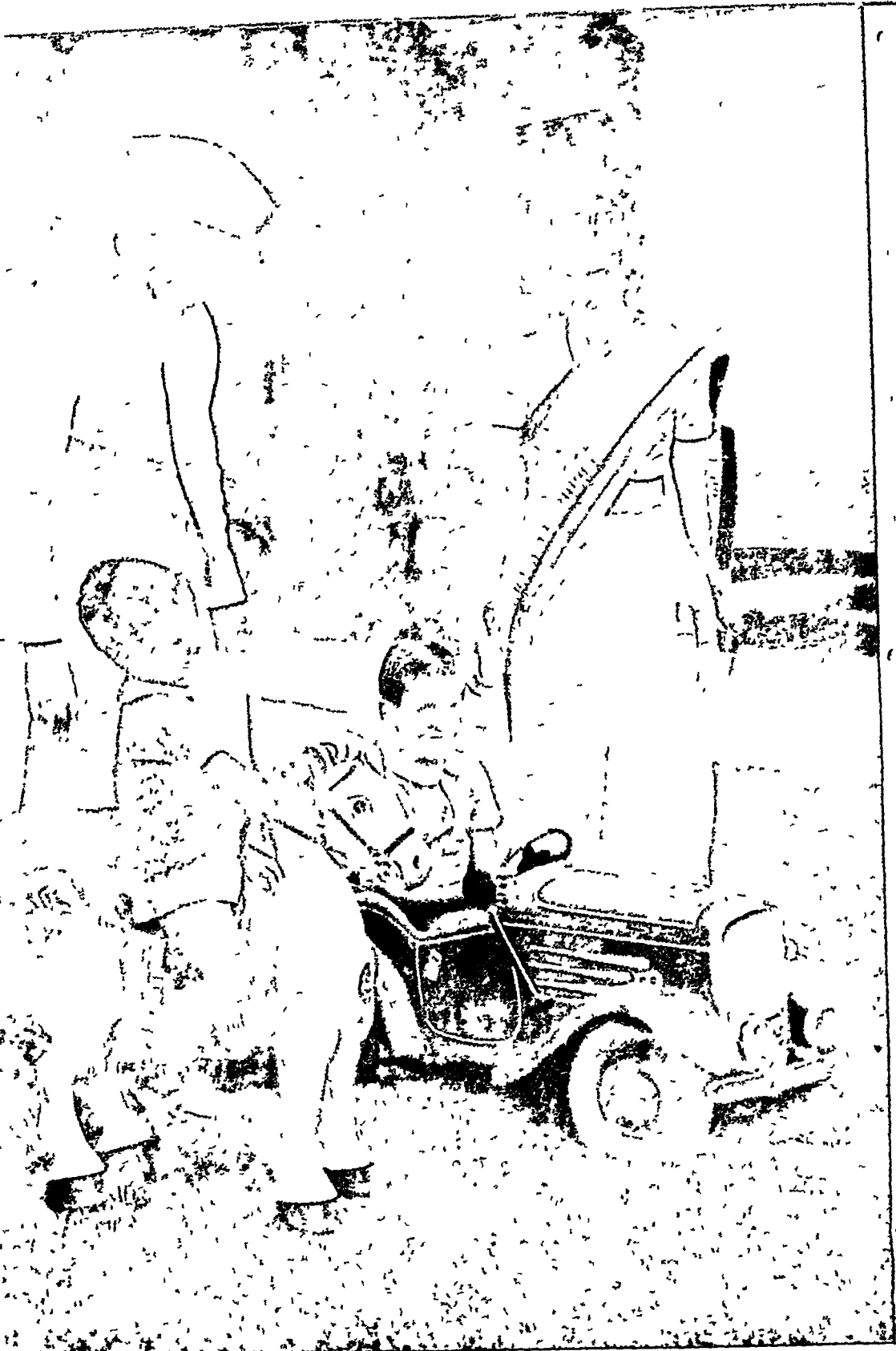
अपने निवास स्थान पर अपनी पुत्री तथा पौत्र के साथ

एकता की ओर और संभवत: युद्धकालीन एकता की ओर भी। कोई नहीं कह सकता कि अगर बड़ा अग्निदाह हुआ तो कोई देश उससे अलग बचकर रह सकता है। फिर भी मनुष्य ऐसी नीति का अवलम्बन कर सकता है जिससे यह संघर्ष टले और उसमें किसी को फँसना न पड़े।

इसलिए जिस बात को मैं चाहता हूँ कि यह सभा ध्यान में रक्खे वह यह है: सबसे पहले तो संसार के मामलों में भारत की अग्रसरता संसार के इतिहास पर एक बड़ा प्रभाव डालने वाली बात है। हम लोगों का, जो कि भारत सरकार में या इस सभा में हैं, अपेक्षाकृत विशेष महत्व नहीं है। लेकिन हमारे हिस्से में ऐसे समय में काम करना आ पड़ा है जब कि भारत बढ़ कर विशालकाय होने जा रहा है। इसलिए अपने छोटेपन के बावजूद हमें बड़े ध्येयों के लिए काम करना है और शायद इस क्रम में अपने को ऊँचा उठाना है।

डेढ़ वर्ष हुआ, जब भारत स्वतंत्र हुआ तो हमने अपने लिए या कहिए कि भाग्य ने हमारे लिए एक बड़ी कठिनाई का समय चुना। पिछले महायुद्ध की क्षतियाँ और परिणाम हमारे सम्मुख थे ही। ज्यों ही हम स्वतंत्र हुए भारत में ज्वालामुखी जैसे उथल-पुथल हुए। चाहे भारत में पूरी शांति भी रही होती, तो भी उस अतीत काल की, जब कि हमारी बाढ़ रुकी हुई थी, सब समस्याएँ हमारे लिए कुछ कम कठिनाइयाँ उपस्थित न करतीं। लेकिन उनके साथ साथ महानकाय नई समस्याएँ आ गईं। हमने उनका कैसे सामना किया, उसे यह सभा अच्छी तरह जानती है और यह इतिहास बतायेगा कि हम असफल रहे, या सफल रहे, या अंशत: सफल रहे। जो भी हो, हम उन कठिनाइयों को झेल कर जीवित ही नहीं रहे बल्कि कई प्रकार से आगे भी बढ़े। धीरे धीरे हमने उन समस्याओं पर अधिकार पा लिया है और हमने भारत में एक राजनीतिक इकाई स्थापित कर ली है।

क्या मैं इस सभा को बताऊँ कि वह राजनीतिक इकाई जिसे आज भारत कहते है, जनसंख्या की दृष्टि से, संसार की सब से बड़ी राजनीतिक इकाई है? लेकिन जनसंख्या और गिनतियों का मूल्य नहीं, मूल्य योग्यता का ही होता है। मैं यह भी कहूँगा कि संभावित साधनो की दृष्टि से और उन सम्भावित साधनों के उपयोग की सामर्थ्य की दृष्टि से भी हम सम्भावित रूप से संसार की सब से बड़ी इकाई हैं। यह मैं आत्म-श्लाघा की भावना से नहीं कह रहा हूँ, लेकिन हमें अपने महान भार को समझना चाहिए और इस बड़े बोझ और बड़ी जिम्मेदारी को निभाने की बात सोचनी चाहिए।

अब मैं आपके सम्मुख एक अन्य विषय भी रखना चाहूँगा। इस सभा के सदस्यों में से अधिकतर लोगो ने और देश की बहुसंख्यक जनता ने अपना जीवन उसमें, जिसे क्रान्तिकारी कार्य कह सकते हैं, और शासन-सत्ता से संघर्ष में बिताया है। हम लोग क्रान्ति की परम्परा में पले है, और अब स्वयं अधिकार के पदों पर आरूढ़ है,

और हमें कठिन समस्याओं से निवटना पड़ता है। किसी भी समय, किसी के भी लिए अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना सहज नहीं होता। और फिर हम न केवल क्रान्तिकारी और आन्दोलनकारी और बहुत-सी चीजों के तोड़नेवाले रहे हैं, बल्कि हम महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन मे एक ऊँची परम्परा मे पले है। वह परम्परा एक नैतिक परम्परा है, आचार सम्बन्धी परम्परा है, और साथ ही वह नैतिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का व्यावहारिक राजनीति में प्रयोग है। उस महापुरुष ने हमारे सामने काम करने की एक विधि रक्खी जो कि समार मे अद्वितीय थी, जिसमें कि राजनीतिक कार्य और राजनीतिक संघर्ष और स्वतन्त्रता के लिए युद्ध के साथ कुछ नैतिक और आचार संबंधी सिद्धान्त निहित थे। मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि हममें से अमुक व्यक्ति उन नैतिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का पालन कर सका। लेकिन मैं यह कहने का साहस अवश्य करता हूँ कि पिछले लगभग तीस वर्षों मे हम में से सभी, कम या अधिक मात्रा में, और स्वयं यह देश, कम या अधिक मात्रा में, उस महान शिक्षक तथा नेता के उन नैतिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों से प्रभावित हुए विना नही रहा।

उस आदर्शवाद और नैतिक पृष्ठभूमि के साथ अब हम व्यावहारिक समस्याओं का सामना करते हैं, और उस विशेप सिद्धान्त को इन समस्याओ के हल करने के लिए लागू करना ब्रड़ी कठिन बात हो जाती है। यह ऐसा सघर्ष है जिसका कि व्यक्तियों और वर्गो और राष्ट्रों को अकसर सामना करना पड़ा हैं। यह हमारे आगे बडी विचित्र परिस्थितियों में आया, और उन परिस्थितियो ने उसे और गहन वना दिया इसलिए हम में से अधिकतर लोगों ने आत्म-वेदना का अनुभव किया है। हमने अक्सर गान्धी जी और उनके महान सिद्धान्तों और उनके सदेश पर पर्याप्त विचार नहीं किया है, और जहां हमने उनकी वार-बार प्रशसा की है, हमने अनुभव किया है: "क्या हम कपटी नही हैं? क्योंकि हम उनके विपय मे वात तो करते है, लेकिन उनके कहने के अनुसार आचरण नही कर पाते। क्या ऐसा करके हम अपने को और संसार को धोखा नहीं दे रहे हैं?" जीवन की छोटी वातों के विषय में हम कपटी हो सकते है, लेकिन जीवन की वड़ी बातों के विषय मे कपटी होना भयावह है। और यह वड़ी दु:खद बात होती अगर हम अपने महान नेता के नाम और प्रतिष्ठा का लाभ उठाते, उसकी शरण लेते और अपने हृदयों में और अपने कार्यो मे उस सदेश के प्रति कपट भाव रखते जिसे वे इस देश और संसार के लिए लाए थे। तो हमारे मनो मे ये संघर्ष रहे है और अब भी चल रहे हैं, और शायद इन संघर्षो का कोई अन्तिम हल भी नही, सिवाय इसके कि हम आदर्शवाद के और परिस्थितियां जो व्यवहार हमसे हठात् कराती है उसके वीच की खाई को वरावर भरते रहने की कोशिश करें। हम घटनाओं मे परिवर्तन का ध्यान रक्खे विना अन्धे कठपुतलों की भांति, जो कुछ 'उन्होंने कहा उसका पालन नहीं कर सकते और मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा करने की वे

हमसे अपेक्षा भी न करते। दूसरी ओर, उन आदर्शों का, जिनके पालन के लिए हमने अपने को इतनी बार प्रतिज्ञावद्ध किया है, हमें अपने मन में ध्यान वनाए रखना चाहिए।

एक महापुरुष और एक राजनीतिज्ञ के किसी समस्या को देखने के ढंग में सदा एक वड़ा अन्तर रहता है। हमारे यहां एक ऐसा व्यक्ति था जो महा-पुरुष और राजनीतिज्ञ दोनों ही था; लेकिन हम लोग न तो सिद्ध है और न राजनीतिज्ञता की दृष्टि से ही महान हैं। जो हम कह सकते हैं वह यह है कि जहां तक हम उस आदर्श के अनुसार चल सकें, हमें अपनी पूरी सामर्थ्य से चलने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही हर समस्या पर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करते हुए चलना चाहिए, नही तो हम विफल होंगे। एक ओर तो यह वड़ा भय है कि हम उस महापुरुष के सदेश के विरुद्ध न जायें, और दूसरी ओर यह कि उस सदेश के अन्ध अनुसरण में हम उसकी समस्त जीवनी-शक्ति न खो वैठें। इसलिए हमें इनके वीच का मध्यम मार्ग ग्रहण करना है। तव एक राजनीतिज्ञ या राजदर्शी को, या जिस नाम से भी उसे पुकारियें, न केवल सत्य को देखना पड़ता है वल्कि इस वात को भी कि मनुष्य उस सत्य को कहां तक ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि यदि उसकी पर्याप्त स्वीकृति नहीं होती तो राजदर्शी या राजनीतिज्ञ के दृष्टिकोण से वह सत्य, जव तक कि लोगो के मन उसके लिए तैयार नही होते, झाड़खड में खोया सा रहता है। और जव तक लोग उस सत्य में विश्वास न करें, निश्चय ही कोई राजनीतिज्ञ उसके विषय में विशेषकर एक जन-सत्तात्मक युग में कुछ नहीं कर सकता। इसलिए, दुर्भाग्यवश लेकिन अनिवार्य रूप से, समय-समय पर समझौते करने पड़ते हैं। समझौतो के विना आप काम नही चला सकते। लेकिन यदि समझौता अवसरवादिता के आधार पर अर्थात् सत्य के ध्येय को परे रख कर हुआ है तो वह समझौता वुरा है। अच्छा समझौता तभी हो सकता है जव वह सत्य को आंखो से ओझल न होने दे और उस तक आप को पहुँचाने का यत्न करे। अतएव पिछले डेढ़ साल के वीच हमने इन कठिन समस्याओं का सामना किया है, और यह कठिनाई वहुतों पर प्रकट रही है। लेकिन शायद किसी ने अन्तःकरण की उस यातना पर ध्यान नही दिया होगा जो हम सब वरावर सहन कर रहे थे। जो कुछ हम कर सकते है वह यह है कि हम समय-समय पर अपने को सचेष्ट करें, अपने कार्यों को देखें, जो ऊँचा आदर्श हमारे सामने रक्खा गया है उसके प्रकाश में उसकी जाच करें और जहां तक हो उसके निकट रहने का प्रयत्न करें।

यह एक अजीव वात थी कि हम लोगों को, जिन्होंने कि स्वतंत्रता का युद्ध अहिंसात्मक और शान्तिपूर्ण ढंग से चलाया, तुरन्त ही भीषणतम हिंसा का—

नागरिक हिंसा का और जिसे कि फौजी हिंसा कह सकते हैं उसका सामना करना पड़ा और हमें देश के एक भाग में एक प्रकार का युद्ध करना पड़ा। जिन सब बातों के पक्ष में हम रहे, उनसे यह बिल्कुल उलटा ही जान पड़ा; फिर भी स्थितियां ऐसी थीं कि मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे लिए कोई दूसरा रास्ता न था और हम लोगों ने जो रास्ता ग्रहण किया वह ठीक था।

क्या मैं इस सभा को बताऊँ कि जब अक्तूबर १९४७ के अन्त में हमारे सामने कश्मीर का प्रश्न अचानक आया, जब हमने सुना कि आक्रमणकारी कश्मीर में आ गए हैं और लूट-मार और विनाश कर रहे हैं, तो इस प्रश्न का निर्णय करना हमारे लिए बड़ा कठिन हो गया? फौजी दृष्टि से तो यह काफी कठिन था ही, क्योंकि हम लोग अलग पड़ गए थे और दूर थे और हथियारों का या सेना का हवाई मार्ग से भेजना फ़ौजी दृष्टि से कोई सरल काम न था। लेकिन वास्तविक कठिनाई हमारे भीतर से उत्पन्न होने वाली कठिनाई थी; यह अन्तरात्मा का संकट था। यह हमें कहां पहुँचायेगा? दूसरी ओर, कश्मीर की जनता की—उन लोगों की, जिन पर आक्रमण हो रहा था और जिनका विनाश किया जा रहा था—जबरदस्त पुकार थी। हम उनसे "नही" नही कह सकते थे। साथ ही, हम ठीक-ठीक नही जानते थे कि यह हमें कहां ले जायगा। अन्तरात्मा के इस संकट में—जैसा कि मैं अकसर करता था—मैं महात्मा गान्धी के पास उनकी सलाह लेने गया। फौजी मामलों में उनके लिए परामर्श देना स्वाभाविक नहीं था। इनके बारे में वे जानते ही क्या थे? उनके युद्ध अन्तरात्मा के युद्ध होते थे। लेकिन मेरी बातों को सुनकर, अगर मैं पूरे आदर के साथ ऐसा कह सकता हूँ, तो उन्होंने, जिस कार्य-प्रणाली का मैंने प्रस्ताव किया उस के लिये "नही" नहीं कहा। उन्होने देखा कि परि-स्थिति आ पड़ने पर एक सरकार को अपने कर्तव्य का, चाहे उसे सैन्य-संचालन द्वारा ही करना पड़े, पालन करना आवश्यक हो जाता है। इन चन्द महीनों में, जब तक वे हमारे बीच से उठ नहीं गए, मुझे बहुत से अवसरों पर उनसे कश्मीर के विषय में बात करने का अवसर मिला, और मेरे लिए यह बड़े सुख की बात थी कि जो भी हमने किया था उसमें हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त था।

हम पिछले डेढ़ साल पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि हमने भारत का अकेली संग-ठित राजनीतिक इकाई के रूप में निर्माण किया है और इस कार्य मे, जैसा कि यह सभा जानती है, मेरे आदरणीय सहयोगी उप-प्रधान मंत्री ने अत्यन्त महत्व का भाग लिया है। इस मामले में हमें कुछ और आगे जाना है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि आगे की ये समस्याएँ भी शीघ्र ही तै हो जायँगी। एक समस्या तो कश्मीर की है। अन्य समस्यायें पांडिचेरी, चन्द्रनगर, गोआ आदि प्रदेशों की हैं जो कि भारत के विदेशी अधिकार युक्त प्रदेश कहलाते हैं। हमने बराबर यह कहा है कि हम इन विदेशी

अधिकारयुक्त प्रदेशों के सम्बन्ध मे शान्तिपूर्ण समझौता चाहते हैं। लेकिन यह बिलकुल स्पष्ट है कि इन अविकृत प्रदेशों का एकमात्र भविष्य यह है कि वे भारत में पूरी तरह समाविष्ट हो जायँ। संघर्ष न करने के उद्देश्य से हम कुछ इंतिज़ार करने को तैयार हैं। हम इन और अन्य समस्याओं के शान्तिपूर्ण हल चाहते हैं। लेकिन यह कल्पना से बाहर की बात है कि इस नए जागृत भारत में छोटे-छोटे इलाके दूर-स्थित शक्तियों के अधिकार में हो।

मैं एक और बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। यह सभा बहुत उचित रूप से इस विषय में सतर्क है कि हमारी शासन सम्बन्धी सेवाओं के विकास में अपव्यय को रोका जाय। एक मितव्यय-समिति बैठाई जा चुकी है, तथा अन्य समितिया भी हैं, जो इस विषय पर विचार कर रही है। इस बात को कृपया ध्यान में रखिए कि भारत सरकार को, जो कि १५ अगस्त, १९४७ से कार्य कर रही है, अब तक की किसी भी भारत सरकार की अपेक्षा अधिक समस्याओं का सामना करना पड रहा है। एक तो पहले की सरकारें सामाजिक ध्येय को, जो उनके सामने होता था, अपना मुख्य कार्य या उतने ही महत्व का कार्य नही समझती थी, जितना कि हमें अनिवार्यत. समझना चाहिए। दूसरे, यह वैदेशिक मामलो का क्षेत्र ले लीजिए जिसके बारे में मैं बोल रहा हूँ। उस समय कोई वैदेशिक मामले नही थे। हमारे लिए अपनी वैदेशिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का निर्माण करना, एक बिल्कुल नया प्रयास रहा है। इससे लाज़िमी तौर पर हमें यहा और विदेशो में अपने कर्मचारी वर्ग में बहुत काफी वृद्धि करनी पड़ी है और बहुत धन व्यय करना पड़ा है। यह हो सकता है कि कुछ बचत की जा सकती हो; उस पर विचार करना पडेगा और उसे देखना होगा। लेकिन आप स्वतंत्र राष्ट्र होते हुए उन वैदेशिक सबंधो के बिना काम नही चला सकते। भारतीय सारे ससार में फैले हुए हैं। हमें उनके हितो को देखना है। प्रवासी भारतीयो के अतिरिक्त और भी हमारे हित हैं जिन्हे हमें देखना है, जैसे कि व्यापारिक हित आदि। हमें चीज़ें खरीदनी हैं, हमें चीज़ें बेचनी हैं। एक स्वतंत्र देश के लिए, विशेषकर भारत जैसे महान और बड़े देश के लिए, यह बिलकुल असम्भव है कि वह विदेशी व्यापार-गृहों, विदेशी दूतावासों, और विदेशी व्यापार-मंडलों आदि के साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित किए बिना अपना साधारण अस्तित्व बनाए रख सकें।

मैं इसकी चर्चा इसलिए करता हूँ कि अकसर इसकी आलोचना होती है कि हमारे दूतावास सारी दुनिया में फैल रहे हैं। शायद यह समझा जाता है कि हमारे अपने मिथ्याभिमान को तृप्त करने की यह एक मुद्रा है। और कभी कभी मुझ से कहा जाता है कि मुझे एक तरह की सनक हो गई है और यह कि मैं भारत की मुसीबतों को भूल जाता हूँ और मैं उन पर ध्यान नही देता, और मैं टिंबकटू से लेकर पीरू तक सिर्फ राजदूतो को भेजने की बात सोचता रहता हूँ। मैं चाहूँगा कि यह सभा

इस मामले पर विचार करें और इसके सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट रूप से समझ ले, क्योंकि इस सम्बन्ध में टिंबकटू से पीरू तक की बात करना मुझे बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा नही जान पड़ती। इससे पता चलता है कि लोगो को इसकी काफी समझदारी नही है कि भारत क्या है और आन्तरिक और घरेलू विषयो मे भारत को किस चीज की आवश्यकता है। अगर हम बाहर नही जाते है और अपने विदेशी कर्मचारी-वर्ग की स्थापना नही करते, तो किसी और को हमारे हितो पर दृष्टि रखनी पड़ेगी। वह और कौन है ? क्या हम इंग्लिस्तान से कहेगे कि वह विदेशो में हमारे हितो की देखरेख करे, जैसा कि पाकिस्तान ने कई देशो में किया है ? क्या इसी प्रकार की आजादी की हम कल्पना करते हैं ? आजादी किन बातो से होती है ? यह मुख्यतया और बुनियादी तौर पर वैदेशिक सम्बन्धों से होती है। यही आजादी की कसौटी है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह स्थानीय स्वायत्त शासन है। एक बार जब वैदेशिक सम्बन्ध आपके हाथो से किसी और के हाथों में चले जाते है, तो उस हद तक और उस मात्रा में आप स्वतन्त्र नही रह जाते। अगर हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र है तो हमें वैदेशिक सम्बन्ध रखने पड़ेंगे। वास्तव में हम उनके बिना काम चला नही सकते। हम अगर वैदेशिक सम्बन्ध कायम करते है तो इन सम्बन्धो को चालू रखने के लिए हमें कर्मचारी-वर्ग को रखना होगा। और वैदेशिक सम्बन्धो के अन्तर्गत यद्यपि व्यापार, धंधे आदि आ जाते है, फिर भी उनका स्थापित करना किसी व्यापारिक संस्था की एक शाखा खोल देने जैसा काम नही है, जैसा कि हमारे कुछ प्रमुख व्यापारियों ने समझ रखा है। मानव मनोवृत्ति और राष्ट्रो की मनोवृत्ति से निभाना बड़ा पेचीदा और बड़ा कठिन काम है, क्योकि इसमें उनकी पृष्ठभूमि और संस्कृति, भाषा आदि का विचार करना पड़ता है।

नए सिरे से आरम्भ करके हमने अपने वैदेशिक विभाग का थोड़े ही समय में विकास कर लिया है। यह एक कठिन कार्य रहा है और मेरे लिए यह कहना बेमानी होगा कि वैदेशिक विभाग के विकास के लिए जो कुछ हमने किया है उससे मुझे सन्तोष है। लेकिन पिछले अठारह महीनों में मैंने जो अनुभव एकत्र किया है उसके आधार पर मैं कहना चाहूंगा कि सब कुछ देखते हुए हमने बहुत खासी सफलता पाई है और उसकी कसौटी —निश्चय ही, एकमात्र कसौटी—संसार की दृष्टि में भारत का स्थान है। व्यक्तियो ने जहा तहा भूले की हो, लेकिन अन्तिम कसौटी यह है : हमारी वैदेशिक नीति ने कुछ परिणाम दिखाए है या नही ? वह अपना काम पूरा कर रही है या नही ? मै समझता हूँ कि उसने अपना काम कुछ हद तक, बल्कि, बहुत हद तक वास्तव में एक आश्चर्यजनक रूप से पूरा किया है। इस अवसर पर मै इस सभा में अपने अनेक राजदूतो की और सचिवो की, जो विदेशो में है और संयुक्त राष्ट्रों में अपने प्रतिनिधि-मंडल की, उनके कार्यो के लिए प्रशंसा करना चाहूंगा। मुझे इस सभा को यह सूचना देने की आज्ञा दी जाय कि

संयुक्त राष्ट्रों की बैठकों में भारत की बहुत ऊँची प्रतिष्ठा है ।

हमारे तीन मुख्य दूतावास, जैसा कि यह सभा जानती है, लन्दन, वाशिंगटन और मास्को में हैं । अपेक्षाकृत छोटी छोटी बातों के विषय में आलोचनाएँ हुई हैं जैसे नियुक्तियों आदि के विषय में । लेकिन मैं इस सभा में बराबर वैदेशिक मंत्री की हैसियत से बोलते हुए यह कहना चाहूँगा कि मुझसे जो भी जिज्ञासा की जाय उसका मैं स्वागत करूँगा, और या तो मैं उसके सम्बन्ध में जांच करूँगा या जो भी सूचना मेरे पास होगी उसे इस सभा के किसी भी सदस्य को दूंगा । इतने बड़े विभाग में बहुत सी जांच करने लायक बातें लाज़िमी तौर पर होंगी । मेरा खयाल है कि हमारे लन्दन, वाशिंगटन और मास्को में स्थित प्रमुख दूतावासों ने बहुत ही अच्छा कार्य किया है । चीन में हमें बड़ी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, और हमारे दूतावास ने उनका बड़े प्रशंसनीय ढंग से सामना किया । पेरिस में, अनेक कारणों से, हमें निरन्तर दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा, लेकिन मुख्यतया इसलिए कि एक वर्ष तक हमारे ठहरने के लिये मुश्किल से कोई जगह मिल सकी । कोई उपयुक्त स्थान न होने के कारण हमारे प्रतिनिधियों को बड़े अनुपयुक्त निवासों में रहना पड़ा । सब कुछ लेकर, हम अपनी विदेशी सेवाओं का बहुत थोड़े समय में पर्याप्त सफलता के साथ निर्माण कर सके हैं ।

तब मुख्य प्रश्न, जिसके विषय में यह सभा चिन्तित रहती है, प्रवासी भारतीयों की स्थिति का है । इस प्रश्न को अब तक जिस प्रकाश में देखा जाता था, अब उससे भिन्न प्रकाश में देखना होगा । अब तक हमारा मुख्य प्रयास यह रहा है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक विभाग को प्रेरित करते रहें कि प्रवासी भारतीयों की दशा के सुधार में वह दिलचस्पी ले । हमें एक स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों से व्यवहार करना पड़ता है । स्वभावत, जो कुछ हम से हो सकता है हम करने की कोशिश करते हैं । मुझे विश्वास है कि प्रवासी भारतीयों की दशा सुधर रही है । लेकिन जो मुख्य बात घटी है वह यह है कि संसार की दृष्टि में प्रवासी भारतीयों का स्थान बहुत ऊँचा उठ गया है ।

संसार के मामलों में इस समय जिन समस्याओं का हमें सामना करना पड़ता है, उनका, जो संघर्ष चल रहे हैं, उनसे बहुत कुछ सम्बन्ध है । हमने बार-बार यह कहा है कि हमारी वैदेशिक नीति राष्ट्रों के बड़े गुटों—विरोधी गुटों—से अपने को अलग रखने की और सभी देशों से मैत्री बनाए रखने की है, और किसी प्रकार की फौजी या अन्य मित्रताओं के उलझाव से बचने की है, जो कि हमें किसी सम्भावित संघर्ष में खींच ले जायें । कुछ लोगों ने हमारी आलोचना की है और कहा है कि यह पर्याप्त रूप में अच्छी नीति नहीं है, और घनिष्ठतर सम्पर्क या मैत्री द्वारा जो लाभ हम उठा सकते थे उसे खो रहे हैं । उधर दूसरे लोगों ने दूसरे ही

प्रकार की आलोचना की है, और यह कहा है कि हम कहते कुछ हैं और गुप्त रीति से या और प्रकार से करते कुछ है। जब हेतुओं का आरोप किया जाय, तो बेशक कुछ जवाब देना कठिन हो जाता है, लेकिन तथ्य यह है कि हमने बड़ी कड़ाई से किसी प्रकार की वचनबद्धता में फँसने से अपने को बचाया है, और किसी शक्ति या शक्तियो के गुट के साथ फौजी समझौता करने से तो निश्चय ही अलग रहे है, और हम इस नीति पर दृढ़ रहना चाहते है, क्योकि हमें पूरा विश्वास है कि इस समय और भविष्य में भी यही एक सम्भावित नीति हमारे लिए हो सकती है। इसका यह अभिप्राय नही कि हम दूसरे देशों से निकट सम्पर्क स्थापित न करें।

इस सभा को याद होगा कि कुछ समय पहले मैंने कामनवेल्थ के साथ भारत के सम्भावित सम्बन्ध की चर्चा की थी और इस सभा को इस विषय मे मोटे तौर पर अपने दृष्टिकोण से परिचित किया था, और यह समझा था कि सभा उससे सहमत है। बाद मे इस प्रश्न पर राष्ट्रीय कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में विचार हुआ, और उसने भी इस सम्बन्ध में नीति की मोटी रूपरेखा निर्धारित की। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम इन आदेशों का कड़ाई से पालन करना चाहते हैं। बेशक हमें बदलती हुई परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ेगा और उनकी विभिन्न प्रकार से व्याख्या करनी होगी, लेकिन नीति की मोटी रूपरेखा निर्धारित हो चुकी है, जो इस प्रकार है :

(क) भारत स्वभावतः और अनिवार्य रूप से कुछ महीनो के भीतर एक स्वतंत्र गणराज्य हो जायगा ;

(ख) अपनी विदेशी, आन्तरिक या घरेलू नीति मे, अपनी राजनीति-सम्वन्धी नीति में या अपनी आर्थिक नीति में हम कोई भी ऐसी बात स्वीकार न करेंगे जिसका तात्पर्य किसी दूसरी शक्ति पर कुछ भी निर्भरता हो।

इन शर्तो के साथ, हम दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण ढंग से सम्पर्क स्थापित करने के लिए तैयार है। सयुक्त राष्ट्रों में आज हमारा ससार के बहुत से देशों से सम्बन्ध है। हम और चाहे जो कुछ करें, हमें यह देखना होगा कि हमारा कार्य सयुक्त राष्ट्रो से हमारी सबद्धता के विपरीत नही जाता। स्वतत्र राष्ट्रो के आपस के सहयोग के रूप मे ही हम कामनवेल्थ से अपने सम्पर्क के विषय में विचार कर सकते है। जैसा कि कुछ लोगो ने सुझाव दिया है, हो सकता है कि इस अथवा उस देश से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हों। मैत्री के साथ प्राय: फौजी या दूसरे प्रकार की वचनबद्धताएँ भी होती है और उनका अधिक बन्धन होता है। इसलिए साहचर्य के अन्य रूप, जो कि इस प्रकार बांधने वाले नही होते, लेकिन जो सुदृढ़ना और जहाँ आवश्यक हो सहयोग के हित मे राष्ट्रो को एक दूसरे के साथ लाने में सहायक होते है, बन्धन में डालने वाले रूपों की अपेक्षा कहीं अधिक वांछनीय हैं। इसका नतीजा क्या निकलेगा, यह मैं नही जानता।

ज्यों ही मुझे उसका आभास होगा, मैं इस सभा को बताऊँगा। लेकिन आज जो बात मैं इस सभा के सामने पेश कर रहा हूँ वह यह है कि इस विषय में हमारी नीति जयपुर कांग्रेस के प्रस्ताव के आधार पर कड़ाई से निश्चित की जायगी।

हाल ही में, भारत की प्रेरणा से, नई दिल्ली में, इंडोनीशिया के विषय में एक सम्मेलन हुआ था, और एशिया के बहुत-से देशों ने उसमें भाग लिया था। इसके अतिरिक्त मिस्र, इथोपिया, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड भी उसमें सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन ने संसार के सामने जोरदार ढंग से कुछ बातें रक्खीं। सम्मेलन के प्रस्तावों में एक यह था कि हमें निकटतर सम्पर्क के तरीकों की खोज करनी चाहिए। हम इस दिशा में जाँच कर रहे हैं और शायद महीने-दो-महीने में हम कुछ अधिक निश्चित नतीजों पर पहुँच सकें, जिन पर कि विचार किया जा सके। सम्भव है हमें सहयोग की संभावित दिशाओं पर विचार करने के लिए एक और सम्मेलन बुलाना पड़े। यह सहयोग स्वतन्त्र राष्ट्रों के बीच का ही सहयोग हो सकता है, जिसमें कोई भी किसी रूप में दूसरे से प्रतिज्ञाबद्ध न हो। हमने अभी यह निश्चय नहीं किया कि किस क्षेत्र में यह सहयोग होगा क्योंकि जैसा मैंने अभी कुछ पहले कहा, भारत एशिया के कई क्षेत्रों में दिलचस्पी रखता है। सब का एक वर्ग बनेगा या वे अलग रहेंगे, अभी मैं यह नहीं जानता। यह मिलजुल कर हमारे विचार करने और निश्चय करने की बात होगी। लेकिन हर हालत में दो बातों पर ध्यान रखना है। एक तो यह कि सहयोग का जो भी रूप हम निर्धारित करेंगे वह पूरे तौर पर संयुक्त राष्ट्रों के अधिकारपत्र की सीमा के भीतर होगा। दूसरे, उसमें प्रतिज्ञाबद्ध करने वाली शर्तें न होंगी। यह अधिकांश में ऐसे विषयों पर विचार और सहयोग के लिए स्थापित एक संगठन होगा जो कि स्वभावतः समान हितों से उद्भूत हों।

इसलिए, हमारी नीति यही बनी रहेगी कि हम न केवल शक्तियों की गुटबन्दी से अलग रहें, बल्कि मैत्रीपूर्ण सहयोग सम्भव बनाने की कोशिश करें। सौभाग्य की बात यह है कि हम अपनी स्वतंत्रता में इस प्रकार प्रवेश कर रहे हैं कि हमारी किसी भी देश से विरोध की पृष्ठभूमि नहीं है। हम सभी देशों के प्रति मैत्री भावना रखते हैं। पिछले २०० वर्षों में हमारा विरोध मुख्यतया उस शक्ति से रहा है जो यहाँ राज कर रही थी। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर वह विरोध अधिकांश में दूर हो गया है, यद्यपि कुछ लोगों के मन से वह अब भी नहीं हटा। इसलिए हम सारे संसार के समक्ष एक मैत्रीपूर्ण आधार लेकर आते हैं और कोई कारण नहीं कि हम किसी भी दल के प्रति अमैत्रीपूर्ण रुख रखकर अपने को असुविधा में डालें। मेरी धारणा है कि भारत को संसार के मामलों में एक महत्वपूर्ण भाग लेना है।

विविध विचार-धारायें जो कि आज ससार के सामने है और विविध 'वाद' जिनसे कि वार-वार सघर्ष उत्पन्न होने का भय रहता है, मैं समझता हूँ, ऐसे हो सकते है कि उन में वहुत कुछ अच्छाई हो, लेकिन अगर मै कहूँ तो वे सभी यूरोप की पृष्ठभूमि से आए है। अच्छा, तो यूरोप की पृष्ठभूमि ससार की पृष्ठभूमि से कुछ विल्कुल अलग की चीज़ नही है, और यूरोप की पृष्ठभूमि में वहुत कुछ ऐसा है जो कि भारत मे या दूसरे देशो मे मौजूद है। फिर भी यह सही है कि यूरोप की पृष्ठभूमि विल्कुल भारत की या संसार की पृष्ठभूमि नही है, और कोई कारण नही कि हम से कहा जाय कि इस अथवा उस विचार-धारा को हम पूर्णतया चुन ले।

भारत ऐसा देश है जिसमें एक महान जीवनी शक्ति है, जैसा कि इतिहास से प्रकट है। अकसर इसने अपनी सास्कृतिक छाप दूसरे देशो पर डाली है— हथियारो के वल पर नही, वल्कि अपनी जीवनी शक्ति, संस्कृति और सभ्यता के वल पर। कोई कारण नही कि हम अपने कार्य करने के ढंग को, और अपने विचार करने के ढग को केवल किसी ऐसी विचार-धारा के कारण छोड़ दें, जो कि यूरोप से उपजी हो। इसमें मुझे कोई सदेह नही कि हमें यूरोप और अमेरिका से वहुत-सी वातें सीखनी है, और मैं समझता हूँ कि हमे अपनी आँखे और कान पूरी तौर से खुले रखने चाहिए। हमारे मस्तिष्क में लचीलापन होना चाहिए और हमे ग्रहण-शील होना चाहिए। लेकिन इस मे भी मुझे सन्देह नही कि हमें अपने को, यदि मै गाधी जी के शब्दों का प्रयोग करूँ, अपने पैरो को किसी भी हवा मे उखड़ने से रोकना चाहिए।

इसलिए हमे इन समस्याओ को, चाहे वे घरेलू हो चाहे अन्तर्राष्ट्रीय, अपने ढग से देखना है। अगर हम, किसी तरह, निश्चित रूप से, किसी एक शक्ति-समूह के साथ मिल जाते है तो शायद हमें एक दृष्टि से कुछ लाभ हो। लेकिन इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नही कि वड़े दृष्टिकोण से, न केवल भारत की वल्कि संसार की शान्ति के दृष्टिकोण से, हानि ही होगी। क्योकि तव हम उस अपार सुविधा को खो वैठेंगे, जो हमें अपने प्रभाव को (जो प्रतिवर्ष वढ़ता ही रहेगा) संसार की शान्ति के लिये इस्तेमाल करने के लिये प्राप्त है। संसार के मामलो में हमारी रुचि क्यों है ? हम किसी देश पर अधिकार नही चाहते। हम किसी भी देश के घरेलू या अन्य मामलों में हस्त-क्षेप नही करना चाहते। ससार के मामलों में रुचि रखने का हमारा मुख्य ध्येय शान्ति है, यह देखना है कि जातिगत समानता स्वीकार की जाय और जो लोग अव भी पराधीन है वे स्वतंत्र हो जायें। इसके अलावा हम संसार के मामलो में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहते, और न हम यह चाहते है कि दूसरे हमारे मामलो

में दखल दें। लेकिन अगर फ़ौजी, राजनीतिक या आर्थिक किसी भी रूप में ऐसा दखल दिया जाता है, तो हम उसका विरोध करेंगे।

अतएव, इस मैत्री की भावना से ही हम संसार को देखते हैं। यह सच है कि ऐसा करने में अकसर हमारा आशय गलत रूप में समझा जायगा, क्योंकि सारे संसार में आवेश पैदा किया गया है, और कभी-कभी कोई देश समझता है कि अगर आप उसके साथ पूरी तौर पर कतार बांधकर नहीं खड़े हैं, तो आप उसके वैरी या विरोधी हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि लोग ऐसा समझते हैं; हम इसमें विवश हैं। दूसरो के मन में इस प्रकार का भय या संदेह होने के कारण हम छोटे-मोटे लाभो से वचित भी रह सकते हैं। लेकिन इस समय भी और देश इस बात का अनुभव करने लग गए हैं कि हम अपने स्वतंत्र रास्ते पर है, और किसी के साथ बँधे हुए नही है। हम जहाँ तक हो सकता है बिना आवेश के और निरपेक्षता के साथ समस्याओं पर उनके गुणों के अनुसार विचार करते हैं, न कि उस दृष्टिकोण से, जोकि अब बहुत साधारण हो रहा है, अर्थात् एक सम्भावित भावी युद्ध के दाव-पेच के दृष्टिकोण से। इसी दृष्टिकोण से आज समस्याओं पर प्रायः विचार किया जा रहा है।

मेरा काम दूसरे राष्ट्रो और उनकी नीतियों की आलोचना करना नही है। लेकिन मैं नही समझ सकता कि भारत इस तरह क्यो कार्य करे या ससार में जो दाँव-पेच चल रहा है, उसमें क्यों शरीक हो। हमें उससे अलग रहना है और साथ ही सभी देशो से निकटतम सम्बन्ध बनाना है। इतिहास और सयोग के कारण ऐसा है कि हमारे आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्ध और देशों की अपेक्षा कुछ देशो से बहुत अधिक है। और यह देखते हुए कि वे हमारे विकास में बाधक नही होते, हमारी उन्नति के मार्ग में नही आते, हम उन्हें बनाए रक्खेंगे; नही तो, हम उन्हें ऐसा रूप देंगे कि हम दुनिया के मामलों में बड़े महत्व का भाग ले सकें।

सब से बड़ा प्रश्न, जिसका कि आदमी को आज दुनिया में सामना करना है यह है कि "हम लोकव्यापी युद्ध को होने से कैसे बचायें ?" कुछ लोग ऐसा खयाल करते जान पड़ते हैं कि यह अनिवार्य है, और इसलिए वे इसकी तैयारी कर रहे हैं। वे न केवल फ़ौजी दृष्टि से तैयारी कर रहे हैं, बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी, और इस तरह युद्ध को निकटतर ला रहे हैं। निजी तौर पर मैं समझता हूँ कि यह बड़ी गलत और बड़ी खतरनाक बात है। निस्संदेह कोई भी देश, संभावित अनिश्चित घटना से बचाव की कुछ न कुछ तैयारी किए बिना नही रह सकता। हमें भी भारत में अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व के प्रति सभी सम्भावित खतरो से बचने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह ठीक है, लेकिन ऐसा सोचना कि लोकव्यापी युद्ध अनिवार्य है, एक भयावह चिन्तन है। मैं चाहूँगा कि यह सभा और यह देश ठीक-ठीक समझे कि लोकव्यापी युद्ध के क्या अर्थ है, उसके क्या नतीजे हो सकते

है। लोकव्यापी युद्ध मे कौन जीतता है, इससे कुछ भी अन्तर नही आता, क्योंकि उससे इतनी वडी वरवादी होगी कि एक पीढ़ी या इससे भी अधिक समय तक तरक्की या मानवी उन्नति के लिये हम जिन चीजो के भी पक्ष मे है, वे समाप्त हो चुकी होगी। इस वात की कल्पना वड़ी भयानक है और इस वरवादी से वचने के लिए जो कुछ किया जा सकता है, करना चाहिए।

मै समझता हूँ कि भारत युद्ध को टालने में एक वड़ा और संभवतः सफल भाग ले सकता है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि भारत किसी भी शक्ति-समूह की कतार मे न खड़ा हो। ये देश विविध कारणो से युद्ध की सम्भावना से आतंकित है और युद्ध की तैयारी मे लगे है। हमारी वैदेशिक नीति का यह मुख्य दृष्टिकोण है, और यह कहने में मुझे प्रसन्नता है और मेरा विश्वास है कि इसे अधिकाधिक ठीक रूप मे पहचाना जा रहा है।

इस समय सभी देशो से हमारी मैत्री है। अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से मै समझता हूँ हमारे सम्वन्ध दिन-व-दिन सुधरते जा रहे है। जैसी हालत कुछ महीने पहले थी उससे अव वहुत अच्छी है। मै आशा करता हूँ कि इसमें और भी सुधार होगा। अफगानिस्तान और नेपाल के साथ हमारे सम्वन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण है। एशिया में और यूरोप मे अन्य देशो के साथ हमारे सम्वन्ध निकटतर होते जा रहे है, और हमारे व्यापार का विस्तार हो रहा है।

मै समझता हूँ कि संयुक्त राष्ट्रो में तथा दूसरी जगह इस स्थिति का हमे इस रूप में उपयोग करना चाहिए कि शान्ति का ध्येय पूरा हो और यह संभव है कि कई ऐसे देश, जो कि युद्ध की सम्भावना से प्रसन्न नही है, भारत के रुख का समर्थन करे। हमने संयुक्त राष्ट्रो के विचाराधीन प्रश्नो को अलग अलग करके व्यक्तिगत प्रश्नो के रूप में लिया है। उदाहरण के लिए, कोरिया के विषय में, पैलेस्टाइन के विषय मे, और कुछ और मामलो में, हमने लोगो को अप्रसन्न किया है, क्योंकि इन मे से प्रत्येक प्रश्न को हमने स्वतंत्र प्रश्न के रूप में लिया और उन पर उनके गुणो के अनुसार अपनी सम्मति दी। यह सही है, कि इन गुणो को अन्य विविध संभावित परिणामो से अलग नही किया जा सकता। मै समझता हूँ कि लोगों ने कई वार यह अनुभव कर लिया है कि भारत ने जो सलाह दी और जो नही स्वीकार की गई, वह सही सलाह थी, और अगर वह स्वीकार कर ली जाती तो दिक्कते कम होतीं। इस प्रश्न के कई पहलू है, जिन पर मै वोल सकता था, लेकिन मैंने अभी ही इस सभा का वहुत समय ले लिया है।

इस सभा से मै अनुरोध करूँगा कि वह इस मामले को उस अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से देखे, जिसे कि मैंने उसके सामने उपस्थित किया है, अर्थात् मानवीय क्रिया-कलाप की आधुनिक गति विधि में भारत और एशिया के प्रादुर्भाव की दृष्टि से, और इस दृष्टि

से कि भारत की अपनी संभावित शक्ति महान है और जन-संख्या के लिहाज से आज वह सब से बड़ी राजनीतिक इकाई है, और साधनो के लिहाज से भी ऐसा ही होने जा रहा है, भारत का अनिवार्य रूप से एक बड़े महत्व का भाग होगा ; यदि हमें यह भाग लेना है तो हमें इस प्रश्न को इस बड़े दृष्टिकोण से देखना होगा, न कि उन छोटी कठिनाइयो और समस्याओ के दृष्टिकोण से जो हमारे सामने आवें, और यह भाग मूलतया ऐसा होगा, जिससे कि संसार में शान्ति और स्वतंत्रता की वृद्धि हो और जातिगत विषमताएँ दूर हो ।

क्या इस सम्बन्ध मे मैं यह कहूँ कि जो जातिगत उपद्रव दक्षिण अफ्रीका में डर्बन मे हुए है उनका हाल जानकर हमें गहरा दुख हुआ है ? इसके बारे में मैं अधिक नही कहना चाहता, सिवाय इसके कि अगर जातिगत भेदो की भावना को कही भी उकसाया जायगा तो उससे ऐसे ही उपद्रव होगे । लेकिन हमारे लिए गहरे दुख का कारण यह है कि भारतीय और अफ्रीकी ऐसे उपद्रव में शरीक हो। आज नहीं, वर्षो से अफ्रीका में अपने प्रतिनिधियो से हमारी यह निश्चित हिदायत रही है कि हम अफ्रीकियो की हानि करके भारतीयो के पक्ष में किसी विशेष हित को नहीं चाहते । हमने उन को अफ्रीकियो से सहयोग की आवश्यकता को स्पष्ट बताया है और इन आदेशो को बार-बार दुहराया है । मै आशा करता हूँ कि डर्बन के खेदपूर्ण अनुभव के बाद भारतीय और अफ्रीकी फिर आपस में मिलेंगे । वास्तव मे, पूर्वी अफ्रीका तथा और जगहो में भारतीयो और अफ्रीकियो मे पर्याप्त मात्रा मे सहयोग के प्रमाण मिलते है ।

मै आशा करता हूँ कि उस नीति की साधारण रूप-रेखा का, जिसका कि मैंने सुझाव दिया है, इस सभा और इस देश के द्वारा समर्थन होगा, और वह हमें निर्देश देगी कि भारत लोकव्यापी शान्ति के पक्ष में इस रूप में भाग लेना चाहता है। और इस तरह लोकव्यापी युद्ध के महान सकट के निवारण में सहायता देना चाहता है ।

हमारी वैदेशिक नीति

सभापति महोदय, और मित्रो, सबसे पहले, क्या मैं आपको इस विचार पर बधाई दूँ कि इस भोज को वार्षिक भोज सम्मेलन कहा गया है ? मैं समझता हूँ कि इस तरह के संगठन के लिए यह एक अच्छा विचार है कि समय-समय पर मिला जाय, न केवल मिलजुल कर भोज का आनन्द लेने के लिए, बल्कि आप चाहें तो उन विषयों पर बातचीत करने के लिए भी जो इस संगठन से सम्बन्धित हों। इस भोज के विषय में मेरा एक सुझाव है, वह यह कि आगे के भोजों में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे इतने चटपटे न हों। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि इस भोज में मिर्चों का जो इस्तेमाल हुआ है, उसका मैं अपने को शिकार अनुभव कर रहा हूँ।

मैं समझता हूँ कि पहला विषय जो आपके मन में होगा, वह अवश्य यह है कि हमारे दो अत्यन्त प्रतिष्ठित सदस्य, जिन्होंने इस संगठन का निर्माण किया था, पिछले कुछ महीनों के भीतर ही दिवगत हुए, हमारे सभापति डा० तेज बहादुर सप्रू और श्रीमती सरोजिनी नायडू। हमारे आज के सभापति ने एशियायी सम्मेलन की चर्चा की है, जो दो वर्ष पहले हुआ था और उसके साथ मेरा नाम जोड़ा है। सच यह है कि जैसा आप लोग जानते हैं, श्रीमती नायडू न केवल सम्मेलन की अध्यक्षा थीं; बल्कि उन्होंने बीमार रहते हुए भी, उसके लिए अथक परिश्रम किया, और उसे इतना सफल बनाया। एक प्रस्ताव है कि हमें यहाँ दिल्ली में डा० सप्रू का एक स्मारक बनाना चाहिए और इस स्मारक को एक इमारत का रूप देना चाहिए, जिसमें एक हाल हो और इंडियन कौंसिल आफ़ वर्ल्ड अफेअर्स के लिए कुछ कमरे हों। मैं समझता हूँ कि यह बहुत अच्छा प्रस्ताव है। और यह डा० सप्रू का एक उपयुक्त स्मारक होगा और एक ऐसी चीज़ भी होगी जिसकी दिल्ली को बहुत जरूरत है। मैं उम्मीद करता हूँ कि इस स्मारक के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करने में कोई कठिनाई न होगी। आप सब लोग जो इतनी संख्या में यहाँ उपस्थित हैं, यदि थोड़ी सी दिलचस्पी लें तो यह काम बहुत जल्द पूरा हो सकता है।

अब अगर्चे मैं इस भोज में आपसे मिलने के अवसर का स्वागत करता हूँ, मैं कह नहीं सकता कि मैं या और वैदेशिक मंत्री जो मेरे बाद आवेंगे, वे सदा

इंडियन कौंसिल आफ़ वर्ल्ड अफेअर्स, कांस्टिट्यूशन क्लब, नई दिल्ली के तत्वावधान में २२ मार्च, १९४९ को दिया गया भाषण।

वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में बोलने के विचार का भी स्वागत करेंगे। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि ससार के लिए यह एक अच्छी बात हो यदि सभी वैदेशिक मंत्री कुछ समय के लिए मौन हो जायँ। मैं समझता हूँ कि विदेशी मामलो में, उन व्याख्यानों से जो वैदेशिक मंत्री खुद या अपने प्रतिनिधियो द्वारा अपनी संसदों में या संयुक्त राष्ट्रो के सामने देते है, दिक्कतें और बढ जाती है। वे खुली कूटनीति की चर्चा करते है, और मैं खयाल करता हूँ कि सिद्धान्त मे हम में से अधिकतर उसमें विश्वास करते है। निश्चय ही, मैंने उसमें बहुत समय से विश्वास किया है, और मैं नही कह सकता कि मैं बिल्कुल उस विश्वास को खो बैठा हूँ। खुली कूटनीति काफ़ी अच्छी होती है, लेकिन जब वह खुली कूटनीति बहुत खुले संघर्षो और आरोपो द्वारा एक दूसरे के प्रति बड़ी कड़ी भाषा के प्रयोग का रूप ले लेती है, मैं अनुमान करता हूँ कि तब उस का परिणाम शान्ति को अग्रसर करना नही होता। यह एक प्रतियोगिता बन जाती है—एक दूसरे के प्रति हिंसात्मक भाषा के व्यवहार की खुली प्रतियोगिता। विदेशी नीति के सम्बन्ध में बात करना तो बहुत अच्छा है, लेकिन आप यह मानेंगे कि कोई भी व्यक्ति, जिस पर देश की विदेशी नीति का भार हो, वास्तव में उसके बारे मे बहुत कुछ कह नही सकता। वह उसके बारे में कुछ साधारण बातें बता सकता है; अवसर पड़े तो कभी-कभी वह उसके बारे मे बहुत निश्चित बातें भी बता सकता है, लेकिन उससे संबंधित बहुत-सी बातें है, जिनके विषय मे यह समझा जाता है कि वे अत्यन्त गोपनीय फाइलो मे है। बावजूद इसके कि वे अत्यधिक रूप से गोपनीय नही होती, फिर भी उनके सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप से बोलना उचित नही होता।

अब, मेरा अनुमान है कि भूतकाल में वैदेशिक नीति एक देश के उसके निकट पड़ोसी देशों से सम्बन्ध के विषय में हुआ करती थी—चाहे वह मित्र हो या इतर। जैसा कि हमारे सभापति जी ने आपको स्मरण दिलाया है, अब संसार के सभी देश हमारे पड़ोसी है, इसलिए केवल कुछ आस-पास के देशों तक हम अपनी वैदेशिक नीति को सम्बन्धित नही रख सकते, बल्कि हमें करीब-करीब ससार के सभी देशो का विचार करना पड़ता है, और सघर्ष, व्यापार, आर्थिक दिलचस्पी, आदि के सभी सम्भावित क्षेत्रों को ध्यान में रखना पड़ता है। यह अब समझ लिया गया है कि यदि बड़े पैमाने पर संसार में कही कोई सघर्ष होता है, तो सारे संसार में उसके फैलने की संभावना है, अर्थात् युद्ध अब अविभाज्य हो गया है, और, इसीलिए शान्ति भी अविभाज्य है। इसलिए हमारी वैदेशिक नीति अपने को निकट के देशों तक नही सीमित रख सकती। फिर भी निकट के देश आपस में एक दूसरे में खास दिलचस्पी रखते हैं, और भारत को अनिवार्य रूप से, स्थल और जल मार्गो से अपने से निकटतम देशों से सम्बन्ध के विषय में विचार करना होगा। ये देश कौन से है? बाईं तरफ से चलें तो पाकिस्तान है; मैं अफगानिस्तान को भी शरीक कर लूँगा अगर्चे वह भारत

की सरहदों को स्पर्श नही करता; तिब्बत और चीन, नेपाल, बर्मा, मलाया, इंडोनीशिया और लंका। जिस रूप में पाकिस्तान का निर्माण हुआ है और भारत का विभाजन हुआ है, उससे स्थिति बड़ी विचित्र रही है। न केवल वे सब उथल-पुथल हुए हैं, जिनसे आप सब परिचित हैं, बल्कि उससे भी गहरी बात हुई है, और वह है इन घटनाओं के कारण भारत और पाकिस्तान के लोगों के मनों में असंतुलन हो जाना। इस चीज़ से पेश पाना बड़ा कठिन होता है, यह मनोवैज्ञानिक चीज़ है और ऊपरी ढंग से इसे नहीं निबटाया जा सकता। डेढ़ साल या अधिक गुज़र गए है, और इसमें संदेह नहीं कि हमारे सम्बन्ध सुधरे हैं और सुधर रहे हैं। मेरे मन में इस विषय में भी बिल्कुल संदेह नहीं कि भारत और पाकिस्तान के बीच कभी न कभी भविष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध—बहुत घनिष्ठ संबंध होना अनिवार्य है। मैं कह नहीं सकता कि ऐसा कब होगा, लेकिन जो हमारी स्थिति है और जैसा हमारा इतिहास रहा है, उसे देखते हुए हम उदासीन पड़ोसियों के रूप में नहीं रह सकते। हम एक दूसरे के कुछ विरोधी हो सकते है, या बड़े मित्र हो सकते हैं। अन्त में हम वास्तव में बड़े मित्र ही रह सकते हैं, बीच में चाहे जितने काल तक विरोध रहे, क्योंकि हमारे हित आपस मे संबद्ध हैं। जो विभाजन हुआ है, वह एक आश्चर्यजनक बात है, और अगर्चे इसके बारे में हम बहुत कुछ जानते हैं, क्योंकि हम इस उपद्रव के ज़माने से गुज़रे है, फिर भी जिन-जिन चीज़ों मे इससे उथल-पुथल हुआ है, उनकी सूची बनाना मनोरंजक है। हमारे सब आने-जाने के मार्ग और संवाद के साधन टूट गए। तार, टेलीफोन, डाक, रेलपथ, वस्तुत. सभी चीज़े अस्त व्यस्त और विच्छिन्न हो गई। हमारी राजकीय सेवायें विच्छिन्न हो गईं। हमारी सेना के टुकड़े हो गए। हमारी आबपाशी की व्यवस्था टूट गई, और कितनी ही बातें हुईं। हम अगर गिनने लगें तो एक लम्बी सूची तैयार हो जायगी। लेकिन सब से ऊपर जो चीज़ टूटी और जो बड़ी मार्मिक थी वह था भारत का शरीर। इसके भीषण परिणाम हुए, जो केवल वे ही नहीं थे, जिन्हे आपने देखा, बल्कि वे भी थे जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते थे, अर्थात् करोड़ो मानवों के मन और आत्मा पर होनेवाली प्रतिक्रिया। इन के परिणाम स्वरूप हमने अत्यधिक संख्या में देशान्तर गमन देखा, लेकिन जो उसमे गहरी बात थी वह थी वह चोट और क्षति जो भारत की आत्मा को पहुँची। हम उसमे संभल रहे हैं, जैसे कि लोग किसी भी प्रकार की क्षति से सँभलते है, और फिर हम पाकिस्तान से निकटतर सम्बन्ध बढ़ा रहे हैं। अब भी बहुत-सी समस्याएं हल होने को हैं, और मैं अनुमान करता हूँ कि वे धीरे-धीरे हल हो जायेंगी।

जहाँ तक और देशों की बात है, उनसे हमारे सम्बन्ध खूब मैत्रीपूर्ण है। उदाहरण के लिए अफगानिस्तान को ले लीजिए। उनसे हमारे बड़े मैत्रीपूर्ण संबंध हैं, और तिब्बत, नेपाल तथा सभी पड़ोसी देशों से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं। वास्तव

में, मेरा यह कहना उचित होगा कि इस विस्तृत ससार मे कोई देश ऐसा नही जिस से हमारे सम्वन्ध वैर या विरोध के कहे जा सके। यह स्वाभाविक है कि हम कुछ के प्रति अधिक आकर्षित होंगे या हमारे व्यापार और आर्थिक हित हमे कुछ देशों से अधिक और कुछ से कम संबद्ध करें, लेकिन इसमें कोई संदेह नही कि हमारी सब से मैत्री है। मैं समझता हूँ कि यह एक अच्छी बात है और हमे इसे एक सफलता समझनी चाहिए।

अगर एक ओर हमारे मन मे पड़ोसी देशो का खयाल सब से पहले आता है, तो दूसरी ओर एशिया के और देश है, उनसे भी हमारा काफी घनिष्ट संबंध है। एशिया में भारत की एक अनोखी स्थिति है, और उसके इतिहास पर उसकी भौगोलिक स्थिति का तथा और बातो का बड़ा असर पड़ा है। एशिया की किसी भी समस्या को उठाइए, किसी-न-किसी रूप में भारत चित्र मे आ जाता है। चाहे आप चीन या मध्यपूर्व या दक्षिण पूर्वी एशिया का विचार करे, भारत चित्र मे आ ही जाता है। इसकी ऐसी स्थिति है कि उसके अतीत इतिहास, परम्पराओं आदि के कारण, एशिया के किसी देश या देशो के समुदाय की किसी भी बड़ी समस्या का विचार करते हुए, भारत का विचार करना पड़ेगा। चाहे प्रतिरक्षा का प्रश्न हो, चाहे व्यापार, उद्योग या आर्थिक नीति का, भारत की उपेक्षा नही की जा सकती। उसकी उपेक्षा असम्भव है, क्योंकि जैसा कि मैंने आप से कहा। उसकी भौगोलिक स्थिति एक विवश करनेवाला कारण बनती है। वास्तविक या प्रच्छन्न शक्ति तथा साधनो के कारण भी, उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। भारत की वास्तविक शक्ति चाहे जो कुछ भी हो प्रच्छन्न रूप से भारत एक बड़ा शक्तिशाली देश है, और उसमे वे गुण तथा वे बातें है जो एक देश को, शक्तिशाली, स्वस्थ और समृद्ध बनाने में बड़ी सहायक होती है। उन तत्वों में वह समृद्ध है, और मैं समझता हूँ कि उसके लोगो में उन तत्वों का उपयोग करने की योग्यता है। स्वभावत: हमारी कमजोरियाँ भी है और कठिनाइयाँ भी मौजूद है, लेकिन यदि आप इस समस्या को एक दृष्टि-परम्परा में देखें, तो किसी के मन में कोई सन्देह नही हो सकता कि भारत की संभावित सम्पत्ति वास्तविक हो जायगी, और वह भी अदूर भविष्य मे।

इसलिए हमारे अपने मत जो भी हों, अपनी व्यावहारिक स्थिति के कारण और अन्य कारणों से जिन्हें मैं ने बताया है, भारत का एशिया में—एशिया के सभी—प्रदेशों में—चाहे पश्चिमी एशिया हो, चाहे सुदूर पूर्व और चाहे दक्षिण पूर्वी एशिया एक महत्त्वपूर्ण भाग होना अनिवार्य है। बेशक, ऐसा है कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी हमारे इन सभी प्रदेशो से गहरे लगाव है, चाहे वह पश्चिमी एशिया हो, चाहे सुदूर पूर्व और चाहे दक्षिण पूर्वी एशिया, और ये लगाव बहुत पुराने हैं, और निरन्तर बने रहे है।

मोटे ढंग से कहा जाय जब भारत में ब्रिटिश शक्ति आई और यहाँ ब्रिटिश आधिपत्य कायम हुआ तब एक बड़ी अद्भुत बात हुई। यही कारण था कि हम एशिया में अपने पड़ोसी देशो से विलग हो गए। अब हमारे सम्पर्क समुद्र पार इङ्गलिस्तान से हो गए, और हम कुछ हद तक इस आधिपत्य के विरुद्ध लड़ते रहे और इन सम्पर्कों पर आपत्ति करते रहे; फिर भी संपर्क तो थे ही, और हम दुनिया को अधिकाधिक उस खिड़की से—ब्रिटिश खिड़की से—देखते रहे। भारत से एशियायी देशों में बहुत कम लोग गए, और वहाँ से यहाँ बहुत कम लोग आए। और जिन थोड़े से एशियायियो से हम मिले भी उन से एशिया में नही, बल्कि यूरोप में मिले। अब हाल में यह क्रम पलट गया है या विविध कारणों से पलट रहा है। शुरू में, मेरा खयाल है कि हवाई यात्रा एक कारण थी, क्योकि अगर यूरोप गए तो हम बगदाद, तेहरान और अन्य जगहो से गुजरते थे। हवाई यात्रा एकमात्र कारण नही थी, राजनैतिक कारण भी थे, जो अब इन परिवर्तनो को ला रहे है। विशेष रूप से, जब से भारत स्वतंत्र और आज़ाद देश बना तब से, आप कई बातें होती देखते है। जैसा कि आप जानते है दो वर्ष हुए एशियायी सम्मेलन बुलाया गया था, और उसमें समान हित की विविध बातो पर परामर्श हुआ था। मै आप को बताऊँगा कि उस सम्मेलन के सम्बन्ध में क्या हुआ। जब कि एशियायी सम्मेलन करने का प्रस्ताव किया गया—यह प्रस्ताव परीक्षात्मक रूप से उपस्थित किया गया था—हम ठीक-ठीक नहीं जानते थे कि इस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। कई देशो को आमंत्रण भेजे गए, और मै आप से बताऊँ कि हमें प्रतिक्रिया देख कर आश्चर्य हुआ। इसके पक्ष में प्रतिक्रिया बहुत अधिक हुई, और सम्मेलन जैसा कि आप अच्छी तरह जानते है, बहुत ही सफल रहा।

इसलिए आप देखते है कि एशिया के मस्तिष्क में एक क्रिया चल रही है, भारत ही में नही, बल्कि सारे एशिया में। किसी वस्तु का अंकुर निकल रहा है और यदि उसे अवसर मिला, तो वह बाहर आ जायगा। हमें विश्वास है कि एशियायी देशों में मिलजुल कर काम करने की आपस में परामर्श करने की और एक दूसरे पर भरोसा रखने की उत्कट इच्छा है। संभवतः अतीत में यूरोप द्वारा किए गए व्यवहार पर अप्रसन्नता के कारण ऐसा हो। निश्चय ही यह इस धारणा के कारण भी है कि एशियायी देशों को अब भी यूरोपीय तथा अन्य देशो द्वारा स्वार्थ साधन का क्षेत्र न बनाया जाय। लेकिन मै समझता हूँ कि बहुत कुछ अपने पुराने सम्पर्कों की स्मृति जागृत होने के कारण भी है, क्योकि हमारे साहित्य में उसके वर्णन भरे पड़े है। हम इसकी बहुत अधिक आशा रखते है कि आगे की वृद्धि के लिए हम अपने इन सम्पर्कों को और अधिक विकसित कर सकेंगे। इसी से जब कभी कोई ऐसा कदम उठाया जाता है, जैसे कि दिल्ली में हाल में होने वाला इंडोनीशिया सम्बन्धी सम्मेलन था, तो तत्काल उसका अच्छा स्वागत होता है। यह सम्मेलन बहुत थोड़ी सूचना से बुलाया

गया था। लेकिन इसमें ये सभी लोग शरीक हुए। इसने उन्हे अवश्य ही इसलिए आकर्षित किया कि उनकी इंडोनीशिया में दिलचस्पी थी, लेकिन मेरा खयाल है कि इससे भी अधिक यह इच्छा थी कि एक साथ मिल कर विचार विनिमय किया जाय और आपस में सहयोग किया जाय। भारत की ओर इन सभी देशो की दृष्टि थी और यह भावना थी कि भारत सम्भवत. एशियायी देशों को एक साथ लाने में महत्त्वपूर्ण भाग ले।

कुछ लोग किंचित् असयत ढग से (और अगर मैं कहूँ तो जरा बेवकूफ़ी से) भारत के, इसके नेता या उसके नेता या एशिया के नेता बनने की बात चलाते हैं। मुझे यह बात बिल्कुल अच्छी नही लगती। यह नेतृत्व का मामला एक बुरा दृष्टिकोण है। लेकिन यह सच है कि विविध कारणों से जिन्हे कि मैंने बताया है, भारत के ऊपर एक विशेष जिम्मेदारी आती है। भारत इसे अनुभव करता है और दूसरे देश भी इसे अनुभव करते हैं। यह ज़िम्मेदारी ज़रूरी तौर पर नेतृत्व की नही है, बल्कि कभी-कभी बात को शुरू करने की और दूसरो को सहयोग के कार्य में सहायता पहुँचाने की है।

भूगोल के अतिरिक्त और बहुत सी बातें हैं, जो एशिया के देशों को आपस में बाँधती हैं। एक बात यह है कि पिछले १५० से २०० वर्षों से एशिया पर यूरोप का—कुछ यूरोपीय देशो का आधिपत्य रहा है। वह यहाँ आए, इस महाद्वीप में उन्होंने स्वार्थ साधन किया, इस पर आधिपत्य किया। इसके कई परिणाम हुए। आज हम इधर २०० वर्षो के यूरोपीय आधिपत्य के इतिहास से कुछ अभिभूत हैं। लेकिन अगर हम इतिहास के लम्बे क्रम को देखे, और कई सौ वर्ष पहले को देखे, तो हमें ज्यादा सच्ची दृष्टि परम्परा प्राप्त होती है और उस दृष्टि परम्परा मे चाहे आप एशिया को देखें, चाहे भारत को, विदेशी आधिपत्य का काल सीमित दिखाई देता है। और अब, जब कि अधिकतर एशियायी देशों पर विदेशी आधिपत्य समाप्त हो चुका है, और निश्चय ही पूरी तरह समाप्त होगा, तो अपने को समझने की क्रिया चल रही है, और हर एक एशियायी देश आधुनिक आदर्शों के अनुसार उन्नति की विविध सीढ़ियों पर है; अपने को देखने की, अपने को पहचानने की, कुछ भरोसा और आत्म-विश्वास जागृत होने की। हो सकता है, कुछ देशो मे अपनी आर्थिक तथा और कमज़ोरियों के कारण भय की क्रिया चल रही है—लेकिन, मोटे तौर पर यह अपने को पहचानने की क्रिया है। यह भी एक दूसरे को आपस में बाँधने वाला एक निश्चित कारण है।

इसके बाद, फिर एशिया की समस्याएँ जो कि मूलतया जितनी प्राथमिक मानवी आवश्यकताएँ है, उन्हे पूरा करने की है। ये समस्याएँ उनसे भिन्न है, जिन्हे कि हम

शक्तियों की राजनीति कहेंगे। बेशक, हर एक देश का, शक्ति-राजनीति से कुछ सम्बन्ध है। लेकिन एशिया के चाहे जिस देश को हम लें, उनकी एक समस्या है, वह है अपनी स्वतंत्रता की रक्षा। उसे यह डर है कि कोई उनकी स्वतंत्रता का अपहरण न कर ले। मूल समस्या अर्थात् प्राथमिक आवश्यकताओ—भोजन, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि—के अतिरिक्त यह समस्या भी बराबर मौजूद है। ये सभी समस्याएँ निश्चय ही सारे संसार की समस्याएँ है, लेकिन बाकी दुनिया का अधिकतर भाग अपने रहन-सहन के स्तर में एशियायी देशो की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गया है। बाकी दुनिया के देशो के लिए उन्नति की ओर गुंजाइश अवश्य है, पर पिछले युद्ध से उन्हे बहुत नुकसान पहुँचा है। उन्हे पिछले युद्ध से हुई क्षतियो को पूरा करना पड़ा है। दुर्भाग्यवश, पिछले १०० वर्षो में, यूरोप का दृष्टि-कोण, देशो द्वारा बहुत अधिकार प्राप्त कर लेने का, उसे खोने के भय का, आपस में एक दूसरे से डरने का या अपने अधिकार को विस्तृत करने का रहा है। इस लिए आज का यूरोप आज के एशिया की अपेक्षा शक्ति-राजनीति में कही अधिक फंसा हुआ है। मैं भविष्य के बारे में नही जानता। उनके दृष्टिकोणो में इस समय मौलिक भेद है। और अब पिछले युद्ध के बाद से, यूरोप अनेक गम्भीर समस्याओ और संघर्षो में बंध गया है। अगर मैं कहूँ तो यूरोप के पिछले कर्म उसका पीछा कर रहे हैं। हम सहज में अपने पिछले कर्मो के शाप से नही बच सकते; यह हमारे देश का अनेक तरीको से पीछा कर रहा है। लेकिन प्रस्तुत समस्याओ के विषय में यूरोपीय और एशियायी दृष्टिकोण में मेरी समझ में यह बुनियादी अन्तर है। सारी दुनिया शान्ति चाहती है; इसमें मुझे बिल्कुल संदेह नही; और अगर कुछ व्यक्ति हैं जो युद्ध चाहते हैं तो उनकी संख्या अधिक नही हो सकती, और उनके दिमाग भी पूरी तरह सतुलित न होगे। लेकिन होता यह है कि जो लोग युद्ध चाहते हैं उन्हें एक वहम, एक डर सताता रहता है, और इसलिए वह चाहे या न चाहे वह युद्ध की तरफ खिचते रहते हैं। यह बड़ी शोचनीय बात है कि डर की यह मनोवृत्ति हम आज करीब-करीब सारी दुनिया में पा रहे हैं। यूरोप में इस समय वह छाई हुई है। यूरोप ही क्यो, दुनिया के और हिस्सो में भी। और, बेशक, एशिया में भी यह है, बहुत कुछ है, लेकिन यूरोप के मुकाबले में मेरी समझ में, बहुत कम है।

•

इसी बात के मैं दूसरी तरह से कहूँ—वे देश जो समृद्ध रहे है, वे जो कुछ उनके पास है, उसके खोने की संभावना से बहुत भयभीत हैं, जब कि वे देश जिनके पास खाने के लिए बहुत नही है, उन पर यह भय उतना नही छाया है। जो भी हो, इन विभिन्न समस्याओ के प्रति यह विभिन्न मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

अब, संयुक्त राष्ट्र को लीजिए। संयुक्त राष्ट्र संगठन के भीतर संसार के

अधिकतर राष्ट्र हैं, लेकिन यह सही है कि उस में यूरोप और अमरीका के कुछ बड़े राष्ट्रों का प्राधान्य है, नतीजा यह होता है कि जिन मुख्य समस्याओं पर वहाँ विचार होता है, वे यूरोप और अमरीका की समस्याएँ हैं। स्वभावतया हमारी उन समस्याओ में दिलचस्पी है, क्योंकि उन का हम पर भी असर पड़ता है; और अगर युद्ध हो तो जाहिर है हम पर भी उसका असर पड़ेगा। लेकिन उन समस्याओं पर हम सम्भवतः उतने उत्तेजित नही हो सकते जितना कि यूरोप और अमरीका के लोग होते है। उदाहरण के लिए, इंडोनीशिया की समस्या, बहुत-सी यूरोपीय समस्याओं के मुकाबले में ज्यादा महत्त्व की है। चाहे आप कह लें कि इस का कारण भूगोल है। जो भी कारण है, वास्तविक कारण अन्त में केवल भूगोल नही है, बल्कि हमारे मनों में पैठी हुई एक भावना है कि यदि इंडोनीशिया में किसी प्रकार का औपनिवेशिक आधिपत्य जारी रहा, अगर इसे जारी रहने दिया गया, तो यह सारे एशिया के लिए एक खतरे की बात होगी, यह भारत में हमारे लिए भी एक खतरे की बात होगी, और दूसरे देशों के लिए भी। इसके अलावा, यदि इसे वहाँ जारी रहने दिया गया–यह जाहिर है कि ऐसा बड़ी शक्तियों में से कुछ की निष्क्रिय या सक्रिय रजामंदी से ही हो सकता है—तो परिणाम यह होगा वे बड़ी शक्तियाँ, जो इसे स्वीकार करेंगी, एशिया की दृष्टि में स्वयं उस अपराध में हिस्सेदार मालूम पड़ेंगी। यह एक खास बात याद रखने की है कि हमारे लिए यह राजनैतिक शतरंज का खेल मात्र नही है; इंडोनीशिया की स्वतंत्रता से अलग, यह सारे आस्ट्रेलिया, एशिया और शायद अमरीका की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या है। इस दृष्टिकोण से यूरोप और अमरीका की, एशिया के निगाह में परीक्षा हो रही है; उसी तरह, जिस तरह कि यूरोप और अमरीका की निगाह में हमारी हो रही है।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। अब, अगर मैं आपसे बिल्कुल स्पष्ट रूप में कहूँ, तो मुझे संदेह नही है कि इंडोनीशिया में जो हो रहा है, उससे यूरोप और अमरीका के देश स्वयं बहुत घबराए हुए और परेशान है। वह इंडोनीशिया की सहायता करना चाहते है। मैं समझता हूँ वह इस बात का अनुभव करते हैं कि इंडोनीशिया की स्वतंत्रता न केवल स्वतः एक वांछनीय चीज़ है, बल्कि एक बड़ी व्यवस्था के लिए भी, जिसका नक्शा उनके सामने है, यह वांछनीय है, और अगर किसी सयोग से इंडोनीशिया में किसी प्रकार का साम्राज्यवादी आधिपत्य सफल होता है तो भविष्य के लिए उनके सामने जो बड़ी योजनाए है, वे अव्यवस्थित होती हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि एशियायी राष्ट्रो पर आम तौर से बड़ा असर पड़ेगा और इंडोनीशिया में जो कुछ होता है, उसका हमारे कार्यो पर प्रभाव पड़ेगा। इसलिए, मैंने सुना है कि वे इंडोनीशिया की समस्या को सन्तोषजनक ढग से हल करने के लिए और इंडोनीशिया में स्वतंत्रता और आज़ादी की स्थापना के लिए बहुत चिन्तित है। यह सच है, लेकिन फिर, जब आप भूल जाते है या कुछ निश्चित सिद्धान्तों का

पालन नहीं करते तो एक कठिनाई उपस्थित होती है। इंडोनीशिया में जो कुछ भी होता है, उसका प्रभाव एक तरफ़ तो इंडोनीशिया पर और दूसरी तरफ़ नेदरलैण्ड की सरकार पर पड़ता है। अब एक बिल्कुल दूसरे ही प्रसंग में जैसा आप जानते है पश्चिमी यूरोप और अमेरीका की कुछ शक्तियों ने, जिन में कि नेदरलैण्ड की सरकार भी सम्मिलित है, एटलांटिक पैक्ट के रूप में एक समझौता किया है। अपने हितों का खयाल से वे उचित पथ पर है। यह दूसरी बात है, मैं उस पर बहस नहीं कर रहा हूँ। लेकिन यहां पर इन सभी देशों के मन में एक संघर्ष उठता है। जहाँ एक ओर वह इंडोनेशी स्वतंत्रता चाहते है, वहाँ दूसरी ओर वे इसलिए भी चिन्तित हैं कि नेदरलैण्ड्स उनके राजनैतिक गुट्ट में बना रहे। कभी-कभी वे सीधी और स्पष्ट बात जो वे अन्यथा करते इसलिए नहीं कर पाते कि ऐसी कठिनाइयाँ उन्हें दूसरी ओर खीचती हैं।

इसलिए आम तौर पर हम विविध मामलों पर सहमत हो सकते हैं, लेकिन किस बात पर हम अधिक जोर देते है, वह सब के लिए भिन्न हो सकता है। किसी विषय को हम १ नंबर की बात समझ सकते है, जिसे वह २ नंबर की समझेंगे, और उनके लिए जो बात १ नंबर की है वह हमारे लिए २ नंबर की हो सकती है। हम २ नंबर के विरुद्ध भले ही न हो, फिर भी वह हमारे लिए १ नम्बर की नहीं है। किन चीज़ों को आप पहला या दूसरा नम्बर देते है इससे निश्चय ही बड़ा अन्तर आ जाता है। जीवन और राजनीति में सत्य को आप पहला स्थान देते है या दूसरा इससे तो दुनिया भर का अन्तर आ सकता है।

उस दिन मै भारत की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में भाषण दे रहा था, और स्वभावतया मैंने कुछ साधारण बातें कही, क्योंकि निश्चित और खास बातो का कहना बड़ा कठिन होता है। जब हम कालेज के विद्यार्थी होते है, तो हम सभी मामलों और समस्याओ और वैदेशिक नीति पर बहस करते है और अपनी राय आज़ादी से और खुले तौर पर देते है, क्योंकि हम इन प्रश्नो को आमतौर पर इस तरह देखते है मानो वह और प्रश्नो से अलग-अलग है। और प्रश्नों से अलग करके किसी एक प्रश्न पर राय देना काफी सहज है। लेकिन जब आपको जीवन के कार्यों को निबटाना होता है, तब आप को पता चलता है कि कोई प्रश्न दूसरे प्रश्नों से बिल्कुल जुदा नही है। आप जहाँ किसी खास प्रश्न पर 'हाँ' कहते है, वहाँ जब उसे आप दूसरे प्रश्नों के सम्बन्ध में देखते है तो वह 'हाँ', 'नहीं' भी बन सकता है, या इनके बीच की कोई चीज़ हो सकता है।

विदेशी नीति साधारणत. एक ऐसी वस्तु है, जो धीरे-धीरे विकसित होती है। कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओ के अतिरिक्त, जिन्हे कि आप निर्धारित करें,

यह एक ऐसी वस्तु है, जो यदि वास्तविक है, तो उसका सम्वन्ध वस्तुस्थिति से होगा, कोरे सिद्धान्त से नही। इसलिए आप निश्चित रूप से अपना साधारण दृष्टि-कोण या साधारण मार्ग निर्धारित नही कर सकते, बल्कि वह क्रमशः विकसित होता है। हम एक स्वतंत्र देश के रूप मे अभी नए है, यद्यपि हमारा देश एक प्राचीन देश है और हमें एक प्राचीन देश होने की सभी सुविधाएँ तथा असुविधाएं प्राप्त है। फिर भी, वैदेशिक नीति के वर्तमान प्रसग में हमारा देश नया है, और इस-लिए हमारी वैदेशिक नीति क्रमशः विकसित हो रही है, और कोई कारण नही जान पड़ता कि हम सभी जगह क्यो दौड कर पहुँचे रहे, इस तरह कोई ऐसी बात क्यो कर दें जो कि इस क्रमिक विकास में वाधक हो। इस विषय में अपना साधा-रण मत कि हम कहाँ जाना चाहते है और क्यों जाना चाहते है, हम प्रकट कर सकते है और हमें ऐसा करना चाहिए, लेकिन किसी विशेष देश के प्रति अपनी नीति निश्चित रूप में वना लेना कदाचित् हमें कठिनाई मे डाल सकता है। जैसा मैंने कहा, हमारी साधारण नीति सभी देशो से मैत्री स्थापित करने के प्रयत्न करने की रही है, लेकिन यह ऐमी वात है जिसे कोई भी कह सकता है। इस विचार मे वहुत सहायता नही मिलती। यदि मै कहूँ कि यह प्रायः राजनीति से वाहर की बात है तो ठीक होगा। यह एक शाब्दिक वक्तव्य या नैतिक प्रेरणा हो सकती है। इसे राजनैतिक प्रेरणा कहना कठिन है। फिर भी, राजनैतिक क्षेत्र में भी इसके पक्ष में कुछ कहा जा सकता है। हम कदाचित् सभी देशो से सदा मैत्री नही रख सकते। दूसरी वात यह हो सकती है कि कुछ से वडी मित्रता हो तथा औरो से विरोध रहे। किसी देश की साधारणतः यही विदेशी नीति होती है, अर्थात् कुछ देशो के साथ घनिष्ठ मित्रता के सम्वन्ध। इसका परिणाम यह होता है कि आप का दूसरो के प्रति वैर-भाव होता है। आप की कुछ देशों से वड़ी मित्रता हो सकती है, और यह असभव सी बात है कि सभी देशों से आपकी एक सी मित्रता हो। स्वभावतः उनसे आपकी अधिक मित्रता होती है जिन के साथ आपके निकटतर सम्वन्ध है, लेकिन वह बड़ी मित्रता यदि सक्रिय है तो अच्छी है; अगर उसमें किसी दूसरे देश के प्रति वैर की झलक है तो वात और हो जाती है, और अन्त मे आप का वैर भाव दूसरे लोगो का वैर जागृत करता है, यह रास्ता संघर्ष का है और इससे कुछ हल नही होता। सौभाग्य से भारत का किसी देश से पुराना वैर नही। अतएव हम किसी देश से वैरभाव का सिलसिला अव क्यों चलावें? वेशक, यदि स्थितियां हमें विवश करें तो हम कर ही क्या सकते है? लेकिन वैरभाव की इन पृष्ठभूमियो से हमें अपने को दूर ही रखना अच्छा है। यह भी स्वाभाविक है कि हमारी कुछ देशो से औरों की अपेक्षा अधिक मित्रता हो, क्योकि इससे परस्पर लाभ हो सकता है। यह दूसरी वात है, फिर भी, और देशों से हमारी मित्रता जहाँ तक हो सके, ऐसी नही होनी चाहिए कि हमें अनिवार्य रूप से दूसरो से संघर्ष में ले आवे। अव, कुछ लोग यह कह सकते है कि दो विरोधी दलों के वीच दोनो से भला वने रहने की या गड्डो

को बचा कर चलने की नीति है, या सडक के बीच से चलने की नीति है। जिस रूप में मैं इसकी कल्पना करता हूँ उसमें ऐसी कोई चीज नहीं। यह बीच सड़क से चलने की नीति नहीं है। यह एक धनात्मक, रचनात्मक नीति है, जिसका एक निश्चित उद्देश्य है, जो जानबूझ कर और देशो से जहाँ तक हो सभी देशो से, वैर बचाने का प्रयत्न करती है।

हम इसे कैसे हासिल कर सकते हैं ? स्पष्ट है कि इसमें जोखिम है और खतरा है, और हर एक देश का पहला कर्तव्य अपनी रक्षा करना है। अपनी रक्षा का अर्थ दुर्भाग्य से यह होता है कि सशस्त्र सेनाओं आदि पर निर्भर रहा जाय, इसलिए हम, आवश्यकता पड़ने पर अपना प्रतिरक्षा संबधी यत्र खडा करते हैं। ऐसा न करने का हम जोखिम नही उठा सकते, अगर्चे महात्मा गाधी ने निस्संदेह यह जोखिम उठाया होता और मैं यह कहने का साहस नही कर सकता कि उनका यह कार्य गलत होता, वास्तव में यदि कोई देश इतना मजबूत है कि यह जोखिम उठा ले, तो यही नही कि वह जीवित रहेगा, बल्कि वह एक महान् देश बनेगा। लेकिन हम सब छोटे लोग है और ऐसा जोखिम उठाने का साहस नही कर सकते, लेकिन अपनी रक्षा करते हुए, हमें ऐसा करना चाहिए जिसमें हम किसी दूसरे को वैरी न बना लें, और यह भी न मालूम पड़े कि हम किसी देश की स्वतत्रता पर आक्रमण करना चाहते हैं। यह महत्त्व की बात है। साथ ही हमें कोई ऐसी बात लिखना या कहना न चाहिए जिससे कि राष्ट्रो के बीच के सम्बन्ध और बिगडें। दूसरे देशो के, उनकी नीतियो के और कभी-कभी उनके राजनीतिज्ञों के विरुद्ध कहने या करने की प्रेरणा बडी प्रबल होती है। क्योकि दूसरे लोग कभी-कभी बड़े नागवार हो जाते हैं, वह कभी-कभी बड़े अग्रसर हो जाते हैं। अगर वे अग्रसर होते हैं तो हमें उनकी अग्रसरता से अपनी रक्षा करनी पड़ती है। अगर भविष्य में आक्रमण की आशका हो-तो उससे भी अपने को बचाने का उपाय करना पड़ता है। यह तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन इसमें और मकान की छतो पर खड़े होकर हमेशा बुलद आवाज में इस या उस देश पर आक्रमण करने में, स्पष्ट अन्तर है— चाहे वह देश आलोचना या आक्रमण के योग्य ही क्यो न हो। पर इस प्रकार चीखने-चिल्लाने से—कुछ मदद नहीं मिलती, इससे बात बिगडती ही है, क्योकि इससे भय की वह मनोवृत्ति, जिसकी कि मैंने चर्चा की, भयानक रूप में बढ जाती है। जब दोनो ओर से चीखना-चिल्लाना चलता रहता है, तो तर्क और विचार जाते रहते है, क्योकि लोगो के आवेग जागृत हो जाते हैं और अन्त में उन्हें युद्ध में पड़ना होता है।

युद्ध छिड जाने पर उसका सामना करना पड़ता है। कुछ हदतक उसका पहले से उपाय होना चाहिए, और अगर युद्ध छिड़ता है तो उसके सभी परिणामो को

स्वीकार करना पड़ता है। जैसा मैंने कुछ समय पहले कहा था मैं मानता हूँ कि इस संसार के अधिकतर लोग युद्ध नही चाहते। तव हमारी नीति का मुख्य ध्येय युद्ध से वचना या युद्ध को रोकना होना चाहिए। युद्ध को रोकने में अपनी रक्षा का उपाय करना पड़ता है, यह वात तो ठीक है, लेकिन इसके अन्तर्गत चुनौतियाँ, जवावी—चुनौतियाँ, आपस का वुरा भला कहना, धमकियाँ आदि नही आनी चाहिए। निश्चय ही इस तरह से युद्ध नही रोका जा सकता, वल्कि इस से वह और निकट आवेगा, क्योंकि इससे दूसरी सरकारें डरेंगी, और दूसरी सरकारें भी इसी तरह की चुनौतियाँ देंगी, तव आप डरेंगे, और हर एक व्यक्ति एक भय के वातावरण में रहेगा, और भय के इस वातावरण में कुछ भी हो सकता है।

अव, क्या कोई देश, क्या भारत, इस तरह के परस्पर दोषारोपण को रोकने में सफल हो सकता है? क्या हम इस वात में सफल हो सकते है– जैसा कि हम चाहते है– कि प्रत्येक प्रश्न पर उसके गुणों के अनुसार विचार हो? आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर इस दृष्टि से विचार होता है कि भविष्य में आनेवाले किसी संघर्ष में उनका क्या प्रभाव पड़ेगा; परिणाम यह होता है कि हम दोनों ओर के दलो को विषय के गुणों को भुलाते हुए पाते है, पर भारत जिसका विचार करने का दृष्टिकोण अन्य देशों से कुछ भिन्न है। हर प्रकार से एक असुविधा का हेतु समझा जाता है; दुर्भाग्य से असुविधा का कारण ही नही समझा जाता वल्कि हर एक वर्ग यह सदेह करता है कि वह विरोधी दल से मिला हुआ है। लेकिन मैं समझता हूँ कि दूसरे देशों द्वारा अव कुछ ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि हम वही कहते है जो हमारा आशय है। यह कोई गहरा दाँव-पेच या षड़यंत्र नही है और हम चाहते है कि प्रश्नों पर उनके गुणो के अनुसार विचार हो, और गुणों के अन्तर्गत निश्चय ही ऐसे प्रश्नो से संवंधित और सभी वातें भी आ जाती है। हाल के दो या तीन मामलों पर-कोरिया, पैलेस्टीन और अणुशक्ति पर-हमारा रुख ले लीजिए। यह अणुशक्ति का मामला संयुक्त-राष्ट्रों की साधारण सभा में, पेरिस में, पिछले अधिवेशन में आया था, और इस पर वड़ी वहस हुई थी कि क्या करना चाहिए। इस विषय पर विचार करनेवाली समिति का भारत एक सदस्य वनाया गया, और हमारे प्रतिष्ठित प्रतिनिधि जो कि इस समिति में थे, जो इस कार्य के लिए आदर्श रूप में उपयुक्त है और जव कि दूसरे उत्तेजित होते है कभी उत्तेजित नही होते और प्रश्न पर शांति और निरपेक्षता से विचार करते है– समिति के वातावरण को वदल देने में असमर्थ रहे। कोई वड़ा परिणाम निकला हो या नहीं, यह दूसरी वात है, लेकिन परिणाम प्राप्त करने का मार्ग हमने दिखाया था। कुछ देश है, जो चाहे कुछ हो जाय, अपने आसन से हटने से इनकार करते है। अव, मैं यह नही कहता कि हम इतने दृढ है कि कोई चीज हमें अपने आसन से डिगाती ही नही। ऐसा कदापि नही है। फिर भी हमारी कोशिश यह रहती है कि हम अपने पैरों के वल खड़े रहें, नाचें-कूदें या गिरें नही।

क्या मैं कहूँ कि मैं एक क्षण के लिए भी शेष दुनिया को सलाह देने या उसकी आलोचना करने का, भारत के पक्ष में किसी ऊँचे पद का, दावा नहीं करता ? मैं समझता हूँ कि हमारी कोशिश केवल यह है कि इन समस्याओं पर हम उत्तेजित न हों; कम से कम, कोई कारण नहीं कि हम इसकी कोशिश न करें। इससे नतीजा यह निकलता है कि जिन्हें शक्ति-दल कहते हैं, उनकी पंक्ति में हमें शरीक नहीं होना चाहिए। बिना ऐसा किए हुए हम कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस बात की भी किंचित संभावना है कि किसी और के ऊपर कुछ संकट की अवस्था में हमारे शांतिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण प्रयत्न स्थिति में अंतर ला सकें, संकट का निवारण कर सकें। अगर ऐसा है तो यह प्रयत्न करने योग्य है। जब मैं कहते है कि हमें किसी शक्ति-दल से न मिल जाना चाहिए, तो स्पष्टतया इसके यह मानी नहीं है कि हमें औरों की अपेक्षा कुछ देशों से निकटतर संबंध न रखना चाहिए। यह बिल्कुल और ही बातों पर निर्भर करता है, जो मुख्यतया आर्थिक, राजनैतिक, कृषि संबंधी है, तथा अन्य बहुत सी बातें है। इस समय, आप देखेंगे कि वास्तव में पश्चिमी दुनिया के कुछ देशों से हमारे अपेक्षाकृत कहीं निकट के संबंध है। कुछ तो इतिहास के कारण, कुछ अन्य कारणों से, आजकल के विविध कारणों से ऐसा है। ये निकट संबंध निश्चय ही बढ़ेंगे और हम उनको बढाने के लिए प्रोत्साहन देंगे, लेकिन हम अपने को ऐसी स्थिति में नहीं रखना चाहते है, जहाँ कि राजनैतिक दृष्टि से यह कहा जा सके कि हम किसी खास दल से मिल गए है और अपने विदेशी कार्यों के विषय में उस के साथ बंध गए है। भारत स्वयं इतना बड़ा देश है कि वह किसी के पीछे क्यों बैठेगा, दूसरा देश चाहे जितना बड़ा हो। भारत एक ऐसा देश होने जा रहा है, और निश्चय ही होगा कि संसार के मामलों में उसकी गिनती होगी। ऐसा फौजी अर्थ में नहीं, बल्कि और दूसरे अर्थों में, जो कि अन्त में अधिक महत्त्व के और अधिक कारगर होते है। हमारी—अर्थात् यहाँ की आज की सरकार की—किसी एक दिशा में बहुत दूर तक जाने की कोशिश हमारे ही देश में कठिनाइयां उत्पन्न करेगी। इस पर आपत्ति की जायगी और हम अपने ही देश में एक संघर्ष उत्पन्न करेंगे, जो न हमारे लिए न किसी और देश के लिए ही सहायक होगा। शक्ति-गुटों से अलग रहते हुए हम कहीं अच्छी स्थिति में है कि ठीक अवसर आने पर हम शांति के पक्ष में अपना जोर डाल सकें, और इस बीच में, आर्थिक तथा अन्य क्षेत्रों में, हमारे संबंध उन देशों से जिनसे कि हम अपने संबंध विकसित कर सकते है, ज्यादा निकट के हो सकते है। इसलिए अलग-अलग या शेष दुनिया से कट कर रहने का प्रश्न नहीं है। हम अलग-अलग होकर रहना नहीं चाहते। हम निकटतम संपर्क चाहते हैं, क्योंकि शुरू मे ही हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार आपस में निकटतर आ रहा है और अन्त में उस आदर्श की सिद्धि होगी, जिसे कि अब 'एक संसार' का आदर्श कहा जाता है। लेकिन, हमें विश्वास है कि भारत इस क्रम में एक स्वतंत्र स्थिति ग्रहण करके और अपनी इच्छानुसार कार्य करते हुए, जब कभी संकट आवे, अधिक सहायता दे

सकता है, बजाय इसके कि वह दूसरो में अपने को विलीन करके कड़े बंधनों में बँध जाय।

अपनी नीति के संबंध मे यह हमारा साधारण दृष्टिकोण है, और हम अनुभव करते है कि आज की दुनिया को देखते हुए, हम युद्ध की बडी चर्चा सुनते है। जबतक कोई बड़े ही दुर्भाग्य की बात नही होती, जैसे कि कोई भीषण दुर्घटना या इसी तरह की कोई बात, तब तक मै नही समझता कि युद्ध होने जा रहा है, कम से कम अगले कुछ वर्षो मे युद्ध की सम्भावना नही है। फिर भी कोई इस बात की जिम्मेदारी नही ले सकता कि एक लंबे समय तक शांति बनी ही रहेगी। अगर अगले कुछ वर्षों तक युद्ध होने नही जा रहा है—और अगर मै कह सकता हूँ कि युद्ध न होगा, तो मुख्य कारण यह होगा कि देश युद्ध के लिए तैयार नहीं है। कहने का तात्पर्य यह कि अगर्चे राजनैतिक दृष्टि से, पिछले वर्ष यह कहा जा सकता था कि हम युद्ध के निकट है, क्योकि आवेग जगे थे, और बहुत सी ऐसी बाते हुई थी, जिनसे राष्ट्रों में लड़ाई छिड़ जाती है, फिर भी लड़ाई नही हुई। इसका कारण यह है कि फौजी दृष्टि से, या और प्रकार से, देश युद्ध के लिए तैयार न थे। युद्ध तभी होता है जब कि दो हेतु एक साथ उपस्थित होते हैं। एक तो युद्ध के लिए राजनैतिक प्रेरणा और दूसरे युद्ध की तैयारियाँ। अब इन में एक यदि नही है, तो युद्ध का होना संभावित्त नही। अच्छा तो, इनमे एक कारण मौजूद नही है और वह कारण युद्ध की तैयारी की कमी। परिणाम यह हुआ कि वह महान सकट, जिसके बीच से पिछली ग्रीष्म और शरत् ऋतुओं मे यूरोप ज्यो-त्यो गुजरा, टल गया। आप एक महान सकट की दशा मे निरंतर नही रह सकते। या तो वह फूट कर युद्ध के रूप में प्रकट होता है, या वह क्रमशः दब जाता है। इसलिए अगर एक राजनैतिक संकट उपस्थित होता है, और अगर कुछ कारणो से वह फूट कर युद्ध का रूप नही लेता है, तो वह निश्चय ही दब जायगा, जैसा कि व्यवहार में हुआ है। लेकिन, हर हालत मे, इसके यह अर्थ नही है कि खतरा है ही नही। हाँ, आप यह कह सकते है कि आपको कुछ वर्ष के लिए शाति प्राप्त हुई है, और आप जानते हैं कि हमारे इस उद्धत संसार मे कुछ वर्षो की शाति भी गनीमत है। शाति का स्वल्प काल भी आपको निश्चित रूप से यह अवसर देता है कि आप अधिक स्थायी शाति के लिए उद्योगशील हो। मैं दृढता से यह अनुभव करता हू कि निश्चय ही इसकी सभावना है कि इस अवसर का ससार के देशो द्वारा उपयोग हो और शांति मजबूती से स्थापित हो।

लेकिन आज हुआ क्या है? हम पाते है कि युद्ध की परिभाषा में विचार करने की एक भयावह प्रवृत्ति विकसित हुई है। निश्चय के साथ कुछ कह सकना जरा कठिन है, फिर भी युद्ध की सभावना इतनी बुरी है और उसके परिणाम इतने भीषण

होंगे कि, युद्ध का नतीजा जो भी हो, मैं चाहूँगा कि हर एक मनुष्य को युद्ध को बचाने के लिए अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न करना चाहिए। हम कहीं भी युद्ध नहीं चाहते। हम कम से कम १० या १५ वर्षों के लिए शांति चाहते हैं, जिसमें कि हम अपने साधनों का विकास कर सकें। अगर दुनिया में कहीं भी युद्ध होता है, तो शेष दुनिया का क्या हाल होगा? युद्ध के अनन्तर आप करोड़ों आदमियों को भूखों मरते पायेंगे।

इसलिए, अगर हम तत्परता से युद्ध रोकने के लिए उद्योग करें, और इस घटना से लाभ उठाएँ कि पिछली शरत् ऋतु में जो गंभीर संकट उपस्थित हुआ था, और जो अब दब गया है और आगे और दब सकता है, तो मैं समझता हूँ कि हम शांति की संभावना को भली प्रकार बढ़ा सकते हैं। जहाँ तक हमारा संबंध है हमें ऐसा करने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरे संघर्ष हैं—चाहे वे बर्लिन में हों, चाहे यूरोप में, चाहे दूसरी जगहों में। इनके अतिरिक्त, दुनिया में दो और प्रश्न हैं, जिन्हें संतोषजनक रीति से हल न किया गया तो वह बड़े पैमाने पर संघर्ष उत्पन्न कर सकते हैं। इन में से एक तो वह है जिसकी मिसाल इंडोनीशिया है, यानी एक देश द्वारा दूसरे देश पर आधिपत्य। जब तक यह आधिपत्य जारी रहता है,—चाहे वह एशिया में हो, चाहे अफ्रीका में— तब तक वहाँ शांति नहीं हो सकती है। लोगों के मन में भी निरंतर संघर्ष, और एक दूसरे के प्रति निरंतर संदेह बना रहेगा और यूरोप के प्रति एशिया के मन में बराबर अविश्वास बना रहेगा और इस लिए एशिया और यूरोप के बीच जो मैत्री का संबंध होना चाहिए, वह सहज में न स्थापित हो सकेगा। अतएव यह आवश्यक है कि औपनिवेशिक आधिपत्य के इन क्षेत्रों को मुक्त किया जाय, और वे स्वतंत्र देशों के रूप में कार्य कर सकें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है जातिगत समानता की। यह भी संसार के कुछ भागों में, जैसा आप जानते हैं, सामने आ गई है। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रश्न को ले लीजिए। यह एक ऐसा विषय है जिससे कि सबका संबंध है। यह भारतीयों या दक्षिण अफ्रीकावालों का ही प्रश्न नहीं है, बल्कि यह संसार के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह भी संसार की एक दशा का प्रतीक है। अगर यह संसार में बना रहता है तो संघर्ष, बड़े पैमाने पर संघर्ष अनिवार्य है, क्योंकि यह बड़ी संख्या में दुनियाँ के लोगों के आत्म सम्मान के प्रति एक निरंतर चुनौती है, और वह इसे सहन न करेंगे। इसलिए यह विषय संयुक्त राष्ट्र के सामने है और मैं आशा करता हूँ कि संयुक्त राष्ट्र इसे हल करने में सहायक होंगे। लेकिन इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता कि अगर ऐसी नीति संयुक्त राष्ट्र से बिलकुल अलग चलती है, तो यह संघर्ष उत्पन्न करेगी। और यह संघर्ष दक्षिण अफ्रीका के या दूसरी जगह के विशिष्ट क्षेत्रों तक न सीमित रहेगा; इसका असर विशाल महाद्वीपों के लोगों पर भी होगा।

तीसरे विषय के सबध में, अर्थात् आर्थिक नीति के बुनियादी विषय के संबंध में, मै विवेचन नही करूँगा—यह वहुत वड़ा विषय है। मै केवल इसके वारे में यह कहना चाहूँगा कि जहाँ तक मै देखता हूँ दुनिया में आगे वढ़ने का आज एक मात्र ढंग यह है कि हर एक देश को अनुभव करना चाहिए कि दूसरे देश की आर्थिक नीति मे उसका हस्तक्षेप उचित नही। अन्त मे वे नीतियाँ सफल होगी जो अपने को हित-कर सिद्ध करेंगी, जो ऐसा नही करती वह सफल न होगी। दूसरे देशो की नीतियों मे हमलावर तरीके से हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से झगड़े पैदा करती है। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि आज ससार मे विभिन्न प्रकार की आर्थिक नीतियाँ चल रही है, और उनमे उन देशो के लोगों का विश्वास है। तो फिर एक ही वात करने को रह जाती है, वह यह कि उन्हें अपने-अपने भाग्य का निश्चय करने के लिए छोड़ दिया जाय। हो सकता है कि इनमे से एक, एक नीति को समर्थन करता है, दूसरा दूसरी नीति को। यह भी हो सकता है कि तीसरा एक मध्यमार्ग का अनुसरण करता है। जो कुछ होना है, भविष्य दिखाएगा। जो भी हो, तात्पर्य यह है कि हमे इस आधार पर चलना चाहिए कि प्रत्येक देश अपने भीतरी मामलो में जैसा वह चाहता है करने के लिए स्वतत्र रहे। वलपूर्वक आर्थिक नीति को वदलने का या किसी आंतरिक नीति को वदलने का, कोई भी प्रयत्न, या उस पर दवाव का नतीजा जवावी दवाव के रूप मे सामने आवेगा और उससे निरंतर संघर्ष होगा।

•

भाषण समाप्त करने से पूर्व क्या मै एक वात और कहूँ? हम 'एक ससार' के पक्ष मे प्रयत्न कर रहे है और यातायात के साधनो और दूसरी चीजो के फलस्वरूप हम एक दूसरे के निकटतर आ रहे है। हम एक दूसरे के विषय में पहले की अपेक्षा कही अधिक जानते है। फिर भी मेरी धारणा है कि हमारा एक दूसरे के विषय में ज्ञान अद्भुत रूप से छिछला है, और हम अपनी वड़ी या छोटी लीकों में पड़े हुए यह कल्पना करते हुए जान पड़ते है— हर एक देश ऐसी कल्पना करता हुआ जान पड़ता है– कि हम कमोवेश संसार के केंद्र है, और जो कुछ भी हमारे अतिरिक्त है वह किनारे की चीज है, और यह कि हमारा रहने का ढंग ही ठीक ढग है और दूसरो के रहने का ढंग या तो वुरा ढंग है, या पागलपन का ढग है या किसी प्रकार पिछड़ा हुआ ढँग है। मै समझता हूँ कि यह आदमियो की एक आम कमजोरी है कि वे खयाल करें कि वे ही सही रास्ते पर है और दूसरे गलती पर है। गलत या सही होने की वात अलग रक्खी जाय, तो यह हो सकता है कि दोनों सही हो या दोनो गलती पर हो; हर हालत में, जहाँ तक लोगो के रहने के ढंग का सबंध है, न केवल यूरोप, अमरीका, एशिया और अफ्रीका के वीच अन्तर हो सकते है, वल्कि एक ही महाद्वीप के भीतर भी अन्तर हो सकते हैं। यूरोप और अमरीका की, चूकि वह आधिपत्य रखने वाले देश है और उनकी एक प्रवल सस्कृति रही है, यह प्रवृत्ति रही है कि रहन-सहन के ढंग जो उनसे भिन्न है, वे उनकी दृष्टि में लाजिमी तौर पर घटिया है। वे घटिया हैं या नही मै

नही जानता, अगर वे घटिया है तो संभवत. वही के लोग उन्हें बदल देंगे। लेकिन एक देश का दूसरे को इस प्रकार देखने का ढंग बहुत त्रुटिपूर्ण है, और बहुत बुद्धिमानी नही प्रदर्शित करता, क्योंकि यह संसार एक बहुरंगी स्थल है। भारत में भी, हमारी सारी संस्कृति इस बात की साक्षी है कि हम मनुष्य मात्र की विविधता को समझते है, लेकिन विविधता और विभिन्नता के होते हुए भी एकता पर जोर देते है। संसार एक बहुत विविधतापूर्ण स्थल है, और व्यक्तिगत रूप से मैं कोई वजह नही देखता कि हम उन पर एक तरह की पाबंदी लगाए। और फिर भी लोगों के विचारों की यह प्रवृत्ति है, कि उस पर पाबदी लादें और एक ही विशेष नमूने पर उसे ढाले। हो सकता है कि भारत का दृष्टिकोण अपने सारे जीवन-दर्शन के कारण हो। अपने सीमित दृष्टिकोण और त्रुटियों के कारण हम जो भी करें, हमारा एक विशेष दर्शन रहा है, जो कि 'स्वय जीवित रहो और दूसरों को जीने दो', इस प्रकार का जीवन-दर्शन है। हममे दूसरे लोगो के दृष्टिकोण या विचारो को बदलने की कोई खास इच्छा नही है। हम हर एक से बहस करने और उसे समझाने के लिए तैयार हैं, पर मानना न मानना दूसरे के हाथ है, और अगर वह अपने रास्ते जाना चाहता है, तो भी हम प्रसन्न है। अगर वह हमारे मार्ग में हस्तक्षेप करता है तो हमें बिल्कुल प्रसन्नता नही होती। जान-पड़ता है दूसरे दर्शन यह चाहते है कि आदमी उन्हीं के ढंग पर विचार और काम करने के लिए मजबूर हो, और इससे संघर्ष होता है; इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि कदाचित् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह एक ठीक ढंग भी नही है।

इसलिए अगर हम समझ लेते हैं कि यह संसार विविधता का एक क्षेत्र है, और इसमे रहने, काम करने, विचार करने के जुदा-जुदा ढंग है, तो हमें दुनिया की बुराई को दूर करने की कोशिश करनी तो चाहिए, पर संसार की विविधता को बने रहने देना चाहिए। इसमें एकता लानेवाली काफी प्रबल शक्तियां काम कर रही है और संभावना है कि यह एकता उत्पन्न हो और विविधता कदाचित कम हो। यह दुर्भाग्य की बात होगी अगर यह विविधता किसी दिन बिल्कुल उठ जाय और हम सब एक तरह के ढाचे में ढाल दिए जायें; इसकी कल्पना ही भयानक है। अगर ऐसा होता है, तो जो लोग तब जीवित होंगे वे अपने समय की समस्याओं का सामना करेंगे। हममें से अधिकतर उस समय जीवित न होगे। मैं अनुमान करता हूँ कि यदि हम इस रूप में देखें, तो देश आपस में एक दूसरे को कहीं अधिक समझने लगेंगे।

विदेशो से आए हुए अपने कुछ मित्रो को यहां आकर भले उपदेश देते हुए देखकर हमें आश्चर्य होता है, और हम यह जानते हुए कि जो उपदेश हमें दिए जा रहे है वे लाजिमी तौर पर बहुत बुद्धिमानी के नहीं है, हम उन्हें धैर्य से सुन लेते है; और उपदेश देने का तरीका भी शायद बहुत बुद्धिमानी का नही होता; न उससे विचार

की किसी गहराई का पता चलता है, क्योकि अपनी सब कमजोरियो के वावजूद हम एक वहुत प्राचीन लोग हैं, और हम कई हजार साल के मानवी अनुभव से गुजरे है; हमने वहुत वुद्धिमत्ता भी देखी है और वहुत मूर्खता भी और हमारे चारो ओर उस वुद्धिमत्ता और उस मूर्खता दोनो ही के चिन्ह दिखाई देते है। हमे वहुत कुछ सीखना है, और वहुत कुछ हम सीखेंगे; और शायद वहुत कुछ सीखी हुई वातें हमे भुलानी भी है। लेकिन आश्चर्य की वात कि लोग विना यह समझे हुए कि हम क्या है, हमे सुधारने का प्रयत्न करते है। हमे इस पर विशेप आपत्ति नही है, लेकिन इससे अधकि सहायता नही मिलती। अव, यही वात हम पर भी लागू होती है, क्योकि हम भी दूसरो को सुधारने की वात सोचते रहते है। मै चाहूँगा कि हम सभी दूसरो को सुधारने के विचार को छोड दें और उसके वदले मे अपने को सुधारे। धन्यवाद।

भारत और राष्ट्रमंडल

एक दैवी और ऐतिहासिक निर्णय

लंदन में राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) के प्रधान मन्त्रियों की बैठक में भाग लेने के बाद मैं तीन दिन हुए दिल्ली लौटा हूं। यह उचित ही है कि मैं इस बैठक का हाल आपको बताऊं जिसके परिणामस्वरूप एक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय हुआ है। इस निर्णय को सविधान सभा के सामने उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए रखना होगा। इस पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी भी विचार करेगी, जो इन अनेक वर्षों से भारतीय स्वतंत्रता की मशालवाहक रही है। इन महान और प्रतिनिधि संगठनो का कार्य होगा कि जो कुछ मैंने और औरो ने लंदन में पिछले महीने में किया, उस पर अंतिम निर्णय दें।

आपने उस घोषणा को पढ़ ही लिया है, जिसमें लंदन की बैठक में किए गए निर्णय समाविष्ट है। मेरे वापस आने के बाद मुझ पर जो प्रभाव पड़ा है, वह यह है कि हमारे यहां के बहुसंख्यक लोगो ने इस निर्णय का स्वागत किया है, यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी है जिन्होने बड़ी कड़ी भाषा में जो कुछ मैंने किया, उसकी आलोचना की है यहां तक कि इसे "एक महान भूल" और "भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावना पर अत्याचार" कहा है। भारत की सेवा की काफी लंबी अवधि में मुझपर भूल और गलती करने के अक्सर आरोप हुए है, लेकिन अब तक मुझ पर यह इलजाम नही लगा है कि मैंने कोई काम ऐसा किया है जो कि भारत और उसके लोगों के आत्म सम्मान और प्रतिष्ठा के विरुद्ध रहा हो। इसलिए यह एक गंभीर बात है, अगर थोडे से लोग भी, जिनकी सम्मति का मै आदर करता हूं, ऐसा समझते है कि मैंने अत्याचार किया।

मै आपसे यह कहना चाहता हूं कि मुझे अपने मन में तनिक भी सदेह नहीं है कि जो भी प्रतिज्ञायें मैंने अपने करोड़ो देश-वासियों के साथ भारत की स्वतंत्रता के संबंध में पिछले बीस या अधिक वर्षों में की है उन पर मै शब्दश· और भाव में दृढ रहा हूं। मुझे विश्वास है कि भारत की प्रतिष्ठा या हित को हानि पहुचाना तो दूर रहा, जो कार्य मैंने लंदन में किया उसने उस प्रतिष्ठा को ज्वलंत और दीप्तिमान् बनाए रखा और संसार में उसके पद को बढाया है।

यद्यपि आलोचक थोडे ही है, फिर भी मै उन्ही को संबोधित करूंगा, न कि उन बहुसंख्यक लोगो को जो अपना समर्थन प्रकट कर चुके है। मै केवल यही

नई दिल्ली से १० मई, १९४९ को प्रसारित एक वार्ता।

कल्पना कर सकता हूँ कि आलोचक किसी भ्रम मे पड़े है या उन को यह सन्देह है कि गोपनीय रूप से कोई और बात हुई है, जो प्रकाश में नही आई है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि गोपनीय रूप में कोई भी बात नही हुई है और अपनी पूर्ण सत्ता या अपनी आन्तरिक या विदेशी नीति को राजनीतिक आर्थिक या सैनिक क्षेत्र में सीमित करने वाली किसी बात पर किसी प्रकार से हम बचनबद्ध नही है। अपनी विदेशी नीति के संबंध में मैंने अकसर यह घोषणा की है कि वह सभी देशो के साथ शांति और मैत्री पूर्ण व्यवहार की है और किसी भी शक्ति गुट मे सम्मिलित न होने की है। हमारी नीति की आधारशिला अब भी यही है। हम दलित राष्ट्रों की स्वतंत्रता और जातिगत भेदभाव का अन्त करने के पक्ष में हैं। मुझे विश्वास है कि पूर्ण सत्ताधारी भारतीय गणतंत्र, कामनवेल्थ के अन्य देशो से स्वतंत्रतापूर्वक संपर्क रखता हुआ , इस नीति के अनुसरण मे पूरी तरह मुक्त होगा, शायद पहले से अधिक मात्रा में और अधिक प्रभाव रखते हुए।

बहुत समय हुए हमने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति की प्रतिज्ञा की थी। हमने उसे प्राप्त कर लिया है। क्या एक राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता दूसरे देश से मैत्री करके खो देता है ? मैत्रियाँ साधारणतः दो पक्षों को आपस में प्रतिज्ञाबद्ध करती है। कामनवेल्थ के सत्ताधारी राष्ट्रो के स्वतंत्र साहचर्य के अन्तर्गत ऐसी कोई प्रतिज्ञाबद्धता नही है। इसकी शक्ति ही इसके लचीलेपन में और इसकी पूरी स्वतंत्रता में है। यह अच्छी तरह मालूम है कि किसी भी सदस्य राष्ट्र के लिये यदि वह चाहे तो उससे अलग हो जाने का मार्ग खुला है।

यह याद रखना चाहिये कि कामनवेल्थ किसी अर्थ मे एक अतिराज्य या ऊपर से लादा गया राज्य नही है । हमने राजा को इस स्वतंत्र सहयोग का एक प्रतीक रूप प्रमुख स्वीकार किया है। लेकिन कामनवेल्थ में राजा के पद के साथ उसका कोई कृत्य नही है, जहाँ तक भारतीय विधान का संबंध है, उसमें राजा के लिये कोई स्थान नहीं है, और उनके प्रति हमारी कोई राजनिष्ठा न होगी।

स्वभावतः मैंने भारत के हित का ध्यान किया है, क्यों कि यह मेरा पहला कर्तव्य है। मैंने इस कर्तव्य की कल्पना सदा संसार के हित के विस्तृत प्रसंग में की है। यही पाठ है जो कि हमारे आचार्य ने हमें सिखाया है, और उन्होने हमें यह भी बताया है कि भारत की स्वतंत्रता और सम्मान पर सदा दृढ़ रहते हुए हमें शांति और दूसरो से मैत्री का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। आज संसार संघर्षों से भरा हुआ है, और क्षितिज में विपत्ति का धूमिल आभास हो रहा है। मनुष्यों के हृदयो मे व्याप्त घृणा, भय और संदेह से उनकी निगाहों पर बादल छाए है। इसलिये इस खिचाव को कम करने के लिये जो भी पग आगे बढ़ाया जा सकता है, उसका स्वागत होना चाहिये। मै समझता हूँ कि भविष्य के लिये यह शुभ सूचक है कि

भारत और इंग्लिस्तान के बीच का पुराना झगड़ा इस मैत्रीपूर्ण ढंग से दूर हो, जो दोनों ही देशों के लिये सम्मानपूर्ण हो। संसार में इतनी विच्छेदकारक शक्तियां यों ही है, ऐसी सूरत में हमें अपना भार और अधिक विच्छेद उत्पन्न करने के पक्ष में डालना उचित न होगा, साथ ही किसी भी अवसर का, जो पुराने घावों के भरने में और सहयोग के लक्ष्य को अग्रसर करने में सहायक होता है, स्वागत होना चाहिये।

मैं जानता हूँ कि राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) के कुछ भागों में बहुत-सी ऐसी बातें हो रही हैं जो हमारे लिये अप्रिय है, और जिसके विरुद्ध हम अब तक लड़े हैं। यह ऐसा प्रश्न है जिसे कि हम पूर्ण सत्ताधारी राज्य की भांति निबटावेंगे। जिन चीजों को अलग-अलग रखना चाहिये, उन्हें हम एक में न मिलावें।

अतीत काल में भारत का यह विशेष सौभाग्य रहा है कि वह अनेक संस्कृतियों के आपस का मिलनक्षेत्र बना। हो सकता है वर्तमान और भविष्य में यह उसका विशेष सौभाग्य हो कि वह युद्धप्रवृत्त दलों के बीच का पुल बने और आज और भविष्य के लिये सब से आवश्यक चीज —संसार की शांति—की स्थापना में सहायक हो। इसी आशा से कि भारत ज्यादा प्रभावपूर्ण ढंग से शांति और स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करने वाली नीति अनुसरण करेगा और दुनिया की कड़वी नफरतों और खिचावों को कम कर सकेगा, मैंने खुशी से लंदन के समझौते को स्वीकार किया। लंदन में प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में जो निर्णय हुए, उनका मैंने इस विश्वास में समर्थन किया कि वह हमारे देश और संसार के लिये ठीक निर्णय है। मैं आशा करता हूँ कि भारत के लोग भी इसी प्रकाश में उन्हें देखेंगे और उन्हें भारत की प्रतिष्ठा और संस्कृति के अनुकूल ढंग से, और अपने भविष्य में पूरा विश्वास रखते हुए उन्हें स्वीकार करेंगे। संसार के इतिहास के इस संकट काल में, व्यर्थ के विवाद में हमारी अपनी शक्ति का व्यय करना उचित नहीं, बल्कि अच्छा हो कि हम आज के आवश्यक कार्यों पर अपना ध्यान केंद्रित करें, जिससे कि भारत बड़ा और शक्तिशाली बने, और ऐसी स्थिति में हो कि एशिया और संसार के कार्यों में कल्याणकारी भाग ले सके।

यह नए प्रकार का साहचर्य

निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने का मुझे सम्मान प्राप्त है.—

"निश्चय हुआ कि यह संसद, इस प्रस्ताव से, भारत के प्रधान मंत्री द्वारा स्वीकृत, भारत के कामनवेल्थ अव् नेशन्स के सदस्य बने रहने की घोषणा को, जिस रूप में वह कामनवेल्थ के प्रधान मंत्रियों की, लंदन में होने वाली कान्फ्रेंस के अन्त में २७ अप्रैल, १९४९ को प्रकाशित शासकीय विज्ञप्ति में दी गई है, प्रमाणित करती है।"

इस घोषणा की प्रतियां सभी माननीय सदस्यों को मिल चुकी हैं, इसलिये मैं इसे फिर नहीं पढ़ूंगा। मैं केवल बहुत संक्षेप में इस घोषणा की कुछ मुख्य बातें बताऊंगा। यह चार अनुच्छेदों का एक छोटा और सादा लेख है। पहला अनुच्छेद, जैसा कि देखा जायगा, वर्तमान वैधानिक स्थिति के संबंध में है। यह ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स का और इस बात का कि कामनवेल्थ के लोग राजा के प्रति समान रूप से निष्ठा स्वीकार करने के लिये आबद्ध हैं, निर्देश करता है। विधान के अनुसार यह वर्तमान स्थिति है।

इस घोषणा के बाद का अनुच्छेद यह बताता है कि भारत सरकार ने राष्ट्रमंडल देशों की अन्य सरकारों को यह सूचना दी है कि भारत शीघ्र एक संपूर्ण सत्ताधारी गणराज्य होने जा रहा है, और यह कि वह राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ अव् नेशन्स) की अपनी पूर्ण सदस्यता, राजा को स्वतंत्र साहचर्य का एक प्रतीक मान कर, बनाये रखना चाहती है।

तीसरा अनुच्छेद कहता है कि अन्य राष्ट्रमंडलीय देश इसे स्वीकार करते हैं, और चौथा अनुच्छेद यह कहने के अनन्तर समाप्त होता है कि ये सभी देश कामनवेल्थ अव् नेशन्स के स्वतंत्र और बराबरी वाले सदस्यों के रूप में सम्मिलित बने रहेंगे। आप देखेंगे कि जहां पहले अनुच्छेद में इसे ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स कहा गया है, बाद के अनुच्छेद में इसे केवल कामनवेल्थ अव् नेशन्स कहा है। यह भी आप देखेंगे कि जहां पहले अनुच्छेद में राजा के प्रति निष्ठा का प्रश्न है, जैसा कि इस समय है, बाद में निश्चय ही यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि भारत गणराज्य होकर राज्य पद के क्षेत्र से बिलकुल बाहर हो जाता है। कामनवेल्थ के संबंध में

कामनवेल्थ के निर्णय को प्रमाणित करने के संकल्प को उपस्थित करते हुए संविधान परिषद् नई दिल्ली में १६ मई, १९४९ को दिया गया भाषण।

राजा का, इस साहचर्य के प्रतीक के रूप में, निर्देश हुआ है। ध्यान दीजिये कि निर्देश राजा का है, राज्य पद का नही, यह छोटी सी वात है, लेकिन इसका एक विशेष महत्त्व है। लेकिन तात्पर्य यह है कि जहां तक भारतीय गणराज्य का संवध है, उसके विधान और संचालन का संबंध है, उसका किसी वाहरी अधिकारी या राजा से संवंध नही, और उसकी कोई प्रजा राजा या किसी वाहरी अधिकारी मे निष्ठा रखने के लिये आवद्ध नही है। लेकिन गणराज्य कुछ और देशो से, जो राजतंत्र है या जैसे भी हैं, स्वेच्छापूर्वक साहचर्य रखने की स्वीकृति दे सकता है। इसलिये यह घोषणा यह कहती है कि भारत का नया गणराज्य, पूर्ण सत्ताधारी होते हुए भी और राजा के प्रति निष्ठा के लिये विना उस रूप मे आवद्ध हुए, जिस रूप मे कि अन्य कामनवेल्थ देश आवद्ध है, इस कामनवेल्थ का पूरा सदस्य वना रहेगा और यह स्वीकार करता है कि राजा इस मुक्त साझेदारी वल्कि साहचर्य का प्रतीक माना जायगा।

मै इस घोषणा को इस माननीय सदन के समक्ष उसके अनुमोदन के लिये रखता हूँ। इस अनुमोदन से भिन्न, इसके अनुसार किसी विधान के निर्माण का प्रश्न नही उठता। कामनवेल्थ के पीछे कोई विधान नहीं है। इसके साथ वह औपचारिकता भी नही है जो साधारणतः सन्धियों के साथ होती है, यह स्वतंत्र सम्मति से किया हुआ समझौता है, जिसे स्वतंत्र सम्मति से अन्त किया जा सकता है। इसलिये यदि यह सभा इसका अनुमोदन कर देती है तो उसके वाद कोई अन्य कानून वनाने की ज़रूरत नही है। इस घोषणा में राजा की स्थिति के संवंध में कुछ वहुत विशेष नही कहा गया है, सिवाय इसके कि वे एक प्रतीक होगे। यह विल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है—और पहले भी स्पष्ट कर दिया गया था—कि राजा के कोई कर्तव्य न होगे। उन्हे एक विशेप पद प्राप्त है। अगर मै कह सकता हूँ तो स्वयं कामनवेल्थ एक संस्था नही है; उसका कोई संगठन नही जिसके द्वारा वह कार्य करे, और राजा के भी कोई कर्तव्य नही हैं।

अव इससे कुछ परिणाम निकलते हैं। सिवाय इसके कि एक दूसरे के प्रति मैत्रीपूर्ण पहुँच हो, सिवाय इसके कि सहयोग की इच्छा हो—जो सदा इस वात पर निर्भर करेगा कि प्रत्येक पक्ष अपनी नीति का अनुसरण करते हुए किस मात्रा में सहयोग करना निश्चय करता है—कोई पावन्दी नही है। प्रतिज्ञावद्ध होने के रूप मे कोई पावन्दी नही है। लेकिन, ऐसी चीज़ उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है जो कि विल्कुल नई है; और मै एक ओर विधान शास्त्रियो का एक ऐसी वस्तु के प्रति किंचित् विचलित होना समझ सकता हूँ, जिसकी कि कोई मिसाल या नज़ीर नहीं। कुछ और लोग ऐसे भी हो सकते है, जो अनुभव करते हो कि इसके पीछे कोई ऐसी वात हो सकती है जिसे कि वे ठीक समझ नही रहे है, कोई

जोखिम या खतरे की बात, क्योंकि प्रत्यक्ष में तो यह बहुत सीधी-सादी चीज है। लोगों के मन में ऐसा सन्देह उठ सकता है। जो बात मैंने दूसरी जगह कही है, यहा उसे ही दुहराना चाहूँगा। जो कुछ सभा के सामने रक्खा गया है उनके अतिरिक्त इसके पीछे बिल्कुल कोई चीज नही है।

दो एक बातें मै स्पष्ट कर दूँ, जिनकी कि इस घोषणा में चर्चा नही हुई है। इनमें से एक जैसा मैंने कहा है, यह है कि राजा का कोई भी कार्य नही है। हमारी कार्यवाही के बीच में यह स्पष्ट कर दिया गया था, और निश्चय ही लन्दन में कांफ्रेंस के कार्य-विवरण में दर्ज कर लिया गया है। दूसरी बात यह थी कि इस प्रकार के कामनवेल्थ साहचर्य के उद्देश्यों में एक ऐसी अवस्था की सृष्टि करना है, जो बिल्कुल विदेशी और राष्ट्रीय होने के बीच की चीज हो। यह स्पष्ट है कि कामन-वेल्थ के देश विभिन्न राष्ट्रो के है। ये विभिन्न जाति के है। साधारणतः आप या तो राष्ट्रीय है या विदेशी। इनके बीच का कोई दर्जा नही। अब तक इस कामनवेल्थ या ब्रिटिश कामनवेल्थ अव् नेशन्स को आपस में बांधने वाली कडी राजा के प्रति निष्ठा थी। इसलिए इस कडी के रहते हुए, एक अर्थ में, एक मोटे ढंग की सम राष्ट्रीयता थी। वह टूट जाती है, हमारे गणराज्य होने के साथ समाप्त हो जाती है; और अगर हमारी इच्छा इन देशो में से किसी को विशेष सुविधा देने की या उससे रियायत करने की हो, तो साधारणतः ऐसा करने में हमारे लिए बाधा उत्पन्न होगी, क्योंकि "सब से अधिक कृपापात्र राष्ट्र सम्बन्धी धारा" के अनुसार हर एक देश उतना ही विदेशी होगा जितना कि कोई और देश। अब हम उस विदेशीपन को दूर करना चाहते है, और जो विशेष सुविधा या रियायत हम दूसरे देश को दे सकते है, उसे अपने हाथ में रखना चाहते है। यह मामला बिल्कुल दो देशो के आपस में सन्धि या समझौते द्वारा निर्णय करने का है, इस तरह हम एक नई स्थिति उत्पन्न करते है—या हम उत्पन्न करने की कोशिश करते है—यह कि दूसरे देश, यद्यपि एक अर्थ में विदेशी हैं, फिर भी बिल्कुल विदेशी नही है। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि इस विषय को आगे चल कर हम किस रूप में निबटाएँगे। यह इस भवन के निर्णय का विषय होगा—अर्थात् अगर हम चाहे तो कुछ सुविधाओं और रियायतों के संबध में, कामनवेल्थ देशों से व्यवहार करने के अधिकार, और केवल अधिकार को ग्रहण करना। ये क्या होंगे, इसका निर्णय बेशक हम प्रत्येक मामले में स्वयं करेंगे। इन बातो को छोड़ कर कोई बात गुप्त रीति से या अन्य प्रकार से ऐसी नही हुई है, जो जनता के सामने नही रख दी गई है।

इस भवन को स्मरण होगा कि एक मंजिल पर कामनवेल्थ की नागरिकता की कुछ बातचीत थी। अब यह समझना कठिन था कि कामनवेल्थ की नागरिकता का क्या पद होगा, सिवाय इसके कि इसके अर्थ यह होते कि सदस्य एक दूसरे के प्रति

बिल्कुल विदेशी नही है । वह गैर-विदेशीपन बना रहता है, लेकिन मैं समझता हूं कि यह अच्छा हो कि हम एक अस्पष्ट चीज़ के विषय मे जिसकी निश्चय ही परिभाषा नही हो सकती बात करना छोड़ दे, लेकिन दूसरी बात, जैसा मैंने अभी बताया है, बनी रहती है। यह कि इसका अधिकार हम अपने पास रक्खें कि अगर हम किसी समय उसका उपयोग करना चाहे और कामनवेल्थ देशो से परस्पर विशेष सुविधा या रियायत पाने के लिए सधि या समझौता करना चाहे, तो कर सकते है ।

मैंने संक्षेप मे इस सभा के सामने यह लेख रख दिया है। यह एक सीधा-सा लेख है और फिर भी जैसा कि यह सभा जानता है यह बहुत ही महत्त्व का लेख है, बल्कि यह कि इसमें जो विषय अन्तर्गत है वह बड़े और ऐतिहासिक महत्त्व का है। मै इस कान्फ्रेंस में कुछ सप्ताह हुए, भारत के प्रतिनिधि के रूप में गया था। मैंने अपने सहयोगियों से बेशक यहां पहले से परामर्श कर लिया था, क्योकि यह एक बड़ी ज़िम्मेदारी की बात थी, और जब कि भारत के भविष्य की बाजी लगी हुई हो, कोई आदमी इतना बड़ा नही जो अकेले इस ज़िम्मेदारी को अपने कन्धो पर ले सके। कई महीने पहले से हम लोगो ने आपस में इस पर परामर्श किया था, बड़े और प्रतिनिधि रूप संगठनो से परामर्श किया था, इस सभा के बहुत से सदस्यो से परामर्श कर लिया था। फिर भी जब मै गया तो मै यह ज़िम्मेदारी लेकर गया और इसके बोझ का अनुभव करता रहा । मुझे सलाह देने के लिए सुयोग्य साथी थे, लेकिन भारत के प्रतिनिधि के रूप में मै ही अकेला था, और एक अर्थ में उस क्षण के लिए भारत का भविष्य मेरी रखवाली में था । इस अर्थ में मै अकेला था, और फिर भी बिल्कुल अकेला न था, क्योकि जब मै हवाई मार्ग से यात्रा कर रहा था और जब मै कान्फ्रेंस की मेज़ पर बैठा था, मेरे जीवन के अनेक अतीत दिनों की प्रेतात्माएं मुझे घेरे हुए थी और एक के बाद एक चित्र मेरे सामने उपस्थित कर रही थीं, जो प्रहरियो और अभिभावको की भांति मेरी निगरानी कर रही थीं और शायद मुझ को जता रही थी कि कही फिसल कर मै गिर न पड़ूं या उन्हे भूल न जाऊं। मुझे स्मरण आया उस दिन का, जैसा कि बहुत से माननीय सदस्य भी स्मरण करेगें, जब कि १९ वर्ष पहले रावी नदी के तट पर आधी रात के समय हमने एक प्रतिज्ञा की थी और मैंने पहली बार याद किया २६ जनवरी को, और कठिनाइयों और रुकावटो के बावजूद प्रतिवर्ष बार-बार दुहराई जाने वाली प्रतिज्ञा का स्मरण किया और अन्त में मैंने उस दिन की याद की जब कि इसी जगह से मैंने इस सभा के सामने एक प्रस्ताव रक्खा था। इस माननीय भवन के सामने सर्व प्रथम आने वाले प्रस्तावो में से वह एक था, और वह प्रस्ताव "ध्येय विषयक प्रस्ताव" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से दो वर्ष और पाच महीने बीत चुके हैं। उस प्रस्ताव मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि किस प्रकार की स्वतन्त्र सरकार या कैसा गणराज्य हम चाहते है । बाद मे एक दूसरे स्थान पर, और एक प्रसिद्ध अवसर पर यह विषय भी विचार के लिए सामने

आया। यह कांग्रेस के जयपुर के अधिवेशन की बात है, क्योंकि न केवल मेरा दिमाग बल्कि और बहुत से दिमाग इस समस्या से आन्दोलित थे, और ऐसा मार्ग निकाल लेने के प्रयत्न में थे कि भारत के सम्मान, प्रतिष्ठा और स्वातंत्र्य के अनुरूप कोई हल निकल आवे, जो कि बदलते हुए संसार के साथ और वस्तु स्थिति से भी मेल खाता हो। कोई हल जो भारत के हित को आगे बढ़ाए, हमारी मदद करे, संसार की शान्ति के लिए हितकर हो, साथ ही जो हमारी प्रत्येक प्रतिज्ञा के बिल्कुल और पक्की तरह अनुकूल हो। यह मेरे लिए स्पष्ट था कि कामनवेल्थ या किसी और वर्ग के साहचर्य से जो भी लाभ हो, कोई भी लाभ ऐसा नहीं, वह चाहे जितना बड़ा हो, जिसे कि अपनी प्रतिज्ञाओ के किञ्चिन्मात्र अंश को छोड़कर खरीदा जा सके, क्योंकि कोई देश अपने घोषित सिद्धान्तो के साथ खिलवाड़ करके उन्नति नही कर सकता। इसलिए इन महीनो में हमने विचार किया और आपस में परामर्श किया, और जो सलाह मुझे मिली, वह सब लेकर मैं गया। कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, उसे, आप को स्मरण दिलाने के लिए, शायद मैं पढ़ सुनाऊँ, तो अच्छा हो। इसमें आपकी रुचि होगी और मैं आप से अनुरोध करूँगा कि इसकी शब्दावली पर आप ठीक-ठीक विचार करें।

"पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति और भारत मे गणराज्य की स्थापना की दृष्टि से, जो स्वतंत्रता का प्रतीक होगा और भारत को संसार के राष्ट्रों में वह सम्मानपद दिलाएगा, जिसका कि वह अधिकारी है, उसके संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) और कामनवेल्थ आफ नेशन्स से वर्तमान सम्बन्ध में आवश्यक रूप से परिवर्तन होना अनिवार्य है। तथापि भारत दूसरे देशो से ऐसे सम्बन्ध बनाए रखना चाहता है, जो उसके कार्य-स्वातंत्र्य और स्वतंत्रता में बाधक न हो, और कांग्रेस कामनवेल्थ के स्वतंत्र राष्ट्रो के साथ, सामान्य हित में और विश्व शान्ति की उन्नति के लिए उनके स्वतंत्र साहचर्य का स्वागत करेगा।"

आप देखेंगे कि इस प्रस्ताव की अन्तिम कुछ पंक्तियां प्राय वही हैं जो कि लन्दन की घोषणा की है।

अब तक की अपनी सभी प्रतिज्ञाओ से परिचालित और नियंत्रित होकर और अन्त में इस माननीय सभा के प्रस्ताव से, ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव से और उसके बाद जो कुछ हुआ, उससे और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के इस प्रस्ताव में दिए गए आदेश से परिचालित और नियमित होकर मैं वहां गया; और आज आपके सामने पूरी विनम्रता से यह कहने के लिए खड़ा हूँ कि मैंने शब्दशः आदेश को पूरा किया है। हम में से सभी पिछले बहुत वर्षो में अन्धेरे पथ से गुजरे हैं; हम लोगों ने अपने जीवन विरोध करने में, युद्ध करने में, कभी जीत और कभी हार में बिताए हैं, और

हम में से अधिकतर इन स्वप्नों और अतीत की कल्पनाओं से, और उन आशाओं से जो हमें अनुप्राणित करती थी और उन विफलताओं से जो कि इन आशाओं के बाद होती थी, अब भी अभिभूत हैं। फिर भी हमने देखा है कि विफलताओं और निराशाओं के चुभते हुए कांटों के बीच से हम सिद्धि के गुलाब को चुन सके हैं।

जो घटनाएं बीत चुकी हैं और अब मौजूद नही है उनकी दृष्टि से स्थिति पर वचार करके हमको गुमराह होने से बचना चाहिए। आप देखेंगे कि कांग्रेस का जोप्रस्ताव मैंने पढ़कर सुनाया है उसमें यह स्पष्ट है कि चूकि भारत गणतंत्र हो रहा है, इसलिए भारत और कामनवेल्थ के सम्बन्ध मे परिवर्तन होना चाहिए। आगे वह यह भी कहता है कि स्वतंत्र साहचर्य बना रह सकता है, शर्त यह है कि हमारी पूर्ण स्वतंत्रता सुनिश्चित रहे। अब लन्दन की इस घोषणा में ठीक यही बात करने का प्रयत्न हुआ है मैं आप से या किसी माननीय सदस्य से यह पूछता हूँ कि भारत की आज़ादी और स्वतंत्रता किञ्चिन्मात्र भी किस प्रकार सीमित हुई है। मैं नही समझता कि ऐसा हुआ है। वास्तव मे न केवल भारत की स्वतंत्रता पर, बल्कि कामनवेल्थ के प्रत्येक राष्ट्र की स्वतंत्रता पर, अधिक से अधिक जोर दिया गया है।

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि एक ऐसे कामनवेल्थ में, जिसमें जातिगत-भेदभाव बरता जाता है, जिसमें और बातें होती रहती है जिन पर हम आपत्ति करते है, हम कैसे शरीक हो सकते हैं। मैं समझता हूँ यह एक उचित प्रश्न है, और यह एक ऐसा मामला है जो आवश्यक रूप से हमारे विचार को आंदोलित करेगा। फिर भी, यह ऐसा प्रश्न है जो वास्तव में उठता नहीं। तात्पर्य यह है कि जब हम किसी राष्ट्र या राष्ट्रों के वर्ग से मित्रता करते है तो इसका यह अर्थ नही होता कि हम उनकी और नीतियों को स्वीकार करते है, इसका यह अर्थ नहीं होता कि जो कुछ वह करे हम उससे बंध जाते है। वास्तव मे यह सभा जानता है कि हम या हमारे देशवासी इस समय संसार के विविध भागों में जातिगत भेदों के विरुद्ध युद्ध करने मे लगे हुए है।

यह सभा जानता है कि पिछले कुछ वर्षों मे, संयुक्त राष्ट्रों के सामने जो बड़े प्रश्न रहे है उनमे भारत की प्रेरणा से, एक प्रश्न दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति का रहा है। सदन की आज्ञा से, एक क्षण के लिये, क्या मैं कल की एक घटना की चर्चा करूं, अर्थात् संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा में स्वीकृत प्रस्ताव का, और जिस रूप मे इस विषय मे हमारे प्रतिनिधि मंडल ने कार्य किया है उसकी श्लाघा करूं और संयुक्त राष्ट्रो के उन सभी राष्ट्रों की श्लाघा करूं—जिनमें कि दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर प्राय: सभी है—जिन्होने कि भारत के रुख का समर्थन किया? हमारी वैदेशिक नीति का एक आधार स्तंभ, जिसकी कि बार-बार चर्चा हो चुकी है यह है कि जातिगत भेदभावों का विरोध किया

जाय और दलित राष्ट्रों की स्वतंत्रता के लिये लड़ा जाय। कामनवेल्थ में बने रह कर क्या आप इस प्रश्न पर पीछे हट रहे हैं? दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के प्रश्न पर और अन्य प्रश्नों पर, यद्यपि हम अब तक कामनवेल्थ के आधिपत्य में रहे हैं, हम अब भी लड़ते आये हैं। इस विषय को कामनवेल्थ के क्षेत्र में ले आना एक भयावह बात होगी। क्योंकि तब ठीक वही बात जिन पर कि आप और हम आपत्ति करते हैं, घटित हो सकती है, अर्थात्, कामनवेल्थ को एक प्रकार की उच्चतर संस्था मान लें, जो कभी-कभी न्यायाधीश का या सदस्य राष्ट्रों पर निरीक्षण का कार्य करती है। उसका निश्चय ही यह अर्थ होता कि हमारी स्वतंत्रता और सर्वोपरि सत्ता में कमी आती—यदि हमने उस सिद्धांत को एक बार स्वीकार कर लिया होता। इसलिये, हम इसके लिये तैयार नहीं हैं कि कामनवल्थ को इस रूप में स्वीकार करें, या कामनवेल्थ के सामने कामनवेल्थ राष्ट्रों के झगड़े ही लावें। हम लोग बेशक मैत्रीपूर्ण ढंग से इस मामले पर विचार-विनिमय कर सकते हैं, यह अलग बात है। हम कामनवेल्थ के अन्य देशों में अपने देशवासियों की स्थिति की रक्षा करने के लिये चिंतित हैं। जहा तक हमारा संबंध है, हम उनकी घरेलू नीतियो पर वहां आपत्ति नही उपस्थित कर सकते, न हम किसी देश के बारे में कह सकते है कि हम चूंकि उस देश की कुछ नीतियो को नापसन्द करते हैं, इसलिये हम उससे संपर्क नहीं रक्खेंगे।

1713

अगर हम यह रुख ले लें, तो मुझे भय है कि हमारा किसी देश से भी कदाचित ही कोई संबंध बना रह सके, इसलिये कि हमने उस देश द्वारा की हुई किसी न किसी बात को नापसन्द किया है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मतभेद इतना बढ जाता है कि या तो आप उस देश से संबंध तोड़ देते हैं या संघर्ष होता है। कुछ वर्ष हुए संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा ने अपने सदस्य राष्ट्रों से यह सिफारिश करने का निश्चय किया कि वह स्पेन से अपने अपने राजदूतों को वापस बुला लें, क्योकि स्पेन को एक फासिस्ट देश समझा गया। इस प्रश्न के गुण-दोष में मैं नहीं जाना चाहता। कभी-कभी इस रूप में प्रश्न सामने आता है। यह प्रश्न फिर सामने आया और उन्होंने अपने पूर्व निर्णय को पलट दिया और प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को यह स्वतंत्रता दे दी कि वह जैसा उचित समझे करे। यदि आप इस तरह चलते है तो किसी भी बड़े या छोटे देश को ले लीजिये : सोवियत संघ की सभी बातों से आप सहमत नहीं, इसलिये हम वहां प्रतिनिधि क्यो भेजें या व्यापार-वाणिज्य संबंधी किसी तरह की मित्रता की संधि उससे क्यो करें? आप संयुक्त राष्ट्र अमरीका की कुछ नीतियों से असहमत हो सकते हैं, इसलिये आप उनसे संधि नहीं कर सकते। राष्ट्रों के काम करने का, या कोई भी काम करने का, यह तरीका नहीं है। मेरी समझ में, इस दुनिया में वह पहली चीज जिसे कि हमें समझना चाहिये यह है कि विचार के विविध ढंग है, रहन-सहन के विविध ढंग हैं, और

संसार के विविध भागो मे जीवन के प्रति दृष्टिकोण विविध है। हमारी अधिकाश मुसीबतें इस कारण होती है कि कोई एक देश अपनी इच्छा, अपने रहन-सहन का ढग, दूसरे देशो पर लादना चाहता है। यह सही है कि कोई भी देश अलग-अलग होकर नही रह सकता, क्योकि आज का ससार इस प्रकार निर्मित है कि वह अधिकाधिक एक संगठित रूप ग्रहण कर रहा है। अगर कोई देश जो अलग-अलग रह रहा हो, ऐसी वात करता है जिससे कि दूसरे देशो को खतरा हो, तो दूसरे देशो को हस्तक्षेप करना पडता है। एक स्पष्ट उदाहरण देता हूं अगर कोई देश अपने को सभी तरह के भयानक रोगो का उत्पादन-क्षेत्र वन जाने देता है, तो दुनिया को हस्तक्षेप करके उसे साफ करना पड़ेगा, क्योकि वह यह नही होने दे सकती कि रोग सारी दुनिया में फैले। इस विषय में एक ही निरापद सिद्धांत हो सकता है, वह यह कि कुछ सीमाओ को स्वीकार करते हुए, हर एक देश को अपने ढंग से अपना जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता हो।

इस समय संसार मे कई विचार धाराए है, और इन विचारधाराओ के परिणामस्वरूप वड़े संघर्ष होते है। कौन सी ठीक है, कौन सी गलत, इस पर हम फिर विचार कर सकते है, हो सकता है कि इन सव से कोई भिन्न वस्तु ही ठीक हो। अगर आप एक वड़ा संघर्ष, एक वड़ी लड़ाई नही चाहते, जिसमें कि इस या उस राष्ट्र की जीत हो तो आपको उन्हे अपने-अपने प्रदेशों में शांतिपूर्वक रहने देना पड़ेगा और उन्हे अपने विचार, अपने रहन-सहन, अपने राज्य के ढाचे के विषय मे स्वतंत्र छोड़ देना पड़ेगा, और कौन अन्त में ठीक है इस वात को घटनाओं को निश्चित करने देना होगा। मुझे कोई भी संदेह नही कि अन्त में वही प्रथा जीवित रहेगी जो अपनी उपयोगिता सिद्ध करके दिखा देती है,—वह सिद्ध इस तरह से कर सकती है कि मनुष्य जाति की या उस विशेष देश के लोगो की उन्नति और तरक्की हो—और चाहे सिद्धांत की जितनी वकवक हो, चाहे जितने युद्ध हो, वह पद्धति जो अपनी उपयोगिता सिद्ध करके नही दिखाती, जीवित नही रह सकती। मै इसकी चर्चा इसलिये कर रहा हूँ कि इस प्रकार का तर्क उपस्थित किया गया था कि भारत कामनवेल्थ में इसलिये शरीक नही हो सकता कि वह कामनवेल्थ राष्ट्रों की कुछ नीतियो को नापसन्द करता है। मै समझता हूँ कि हमे इन दो वातों को विल्कुल अलग-अलग रखना चाहिये।

हम कामनवेल्थ मे स्पष्टतया इसलिये सम्मिलित होते है कि यह हमारे लिये और संसार के कुछ उद्देश्यो के लिये जिन्हे कि हम अग्रसर करना चाहते हैं, हितकर है। कामनवेल्थ के और देश इसलिये चाहते है कि हम उसमें वने रहे कि वे समझते है कि ऐसा उनके हित में होगा। आपस में यह समझी हुई वात है कि ऐसा साहचर्य कामनवेल्थ के राष्ट्रों के लिए हितकर है, इसलिये वे सम्मि-

लित होते है। साथ ही, यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी गई है कि हर एक देश अपने मार्ग पर जाने के लिये स्वतंत्र हैं, यह हो सकता है कि वह कभी-कभी इतनी दूर चले जाय कि कामनवेल्थ से संबंध विच्छेद कर लें। आज की दुनिया में, जहां इतनी विच्छेदकर शक्तियां काम कर रही है, जहा हम अक्सर युद्ध की सन्निकट सीमा पर रहते है, मैं समझता हूं कि जो कोई साहचर्य भी मौजूद हो उसे तोड़ने का प्रोत्साहन देना निरापद नही है। उसके बुरे अंग को तोड़िए, आप की वृद्धि के मार्ग में जो कोई वस्तु बाधक होती हो, उसे तोड़िए, क्योंकि कोई चीज जो एक राष्ट्र की वृद्धि के मार्ग में बाधक होती हो, उसे स्वीकार करने का कोई साहस नही कर सकता। नही तो, किसी भी साहचर्य के बुरे हिस्सों को तोड़ने से अलग यह ज्यादा अच्छा है कि एक सहयोगी संबंध को, जिससे संसार की भलाई हो सकती है, बनाये रक्खा जाय, न कि तोड़ा जाय।

अब यह घोषणा जो कि आपके सामने रक्खी गई है कोई नई कार्रवाई नही है, और फिर भी, एक ऐसी वस्तु का, जो अब तक बिल्कुल दूसरे रूप में रही है, यह एक नई दिशा में प्रवर्तन है। मान लीजिये कि इंग्लिस्तान से हमारा संबंध बिल्कुल टूट गया होता, और उसके बाद हम पुनः कामनवेल्थ अव् नेशन्स में सम्मिलित होना चाहते, तो वह एक नई कार्रवाई होती। मान लीजिये कि राष्ट्रो का कोई नया दल चाहता कि हम उसके साथ सम्मिलित हों, तब यह एक नई कार्रवाई होती, और उसके विविध परिणाम होते। इस अवसर पर, जो हो रहा है वह यह है कि एक विशेष साहचर्य काफी समय से अस्तित्व में रहा है। उस साहचर्य के ढंग में, लगभग एक वर्ष और आठ-नौ महीने से, १५ अगस्त, १९४७ से, एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। अब एक दूसरे बड़े परिवर्तन का विचार हो रहा है। क्रमशः धारणा बदल रही है। फिर भी वह एक खास कड़ी दूसरे रूप में बनी रहती है। अब, राजनैतिक दृष्टि से हम पूर्णतया स्वतंत्र है। आर्थिक दृष्टि से हम उसी प्रकार स्वतंत्र है जिस प्रकार कि कोई स्वतंत्र राष्ट्र हो सकता है। कोई भी सौ-प्रतिशत स्वतंत्र नही हो सकता, इस अर्थ में कि परस्परिक निर्भरता रह ही न जाय। फिर भी भारत को, अपने व्यापार के लिये, अपने वाणिज्य के लिये, बहुत और सी चीजें जिनकी उसे जरूरत है उनके लिये शेष संसार पर निर्भर रहना पडता है, और आज दुर्भाग्य से उसे अपने आहार के लिये भी, और दूसरी चीजो के लिये निर्भर रहना पड रहा है। हम दुनिया से बिल्कुल अलग होकर नही रह सकते। अब, यह सदन जानता है कि पिछले सौ बल्कि अधिक वर्षों से अनिवार्य रूप से इंग्लिस्तान और इस देश के बीच अनेक प्रकार के संपर्क हुए, उनमें से बहुत से बुरे थे, बहुत बुरे थे, और उनका अन्त करने में हमने अपनी जिन्दगियां खपा दी। बहुत से सम्पर्क उतने बुरे नहीं हैं, बहुत से अच्छे हो सकते हैं, और बहुत से, चाहे वे अच्छे हो चाहे बुरे, अब भी बने हुए हैं। यहां पर मैं स्वयं इन संपर्कों की एक स्पष्ट मिसाल

हूँ, जो कि इस माननीय सदन के सामने अंग्रेजी में बोल रहा हूँ। निस्संदेह हम अपने व्यवहार की भाषा को बदलने जा रहे हैं, फिर भी यह बात अपनी जगह पर है कि मैं ऐसा कर रहा हूँ, और बहुत से सदस्य जो बोलेंगे वे भी ऐसा करेंगे। यह भी एक तथ्य है कि हम यहाँ जर कुछ नियमों और पाबन्दियों को स्वीकार करते हुए अपना कार्य संचालन कर रहे हैं जो ब्रिटिश विधान को आदर्श मान कर ग्रहण की गई है। जो कानून कि आज चल रहे हैं, वे अधिकांश में उनके बनाये हुए हैं। क्रमश हम इनमें से अच्छे कानूनों को बने रहने देंगे और जो खराब हैं उन्हें फेंक देंगे। यदि कोई अकस्मात् परिवर्तन किया जाय और रिक्त स्थान की पूर्ति न हो तो वह अहितकर होगा। हमारे शिक्षा संगठन पर इन संपर्को का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इन्हीं बातो का हमारे फौजी संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ा है और उसका स्वाभाविक विकास ब्रिटिश सेना के अनुरूप हुआ है। अगर हम उसको बिल्कुल छोड़ देते हैं और दूसरे प्रकार से उसके संचालन का प्रबंध नही करते तो परिणाम यह होता है कि एक व्यवधान उपस्थित होता हैं। बेशक, यदि हम उसका मूल्य चुकाना चाहते है, तो हम ऐसा करें, हम अगर मूल्य नहीं चुकाना चाहते तो हम न चुकाएं और परिणाम का सामना करें।

लेकिन प्रस्तुत विषय के संबंध में हमे न केवल इन छोटे लाभों पर विचार करना है, जिनकी मैंने अभी आपसे चर्चा की है बल्कि अगर मैं कह सकता हूँ, तो संसार की समस्याओ के प्रति एक अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करना है। जब मैं वहां लंदन में दूसरी सरकारों के प्रतिनिधियों से विचार विनिमय कर रहा था, तब मैंने अनुभव किया कि भारत गणतंत्र की पूर्ण स्वतंत्रता और सर्वोपरि सत्ता पर मुझे अनिवार्य रूप से पूरी तरह दृढ़ रहना है। किसी विदेशी शासन के प्रति निष्ठा स्वीकार करके कोई समझौता करना मेरे लिए असंभव था। मैंने यह भी अनुभव किया कि संसार की जैसी हालत है और भारत और एशिया की जैसी हालत है, उसे देखते हुए यह अच्छा होगा कि अगर हम इस प्रश्न पर मैत्रीभाव से पहुंचने का प्रयत्न करें, जिससे एशिया की और दूसरी समस्याओं का हल हो सके। मुझे भय है मैं सौदा करने में अच्छा नहीं हूँ। मै बाजार के तरीकों मे अभ्यस्त नहीं हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मैं अच्छा योद्धा हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि मै अच्छा मित्र हूं। मैं इन दोनों के बीच का कुछ नही हूँ, और इसलिए जब आपको किसी विषय मे बहुत मोल तोल करना हो तो आप मुझे न भेजा करें। जब आप लड़ना चाहें तो मैं आशा करता हूँ कि मैं लड़ सकूंगा, और जब आप किसी बात का निश्चय कर ले तो उस पर डटे रहें, मरते दम तक डटे रहें, लेकिन छोटी बातो के बारे में मैं समझता हूँ कि यह कहीं बेहतर है कि दूसरे पक्ष की हम सत्कामना प्राप्त करें। यह कही अधिक मूल्यवान है कि हम मैत्रीभाव से और सत्कामना के साथ किसी निर्णय पर पहुंचें बजाय इसके कि सत्कामना खोकर जहाँ-तहाँ एक शब्द में अपनी जीत करें।

इस प्रकार मैंने इस समस्या को देखा। और क्या मैं बताऊं कि दूसरों के विषय में मैंने क्या अनुभव किया? मैं ब्रिटेन के प्रधान मंत्री की प्रशंसा करना चाहूंगा, और दूसरों की भी, क्योंकि उन्होंने भी इसी भावना से इस समस्या को देखा, इस दृष्टिकोण से नहीं कि विवाद के विषय में किसी बात पर उनकी जीत हो जाय या घोषणा में जहाँ-तहाँ एकाध शब्द बदल दिये जायं। यह संभव था कि यदि मैं जी तोड़ प्रयत्न करता तो इस घोषणा में जहाँ-तहाँ एकाध शब्द बदल जाते, लेकिन उसके सार में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था क्योंकि उस घोषणा से जो सिद्ध होता है उससे अधिक हमें सिद्ध नहीं करना था। मैंने ऐसा करना पसद नहीं किया क्योंकि मैंने यह प्रभाव—और मैं आशा करता हूँ कि ठीक प्रभाव—डालना पसंद किया कि भारत का दृष्टिकोण इन तथा संसार की अन्य समस्याओं के प्रति संकीर्णता का नहीं है। यह दृष्टिकोण ऐसा है जो उसकी अपनी शक्ति और उसके अपने भविष्य के प्रति विश्वास और आस्था पर आधारित है और इसलिए उसे भय नहीं कि कोई देश इस विश्वास को डिगा सकेगा, वह किसी लेख के किसी शब्द या वाक्यांश से भयभीत नहीं, बल्कि उसका निर्णय मूलतया इस बात पर आधारित है कि यदि आज किसी देश के प्रति मैत्री भाव, सत्कामना और उदारता दिखाते है, तो वैसा ही दूसरा भी करेगा, और कदाचित् वह और भी उदार व्यवहार करेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि जिस तरह व्यक्तियो के साथ व्यवहार में होता है, उसी तरह राष्ट्रो के साथ व्यवहार में भी अर्थात् सत्कामना प्रदर्शित करने पर ही आपको सत्कामना प्राप्त हो सकेगी, और आप चाहे जितनी चतुराई दिखाइये या षड्यंत्र कीजिये बुरे तरीको के अच्छे परिणाम नही निकलेंगे। इसलिए मैंने सोचा कि यह केवल इंग्लिस्तान को प्रभावित करने का अवसर नही है बल्कि औरो को भी, वास्तव में कुछ हद तक सारे ससार को प्रभावित करने का अवसर है, क्योंकि जिस विषय पर १० नम्बर डाउनिंग स्ट्रीट में विचार हो रहा था, वह ऐसा था, जिस पर कि सारे संसार की निगाहें थी। इसने ससार का ध्यान कुछ तो इसलिए आकर्षित किया कि भारत एक बहुत महत्व रखनेवाला देश है, प्रच्छन्न रूप से और वस्तुतः भी और ससार की दिलचस्पी इस बात को देखने में थी कि यह अत्यन्त जटिल और कठिन समस्या, जो जान पड़ती थी हल न हो सकेगी, कैसे हल होती है। अगर हम उसे प्रख्यात विधान शास्त्रियो पर छोड देते तो यह हल न हो पाती। जीवन में विधान शास्त्रियों की उपयोगिता है; लेकिन सब जगह उनकी पहुंच न होनी चाहिये। यह समस्या उन संकीर्ण मन वाले राष्ट्रवादियो द्वारा भी हल नही हो सकती थी, जो दाहिने या बायें देख सकने में असमर्थ है, बल्कि अपने ही संकीर्ण क्षेत्र में रहते है, और इसलिए भूल जाते है कि संसार आगे बढ़ रहा है। यह उन लोगों द्वारा भी नही हल हो सकती थी जो कि अतीत में लिपटे रहते हैं। और इस बात का अनुभव नही करते कि वर्तमान अतीत से भिन्न है, और भविष्य उससे और भी भिन्न होने जा रहा है। यह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं हल हो सकती थी, जिसका कि भारत में और भारत के भविष्य में विश्वास नहीं है।

मै चाहता था कि ससार देखे कि भारत में आत्म विश्वास की कमी नही है, और भारत उन लोगों से भी सहयोग करने को तैयार है, जिनसे कि वह अब तक लड़ाई कर रहा था, शर्त यह है कि आज के सहयोग का आधार सम्मानपूर्ण हो, यह आधार स्वतंत्र हो, और यह आधार ऐसा हो जिससे केवल हमारा नही बल्कि ससार का भी भला हो सकता है। तात्पर्य यह कि हम सहयोग से केवल इसलिए इन्कार नही करेंगे कि अतीत में हमारी किसी पक्ष से लड़ाई रही है, और इस तरह पिछले कर्म की लकीर पीटते रहे। हमें बीते हुए समय की बुराइयो को धो डालना है। मै चाहता था, अगर मै पूरी विनम्रता से ऐसा कह सकता हूँ कि संसार को चीजों के प्रति एक नई दृष्टि परम्परा मे देखने का अवसर दूँ, बल्कि यह प्रयत्न करके देखने का अवसर दूँ कि महत्त्वपूर्ण प्रश्नो को किस तरह देखना और हल करना चाहिये। संसार की सभाओं में जो विवाद में चलते रहते है, हमने एक कटु दृष्टिकोण पाया है, एक दूसरे को बुरा भला कहते पाया है, और दूसरे पक्ष को समझने की नही, बल्कि जानबूझ कर उसकी बातो का गलत अर्थ लगाने की और चतुरता-पूर्वक तर्क प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति पाई है। अब, हममे से कुछ के लिए यह कार्य संतोषजनक प्रतीत हो सकता है– यह कि कुछ अवसरो पर चतुराई की बात निकाल लें, और अपने लोगों की या दूसरे लोगों की प्रशंसा प्राप्त कर लें। लेकिन संसार की आज जो हालत है, उसमें किसी भी जिम्मेदार व्यक्ति का ऐसा करना, एक घटिया बात होगी,–जबकि हम भीषण युद्धों की निकट आशंका में रह रहे है, जबकि राष्ट्रीय आवेग जगे हुए हैं, और जबकि यों ही कहा गया एक शब्द भी स्थिति में महान परिवर्तन ला सकता है।

कुछ लोगो का ख्याल है कि हमारे कामनवेल्थ अब नेशन्स में सम्मिलित होने से या बने रहने से हम अपने एशियाई पड़ोसियो से दूर हो रहे है या हमारे लिए और देशो से दुनिया के बड़े देशों से सहयोग करना कठिन हो गया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि कामनवेल्थ में रहते हुए और देशों के साथ निकटतर संपर्क का विकास कर लेना जितना आसान है, उतना दूसरी तरह न होता। यह कहना एक अजीब बात है। फिर भी मै ऐसा कहता हूँ, और मैंने इस विषय पर बहुत विचार किया है। कामनवेल्थ दूसरे देशों से मैत्री या सहयोग करने के हमारे मार्ग में बाधक नहीं है। निर्णय अन्त में हमें ही करना होगा, और वह निर्णय हमारी शक्ति पर निर्भर करेगा। अगर हम अपने को कामनवेल्थ से पृथक कर लेते हैं तो तत्काल हम बिलकुल अलग-अलग हो जाते हैं। हम बिलकुल अलग-अलग बने नही रह सकते, इसलिए अनिवार्य रूप से परिस्थितियों के दबाव में, हमें किसी न किसी दिशा में झुकना पड़ेगा। लेकिन वह किसी दिशा में झुकना लाजिमी तौर पर आदानप्रदान के आधार पर होगा। यह संधि के रूप में हो सकता है, आप कुछ चीज दें और कुछ बदले में प्राप्त करें। दूसरे शब्दो में, जितनी हमारी वर्तमान वाग्बद्धता है, वह उससे अधिक हो

सकती है। आज तो हमारी कुछ भी वाग्बद्धता नही। इसी अर्थ में मै कहता हूं कि दूसरे देशो से मैत्रीपूर्ण समझौता करने के लिए आज हम अपेक्षाकृत ज्यादा स्वतंत्र हैं, और अगर आप चाहें तो यह कह लें कि हम और देशों के बीच आपस का समझौता करने के लिए सेतु-रूप में अपना कार्य करने के लिए भी अधिक स्वतंत्र हैं। इस बात को मैं बहुत बढ़ा कर नहीं कहना चाहता; फिर भी, इसे बहुत घटा कर कहने में भी कोई लाभ नही। मैं चाहूंगा कि आप आज की दुनिया पर चारो ओर नजर दौड़ायें, और विशेषकर पिछले लगभग दो वर्षों में भारत और शेष दुनिया की सापेक्ष स्थिति पर विचार करें। मैं समझता हूं, आप को यह ज्ञात होगा कि इस दो वर्ष या इससे कम समय में, भारत राष्ट्रो की तराजू में अपने प्रभाव और प्रतिष्ठा में बढ गया है। मेरे लिए यह बताना कुछ कठिन है कि ठीक-ठीक भारत ने क्या किया है या क्या नहीं किया है। किसी के लिए भी यह आशा करना बे-मतलब होगा कि भारत संसार के सभी ध्येयो के पक्ष में लड़ाई छेड़ दे और कुछ कर दिखावे। जिन मामलों में उसे सफलता मिली है, यह कोई छतो पर चढ़ कर घोषणा करने की बात नहीं है। लेकिन जिस बात को प्रकट करने की आवश्यकता है, वह भारत की ससार के मामलो में प्रतिष्ठा तथा प्रभाव की है। यह ख्याल करते हुए कि वह स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अभी डेढ़ साल या कुछ अधिक समय से क्षेत्र में आया है, भारत ने जो कार्य किया है वह आश्चर्यजनक है।

मैं एक बात और कहना चाहूंगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की घोषणा में या उस प्रस्ताव में जो कि मैंने सभा के सामने रखा है, सशोधन की गुंजाइश नही है। या तो यह स्वीकार किया जाता है, या यह गिर जाता है। मुझे आश्चर्य होता है यह देख कर कि कुछ माननीय सदस्यो ने सशोधन के प्रस्तुत करने की सूचना दी है। किसी विदेशी शक्ति से हुई सधि को आप स्वीकार कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं। यह आठ-या नौ देशो की सम्मिलित घोषणा है। यह स्वीकार की जा सकती है या अस्वीकार की जा सकती है। इसलिए, मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि इस विषय में सब पहलुओं पर विचार कीजिये। पहले तो इस बात पर अपना सतोष कर लीजिये कि यह हमारी पुरानी प्रतिज्ञाओ के अनुकूल है, और उनमें से किसी को तोड़ना नही है। यदि यह बात मुझ पर सिद्ध कर दी जाती है कि यह हमारी किसी प्रतिज्ञा को तोड़ती है, या किसी रूप में यह भारत की स्वतंत्रता को सीमित करती है, तो निश्चय ही इसे स्वीकार करने में मेरा कोई हाथ न होगा। दूसरे, आपको देखना चाहिये कि इससे हमारा और दुनिया का भला होता है या नही। मैं समझता हूँ इसमें सदेह नहीं हो सकता कि इससे हमारा भला होता है, और इस साहचर्य का हमारे लिए बनाये रखना इस समय लाभदायक है, और यह एक विस्तृत अर्थ में लाभदायक है, अर्थात् कुछ ऐसे लोकव्यापी उद्देश्यो के हित में है जिनका कि हम प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। और अन्त में, अगर मैं इसे नकारात्मक ढंग से कहूं, इस समझौते का न करना निश्चय

ही उन लोकव्यापी उद्देश्यो के लिए और हमारे लिए अहितकर होगा ।

और अन्त में इस विषय मे, कहना चाहूंगा कि इस सभा को इस घोषणा का और उस सारी बातचीत का, जिनके परिणाम स्वरूप यह घोषणा हुई है, क्या मूल्य लगाना चाहिये । यह सब एक ऐसे ढंग से हुआ है, , वांछनीय ढंग से हुआ है, जिससे कि घाव भर जाते है। इस दुनिया मे, जो आज रुग्ण है, और जिसके पिछले दस या अधिक साल के अनेक घाव अभी भरे नही है, यह आवश्यक है कि हम लोकव्यापी समस्याओं को आवेश या पक्षपातपूर्ण ढंग से न स्पर्श करे, बल्कि मैत्रीपूर्ण ढंग से, और एक ऐसे स्पर्श के साथ जो कि घाओं को भरे, और मै समझता हूँ कि इस घोषणा का और उससे पहले जो हुआ उसका मुख्य मूल्य यह था कि इससे हमारे कुछ देशो से संबंधों को एक कोमल स्पर्श प्राप्त हुआ। हम उनके किसी रूप में भी अधीन नहीं है, न वह किसी रूप में हमारे अधीन है। हम अपनी राह जायंगे और वह अपनी राह जायंगे। लेकिन हमारे रास्ते, जब तक कि कोई ऐसी ही बात नही होती, मैत्रीपूर्ण होंगे; कम से कम एक दूसरे को समझने की, एक दूसरे के साथ मित्रता की, एक दूसरे के साथ सहयोग की कोशिशे होगी। और यह तथ्य कि हमने जो एक नये प्रकार का साहचर्य आरम्भ किया है, जिसके साथ घावो को भरने वाला कोमल स्पर्श है, हमारे लिए कल्याणकर होगा, उनके लिए कल्याणकर होगा, और मै समझता हूँ कि ससार के लिए कल्याणकर होगा।

हमने भविष्य को बांध नहीं दिया

यहाँ कल से काफी लम्बा वादविवाद रहा है, और बहुत से माननीय सदस्यो ने इस प्रस्ताव के पक्ष में भाषण दिये है। वास्तव में, यदि मैं ऐसा कह सकता हूँ, तो उनमें से कुछ, जिस हद तक मैं जाता, उससे भी आगे गये है। उन्होने कुछ नतीजे ऐसे निकाले है, और ऐसे तात्पर्य निर्दिष्ट किये है कि मै तो कम से कम पसद या स्वीकार करता। फिर भी, हममें से सबको और हर एक को इस बात की स्वतत्रता है कि भविष्य को अपने-अपने ढंग से देखें।

जहाँ तक कि मेरे इस प्रस्ताव और लदन में हुई घोषणा का सबध है, जो हमें देखना है वह यह है : पहले, यह हमारी प्रतिज्ञाओ को पूरा करती है, या कम से कम उनमें से किसी के विरुद्ध नहीं जाती; अर्थात् यह भारत को आगे ले जाती है, या भारत के एक पूर्ण सत्ताधारी स्वतत्र गणतंत्र के ध्येय तक आगे जाने के मार्ग में बाधक नहीं होती। दूसरे, यह भारत की सहायता करती है, या भारत के त्वरित गति से अगले कुछ वर्षो में, अन्य क्षेत्रो में, उन्नति करने के मार्ग में बाधक नहीं होती। हमने एक अर्थ में राजनैतिक समस्या हल कर ली है, लेकिन राजनैतिक समस्या का देश की आर्थिक स्थिति से घनिष्ठ सबध है।

अनेक आर्थिक कठिनाइया हमारा सामना कर रही है। निश्चय ही वह हमारी चिंता की बातें है, लेकिन स्पष्ट है कि हम जो नीति भी ग्रहण करे, दुनिया हमें उसमे सहायता दे सकती है या बाधा पहुचा सकती है। क्या यह प्रस्ताव जो कि इस घोषणा के अन्तर्गत है, हमारी शीघ्रतापूर्वक आर्थिक तथा इतर उन्नति में सहायक है ? यह दूसरी कसौटी है। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि बिना बाहरी सहायता के भी हम आगे बढेंगे। लेकिन प्रकट है कि यह अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है, और उसमें कहीं अधिक समय लेगा। ऐसा करना सहज नहीं है।

तीसरी कसौटी यह है कि क्या आज की दुनिया में, इससे शान्ति को आगे बढाने में और युद्ध से बचने में, सहायता मिलती है। कुछ लोग इस अथवा उस विशेष दल या गुट को प्रोत्साहन देने की बात करते है। मुझे भय है

भारत के 'कामनवेल्थ आफ नेशन्स' के अन्तर्गत बने रहने के निश्चय के सबध में, सविधान ससद्, नई दिल्ली, मे १७ मई, १९४९ को होने वाले वादविवाद के उत्तर में दिया गया भाषण।

कि हमारी सबकी यह आदत है कि अपने को या अपने मित्रों को दूध के धुले जैसा समझते है, और दूसरों को उसका उल्टा। हम सभी की यह विचार करने की प्रवृत्ति है कि हम उन्नति और जनसत्ता की शक्तियों के पक्ष में खड़े है और दूसरे नही खड़े है। मै मानूंगा कि भारत और उसके लोगों के विषय में स्वयं गर्व रखते हुए, अब मै अपनी, उन्नति और हमारे लोकतंत्र के अग्रणी होने की बात चलाने के विषय में अधिक विनम्र हो गया हूँ।

पिछले दो या तीन वर्षों के भीतर हम कठिन समय से गर्व को चूर करने वाले समय से होकर गुजरे है। हम उसके बीच होकर गुजर चुके है। यह बात हमारे पक्ष की बात है। हमने ऐसा समय पार कर लिया है। लेकिन मै आशा करता हूँ कि हमने उससे पाठ भी सीखा है। जहाँ तक मेरा संबंध है, मै इस या उस व्यक्ति, इस या उस राष्ट्र को बुरा कहने में संकोचशील हूँ क्योकि ऐसे मामलों में कोई व्यक्ति या राष्ट्र दूध का धुला नही है। और दूसरे राष्ट्र को अपराधी और युद्ध का उकसाने वाला कह कर उनकी बुराई करने और स्वयं ठीक वैसी ही बात करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है।

अगर कोई व्यक्ति संसार पर चारो ओर दृष्टि डालता है—बेशक, आदमी किन्ही नीतियों के पक्ष में होता है—तो वह कुछ चीजो का विरोधी होता है और समझता है कि ये भयावह हैं और इनसे युद्ध छिड़ सकता है, लेकिन दूसरी चीजें ऐसी नही हैं। लेकिन सबसे आश्चर्यजनक बात जो मुझे जान पड़ती है वह यह है कि अगर आप पिछले ३० या अधिक वर्षो को देखें, जिनमें दो युद्धों और उनके बीच का काल आ जाता है, तो आप वही नारे उठाते हुए पावेंगे—जो परिवर्तित स्थिति के साथ अवश्य कुछ बदलते रहे है, फिर भी वही नारे है— वही दृष्टिकोण है, वही भय और संदेह का वातावरण है, वही सबका सशस्त्र होना है और युद्ध का आना है। वही चर्चा कि यह अंतिम युद्ध है, लोकतंत्र के पक्ष में युद्ध है, और इसी प्रकार की और बातें सब तरफ़ सुनाई पड़ती है। और फिर युद्ध समाप्त होता है, लेकिन संघर्ष बने रहते है और युद्ध की वही तैयारियां होती है। फिर दूसरा युद्ध होता है। अब यह एक बड़ी विचित्र बात है, क्योकि मुझे विश्वास है कि इस विस्तृत संसार में शायद ही कोई युद्ध चाहता हो, सिवाय कुछ लोगो के या दलों के, जो कि युद्ध से नफा कमाते है,

कोई व्यक्ति और कोई देश युद्ध नही चाहता। ज्यों-ज्यों युद्ध अधिकाधिक भीषण होता जाता है त्यों-त्यो लोग उसे और भी कम चाहते है। फिर भी कोई अतीत पाप या कर्म या होनहार लोगों को एक विशेष दिशा में, रसातल की ओर ढकेल रहा है, और वह उन्ही तर्कों में पड़े हुए है, और कठपुतलों की भांति उसी प्रकार के अंग विक्षेप का प्रदर्शन कर रहे है।

क्या हमारे भाग्य में भी यही करना लिखा है? मै नही जानता लेकिन जैसे भी हो, मैं युद्ध की चर्चा और युद्ध की तैयारी की प्रवृत्ति के विरुद्ध लड़ना

चाहता हूं। यह स्पष्ट है कि कोई भी देश और किसी भी देश की सरकार, अपने देश को, अनिश्चित घटनाओं के लिए, अतत्पर रखने का साहस न करेगी। दुर्भाग्यवश, जब तक कि हममें उतनी वीरता नहीं कि महात्मा गांधी के निर्दिष्ट पथ पर चल सकें, तब तक हमें अपने को तैयार रखना पड़ेगा। अगर हममें पर्याप्त वीरता है तो ठीक है। हम जैसा भी अवसर पड़ेगा देखेंगे। मुझे इस बात का विश्वास है कि अगर हममें पर्याप्त वीरता है तो यह नीति ठीक नीति होगी। लेकिन यह मेरे साहस या आपके साहस का प्रश्न नही है, बल्कि देश के साहस का प्रश्न है कि वह इस नीति का अनुसरण कर सकेगा और उसे समझ सकेगा। मैं नही समझता कि हम ज्ञान और आचरण के उस स्तर पर पहुंचे है। वास्तव में, जब हम उस स्तर की बात चलावें, तो मुझे कहना चाहिये कि पिछले डेढ़ वर्षों में हम इस देश में आचरण के सबसे नीचे स्तर तक गिर गये है। इसलिए महात्मा जी का नाम हमें व्यर्थ न लेना चाहिये। अस्तु, हम ऐसा नही कर सकते; कोई सरकार यह कह कर कि हम शान्ति के पक्ष में हैं, कुछ न करे, ऐसा नही हो सकता। हमें सतर्क रहना है और अपनी पूरी सामर्थ्य से तैयार रहना है। हम किसी दूसरी सरकार को जो ऐसा करती है, दोषी नहीं ठहरा सकते, क्योंकि यह एक अनिवार्य पेशबन्दी है जो आदमी को करनी पड़ती है। लेकिन इससे अलग। ऐसा जान पड़ता है कि कुछ सरकारें इससे बहुत आगे जाती है। वह निरंतर युद्ध की चर्चा करती रहती हैं। वह दूसरे पक्ष पर निरंतर दोषारोपण करती रहती है। वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करती हैं कि दूसरा पक्ष बिल्कुल गलती पर है और युद्ध उकसाने वाला है, आदि, आदि। वास्तव में वह उन्ही स्थितियां को उत्पन्न करते हैं, जिनसे युद्ध हो जाते हैं। शान्ति की या अपने शान्ति प्रेम की बात करते हुए हम अथवा वह वही स्थितियां उत्पन्न कर देते है, जिनसे कि पहले युद्ध छिड़े हैं। वह परिस्थितिया, जिनसे कि अन्त में युद्ध छिड़ता है, साधारणतया आर्थिक सघर्षों की होती हैं। लेकिन मैं नहीं समझता कि आज यह आर्थिक सघर्ष है, या कि राजनैतिक संघर्ष है जिनके कारण युद्ध होगा, बल्कि यह छाया हुआ भय है, जो इसका कारण बन सकता है; इस बात का भय कि दूसरा पक्ष हमें पराभूत करेगा, यह भय कि दूसरा पक्ष अपनी शक्ति क्रमशः बढा रहा है और इतना शक्तिशाली हो जायगा कि उसका कोई मुकाबला न कर सकेगा। और इसलिए हरएक पक्ष भीषण से भीषण शस्त्रों से अपने को सुसज्जित करता जा रहा है। मुझे खेद है कि मैं इस विषयांतर में पड़ गया।

हम आज की इस प्रमुख दुरवस्था का कैसे सामना करें? कुछ लोग एक दल मे सम्मिलित हो सकते है जिसका कि ध्येय शान्ति है, दूसरे लोग दूसरे दल में शरीक हो सकते है, जिसका उद्देश्य भी उनके कथनानुसार कोई दूसरे प्रकार की शान्ति या उन्नति है। लेकिन अपने मन में मुझे पक्का विश्वास है कि इस तरह किसी दल में सम्मिलित होकर मैं शान्ति के उद्देश्य को पूरा नहीं करता। इससे भय का वातावरण

और गहरा ही हो जाता है। तब हमें क्या करना चाहिये? मैं निष्क्रिय बैठने में या पलायनवाद की नीति का अवलम्बन करने में विश्वास नही रखता। आप भाग कर बच नही सकते। आपको समस्या का सामना करना ही होगा, और डट कर उसे हल करने की कोशिश करनी होगी। इसलिए जो लोग यह समझते हैं कि हमारी नीति निष्क्रिय अस्वीकृति की या पागलपन की नीति है, वे भूल करते है। इस विषय मे मेरे ऐसे विचार कभी नही रहे हैं। मैं समझता हूँ कि हमारी एक निश्चित और सक्रिय नीति है और होनी चाहिये। अर्थात् लोगो के मन में युद्ध के पक्ष में जो साधारण प्रवृत्ति है, उसे दबाने की कोशिश करने की।

मैं जानता हूँ कि संसार के सामने जो महान समस्या है, हो उसमे भारत का सकता है काफी शक्तिशाली प्रभाव न हो। जो स्थिति है उसे बदलने या उसमे उलट-फेर करने के विषय में भारत का प्रभाव बहुत क्षीण हो, ऐसा भी हो सकता है। मैं लाजिमी तौर पर कोई परिणाम उत्पन्न करने का दावा नही करता। फिर भी मै कहता हूँ कि एकमात्र नीति जिसका भारत को अनुसरण करना चाहिये, वह एक ऐसी सकारात्मक और निश्चित नीति होना चाहिये, जिसका कि ध्येय और देशों को युद्ध की ओर प्रवृत्त होने से रोकना, और वातावरण को भय और संदेह से व्याप्त होने से रोकना, और इस अथवा उस देश की प्रशसा से अलग रहना है (चाहे यह देश ससार को विवेक के पथ पर ले जाने का दावा करते हो) बल्कि उन देशो के ऐसे गुणो पर जोर देकर जो कि अच्छे और ग्रहण करने योग्य है, उनमे जो कुछ भी सबसे अच्छा है, उसे खीच निकालना है, और इस तरह जहा तक संभव हो खिचावो को कम करना और शान्ति के पक्ष में काम करना है। हम सफल होते है या नही; यह दूसरी बात है। लेकिन यह अब हमारे हाथ में है कि हम अपनी पूरी शक्ति से उस दिशा में काम करें जिसे कि हम ठीक समझते है, न कि इसलिए कि हम डर गये है या भय हमारे ऊपर छाया हुआ है। हम पर बहुत भयानक बातें गुजर चुकी है और मै नही समझता कि भारत और संसार में कोई ऐसी बात होने जा रही है जो हमे और भयभीत करनेवाली है। फिर भी हम नही चाहते कि दुनिया फिर मुसीबत में पड़े और ऐसे विश्वव्यापी संकट से गुजरे जिससे आप और हम न बच सकें और न ही हमारा देश बच सके। कोई नीति हमे इससे बचा नही सकती। यदि युद्ध इस देश तक फैल कर नही आता, फिर भी अगर विदेश में युद्ध होता है तो वह भारत को और संसार को घेर लेगा। हमें इस समस्या का सामना करना है।

यह समस्या जितनी मनोवैज्ञानिक है, उतनी व्यावहारिक नही, यद्यपि इसका व्यावहारिक पक्ष है। मै समझता हूँ कि एक अर्थ में भारत इसका सामना करने के कुछ उपयुक्त है, क्योकि बावजूद इसके कि हम कमजोर हैं और गाधी जी के योग्य अनुयायी नही है, जो कुछ उनकी शिक्षा थी उसे हमने कुछ अंश में हल किया है।

दूसरे, इन लोकव्यापी संघर्षों में आप देखेंगे कि एक के बाद एक घटना होती रहती है, अनिवार्य रूप से एक से दूसरे का लगाव होता है और इस प्रकार से बुराई की शृंखला फैलती है; युद्ध होता है और युद्ध से होने वाली बुराइयां सामने आती है, उनके कारण फिर दूसरा युद्ध होता है, घटनाओं की शृंखला बढ़ती जाती है, और हर एक देश कर्म या बुराई जो भी कहे, उसके चक्र में पड़ जाता है। अब तक इन बुराइयों के कारण पश्चिम में युद्ध हुए है, क्योंकि एक मानी में ये बुराइया पश्चिमी शक्तियो में केन्द्रित रही है, मैं यह हरगिज नही कहना चाहता कि पूर्वी शक्तियां भली है, अब तक पश्चिम या यूरोप राजनीतिक कार्यों का केन्द्र रहा है और वह संसार की राजनीति पर छाया रहा है। इसलिए उनके झगड़े उनके विरोध और उनके युद्ध संसार पर छाये रहे है।

भाग्य से भारत में, हम लोग यूरोप के विद्वेषो के उत्तराधिकारी नही है। हम किसी व्यक्ति या वस्तु या विचार को नापसद कर सकते है। लेकिन हमें वह उत्तराधिकार नही प्राप्त है, जो हमें कुचले। इसलिए, हमारे लिए अन्तर्राष्ट्रीय सभाओ में हो चाहे दूसरी जगह इन समस्याओ का सामना करते हुए यह अपेक्षाकृत सहज हो सकता है कि हम उन्हे तटस्थता और निरपेक्षता से निबटावें, साथ ही दूसरो की सत्कामना प्राप्त करें, जो किसी पुरानी दुर्भावना का हम पर सदेह न करेंगे। यह हो सकता है कि कोई देश उसी समय फलप्रद रूप से कार्य कर सकता है, जबकि उसके पीछे कुछ शक्ति हो। मै तत्काल भौतिक या युद्ध सबधी शक्ति का विचार नहीं कर रहा हूं—उसका, बेशक, महत्व है—लेकिन उसके पीछे की साधारण शक्ति पर यहां विचार करूंगा। एक दुर्बल देश जो अपनी देखभाल नही कर सकता, वह दुनिया की और दूसरो की देख-भाल कैसे कर सकेगा? मै चाहूंगा कि यह सदन इन सभी विचारो को सामने रक्खे और तब उस अपेक्षाकृत छोटे प्रश्न पर जिसे कि मैंने सभा के सामने रक्खा है, निर्णय करे, क्योकि मेरे सामने ये सब विचार थे, और मैंने अनुभव किया कि सबसे पहले मेरा यह देखना कर्तव्य है कि भारतीय स्वतंत्रता और स्वाधीनता पर कोई आंचा न आवे।

यह स्पष्ट था कि जिस गणराज्य की स्थापना का हमने निश्चय किया है वह अस्तित्व मे आयेगा। मै समझता हूं कि इसमें हमें सफलता मिली है। उसे हम, निश्चय ही हर हालत में प्राप्त करते लेकिन हमने उसे और बहुतो की शुभ कामना से प्राप्त किया है। मै समझता हूं कि यह हमारा अतिरिक्त लाभ है। उन लोगो की सदाशयता से इसे प्राप्त करना, जिन पर शायद इससे चोट पहुंची है, निश्चय ही एक सिद्धि है। यह इस बात को दिखाता है कि काम करने के ढग का-उस ढंग का जो कि घृणा या दुर्भावना का चिन्ह नही छोड़ता, बल्कि सद्भावना संचार करने वाला होता है—बड़ा महत्व है। सद्भावना का मूल्य है, वह चाहे जिस

दिशा से आवे। इसलिए, जब मै इस विषय पर लंदन में विचार कर रहा था, उस समय, उस समय और कुछ अंश में बाद मे भी , यह ख्याल हुआ कि शायद मैंने कोई ऐसी बात की है जो गांधी जी पसंद करते। जो हुआ है उस पर मेरा इतना घ्यान नही है, जितना कि करने के ढंग पर है। मैंने समझा कि यह चीज खुद दुनिया में बड़ी सद्भावना उत्पन्न करेगी--ऐसी सद्भावना जो कि एक छोटे अर्थ में निश्चय ही हमारे हित की चीज है, और इंगलिस्तान के हित की, लेकिन जो एक बड़े अर्थ में--मनोवृत्ति संबंधी उन संघर्षों में, जिन्हे कि लोग एक दूसरे पर दोषारोपण करके और एक दूसरे को बुरा भला कह कर हल करना चाहते है--संसार के हित में है। हो सकता है कि किसी का दोष है, हो सकता है कि कुछ कूटनीतिज्ञों और बड़े आदमियो का दोष है, लेकिन कोई उन करोड़ों आदमियों को दोष नही दे सकता जो इन भीषण युद्धों में अपनी जानें गंवाएंगे। हर एक देश में मनुष्यों के विशाल समूह युद्ध नहीं चाहते। वे युद्धों से भयभीत होते हैं। कभी-कभी इसी भय को उकसा कर फिर से युद्ध कराया जाता है, क्योंकि यह हमेशा कहा जा सकता है कि दूसरा दल तुम पर आक्रमण करने आ रहा है।

इसलिये मै चाहूँगा कि यह सदन न केवल इस बात पर विचार करे कि हमने क्या हासिल कर लिया---उसे हासिल करने से, हर हालत में, हमें कोई रोक नहीं सकता था---बल्कि यह बात प्रासंगिक और महत्त्व की है कि हमने उसे इस रूप में हासिल किया कि उससे हमें सहायता मिलती है और दूसरों को सहायता मिलती है और पीछे कोई दुष्परिणाम नहीं होते, नही तो जब हम समझते है कि हमने दूसरे के दाम पर लाभ उठाया है तो इस बात की कसक दूसरे को सदा बनी रहती है और वह बाद में बदला लेना चाहता है। इसलिये यही तरीका है और अगर दुनिया इस तरीके पर अमल करती है, तो समस्याएँ कही अधिक सुगमता से हल होंगी और युद्ध और युद्ध के दुष्परिणाम शायद अपेक्षाकृत थोड़े होंगे। वे होंगे ही नहीं। अंग्रेजों की या साम्राज्यवाद की या दूसरे देशो की औपनिवेशिकता की त्रुटियों के विषय में बात करना सहज है। बिल्कुल ठीक है। आप आज हर एक राष्ट्र के गुणों या दुर्गुणों की सूची बना सकते है, जिसमें भारत भी होगा। अगर आपने ऐसी सूची बना भी ली, प्रश्न फिर भी रह जाता है कि दूसरे पक्षों के और आपके गुणों को उकसा कर कोई भी भविष्य की भलाई की नींव कैसे रख सकता है।

मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सरकारी स्तर पर हो या राष्ट्रीय स्तर पर दूसरे पक्ष की बुराई पर जोर देने से विशेष सहायता नही मिलती। हमें उसकी ओर से आंख न मूंदना चाहिये, हमें उससे कभी-कभी लड़ना पड़ेगा। उसके लिये हमें तैयार रहना चाहिये, लेकिन इस सब के होते हुए , मै नही समझता कि

अपने गुणों का समर्थन करते रहने का और दूसरे पक्ष का दोपारोपण का धन्धा, वास्तविक समस्या को समझने में हमारी सहायता करेगा। यह हमें भीतरी सतोष अवश्य प्रदान करता है कि हम सच्चरित्र है और दूसरे पापी हैं। मैं धार्मिक शब्दा-वली का प्रयोग कर रहा हूँ, जो मेरे लिये उपयुक्त नही जान पड़ती, लेकिन सच यह है कि मैं इस सम्माननीय सदन के सामने इस प्रश्न के किंचित् नैतिक पहलू को रखना चाहता हूँ। भारत के हित को क्षति पहुंचा कर मैं उसे किसी ऊंचे नैतिक आधार पर न्याय प्रमाणित करने का साहस नहीं कर सकता। कोई सरकार ऐसा नहीं कर सकती। लेकिन यदि आप कोई नफे का सौदा कर सकते हैं और साथ ही वह नैतिक आधार पर अच्छा होता है, तब स्पष्ट है कि वह इस योग्य है कि हम उसे समझें और उसका आदर करें। मैं निश्चयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि जो कुछ हमने किया है, वह, नकारात्मक ढंग से कहा जाय, तो हमें किसी प्रकार से हानि नहीं पहुंचाता, न पहुंचा सकता है। सुनिश्चित रूप यह है कि हमने राजनैतिक क्षेत्र में जो प्राप्त करना चाहा था वह प्राप्त कर लिया है, और हमारी उन्नति संभावित है, और इस प्रकार से उन्नति के जितने अवसर मिल सकते हैं उतने आने वाले कुछ वर्षों में किसी दूसरी प्रकार से नही मिल सकते।

अन्त में, सरकार के प्रसंग मे यह एक प्रोत्साहित करनेवाली बात है, और शांति के पक्ष में सहायक है—कितनी, यह मैं नही जानता, और निश्चय ही यह एक ऐसी चीज है जो इस देश को किसी दूसरे देश से बांधती नहीं। इस सभा या भवन के लिये हर समय इसका मार्ग खुला हुआ है कि इस कड़ी को तोड़ दे। लेकिन मैं केवल यह बता रहा हूँ कि हमने भविष्य को किसी अंश में भी बांध नहीं दिया है। भविष्य वायु के समान उन्मुक्त है, और, यह देश जो रास्ता चाहे, वह ग्रहण कर सकता है। अगर वह पाता है कि यह रास्ता ठीक है तो वह इसे ग्रहण किये रहेगा, नही तो वह दूसरा रास्ता ग्रहण करेगा। हमने उसे बांध नही दिया है। मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि यह प्रस्ताव जो मैंने लदन कानफ्रेंस के निश्चय और उसकी घोषणा के अनुमोदन के संबंध में इस सभा के सामने रक्खा है, एक ऐसा प्रस्ताव है जो इस सभा का समर्थन और उसकी स्वीकृति पाने के योग्य है, अगर मैं कह सकता हूँ, तो केवल एक उदासीन समर्थन और स्वीकृति पाने योग्य नही है, बल्कि उसके पीछे जो कुछ भी है, और हमारे नेत्रों के सामने क्रमशः खुलनेवाले भारत के भविष्य के लिये जो यह महत्त्व रख सकता है, उसका विचार करते हुए, इसका सक्रिय अनुमोदन होना चाहिये। वास्तव में बहुत समय हुए हम सबने अपने भाग्य को भारत के भाग्य से जोड़ लिया। हमारा भविष्य हमारा व्यक्तिगत भविष्य भारत के भविष्य पर निर्भर करता है, और बहुत दिनों से हमने इस भविष्य की कल्पना की है, और इसके स्वप्न देखे

हैं। अब, हम ऐसी मंजिल पर पहुंचे हैं जब कि हमें अपने निर्णयों और कार्यों द्वारा इस भविष्य को पग-पग पर ढालना है। अब यह पर्याप्त नही कि हम उस भविष्य की चर्चा केवल प्रस्ताव द्वारा या दूसरों पर दोषारोपण करके या दूसरो की आलोचना करके करें, अच्छा या बुरा, अब हमे ही उसका निर्माण करना है, कभी-कभी हममे से कुछ लोग उस भविष्य के विषय मे नकारात्मक ढंग से, दूसरो पर दोष लगा कर विचार करने में बहुत रुचि लेते हैं। इस सदन के कुछ सदस्यों ने, जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है, और कुछ औरो ने, जो इस सदन मे नही हैं, जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है, मैंने अनुभव किया है, कि वह अतीत के उस पिंजड़े से बाहर आने में बिल्कुल असमर्थ हुए हैं, जिसमें कि हम सब रह चुके हैं, यद्यपि मानसिक रूप से बाहर आने को उनके लिये द्वार खुला हुआ था। उन लोगों ने हमें पुरानी बातों का स्मरण दिलाया है और हमारे कुछ मित्रों ने मेरे १५–२० साल पहले के व्याख्यानो से उद्धरण देने की कृपा की है। अच्छा, अगर वे मेरे व्याख्यानो को इतना महत्व देते है तो वह मेरे अब के व्याख्यानों को जरा अधिक ध्यान देकर सुनें। ससार बदल गया है। बुराई अब भी बुराई है और भलाई भलाई है, मैं यह नही कहता कि ऐसा नही है, और मैं समझता हूँ कि साम्राज्यवाद एक बुरी चीज है और जहाँ भी यह बना हुआ है इसे जड़ से खोद कर उखाड़ना है, और औपनिवेशिकता एक बुरी चीज है और जहाँ वह अब भी बनी हुई है, इसे उखाड़ना है, और जातिवाद एक बुरी चीज है और इसका मुकाबला करना है। यह सब ठीक है। फिर भी ससार बदल गया है, इंग्लिस्तान बदल गया है, यूरोप बदल गया है, भारत बदल गया है, हर एक चीज बदल गई है और बदल रही है : और उसे अब देखिये। यूरोप को देखिये, जिसकी कलाओं में और विज्ञानों में पिछले तीन सौ वर्षो में विशाल सिद्धि रही है, और इसने सारे संसार में एक नई सभ्यता का निर्माण किया है। वास्तव में यह एक शानदार युग है, जिस पर कि यूरोप को या उसके कुछ देशो को गर्व हो सकता है, लेकिन इन तीन सौ या अधिक वर्षों मे यूरोप ने अपना आधिपत्य एशिया और अफ्रीका पर भी फैलाया, वह साम्राज्यवादी बना रहा, उसने शेष संसार का शोषण किया और एक अर्थ मे संसार के राजनैतिक क्षेत्र मे छाया रहा। अच्छा, मेरा विश्वास है कि यूरोप में अब भी सुन्दर गुण है, और वहां के वे लोग, जिनमें ऐसे गुण हैं, सफल होंगे, लेकिन राजनैतिक दृष्टि से यूरोप अब ससार का केंद्र नही रह सकता या ससार के अन्य भागो पर वह प्रभाव नहीं रख सकता जो अब तक रहा है। इस दृष्टि से यूरोप का जमाना समाप्त हो गया और संसार के इतिहास का—राजनैतिक तथा अन्य कार्यो का—केंद्र दूसरी जगह चला जाता है। मेरा यह कहने का तात्पर्य नही कि कोई दूसरा महाद्वीप आधिपत्य प्राप्त करता है, औरो पर प्रभुत्व रखता है, ऐसी

बात नही। जो भी हो हम उस पर एक बिल्कुल बदले हुए दृश्य में नजर डालते हैं। अगर आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद आदि की चर्चा करते हैं, तो मैं कहूंगा कि यदि वहां इच्छा भी हो तो साम्राज्यवाद की सामर्थ्य जाती रही है: ऐसा कहने से काम न चलेगा। फ्रांसीसी—एशिया के कुछ भागों मे साम्राज्यवादी व्यवहार कर रहे है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि उसे बहुत आगे तक चला सकने की सामर्थ्य बीत चुकी है। वह इस तरह साल दो साल तक चला ले, लेकिन यह बहुत समय तक अब चल नही सकता। इसी प्रकार डच कुछ और जगहों में कर सकते है, लेकिन यदि आप स्थिति को इतिहास की दृष्टि परम्परा में देखेंगे, तो इन्हें बीती हुई चीजों का अवशेष मात्र पावेगे। आज साम्राज्यवाद के पीछे कुछ शक्ति हो सकती है, यह कुछ वर्षों तक चल भी सकती है, इसलिये हमें उसका मुकाबला करना है और इसलिये हमें सतर्क रहना है—मैं इससे इनकार नही करता—लेकिन हमें यह न समझना चाहिये कि इंग्लिस्तान या यूरोप आज भी वैसा ही है जैसा कि १५ या २० वर्ष पहले था। वैसा अब नही है।

मैं उन मित्रो की बात कह रहा था जिन्होंने हमारी आलोचना की है और किंचित् नकारात्मक और उदासीनता का दृष्टिकोण बना लिया है। मैंने दूसरी जगह यह बताया है कि उनका दृष्टिकोण गतिहीन है। मैंने कहा इस विशेष प्रसंग में यह किंचित् प्रतिक्रियावादी है, और मुझे खेद है कि मैंने इस शब्द का उपयोग किया, क्योंकि मै ऐसे शब्दो का प्रयोग नही करना चाहता जिनसे चोट पहुंचे, और मैं लोगो के हृदय इस तरह से नही दुखाना चाहता। मैं चाहूं तो ऐसी भाषा का उपयोग कर सकता हूँ जो तीव्र और विवादपूर्ण हो, लेकिन मैं उसका उपयोग करना नही चाहता, क्योंकि हमारे सामने बड़ी समस्याएं हैं और तर्क में विपक्षी के विरुद्ध एक शब्द कह लेने मे और उन्हे शब्दों से हरा देने से और उसके हृदय या मस्तिष्क को न स्पर्श करने से क्या संतोष हो सकता है, और मैं अपने लोगों के हृदयों और मनो को स्पर्श करना चाहता हूं, और अनुभव करता हूँ कि हमारे घरेलू मतभेद जो भी हो—ईमानदारी से अनुभव किये हुए मतभेदो को बने रहना चाहिये—हम नही चाहते कि देश में मतों की स्वतंत्रता न रह जाय।

जहाँ तक विदेशी मामले है, उनमें भी मतभेद हो सकते हैं, मैं इससे इनकार नही करता, लेकिन मूल बातें जो किसी के सामने होंगी, विशेषतः उनके सामने, जो भारतीय है, देशभक्त हैं—वे निश्चय ही भारत की स्वतंत्रता, अर्थात् पूरी स्वतंत्रता, भारत की आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नति, संसार की स्वतंत्रता और शान्ति स्थापना में भारत का भाग लेना, आवश्यक रूप से होंगी। ये मूल बातें है: भारत की उन्नति होनी चाहिये। भारत की आन्तरिक उन्नति होनी चाहिये। जब तक कि हम देश के भीतर आर्थिक दृष्टि से तथा अन्य प्रकार से शक्तिशाली न होंगे हम कुछ नही कर सकते। देश के भीतर हम ऐसा किस प्रकार करें, इस

विषय में मतभेद हो सकता है। मैं यह समझता हूँ कि हम लोगों मे चाहे आंतरिक नीति के विषय में मतभेद भी हों, हमारे लिये यह संभव होना चाहिये कि हम कमोवेश एक संयुक्त विदेशी नीति ग्रहण करें जिसमें सब सहमत हो या अधिकांश में सहमत हों। क्या मै अपनी बात स्पष्ट कर दूँ? मैं तर्क या टीका-टिप्पणी या आलोचना को जरा भी बन्द नही करना चाहता, यह तो स्वस्थ राष्ट्र के चिन्ह है, लेकिन यह मैं अवश्य चाहता हूँ कि वह तर्क एक मित्र का तर्क हो, विरोधी का तर्क न हो, जो कभी-कभी तर्क को तर्क के लिये नही वल्कि विरोधी पक्ष को नुकसान पहुचाने के लिये करता है, जैसा कि राजनीति के खेल में अकसर होता है। किसी व्यक्ति की ओर से कोई वड़ा मतभेद विदेशी नीति के संवंध में मै नहीं देखता। उन व्यक्तियों या दलों में, जो दूसरे देशों को दृष्टि में रख कर और भारत को दृष्टि में न रख कर विचार करते हैं, उनमें मै अवश्य वड़ा मतभेद देखता हूँ। यह एक बुनियादी मतभेद है और उनके साथ किसी विषय पर समान दृष्टिकोण हो सकना वहुत कठिन है, लेकिन जहाँ लोग भारत को लेकर, उसकी स्वतंत्रता और निकट और दूर भविष्य में उन्नति की वात को लेकर विचार करते हैं, वहाँ हमारी विदेशी नीति के विषय में कोई वड़ा मतभेद न होगा। और मैं नहीं समझता कि वास्तव में कोई मतभेद है, यद्यपि कहने के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। यद्यपि कोई सरकार उसी भाषा का उपयोग कर सकती है जो सरकार के लिये उचित है, और लोग ऐसी भाषा वोलते हैं जो हम सव वोला करते थे, अर्थात् विरोधी और आंदोलन की भाषा। इसलिये मैं इस भवन से अनुरोध करूंगा और अगर मै कह सकता हूँ, तो देश से अनुरोध करूंगा कि इस प्रश्न पर दल-वन्दी की भावना से न देखें, और इस दृष्टि से नही कि यहाँ या वहाँ, किसी छोटे मामले में सौदा किया जाय।

किसी भी सौदे मे हमें ध्यान रखना चाहिये कि राष्ट्र के लाभ की कोई वस्तु हम खो न दें। साथ ही हमें इस प्रश्न पर एक ऊंचे ढंग से देखना है। हम एक वड़े राष्ट्र हैं। अगर हम विस्तार की दृष्टि से एक वड़े राष्ट्र हैं, तो इससे ही हम वड़े न हो जायंगे जव तक कि हम विचार के वड़े नहीं, हृदय के वड़े नही, समझ में वड़े नही और कार्य करने में भी वड़े नहीं। वाजार में आप अपने साथ सौदा करनेवालों से या मोल-तोल करनेवालों से यहाँ या वहाँ कुछ घाटे में रह सकते हैं। अगर आप वड़े ढंग से कार्य करते हैं, तो लोगों की प्रतिक्रिया भी वड़ी होती है। चूंकि भलाई भलाई को जागृत करती है और दूसरों की भलाई को उकसाती है, और एक वड़ा कार्य, जिसमें भावों की उदारता दिखाई गई है, दूसरे पक्ष की उदारता को भी उकसाता है।

इसलिये, इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुए और यह आशा करते हुए क्या मै अपना भाषण समाप्त कर सकता हूं कि यह सभा न केवल इसे स्वीकार

करेगी, बल्कि इसे अच्छे संबंधो के प्रेरक के रूप में स्वीकार करेगी, और इस रूप में हम अन्य देशो के प्रति, संसार के प्रति, उदारता का व्यवहार कर रहे हैं, और इस प्रकार अपने को, तथा शांति के पक्ष को, दृढ कर रहे हैं ?

भारत और विश्व

एशिया दुबारा जागा है

मित्रो और एशिया के साथियो, एशिया के नर-नारीगण, आप यहां क्यों एकत्र हुए है? आप लोग हमारे इस मातृ महाद्वीप के विविध देशो से आकर दिल्ली के इस प्राचीन नगर में क्यो इकट्ठा हुए है? हममे से कुछ साहसी लोगो ने इस सम्मेलन के लिये आपको निमंत्रण भेजा और आपने उस निमत्रण का हार्दिक स्वागत किया। फिर भी केवल हमारा निमत्रण ही आप को नही लाया, बल्कि एक भीतरी प्रेरणा थी जो आपको यहा लाई है।

हम एक युग के अन्त में, और इतिहास के नये युग के द्वार पर खड़े हैं। दो युगो की सधिवेला की इस विभाजक रेखा पर खड़े होकर, जो कि मानवीय इतिहास और मानवीय प्रयत्नो को दो धाराओ के समान विभाजित करती है, हम अपने लंबे अतीत पर दृष्टि डाल सकते है, और साथ ही उस भविष्य को देख सकते है जो कि हमारी आखों के सामने बन रहा है। निष्क्रियता के एक लम्बे काल के बाद, एशिया आज अचानक संसार के मामलो में महत्वपूर्ण बन गया है। अगर हम इतिहास की सहस्त्राब्दियों पर दृष्टि डालें, तो पावेंगे कि एशिया के इस महाद्वीप ने, जिससे कि मिस्र का सास्कृतिक मैत्री का इतना घना सबध रहा है, मानवता के विकास में एक महान भाग लिया है। यहा पर सभ्यता का आरभ हुआ, और मनुष्य ने जीवन की अपनी अनन्त साहसमयी यात्रा का आरंभ किया। यहा ही मनुष्य के मस्तिष्क ने निरन्तर सत्य का अनुसंधान किया और मनुष्य की आत्मा ने मार्ग-प्रदर्शक ज्योति की भाति प्रदीप्त होकर संसार को आलोकित किया।

यह गतिशील एशिया, जिससे कि संस्कृति के स्रोत सभी दिशाओं में प्रवाहित हुए, क्रमशः स्थिर और परिवर्तनहीन हो गया। और लोग, और दूसरे महाद्वीप, आगे आये और अपनी नई गतिशीलता के कारण फैले। उन्होंने दुनिया के बड़े-बड़े भागो पर अधिकार कर लिया। तब हमारा यह महान महाद्वीप यूरोप के प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादो का मैदान मात्र बन गया, और यूरोप मानवीय कार्यों में इतिहास और उन्नति का केन्द्र बन गया।

अब जमाना फिर से बदल रहा है और एशिया फिर अपने पैरो पर खड़ा हो गया

एशियन कान्फ्रेंस का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली में, २३ मार्च १९४७ को दिया गया भाषण।

है। हम परिवर्तन के एक महान युग मे रह रहे हैं, और आज जब कि एशिया, दूसरे महाद्वीपों के साथ, अपना उचित स्थान ग्रहण कर रहा है, हम एक नई मंजिल पर पहुंच रहे हैं।

ऐसे महान क्षण में हम यहां मिल रहे हैं, और भारत के लोगों को दूसरे देशों के एशियायी भाइयों के स्वागत करने का और उनसे वर्तमान और भविष्य के विषय में परामर्श करने का, तथा आपस की उन्नति, कल्याण और मैत्री की नीव डालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एशिया की कान्फ्रेंस का विचार नया नही है, और बहुतों को यह बात सूझी है। वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि यह कई साल पहले क्यों न हुई, लेकिन तब शायद इसका वक्त नही आया था, और उस वक्त यह कान्फ्रेन्स करने का प्रयत्न कुछ कृत्रिम और सासारिक घटनाओ से मेल न खाता हुआ होता। हमने भारत में यह कान्फ्रेंस बुलायी है, लेकिन इस तरह की कान्फ्रेंस का विचार एक साथ एशिया के कई देशो में और कई लोगो के मस्तिष्क मे उठा। इसके लिये एक व्यापक प्रेरणा थी, और इस बात की चेतना थी कि हम एशिया के लोगो के आपस में मिलने का, परामर्श करने का और मिलजुल कर उन्नति करने का समय आ गया है। यह केवल एक अस्पष्ट इच्छा ही नहीं थी, वल्कि घटनाओ का दवाव था, जिसने कि हम सवको एक ही दिशा में सोचने पर विवश किया। इसी कारण, हमने भारत से जो आमंत्रण भेजा, उसका अनुकूल उत्तर मिला, और एशिया के सभी देशों ने शानदार ढंग से हमें सहयोग दिया।

आप सब प्रतिनिधियों का हम स्वागत करते हैं—आप जो चीन से आये हैं, उस महान देश से, जिसका कि एशिया इतना ऋणी है और जिससे कि वड़ी-बड़ी आशाएं हैं; आप जो मिस्र और पश्चिम एशिया के अरव देशों से आये है, और एक ऐसी गर्वशील संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं, जो दूर दूर तक फैली हुई है और जिसने भारत पर भी प्रभाव डाला था; आप जो ईरान से आये हैं, जिसका कि इतिहास के आदिकाल से भारत से सम्बन्ध रहा है; आप जो इंडोनेशिया और हिन्दचीन से आये है, जिनके इतिहास भारतीय संस्कृति से गुंथे हुए हैं, और जहां आज स्वतंत्रता का शानदार युद्ध जारी है, जो इस बात की याद दिलाता है कि स्वतंत्रता लड़ कर ही प्राप्त होती है, भेंट स्वरूप नही मिलती; आप जो तुर्की से आये हैं, जिसे कि एक बड़े नेता ने नई जिन्दगी दी है; आप जो कि कोरिया, मंगोलिया, स्याम, मलय और फिलिपाइन्स से आये है; आप जो एशिया के सोवियत गण-राज्यों से आये हैं; जिन्होंने कि हमारी पीढ़ी में ही इतनी बड़ी उन्नति की है और जिनसे हमें बहुत से पाठ सीखने हैं; और आप जो हमारे पड़ोसी देशों अफ़गानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, बर्मा, लंका से आये है, और जिनसे हम विशेष रूप से सहयोग

और घनिष्ट मैत्रीपूर्ण संबंध की आकांक्षा करते हैं। इस कान्फ्रेंस ने एशिया का बहुत अच्छा प्रतिनिधित्व हुआ है, और यदि दो एक देश अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सके हैं, तो इसका यह कारण नहीं कि उनकी ऐसी इच्छा नहीं थी, बल्कि कुछ परिस्थितियां बीच में बाधक थीं, जिनपर हमारा वश नहीं था। हम आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के दर्शकों का भी स्वागत करते हैं, क्योंकि हमारी उनकी बहुत सी समस्याएं समान हैं, खास कर एशिया के प्रशान्त और दक्षिण पूर्वी प्रदेशों में, और हमें मिल जुलकर उनके हल ढूंढ़ने हैं।

आज जब हम यहां मिल रहे हैं, हमारे सम्मुख एशिया का लम्बा अतीत काल आता जाता है और हाल के वर्षों की मुसीबतें धीरे धीरे हमारी आंखों से ओझल हो जाती हैं और हजारों स्मृतियां जागृत होती हैं। लेकिन मैं आपसे इन बीते युगों के विषय में, उनकी गौरवगाथाओं, विजयों और असफलताओं के विषय में कुछ न कहूंगा और न हाल ही की बीती घटनाओं के बारे में ही कहूंगा; हम पर जो कठिन दिन बीते हैं, और जो आज भी कुछ अंशों में हमारा पीछा कर रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों के बीच, हमने पाश्चात्य साम्राज्यवाद की बढ़ती देखी है और एशिया के बड़े भूखंडों का औपनिवेशिक या अर्द्ध-औपनिवेशिक प्रस्थिति में पहुंचना देखा है। इन वर्षों में बहुत कुछ हुआ है लेकिन एशिया पर यूरोप के आधिपत्य का एक प्रमुख परिणाम यह भी हुआ कि एशिया के देश एक दूसरे से अलग अलग हो गये। भारत का सदा से पश्चिमोत्तर, पूर्वोत्तर, पूर्व और दक्षिण पूर्व के अपने पड़ोसी देशों से सम्पर्क रहा था। भारत में ब्रिटिश शासन के आने पर यह संपर्क टूट गया, और भारत शेष एशिया से करीब करीब अलग हो गया। पुराने स्थल-मार्ग प्रायः बन्द हो गये, और एकमात्र खिड़की, जिससे कि हम बाहर देखते थे, वह इंग्लिस्तान को जाने वाला जल-मार्ग था। इसी प्रकार की प्रक्रिया एशिया के और देशों में भी हुई। उनकी अर्थ-व्यवस्था किसी न किसी यूरोपीय साम्राज्यवाद से सम्बन्धित हो गई, सांस्कृतिक बातों में भी बजाय अपने मित्रों और पड़ोसियों के—जिनसे कि उन्होंने बीते समय में इतना कुछ प्राप्त किया था—वे यूरोप की ओर देखने लगे।

बहुत से राजनैतिक तथा अन्य कारणों से आज यह पृथकत्व टूट रहा है। पुराने साम्राज्यवादों का क्रमशः अन्त हो रहा है। खुश्की के रास्ते फिर से खुल गये हैं, और हवाई यात्रा एकाएक हमें एक दूसरे से बहुत निकट ले आई है। स्वयं यह सम्मेलन महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह एशिया के मस्तिष्क और आत्मा की उन गहरी प्रेरणा का उद्गार है, जो कि यूरोपीय प्रभुत्व काल में पैदा हुई अलहदगी के बावजूद कायम रही हैं। उस प्रभुत्व के उठते ही, जिन दीवारों ने हमें घेर रखा था, वे गिर पड़ीं और आज हम एक दूसरे से इस तरह मिल रहे हैं, जिस तरह बहुत दिनों के बिछुड़े मित्र मिलते हैं।

इस सम्मेलन मे और इस काम मे न कोई नेता है और न कोई अनुगामी है। एशिया के सभी देशो को बराबरी के दर्जे पर एक समान कार्य और उद्योग मे लगना है। यह उपयुक्त ही है कि भारत एशिया के विकास की इस नई अवस्था में अपना हिस्सा ले। इस बात को अलग रखते हुए भी कि भारत स्वय स्वतन्त्र और आज़ाद हो रहा है, यह एक तथ्य है कि वह एशिया में काम करने वाली अनेक शक्तियो का प्राकृतिक केन्द्र तथा मध्य बिन्दु है। भूगोल एक जबर्दस्त प्रभाव डालने वाली शक्ति है और भूगोल की दृष्टि से भारत की ऐसी स्थिति है कि पश्चिमी, उत्तरी, पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया वालो के मिलने के लिये यह उपयुक्त स्थान बन सकता है। इसी कारण, भारत का इतिहास एशिया के दूसरे देशो से उसके सम्बन्धो का एक लम्बा इतिहास है। पश्चिम से और पूर्व से संस्कृति की धाराए यहा आई है, और वे भारत में निमग्न हो गई है। उन्होने यहा वह सम्पन्न और बहुरगी संस्कृति उत्पन्न की है जो कि आज भारत में विद्यमान है। साथ ही भारत से संस्कृति की धाराए एशिया के दूर दूर भागो में गई है। अगर आप भारत को समझना चाहते है, तो आपको अफगानिस्तान, पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, चीन, जापान और दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों मे जाना होगा। वहां आपको भारत की उस संस्कृति की प्राण-शक्ति के विशाल प्रमाण मिलेगे, जो कि फैली और जिसने कि बहुत बड़ी सख्या में लोगो पर अपना प्रभाव डाला।

बहुत पुराने काल में, ईरान से एक महान सांस्कृतिक धारा भारत में आई थी। और फिर भारत का सुदूर पूर्व से, विशेष कर चीन से निरन्तर पारस्परिक सम्बन्ध बना रहा। बाद के वर्षों में दक्षिण पूर्वी एशिया मे भारतीय कला और संस्कृति का अद्भुत विकास हुआ। वह महान धारा, जो अरब से उठी और मिली जुली ईरानी-अरब संस्कृति के रूप मे विकासित हुई, भारत मे आई। ये सभी धाराए यहां आई और उन्होंने हम पर असर डाला फिर भी यहां भारत के अपने मस्तिष्क और संस्कृति की ऐसी दृढ़ छाप विद्यमान थी कि वह इन सब के वेग में वह नही गया, बल्कि उसने इन्हे ग्रहण किया। फिर भी, इस क्रम में हम सभी में परिवर्तन आये, और आज भारत में हम इन विभिन्न प्रभावो के मिश्रित परिणाम के रूप में है। एक भारतीय, वह एशिया में जाये चाहे कही और, वह जिस देश में पहुचता है, वहां के लोगो से एक अपनेपन अनुभव करता है।

मै आपसे बीते हुए जमाने के बारे में नही बल्कि वर्तमान के सम्बन्ध मे कहना चाहता हू। हम यहा अपने पुराने इतिहास और सपर्को पर बहस करने के लिये नही, बल्कि भविष्य की कड़ियो का निर्माण करने के लिये मिल रहे है। यहां पर मै यह बता देना चाहता हूं कि यह सम्मेलन, या इसके अन्तर्गत जो विचार है, वह किसी दूसरे महाद्वीप या देश का विरोधी नही है। जब से इस सम्मेलन का समाचार फैला, यूरोप और अमेरिका के कुछ लोगों ने इसे संदेह से देखा

और यह कल्पना की कि यह एक प्रकार का पैन-एशियायी आंदोलन है जो कि यूरोप और अमेरिका के विरोध में है। हमारे मंसूबे किसी के विरोधी नहीं है। हमारा बड़ा मंसूबा तो सारी दुनिया मे शांति और उन्नति को बढाने का है। बहुत दीर्घकाल से हम एशियायी, पश्चिमी दरबारो और राजधानियो के सामने प्रार्थी बने रहे है । इसे अब भूतकाल की कहानी बन जाना चाहिये । हम अपने पैरों के बल खड़े होना चाहते है, और उन सब के साथ सहयोग करना चाहते है जो कि हमारे साथ सहयोग करें। हम दूसरो के खिलौने नहीं बनना चाहते।

ससार के इतिहास के इस संकट काल मे एशिया अनिवार्य रूप से एक महत्वपूर्ण भाग लेगा। एशिया के देशो को अब दूसरे लोग शतरंज के मुहरो की भाँति नही चला सकते, संसार के मामलो में उनकी अब अपनी नीति होगी। यूरोप और अमेरिका ने मानवीय उन्नति में बड़ा भाग लिया है, और इसके लिये हम उनकी प्रशंसा और उनका आदर करेंगे । उनसे जो बहुत से पाठ हम सीख सकते है, वह सीखेंगे। लेकिन पश्चिम ने हमें अनेक युद्धों और सघर्षों में भी फसाया है, और अब भी, एक भीषण युद्ध के समाप्त होने के दूसरे ही दिन से, इस वर्तमान अणु बम के युग में, दूसरी लडाइयों की बात जारी हो गई है। इस अणु बम के युग मे एशिया की शांति को बनाये रखने के लिये, हमें कारगर उपाय बरतने होंगे। वास्तव में, जब तक कि एशिया अपना उचित भाग नही लेता, तब तक विश्व में शांति हो ही नही सकती। आज अनेक देशो मे सघर्ष हो रहा है, और एशिया में हम सभी की अपनी अपनी कठिनाइयां है। फिर भी एशिया की व्यापक भावना और उसका दृष्टिकोण शांतिपूर्ण है, और एशिया का ससार के मामलो में आगे आना, ससार की शांति के पक्ष में एक शक्तिशाली प्रभाव होगा।

शांति तभी आ सकती है जब कि सब राष्ट्र स्वतंत्र हो और जब कि मनुष्यों को सब जगह स्वतंत्रता, सुरक्षा और समान अवसर प्राप्त हो। इसलिये शान्ति और स्वतंत्रता पर, राजनैतिक और आर्थिक दोनो पहलुओ से विचार करना पड़ता है। हमें याद रखना चाहिये कि एशिया के देश बहुत पिछड़े हुए है और यहां रहन-सहन के स्तर भयानक रूप से निम्न है। इन आर्थिक समस्याओ के हल की तुरन्त आवश्यकता है, नही तो हम सकट और बरबादी में पड जायगे। इसलिये हमें साधारण व्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये और अपने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाचे का इस रूप मे निर्माण करना चाहिये कि जिन बोझो ने उसे कुचल रखा है, वे दूर हो जायं, और हमें विकास का पूरा अवसर मिले।

हम मानवीय धर्घों के विषय में एक ऐसी स्थिति में पहुंच गये है जब कि 'एक ससार' का आदर्श या किसी न किसी प्रकार का लोकसंघ आवश्यक हो गया

हैं, यद्यपि रास्ते मे बहुत से खतरे तथा रुकावटे हैं। हमे उस आदर्श के लिये काम करना चाहिये, न कि किसी ऐसे गुट्ट के लिये, जो कि संसार की इस एकता के मार्ग में बाधक हो इसलिये हम संयुक्त राष्ट्रों के संगठन का, जो कि अपने बाल्य-काल को बड़े कष्ट के साथ पार कर रहा है, समर्थन करते हैं। लेकिन 'एक ससार' को प्राप्त करने के लिये, हम लोगों को एशिया मे यह भी देखना चाहिये कि एशियायी देश आपस में इस बड़े आदर्श के लिये किस तरह सहयोग करते है।

यह सम्मेलन, एक छोटे हद तक, एशिया के देशो के परस्पर निकट आने का सूचक है। यह सम्मेलन कुछ हासिल करे या नही, इसका होना ही एक ऐतिसाहिक महत्व रखता है। वास्तव में, यह अवसर इतिहास मे अपने ढंग का एक ही है, क्योंकि इससे पहले इस तरह का सम्मेलन किसी जगह नही हुआ। इसलिये, केवल इस तरह मिलने से ही हमने बहुत कुछ हासिल कर लिया है, और मुझे कुछ भी सदेह नहीं कि इस सम्मेलन द्वारा और भी बड़ी बाते होगी। जब कि हमारे वर्तमान युग का इतिहास लिखा जायगा, यह घटना एक ऐसा सीमा-चिह्न समझी जा सकती है, जो कि एशिया के अतीत को उसके भविष्य से विभाजित करती है। और क्योकि हम इतिहास के इस निर्माण में भाग ले रहे हैं, इसलिये ऐतिहासिक घटनाओं की महत्ता हम सब के हिस्से में आती है ।

यह सम्मेलन विविध समस्याओं पर विचार करने के लिये , जो कि हम लोगो की समान दिलचस्पी की है, हिस्सों और समितियो मे बँट जायगा हम किसी देश की आ तरिक राजनीति पर विचार न करेंगे, क्योंकि वह इस वर्तमान सम्मेलन के क्षेत्र के बाहर की बात है। स्वभावतः इन आन्तरिक राजनीतियो में हमारी दिलचस्पी है, क्योंकि उनकी आपस मे एक दूसरे पर प्रतिक्रियाएं होती है, लेकिन उन पर इस अवस्था में हमें बहस नही करनी चाहिए क्योकि यदि हम ऐसा करेंगे तो हम बड़ी जटिलताओं और तर्क-वितर्क मे पड़ जाएंगे। जिस उद्देश्य से हम यहां एकत्र हुए हैं, उसकी सिद्धि मे हम तब असफल हो सकते हैं। मुझे आशा है कि इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप हमारी समान समस्याओं के अध्ययन के लिये और निकटतर सम्बन्ध की स्थापना के लिये एक स्थायी एशियायी सस्था का जन्म होगा और शायद एशिया स ब धी अध्ययनो के लिये भी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियो तथा अध्यापको के एक दूसरे के यहां आने जाने तथा अदल बदल का कुछ प्रबन्ध भी हो सकेगा, जिससे हम एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ सके। हम इससे भी अधिक कर सकते है, लेकिन मैं इन सब विषयो को गिनाने का साहस न करूंगा, क्योकि उसके बारे में विचार करना और कुछ निश्चयों पर पहुँचना आपका काम होगा।

हम किसी संकीर्ण राष्ट्रीयता के पक्षपाती नही हैं। हर एक देश में राष्ट्रीयता का स्थान है और उसका पोषण होना चाहिये। लेकिन इसे ऐसा अग्रसर न होने

देना चाहिये कि यह अन्तरराष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक बन जाय। एशिया यूरोप, अमरीका और अफ्रीका के पीड़ित भाइयों से मैत्री के लिये अपना हाथ बढ़ाता है। हम एशियावियों की, अफ्रीका के निवासियों के प्रति एक खास जिम्मेदारी है। मानवी घराने में उन्हे उनका उचित स्थान दिलाने में हमें उनकी सहायता करनी चाहिये। जिस स्वतंत्रता की हम कल्पना करते हैं, वह इस अथवा उस राष्ट्र के लिये सीमित नहीं है बल्कि उसे सारी मानव जाति में फैलाना चाहिये। वह व्यापक मानवीय स्वतंत्रता किसी वर्ग विशेष की सत्ता पर आधारित नहीं हो सकती। उसे सब जगह के साधारण जनों को प्राप्त होना चाहिये और उनको विकास के पूरे अवसर मिलने चाहिये।

आज हम एशियायी सभ्यता के महान निर्माणकर्ताओं का स्मरण करते हैं—सन्यात-सेन का, ज़ंगलोल पाशा का, अतातुर्क कमाल पाशा का, और औरों का—जिनके परिश्रम आज फल लाये हैं। हम उस महान व्यक्ति का भी ध्यान करते हैं जिनके परिश्रम और जिसकी प्रेरणा के फलस्वरूप भारत अपनी स्वतंत्रता के द्वार तक आ पहुंचा है अर्थात् महात्मा गांधी का। आज इस सम्मेलन में हम उनकी अनुपस्थिति अनुभव कर रहे हैं; फिर भी मैं आशा करता हूं कि वे हमारे कार्य के समाप्त होने से पहले यहां आ सकेंगे। वे भारत के साधारणजन की सेवा में लगे हुए हैं, और यह सम्मेलन भी उन्हें अपने काम से खींच कर यहा नहीं ला सका है।

सारे एशिया में हम परीक्षाओं और कठिनाइयों में से गुजर रहे हैं। भारत में भी आप संघर्ष और उपद्रव पावेंगे। हमें इससे हताश नहीं होना चाहिये। एशिया के सभी लोगों में एक नया जीवन और शक्तिशाली रचनात्मक प्रेरणाएं दिखायी पड़ रही हैं। जनता जाग गई है और वह अपने उत्तराधिकार की मांग कर रही है। सारे एशिया में प्रचंड बयारें बह रही हैं। हमें इनसे भयभीत नहीं होना चाहिये, बल्कि इनका स्वागत करना चाहिये क्योंकि इन्हीं की सहायता से हम अपने स्वप्नों के एशिया का निर्माण कर सकेंगे। हमें इन नई शक्तियों में उस स्वप्न में, जो कि अभी स्वरूप-ग्रहण कर रहा है, विश्वास करना चाहिये। सब से बढ़कर हमें मानवीय आत्मा में विश्वास करना चाहिये, जिसका कि एशिया, बीते हुए लम्बे युगों में, प्रतीक रहा है।

संकट का युग

हम लोग सकटों के इस युग में रह रहे हैं। एक के बाद दूसरा सकट आता है, और जब शान्ति भी रहती है तो वह आकुल शान्ति होती है, जिनमें युद्ध का भय बना रहता है अथवा युद्ध की तैयारी होती रहती है। व्यथित मानवता वास्तविक शान्ति की भूखी है लेकिन कोई दुर्भाग्य उसके पीछे लगा हुआ है, जो उसे उसकी सब से इच्छित वस्तु से अधिकाधिक दूर ढकेलता रहता है। प्राय. यह जान पड़ता है कि एक भयानक भवितव्यता मानव-मात्र को बार बार होने वाली तबाही की ओर ढकेल रही है। हम सभी अतीत के इतिहास के जाल में फंसे हुए है और पिछली बुराइयों के परिणामो से बच नहीं सकते।

जिन अनेक राजनैतिक और आर्थिक सकटों का हमें सामना करना पड़ रहा है, उनमें कदाचित सब से बड़ा सकट मानवीय आत्मा का संकट है। जब तक कि यह संकट दूर नहीं किया जायगा, तब तक अपने दूसरे संकटों का हल पाना हमारे लिये कठिन होगा।

हम लोकव्यापी शासन, और 'एक ससार' की बातें करते हैं और करोड़ों व्यक्ति इसकी आकाक्षा करते हैं। मानव जाति के इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये उत्साहपूर्वक प्रयत्न जारी है। यह आदर्श आज बहुत जरूरी भी हो गया है। फिर भी अब तक ये प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए हैं यद्यपि यह बराबर स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि कोई लोकव्यापी व्यवस्था नहीं कायम होगी तो एक दिन ससार में कोई व्यवस्था कायम रखना संभव न रहेगा। आज लड़ाइयां लड़ी जाती हैं और उनमें जीत या हार होती है, और जीतने वालो की करीब करीब उतनी ही हानि होती है जितनी कि हारने वालो की। निश्चय ही, युग की इस बड़ी समस्या के विषय में हमारा दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, उसमें कोई आधारभूत त्रुटि है।

भारत में पिछली चौथाई सदी या इससे कुछ अधिक समय के बीच, महात्मा गांधी की न केवल भारत की स्वतंत्रता के हित में, बल्कि संसार की शांति के हित में, एक महान देन है। उन्होंने हमें अहिंसा का सिद्धान्त सिखाया—बुराई के आगे निष्क्रिय होकर झुक जाने के रूप में नहीं, बल्कि अन्ततोगत्वा अन्तर्जातीय भेदों

संयुक्त राज्य अमरीका के लिये, दिल्ली से, ३ अप्रैल १९४८ को प्रसारित भाषण।

का शान्तिपूर्ण हल प्राप्त करने के लिये सक्रिय रूप में। उन्होंने हमें दिखाया कि मानवीय आत्मा शक्तिशाली से शक्तिशाली हथियारो की अपेक्षा अधिक सशक्त है। उन्होने राजनैतिक कार्यों में नैतिकता का प्रयोग किया और यह बताया कि साधन और उद्देश्य कभी जुदा नही किये जा सकते, क्योकि साधनो का ध्येय पर प्रभाव पड़ता है। यदि साधन बुरे हैं, तो स्वयं ध्येय विकृत और कम से कम अंशतः कलुषित हो जाता है। किसी भी समाज में, जो कि अन्याय पर आधारित है, संघर्ष और ह्रास के बीज तब तक अनिवार्य रूप से रहेंगे, जब तक कि वह उस बुराई को दूर नहीं करता।

ये सब बातें आज के संसार मे असंगत और अव्यावहारिक लग सकती हैं क्योकि संसार एक बँधी लकीर पर सोचने का अभ्यस्त है। फिर भी हमने दूसरे तरीकों की असफलता देख ली है, और इससे अधिक अव्यावहारिक बात क्या हो सकती है कि हम उन्ही तरीकों पर अमल करते रहें, जो कि बार बार असफल हो चुके हे ? हम मानवी प्रकृति की वर्तमान सीमाओ की और राजनीतिज्ञों के आगे उपस्थित वर्तमान संकटो की कदाचित् उपेक्षा नही कर सकेंगे। जिस रूप में संसार आज संगठित है, उसे देखते हुए युद्ध की अनावश्यकता भी हम सिद्ध नही कर सकेंगे। लेकिन मुझे इस बात का अधिकाधिक विश्वास हो गया है कि जब तक हम अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बधों में नैतिक नियम की प्रधानता नही स्वीकार करते, तब तक कोई स्थायी शान्ति नही हो सकती। जब तक कि हम ठीक साधनों को ग्रहण नही करते, तब तक हमारा ध्येय ठीक नही हो सकता और उससे नई नई बुराइयां निकलती रहेंगी। यही गांधी जी के संदेश का सार था, और यदि मानव-समाज स्पष्टता से देखना और आचरण करना चाहता है तो मनुष्य मात्र को इसका आदर करना पड़ेगा। जब कि आंखें लाल हो रही हों तो देखने की शक्ति स्वतः कम हो जाती है।

मुझे अपने मन में कोई संदेह नही है कि विश्व-शासन होना चाहिये और होकर रहेगा, क्योंकि दुनिया की बीमारी का दूसरा कोई इलाज ही नही है। इसके लिये एक यन्त्र निर्माण करना कठिन नहीं होना चाहिये। यह संघ-सिद्धान्त का एक विस्तार हो सकता है; संयुक्त राष्ट्रों के पीछे जो विचार है, उसका विकास हो सकता है; जिसमें कि हर एक राष्ट्रीय इकाई को अपनी प्रतिभा के अनुसार अपने भाग्य के निर्माण की स्वतंत्रता रहे। लेकिन वह स्वतन्त्रता हमेशा विश्व शासन के बुनियादी प्रतिज्ञा-पत्र के सिद्धान्तों के अधीन रहनी चाहिये।

हम व्यक्तियों और राष्ट्रों के अधिकारों की बात करते है, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि हर एक अधिकार के साथ एक उत्तरदायित्व जुड़ा रहता है। अधिकारों पर तो बहुत अधिक जोर दिया गया है और उत्तरदायित्वों पर बहुत कम। यदि उत्तरदायित्वो की पूर्ति हो तो अधिकार तो स्वभावतः उनसे उत्पन्न होंगे।

इसके मानी यह हैं कि हमारा जीवन को देखने का ढंग, आजकल के प्रतिस्पर्द्धा-पूर्ण और झपट्टा मार कर जमा करते जाने वाले ढंग से भिन्न होना चाहिये।

आज हम सब भय से ग्रस्त हैं—भविष्य का भय, युद्ध का भय, उन राष्ट्रों के लोगों का भय, जिन्हें हम नापसन्द करते हैं या जो हमें नापसन्द करते हैं। यह भय कुछ हद तक वाजिब हो सकता है। लेकिन भय एक निम्न ढंग का उद्वेग है और हमें अंधयुद्ध की ओर ले जाता है। हमें इस भय को दूर करना चाहिये, और अपने विचारों और कार्यों को आधार रूप से ठीक और नैतिक बातों पर आधारित करना चाहिये। तब क्रमशः आत्मा के संकट का निवारण होगा। जो बादल हमें घेरे हुए हैं, वे उठ सकते हैं और तभी स्वतंत्रता पर आश्रित संसार-व्यापी व्यवस्था के विकास का मार्ग साफ हो सकेगा।

एशिया के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता

सभापति महोदय और कमीशन के सदस्यों, भारत सरकार की ओर से मैं आपका इस देश में और इस स्थान पर स्वागत करता हूं। बहुत समय से भारत का संयुक्त राष्ट्रों से संबंध रहा है क्योंकि संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और ध्येयों में शुरू से ही उसका विश्वास रहा है। यद्यपि कभी कभी संयुक्त राष्ट्रों से कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकले हैं, फिर भी हमारा विश्वास रहा है कि हमें और संसार को इसी मार्ग पर और इस आशा में चलते रहना चाहिये कि जल्दी अथवा देर में स्पष्ट परिणाम भी निकलेंगे। हमने आपके विविध कमीशनों में भाग लिया है, क्योंकि हमने अनुभव किया है कि संयुक्त राष्ट्रों के राजनैतिक पहलुओं से बिल्कुल अलग, आर्थिक पहलू भी, यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतने ही महत्वपूर्ण जरूर हैं। शायद हम एक पर दूसरे के बिना विचार ही नहीं कर सकते।

बीते दिनों में राजनैतिक अर्थ में 'एक संसार' की बात हुई है, लेकिन आर्थिक दृष्टि से इस पर विचार करना और भी महत्वपूर्ण है। आप यहां एशिया और एशिया की समस्याओं पर, और अनिवार्यतः बृहत्तर संसार के दृष्टिकोण से, विचार करने के लिये एकत्र हुए हैं। क्योंकि आजकल हम प्रायः किसी समस्या पर, उसे लोकव्यापी प्रसंग से अलग करके विचार नहीं कर सकते। एशिया ही काफी बड़ा है और जो विषय आपके आगे हैं वे और भी बड़े और अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मद्रास के गवर्नर ने उन विविध कागजों और स्मृतिपत्रों का हवाला दिया है जो कि आपके सामने हैं। जब मैं इन सब मिसलों और कागजों को देखता हूं, और इन विशेषज्ञों को देखता हूं तो किंचित् पराभूत हो जाता हूं, क्योंकि मैं साधारण जन की हैसियत से ही बोल सकता हूं। लेकिन यद्यपि विशेषज्ञ आज की दुनिया में अनिवार्य हैं, तो भी कभी कभी मेरी धारणा होती है कि वे अत्यधिक तटस्थ हो जाते हैं, और समस्याओं को इस तरह देखते हैं जैसे कि वे गणित या बीजगणित के सूत्र हों। अस्तु, हमें मनुष्यों के संबंध में विचार करना है, और इस क्षेत्र के

संयुक्त राष्ट्रों के एशिया और सुदूरपूर्व संबंधी आर्थिक कमीशन के तीसरे अधिवेशन के अवसर पर, उटकमंड, मद्रास में १ जून, १९४८ को दिया गया उद्घाटन भाषण।

मनुष्यों के संबंध मे, जिसकी कि जांच हो रही है अर्थात् एशिया के सबध में जिसकी जनसंख्या कम से कम एक अरब है। पाकिस्तान को मिलाकर भारत की जनसंख्या इसका ४० प्रतिशत है, अर्थात् चालीस करोड़। और हमे इतनी बड़ी मानव सख्या के विषय में विचार करना है, जो कि संसार की प्रायः आधी जनसंख्या है। यदि आप इस प्रश्न के मानवी पहलू को देखेगे, इन एक अरब व्यक्तियों की, जिनकी अपनी तकलीफे है, अपनी आवश्यकताएं है, और अपने सुख-दुख है, तो समस्या केवल शुष्क आर्थिक समस्या से कुछ भिन्न हो जाती है, जिसे कि आपको हल करना है और जिसके शीघ्र हल करने की महान आवश्यकता है।

पिछले अनेक वर्षों से इन समस्याओ पर संसार के दृष्टिकोण से विचार होता आया है, और इस सम्बध में मेरी यह धारणा रही है, कि एशिया महाद्वीप कुछ उपेक्षित, कुछ अनदेखा-सा रहा है। इसे इतना महत्वपूर्ण नही समझा जाता कि इसकी ओर उतना ध्यान दिया जाय, जितना कि संसार के कुछ और हिस्सों की ओर दिया जाता है।

ऐसा सभवतः इसलिये हुआ है कि इन समस्याओं पर विचार करने वाले अधिकतर लोग स्वयं संसार के अन्य भागो से घनिष्ट रूप से सबद्ध थे, और स्वभावत. उन्होने उन्ही भागो का प्रथम खयाल किया। यदि मुझे इन समस्याओ पर विचार करना पड़े, तो मै भी स्वभावत. एशिया को ज्यादा महत्व दूगा, क्योकि इसका मुझसे घनिष्टतर संबंध है। इस तरह की प्रतिक्रियाओं को अलग रक्खा जाय, तो भी यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आप एशिया की समस्याओं को या यूरोप की समस्याओं को या अमरीका की समस्याओ को या अफ्रीका की समस्याओ को और देशो की समस्याओ से अलग करके नही सोच सकते।

ऐसा किया ही नही जा सकता। और अगर कुछ देश जो कि आज काफी भाग्यशाली है, औरों की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है, यह समझते है कि वे अपना जीवन अलग-अलग रहकर बिता सकते है, चाहे बाकी दुनिया मे जो कुछ भी होता रहे, तो जाहिर है कि वे धोखे में है। आज, अगर ससार के एक भाग का आर्थिक पतन होता है तो दूसरों को भी अपने साथ खींचने की उसकी प्रवृत्ति होती है। जिस तरह कि युद्ध के आरभ होने पर, जो लोग युद्ध नही चाहते, वे भी, उसमें खिच आते है। इसलिये यह प्रश्न नही रह जाता कि जो समृद्धिशाली है, वे अपने हृदय की उदारता के कारण उनकी सहायता करते है जो कि समृद्धिशाली नही है, अगर्चे उदारता एक अच्छी चीज है। बल्कि यह व्युत्पन्न स्वार्थ का एक प्रश्न है कि यह अनुभव किया जाय कि यदि संसार के कुछ हिस्से उन्नति नही करते, पिछड़े रह जाते है, तो उनका संसार की समस्त अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है; और वे हिस्से उन हिस्सो को भी, जो कि आज समृद्धि-

गाती है, नीचे खीच लाते है। इसलिये इन समस्याओं पर लोकव्यापी रूप में विचार करना और संसार के उन भागो पर, जो कि अपेक्षाकृत पिछड़े हुए है और भी अधिक ध्यान देना अनिवार्य हो जाता है।

एशिया कई पीढियो से कुछ गतिहीन और पिछड़ी हुई दशा में रहा है। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में एशिया में महान शक्तियां काम करती रही है। इन शक्तियों ने आरभ में अनिवार्य रूप से अपने यहा राजनैतिक परिवर्तन पर ध्यान दिया, क्योकि बिना राजनैतिक परिवर्तन के कोई स्थायी या दूर तक प्रभाव रखने वाला आर्थिक परिवर्तन सभव नही था। एशिया के कई बड़े बडे भाग औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत दूसरे देशो के प्रभुत्व में थे। इस सबंध ने उन्होने कभी कुछ लाभ भी उठाया है। जहाँ एक ओर इस सबध ने एक मानी में उनकी गतिहीन को झकझोरा, वहा इसने उस स्थिति को कायम भी रक्खा।

एशिया की राजनैतिक लडाई बिल्कुल तो नही, लेकिन अधिकतर समाप्त हो चुकी है। एशिया के कुछ भाग है, जहा कि राजनैतिक स्वतत्रता के लिये अब भी लड़ाई चल रही है, और यह स्पष्ट है कि जब तक इस तरह की लड़ाई राजनैतिक क्षेत्र मे जारी है, और कामो की उपेक्षा होगी या वे व्यर्थ सिद्ध होगे। इसलिये जितनी जल्दी इसका अनुभव कर लिया जाय कि राजनैतिक दृष्टि से एशिया के प्रत्येक देश को पूरी तरह स्वतत्र होना चाहिये, और उन्हे इस स्थिति मे होना चाहिये कि किसी ससार-व्यापी सगठन द्वारा निर्धारित एक विश्व नीति के अन्तर्गत रहते हुए वे अपनी प्रतिभा के अनुकूल आत्म विकास कर सकें, उतना ही अच्छा है। यदि कोई एक बात निश्चित है तो वह यह है कि एशिया के किसी भाग में तब तक शान्ति स्थापित न होगी, जब तक कि ससार के किसी भी देश मे किसी एशियायी देश पर बल द्वारा प्रभुत्व बनाये रखने की प्रवृत्ति कायम है। मुझे खेद है कि इस प्रकार के कुछ प्रयत्न एशिया के कुछ हिस्सो मे अभी तक चल रहे है। ये प्रयत्न मुझे अवाछित ही नही बल्कि नितान्त दूरदर्शिताहीन जान पड़ते है। क्योकि उनके प्रयत्नों का केवल एक ही परिणाम हो सकता है, वह यह कि सभी प्रकार के विदेशी नियत्रणो को दूर कर दिया जाय।

अब साधारणतया एशियायी लड़ाई का यह राजनैतिक पहलू अपने स्वाभाविक और अनिवार्य अन्त को पहुँच रहा है। लेकिन साथ ही आर्थिक पहलू बना हुआ है, जो ससार पर असर रखने वाली अनेकानेक आर्थिक समस्याओ के साथ गुंथा हुआ है। एशियायी दृष्टिकोण से इन समस्याओ से निपटना मुख्यतया एक अत्यन्त आवश्यक विषय हो गया है। ससार के दृष्टिकोण से भी यह वास्तव में उतना ही आवश्यक है, क्योकि जब तक एशिया की इन समस्याओ से निबटा नही जाता, तब तक वे संसार के अन्य भागो पर भी असर डालती है। मै आशा करता हूँ

कि मैने जो कुछ कहा है आप, इस कमीशन के सदस्य, उसके महत्व को अनुभव करते है। और आप संयुक्त राष्ट्रो के प्रति यह स्पष्ट कर देंगे, कि एशियायी समस्याओ की अवहेलना का प्रयत्न स्वय संयुक्त राष्ट्रो के उद्देश्यो को विफल कर देगा।

एशिया में अनेक ऐतिहासिक शक्तिया पिछले अनेक वर्षो से काम कर रही है। बहुत सी बातें हुई है, जो अच्छी है, और बहुत सी ऐसी बातें भी हुई है, जो उतनी अच्छी नही है। जब व्यापक ऐतिहासिक शक्तियां काम करती हैं, तब सदा ऐसा ही होता है। वे शक्तियां अब भी काम कर रही है। हम उन्हे कुछ ढालने का, जहां तहां दूसरी दिशा में फेरने का, प्रयत्न करते है, लेकिन मूलतया वे अपना काम करती रहेगी, जब तक कि उनका उद्देश्य और उनकी ऐतिहासिक भवितव्यता पूरी नही हो जाती। वह ऐतिहासिक भवितव्यता केवल यह हो सकती है कि पूरी राजनैतिक और आर्थिक स्वतत्रता स्थापित हो, जो कि निश्चय ही किसी प्रकार के ससारव्यापी ढाचे के अन्तर्गत होगी। एशिया और शेष संसार के, विभिन्न देशों में विविध राजनैतिक और आर्थिक प्रणालियाँ चल रही है। यह स्पष्ट है कि जब तक हम आधार रूप में यह बात मजूर न कर लें कि किसी भी देश की किसी राजनैतिक अथवा आर्थिक प्रणाली में हस्तक्षेप न किया जायगा, और उसे संसारव्यापी सहयोग के क्षेत्र के अन्तर्गत अपना विकास करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया जायगा, तब तक सहयोग सहज न होगा।

अब आप एशिया की समस्याओ को दूरकालीन अथवा निकट के दृष्टिकोण से देख सकते है। निकटकालीन समस्याओं पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे कि एशिया की कुछ बड़ी कठिनाइयां, जिन्हे तुरंत हल होना चाहिये, हल हो सके। जैसे भोजन का प्रश्न है। यह एक असाधारण स्थिति है कि भारत जैसे देश मे या इसी प्रकार के अन्य मुख्यतया कृषिप्रधान देशों में, खाने का अभाव हो या कि भोजन पर्याप्त मात्रा में न मिले। अगर ऐसा होता है तो स्पष्ट रूप से कहीं कुछ त्रुटि अवश्य है।

अपने मन में मुझे जरा भी सदेह नही कि भारत अपनी आवश्यकताओं के लिये भोजन उत्पन्न कर सकता है, और वह करेगा भी। आज तो नही, लेकिन कुछ वर्षों के भीतर। लेकिन इस समय तो हमें इस समस्या का और तरह सामना करना है। और भी ऐसी ही जरूरी समस्याएं आपके सामने विचारार्थ आवेंगी। इन समस्याओ पर, दूरकालीन दृष्टि से देखते हुए, मुझे जान पड़ता है कि हमे अनेक कमियों को पूरा करना है। हमे अपने उत्पादन की योग्यता को बढ़ाना पड़ेगा, कृषि और उद्योग में दोनों क्षेत्रों में। यह अब स्वीकार कर लिया गया है कि एशिया के इन देशो में औद्योगीकरण होना चाहिये। अब तक विविध समस्याओं और विविध प्रभावो के कारण यह कुछ रुका रहा है।

औद्योगीकरण को सीमित करने वाला मुख्य कारण पूंजी के साधनों का अभाव रहा है। कठिनाइयां ये है कि पूंजी के साधनों को और विशेष योग्यता को, उन देशों से जहां वे मौजूद है और अतिरिक्त मात्रा में है, कैसे प्राप्त किया जाय। उन्हें कहां तक प्राप्त किया जा सकता है, इसका हिसाब लगाना आपका काम है, और इस सम्बन्ध में निर्णय करना उत्पादन करने वाले देशों का काम है। यदि ये शीघ्र नहीं प्राप्त होती, तो औद्योगीकरण के क्रम में देर हो जायगी, लेकिन तब भी यह क्रम चलता रहेगा ।

अब, अगर संसार के व्यापक हित में यह उचित समझा जाय कि भारत जैसे देश में और पूर्व के और देशों में औद्योगीकरण हो, वे वृद्धि करें, कृषि उत्पादन को आधुनिक रूप दें, तो जैसा कि मैंने कहा यह उन देशों के हित में है, जो इस क्रम में एशियायी देशों की, पूंजी के साधनों से और अपने विशेष अनुभव से सहायता कर सकते है। लेकिन ऐसा करते समय यह बात ध्यान में रखने की है कि कोई भी एशियायी देश इस प्रकार की किसी सहायता का स्वागत न करेगा, अगर इस सहायता के साथ कोई ऐसी शर्तें लगी हो, जिनसे दूसरे देशों का किसी भी प्रकार का आर्थिक प्रभुत्व स्थापित होता हो। किसी देश के किसी भी प्रकार के आर्थिक प्रभुत्व को स्वीकार करने की अपेक्षा हम अपने औद्योगिक तथा अन्य विकास में देर करना पसन्द करेंगे, ।

यह एक निश्चित सिद्धान्त है जिसे कि भारत में सभी स्वीकार करते हैं । और मुझे आश्चर्य होगा यदि एशिया का कोई और देश इस पर न चले। हम संसार के हित में प्रस्तुत किसी भी नीति या कार्यक्रम मे पूरी तौर से सहयोग देना चाहते हैं, चाहे इसमें, और देशों के साथ साथ, हमें सर्वसत्ता के किसी अंश का त्याग भी करना पड़े, शर्त यह है कि यह त्याग समान रूप से सभी पक्षों की ओर से हो। लेकिन बहुत काल के विदेशी प्रभुत्व ने एशिया के देशों को, प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी प्रकार के प्रभुत्व के अन्तर्गत ले जाने वाली बातों के प्रति बहुत अनुभूतिशील बना दिया है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप इसका ध्यान रक्खें और अपने कार्यक्रमो और नीतियों का इस प्रकार निर्माण करें कि उसमें एक देश द्वारा दूसरे देश पर किसी प्रकार के आर्थिक प्रभुत्व की गंध न हो। यह स्वीकार किया जाता है कि राजनैतिक प्रभुत्व का परिणाम आर्थिक प्रभुत्व होता है । लेकिन यदि आप सावधान न रहे तो एक अदृश्य या अप्रत्यक्ष आर्थिक प्रभुत्व प्रवेश करजा सकता है। अगर इसने प्रवेश किया तो तुरन्त दुर्भावना जगेगी और सहयोग का वह वातावरण प्राप्त नही हो सकेगा जो कि ऐसे मामलो में परम आवश्यक है।

एक दूरकालीन दृष्टिकोण से, मैं भारत की ओर से कह सकता हूं कि हमारे लिये अपने शक्ति साधनो का विकास सब से महत्व की बात होगी । इससे देश के औद्योगीकरण को प्रोत्साहन होगा और हमारे भोजन के उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

आप जानते ही है, कि आज भी भारत म और किसी भी देश की अपेक्षा आवपाशी अधिक है। हम अभी इसकी बहुत वृद्धि करने की आशा कर रहे है । हमारी निगाह मे कम से कम बीस नदी घाटी योजनाए है। कुछ बहुत बड़ी है, कुछ टेनेसी घाटी योजना से भी बडी है। और कुछ बहुत छोटी है। हमे इन योजनाओ को शीघ्र आगे वढाना है । हमें वड़े-वड़े बांधो और जलाशयों को बनाना है, और इस कार्य के द्वारा भारत के वड़े भू-भागो मे, जिनमे अभी खेती नही हो रही है, आवपाशी की सुविधाए पहुंचानी है।

यहा मै भारत की आबादी के सबध मे कुछ कहना चाहूगा । हमारी भारी जनसख्या के बारे मे बहुत कुछ लिखा और कहा गया है । किस प्रकार यह हमें अभिभूत कर देती है, और किस तरह जब तक हम इसकी बढती को रोकते नही, या इसे कम नही करते, हम किसी भी समस्या का हल नही कर सकते। मेरी यह इच्छा हरगिज नही है कि भारत की जनसख्या बढती जाय। मै पूरी तरह से जनसख्या को बढने से रोकने के पक्ष मे हू, लेकिन मै समझता हू कि इस पहलू पर इतना जोर दिया जाना एक बड़ी भूल है। मै इससे विल्कुल सहमत नही हू। मेरा खयाल है कि भारत कम आवाद देश है, और मै यह इसलिये नही कहता हू कि मैं इसकी आवादी वढाना चाहता हू। यह कम आवाद यो है कि भारत के वड़े टुकड़ो में अव भी आवादी नही । यह सही है कि अगर आप गंगा के मैदान मे जायँ, तो वहाँ घनी आवादी पावेंगे। भारत के कुछ भागो की घनी आवादी अवश्य है, लेकिन बहुत से हिस्से ऐसे है जो कि विल्कुल आवाद नही है।

कल रात इस सम्मेलन के एक प्रतिनिधि ने वताया था कि कराची से दिल्ली, मद्रास और फिर उटकमड आते हुए उन्हे आवादी की कमी देखकर आश्चर्य हुआ। जाहिर है वह हवाई जहाज द्वारा यात्रा कर रहे थे, फिर भी सारा ग्राम प्रदेश उन्हे विरल आवादी वाला जान पड़ा, और आखिर इतना तो आदमी जान ही सकता है कि देश घने तौर से आवाद है या नही। यह ठीक खयाल है, क्योकि हमारा कितना ही विस्तृत भू-भाग आवाद नही है।

अगर आप यो कहना चाहे , तो हमारी उत्पादन की योग्यता के कम होने के कारण यह कहा जा सकता है कि हमारी आवादी अधिक है। अगर हम अपना कृषि संबंधी तथा अन्य उत्पादन वढ़ाते है, अगर यह आवादी उत्पादन के काम मे लगती है, तो हमारी आवादी ज्यादा नही है । हमारी नदी घाटियो की ये वड़ी योजनाएं है, जो कि भूमि की आवपाशी के अतिरिक्त, बाढ़ो, धरती के कटाव और मलेरिया को रोकेंगी, और वड़े परिमाण मे जल-विद्युत शक्ति का उत्पादन करेंगी । साथ ही औद्योगिक विकास में भी सहायक होगी। अगर आप भारत के नक्शे को देखे, तो आप उत्तर से पूर्वोत्तर जाती हुई एक विशाल पर्वत-शृंखला देखेंगे। मेरी समझ में संसार

का कोई भी देश ऐसा भूखंड वाला नहीं, जहा कि इतनी अधिक प्रच्छन्न शक्ति विद्यमान हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस शक्ति को ग्रहण करके उपयोग में लाया जाय। हम उसे ग्रहण करके उपयोग में लाना चाहते हैं। कुछ हद तक हमने ऐसा किया भी है। साथ ही हिमालय में अपार विविध खनिज साधन भी भरे पड़े है।

साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि भारत ही नहीं, बल्कि यह सारा एशियायी भूखंड, मानवी और भौतिक दोनो तरह के अपार साधनो से भरा हुआ पड़ा है और हमारे सामने प्रश्न यह है कि इनके सयोग से किस प्रकार परिणाम प्राप्त किये जायं। यह नहीं कि हमारे यहा आदमियो या सामग्री की कमी हो। हमारे यहां ये दोनो है। इनको एक साथ काम में लगाने के लिये पूजी के साधनों की और अनुभवी यन्त्र कुशल व्यक्तियो की कमी है जो उन देशो से प्राप्त हो सकते है, जहा इनकी बहुतायत है। ऐसा करने से अनिवार्य रूप से ससार का भला होगा। यदि यह नही हो सकता तो, हमें सीमित रूप मे काम करना होगा। लेकिन किसी न किसी प्रकार हमें उस दिशा मे जाना है।

इन नई योजनाओ मे उत्पादन में वृद्धि करने के अतिरिक्त, हमारे लिये अपने मौजूदा साधनो का भी और अधिक अच्छा उपयोग करना आवश्यक है। मैं नही समझता कि आजकल उनका अच्छे से अच्छा उपयोग हो रहा है। जो कुछ हमारे पास है, उससे हम जितना काम ले रहे हैं, उससे अधिक ले सकते है। इसके साथ भारत मे, और शेष एशिया में, भी अनेक समस्याए लगी हुई है: अर्थ व्यवस्था की, पूजी और श्रम के परस्पर सम्बन्ध की और मजदूरो को संतुष्ट करने की। इसमें कोई सदेह नही कि सभी, या कम से कम अधिकाश एशियायी देशो में चिरकालीन सामाजिक अन्याय चले आ रहे है, और स्वाभाविक है कि जहाँ ये सामाजिक अन्याय हो, वहा ठीक ठीक और सतोषजनक कार्य नहीं हो सकता। विशेषकर अब, जब कि सामाजिक अन्याय और सामाजिक विषमता की भावना इतनी तीव्र हो गई है।

इस में मुझे ज़रा भी संदेह नही कि भारत मे इस सामाजिक अन्याय की तीव्र भावना के कारण उत्पादन में रुकावट आई है। एक व्यक्ति अथवा एक समाज प्राय किसी भी भार को उठा सकता है। हमने पिछले युद्ध में देखा है कि राष्ट्रो ने किस प्रकार त्याग और कष्ट के रूप मे भारी से भारी बोझ उठाये है। लेकिन जब कि उन बोझ के वहन करने में विषमता की भावना हो, अर्थात् एक पर कम बोझ पड़ रहा हो और दूसरे पर अधिक, तो अन्याय की भावना बढ जाती है। उन दशामें आप सहयोग और सुगमता से होता हुआ वह कार्य नही देख सकते, जिसकी कि आज, पिछले समय से कहीं अधिक आवश्यकता है। इसलिये विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण की अपेक्षा इस समस्या को मानवी दृष्टिकोण से देखने की जरूरत है।

अगर कोई इस समस्या को इस मानवीय दृष्टिकोण से देखता है, और विना लम्बे तर्कवितर्क के, सहयोग करने का प्रयत्न करता है, तो मैं समझता हूं कि वह इसे वहुत दूर तक हल कर लेता है, और वह भिन्न सिद्धात रखने वाले लोगों से भी वहुत कुछ सहयोग प्राप्त करने मे सफल हो सकता है। इसलिये मैं इस कमीशन से अनुरोध करूंगा कि वह इस समस्या को सामाजिक अन्यायों के दूर करने के मानवीय दृष्टिकोण से देखे। यह ठीक है कि कमीशन किसी देश को उसके आर्थिक ढांचे के संबंध मे कोई आदेश न देगा। लेकिन कमीशन यदि कोई परामर्श देता है, तो निश्चय ही उसका वहुत असर पड़ेगा और अधिकतर देश, संभवत, उसका अधिक से अधिक पालन करेगे।

अव, जो कुछ मैंने कहा है उसे दुहराऊ, तो मैं आशा करता हू कि यह कमीशन इस वात का ध्यान रखेगा कि हम लोग करोड़ो मनुष्यो के विपय मे विचार कर रहे है, न कि काल्पनिक देशो या काल्पनिक वर्गो के विषय में। हर एक व्यक्ति का अपना परिवार है, जिसमे वच्चे है, जो संभवतः भूखों रह रहे है, जिन्हें संभवतः कोई शिक्षा नही प्राप्त हुई है, और विकास और उन्नति के कोई भी अवसर नही मिले है।

मैंने शुरू मे ही कहा था कि एशिया के कुछ हिस्सो ने अपनी राजनैतिक समस्याओ को भी अभी तक पूरी तौर पर हल नही किया है। कुछ मे पिछले ही वर्ष मे महान राजनैतिक परिवर्तन हुए है। भारत मे ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। भारत का एक हिस्सा पाकिस्तान वन गया है, वर्मा स्वतंत्र हो गया है, आदि। इस कमीशन मे वर्मा और न्यूजीलैंड के प्रतिनिधियों का मैं विशेष स्वागत करना चाहता हूं। यहां पर इंडोनेशिया के प्रतिनिधियो को भी देखकर मुझे वहुत प्रसन्नता होती।

मैं ऐसे विषयों के कानूनी और वैधानिक पहलुओ मे न जाऊंगा, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण से मुझे यह आवश्यक जान पड़ता है कि इंडोनेशियन गणराज्य जैसे प्रदेश की, जो कि एशिया के सव से संपन्न प्रदेशो मे है, उपेक्षा नही की जा सकती। आप एशिया के लिये जो भी योजना तैयार करें, उसमे यदि उस प्रदेश का प्रत्यक्ष और पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही होता, तो आपकी वह योजना अधूरी है। वह स्थिति की आवश्यकताओ को पूरा नही करती। आप एशिया के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग को अलग करके, शेष एशिया के लिये योजना तैयार नही कर सकते। इसलिये इस वात का मुझे खेद है कि इंडोनेशियन गणराज्य के प्रतिनिधियो को अभी तक यहाँ सीधा प्रतिनिधित्व नही मिला है। मैं आशा करता हूँ कि इस कमीशन के परामर्शों मे उन्हे आमंत्रित कर, किसी न किसी रूप में, उन्हे सम्मिलित करना संभव हो सकेगा।

जैसा मैंने कहा, आवादी के खयाल से, भारत इस एशियायी भूखंड का ४० प्रतिशत है। भौगोलिक दृष्टि से भी, इसकी स्थिति वहुत महत्वपूर्ण है।

भारत का निश्चय है कि वह एशिया और ससार के लिये इस सहयोगपूर्ण उद्योग मे पूरा भाग लेगा।

लोग एशिया मे भारत के नेतृत्व की अस्पष्ट रूप मे चर्चा करते है। मै इस तरह की बातचीत नापसन्द करता हू। मै चाहता हूं कि इस समस्या को इस रूप से न देखा जाय कि यह देश अथवा वह देश नेता है और दूसरो को खीच रहा है या ढकेल रहा है -बल्कि एशिया के सभी देशो के परस्पर सहयोग की भावना से इस समस्या को देखा जाय। अगर कोई देश अधिक सहयोग करता है, तो अच्छा। अगर कोई देश समान ध्येय के लिये अपने हिस्से से अधिक सेवा अर्पित करता है, तो यह और भी अच्छी बात है उसकी प्रशसा होनी चाहिये लेकिन किसी देश का यह समझना कि वह दूसरो का नेतृत्व कर रहा है, बड़े अभिमान की बात होगी। विशेषतः एक ऐसे संगठन में जो कि सभी के हित के लिये है, इस तरह का विचार अवांछनीय है।

हमें सभी देशो के बीच एकमात्र सहयोग की ही बात करनी चाहिये, वह चाहे कोई भी देश हो। मै चाहता हूं कि भारत इसी भावना के साथ इस समस्या को देखे। साथ ही, मै यह भी चाहता हूं कि सब की सेवा के उद्देश्य से बनाए गए कार्य-क्रम मे भारत का प्रमुख भाग रहे, चाहे भारत के लिये उसका परिणाम जो भी हो।

आप का कमीशन यहाँ पर पहली बार आया है। मै समझता हू कि जो बाते आपको तय करनी हैं, उनमें से एक यह भी है कि आपका अस्थायी प्रधान कार्यालय कहा हो। संभवतः शीघ्र ही प्रादेशिक प्रधान कार्यालयो के लिये स्थान ढूढ़ने का प्रश्न उठेगा। यह निश्चय करना आपका काम है, मैं इस विषय मे अधिक न कहूगा। लेकिन भारत सरकार की ओर से मै आपको अपना प्रधान कार्यालय भारत में बनाने के लिये आमत्रित करना चाहता हूं। यदि आप ऐसा निश्चय करेंगे, तो हम आपका बहुत स्वागत करेगे, और यहाँ आपकी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यथाशक्य प्रयत्न करेगे। न केवल कमीशन का, बल्कि प्रादेशिक प्रधान कार्यालय भी हम यहा ही चाहेंगे। भारत मे स्थान का ठीक निश्चय बाद में, आपकी और भारत सरकार की सुविधानुसार हो सकता है। हर हालत में मै यह आमंत्रण एक गैररस्मी ढंग से आपके सामने रखना चाहता हूं, और आपका जो भी निर्णय होगा, उसे हम निश्चय ही स्वीकार करेंगे। चाहे जहां आपका प्रधान कार्यालय हो, हम आपके साथ पूरा सहयोग करेंगे।

मै एक बार फिर आप का स्वागत करना चाहता हूं और यह इच्छा प्रकट करता हूं कि आपके प्रयत्न सफल हों।

ोरिस में ३ नवम्बर, १९४८ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा के विशेषाधिवेशन में भाषण दे

(दक्षिण भारत) मे जून १९४८ मे सुदूरपूर्व तथा एशिया के लिए सयुक्त राष्ट्रसघ के आर्थिक कमी
के अधिवेशन मे भाषण देते हुए श्री नेहरू
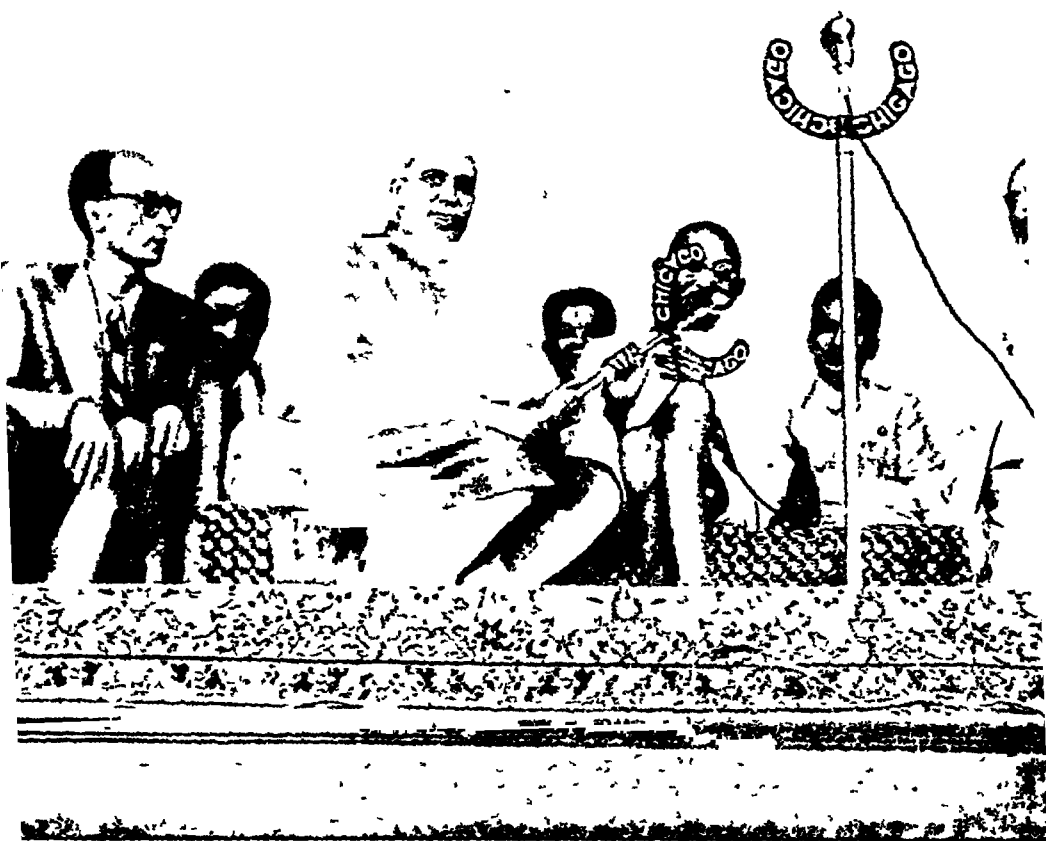
मार्च १९४७ में, नई दिल्ली में प्रथम एशियायी सम्बन्ध-सम्मेलन में

ें, नवम्बर १९४८ म, अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संघ की एशियायी प्रादेशिक-कान्फ्रेन्स का
उद्घाटन करते हुए

विश्व स्वास्थ्य संघ

प्रतिनिधिगण, हमारी सरकार की ओर से स्वास्थ्य मन्त्री ने आपका हार्दिक स्वागत किया है, मैं उसमे सम्मिलित होता हूँ। मैं उस स्वागत के साथ कुछ थोड़े से शब्द और जोडना चाहूंगा और यह कहूंगा कि हम आपका केवल रस्मी ढंग से स्वागत नहीं करते हैं, वल्कि जो काम यह संगठन, विशेषकर दक्षिण पूर्वी एशिया के दृष्टिकोण से, जहां कि ससार के और बहुत से भागो की अपेक्षा स्वास्थ्य की स्थिति पिछड़ी हुई है, कर रहा है, उसे हम बहुत अधिक महत्व देते हैं। स्वास्थ्य एक बहुत बडा शब्द है और आपके अधिकार पत्र के ध्येयो में मै इसकी परिभाषा पाता हूँ। यह पढ कर मुझे प्रसन्नता हुई है कि आपने इसकी परिभाषा "शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्षेत्र की पूर्ण भलाई की स्थिति, केवल रोग या जीर्णता का अभाव ही नहीं" इस रूप में दी है। अगर आपका यह ध्येय सिद्ध होता है तो मुझे विश्वास है कि आप संसार की सारी समस्याओ को हल कर लेंगे, क्योकि यदि यह हमें हासिल हो जाता है तो दुनिया से करीब करीब सभी समस्याए लुप्त हो जाती है। इसलिये मुझे प्रसन्नता है कि आप भी आखिर—यद्यपि यह ध्येय जल्द नही पूरा हो सकता—लक्ष्य पर या किसी और अच्छे परिणाम पर पहुँच सकेंगे।

राजनैतिक क्षेत्र में सयुक्त राष्ट्र सघ दो या तीन वर्षों से कार्य कर रहा है। वहाँ उसे बहुत बड़ी समस्याओ का सामना करना पड रहा है और उन्नति करना उसके लिये सदा सुगम नही रहा है। फिर भी उसकी सब कमजोरियो के बावजूद, जो कि संगठन की कमजोरिया उतनी नही है जितनी कि उस दुनिया की है जिसमें हम रह रहे है, वह तरक्की कर रहा है। आज दुनिया में यही एक ऐसी चीज है, जो कि अन्तत ससार की राजनैतिक समस्याओ के हल की कुछ आशा दिलाती है। इस अवसर से लाभ उठाने की दुनिया को काफी बुद्धि है भी या नहीं, इसकी भविष्यवाणी करने की मुझमें योग्यता नही। लेकिन मुझे जान पड़ता है कि सब क्षेत्रो में वास्तविक शान्ति हासिल करने की एकमात्र सभावना केवल अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में ही है। इसलिये हमारा कर्तव्य हो जाता है कि राजनैतिक क्षेत्र में और दूसरे क्षेत्रो में भी हम उस सहयोग को बरतें।

विश्व स्वास्थ्य संघ की दक्षिण पूर्वी एशिया की प्रादेशिक समिति के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली में ४ अक्तूबर, १९४८ को दिया गया भाषण।

राजनैतिक स्तर पर बड़े-बड़े संघर्ष हैं, परन्तु दूसरे क्षेत्रों में वैसे संघर्ष नहीं है। लेकिन उनसे निवटने के लिये आपके पास पर्याप्त साधन होने चाहिये। इसलिये यदि हम इस कार्य में और ऐसे ही कार्यों मे अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त कर लेते हैं, तो हम केवल एक ऐसे क्षेत्र मे ही अच्छा काम नही कर रहे हैं, जो कि संसार की उन्नति के लिये आवश्यक है, वल्कि असल मे हम परोक्ष रूप में संसार के और वड़े राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों को ही हल कर रहे हैं। इस प्रकार हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक वातावरण उत्पन्न करते हैं और यह एक वहुत वड़ी बात है। आज की दुनिया को देखते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि यहां बड़े संघर्ष हैं। और ये संघर्ष अनेक कारणों से हैं, लेकिन कदाचित् सवसे वड़ा कारण यह है कि दुनिया में कुछ मनोवैज्ञानिक स्थितियां हैं, जिन पर भय की भावना छाई हुई है। हर आदमी का भय, एक दूसरे का भय और दूसरे देश का भय। अव, अगर भय की यह भावना चली जाय, तो हर एक कार्य क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित हो जायगा।

इसलिये एक राजनीतिक व्यक्ति की हैसियत से, मैं यह कह सकता हूं कि राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के ये प्रयास, वास्तव मे राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के हल के लिये एक आवश्यक पूर्व रूप हैं। कुछ लोग यह ख्याल कर सकते हैं कि इस ज़माने में दूसरे क्षेत्रों में यह सहयोग, राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों से कुछ अलग-अलग है, लेकिन राष्ट्रीय जीवन अन्ततः एक मिलीजुली चीज है। यदि कोई गलत वात हुई, तो सारा ढांचा विगड़ जाता है। यदि एक व्यक्ति का स्वास्थ्य विगड़ता है, तो एक राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य भी विगड़ता है और इसका संसार पर भी प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार सभी दृष्टिकोणो से, इस विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन का विचारणीय विषय यानी स्वास्थ्य, भौतिक तथा दूसरे क्षेत्रों मे, संसार के भावी कुशल क्षम के लिये, एक आवश्यक विषय है। इस तरह की शिकायत प्रायः हुई है, जिसे कि अवश्य ही आप सज्जनो ने भी सुना होगा, कि इन वड़े अन्तर्राष्ट्रीय संगठनो में उन समस्याओं पर खास जोर दिया जाता है जिनका कि यूरोप या अमेरिका या संसार के कुछ और हिस्सो से सम्वन्ध रहता है और एशिया के हिस्सों मे वे विशेष दिलचस्पी नही लेते। मैं यह शिकायत इसलिये करता हूं कि, प्रायः जो लोग इन संगठनों में प्रमुख भाग लेते हैं, उनकी दिलचस्पी यूरोप की वड़ी समस्याओ में ही रहती है। यदि आप स्वास्थ्य के प्रश्न को लें, तो स्पष्ट है कि आपको एशिया के वड़े प्रदेशों और संसार के कुछ अन्य ही भागो को अपना कार्यक्षेत्र वनाना होगा।

यह भी आज भलीभांति विदित है कि दुनिया को हम इस तरह नहीं वांट सकते

कि कुछ भाग तो यहाँ स्वास्थ्यपूर्ण रहे और कुछ को अस्वस्थ रहने दिया जाय। क्योंकि छूत फैलती है, सभी कुछ फैलता है। आज अगर युद्ध होता है तो वह भी फैलता है, यदि रोग है तो वह भी फैलता है। इसलिये आपको सारी दुनिया को ही देखना होगा। तब सारी दुनिया को देखते हुए यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि आप उन भागो के लिये उपाय करे जो कि किसी खास दिशा में पिछड़े हुए है। इसलिये दक्षिण-पूर्वी एशिया की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओ को निबटाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। और मुझे प्रसन्नता है कि प्रदेशो को लेकर इन समस्याओ के निबटाने का क्रम विकास पा रहा है। इस पद्धति से विशेष प्रदेशो की खास समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जहां तक भारत सरकार का सम्बन्ध है, वह इस सगठन की सहायता करने में और इसके निर्णयो को कार्यान्वित करने मे अपनी पूरी शक्ति से मदद देगी।

सहयोग का एक नया वातावरण

मैं इग्लिस्तान में फिर कई वर्षों वाद आया हूँ, और जहा भी मैं गया हू, मुझे वहा स्वागत और मैत्री प्राप्त हुई है। मैं इसके लिये वहुत कृतज्ञ हूँ।

मित्रो, मैंने यहा वहुत वर्ष विताये है, लेकिन वीते हुए समय मे अनिवार्यत एक सघर्ष और विरोव की भावना रही है, जो कि भारत और इग्लिस्तान के वीच थी। सौभाग्य से वह अव खत्म हो रही है, और हम एक नये ढग से और सहयोग के एक नये वातावरण में एक दूसरे के निकट आ रहे हैं।

ब्रिटेन का पुराना औपनिवेशिक साम्राज्य क्रमश. वदल कर स्वतंत्र राष्ट्रमडल के देशो अथवा कुछ उपनिवेशो और कुछ अस्वायत्त देशो के अवशेषो का समूह वना। अव वे उपनिवेश भी, या उनमे से अधिकाश स्वतत्र हो गये हैं। कुछ अभी रह गए हैं। मै आशा करता हू कि यह परिवर्तन-क्रम शीघ्र ही पूरा होगा, जिससे कि यह राष्ट्रमडल वास्तव मे स्वतंत्र राष्ट्रो का राष्ट्रमडल या कामनवेल्थ वन जायगा।

जहा तक भारत का सवध है, वहाँ एक अद्भुत परिवर्तन हुआ है। न केवल इसलिये कि इसने वहुसख्यक लोगो पर प्रभाव डाला है, वल्कि इसलिये भी कि पिछली कितनी ही पीढियो से हमारा सघर्ष चला आ रहा था। यह इस वात को दिखाता है कि जव ठीक कदम उठाया जाता है, तो उस ठीक कदम के परिणाम शीघ्र निकलते हैं।

भारत में आज वीती वातो के वावजूद इग्लिस्तान के विरुद्ध वहुत कम दुर्भावना है। और मैं समझता हू कि जो कुछ वच रही है, वह भी वहुत जल्द मिट जायगी। उतना शीघ्र, जितना कि हम अपने सामने के वड़े कामो मे, सहयोग करेंगे।

मै यहां अधिराज्यो के प्रधान मत्रियो की वैठक के सवध मे आया हूँ और दूसरे अधिराज्यो से आये हुए विख्यात राजनीतिज्ञो से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इस मेल का नतीजा यह हुआ है कि आपस में हमने एक दूसरे को समझा और हर एक व्यक्ति दूसरे की कठिनाइयो से परिचित हुआ है। हम सव वातो पर भले ही सहमत न हों, लेकिन यह एक आश्चर्यजनक वात है कि न केवल ध्येय के विषय मे, वल्कि उन्हे प्राप्त करने के तरीको के विषय में भी हम सव का इतना एकमत रहा है।

वी० वी० सी०, लदन से २६ अक्तूबर, १९४८ को प्रसारित एक भाषण।

आखिरकार, कामनवेल्थ के ध्येय वही हो सकते है जो कि सयुक्त राष्ट्रों के अधिकार-पत्र में विस्तार से अकित है; अर्थात् शान्ति की स्थापना, सघर्ष को रोकना और सारे संसार में मानवीय अधिकारो की प्रतिष्ठा।

यदि कामनवेल्थ इसके प्रतिपादन मे न केवल अपने क्षेत्र मे सफल होता है, वल्कि उसे संसार के विस्तृत क्षेत्र में सफल होने में सहायता देता है, तो कामन-वेल्थ संसार का सर्वोत्तम नेतृत्व कर सकेगा।

इस वैठक ने मुझे दिखाया है कि कामनवेल्थ के लिये इस रूप मे कार्य करने का, और न केवल अपनी वल्कि दूसरों की भी सहायता करने का, वहुत वड़ा क्षेत्र है ।

अन्त में मै फिर ब्रिटेन के लोगों और ब्रिटेन की सरकार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना चाहता हूं।

संयुक्त राष्ट्रों के प्रति

इस महान सभा के सामने भाषण देने का जो अवसर मुझे दिया गया है, उसके लिये मै कृतज्ञ हूं। इस अवसर ने मुझे कुछ परेशानी और घबराहट मे डाल दिया है, क्योकि यह सभा संसार के समाज की प्रतिनिधि है, और जो लोग यहा मौजूद है वे चाहे बड़े स्त्री पुरुष हो, चाहे छोटे, वे सब एक विशाल उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते है, और उस विशाल उद्देश्य का बड़प्पन कुछ हम लोगो पर भी आता है, और हमें भी, वह एक क्षण के लिये, जैसे हम है, उससे अधिक वड़ा बना देता है।

इसलिये, इस सभा में भाषण देने का साहस करते हुए मुझे कुछ सकोच होता है। आप पेचीदा और कठिन समस्याओ को हल करने में लगे रहे है, और इस अवसर पर आपके सम्मुख विचारणीय वड़ी समस्याओ के विषय में, कुछ कहने का साहस मै नही करता हूं और न करूंगा। आप संसार के वोझो और दु:खों को वहन कर सकते है। लेकिन अक्सर मुझे यह आश्चर्य होता है कि इन समस्याओं से निवटने के लिये जो रास्ता साधारणत: पकड़ा जाता है, वह ठीक भी है या नही ? संयुक्त राष्ट्रों के अधिकारपत्र ने उदात्त भाषा में इस बड़े संगठन के सिद्धांत और उद्देश्य अंकित किये है। मै नही समझता कि उस भाषा को सुधारना संभव है।

उद्देश्य स्पष्ट है, आपका ध्येय स्पष्ट है, और फिर भी, उस ध्येय को देखते हुए भी मैं यह कहने का साहस करना चाहता हूं कि हम अकसर अपने को छोटी छोटी वातों में खो बैठते है और अपने सामने के मुख्य ध्येय को भूल जाते हैं। कभी कभी ऐसा जान पड़ता है कि ध्येय स्वयं कुछ धुंधला हो जाता है और अपेक्षाकृत छोटे ध्येय हमारे सामने आ जाते है। और जिस मुख्य उद्देश्य हम को देख रहे थे उसे भूल जाते हैं।

मैं ऐसे देश से आ रहा हूं, जिसने कि एक लम्बी लड़ाई के वाद, यद्यपि वह लड़ाई एक शान्तिपूर्ण लड़ाई रही है, अपनी आजादी और अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की। लड़ाई के इन लम्बे वर्षों में, हमारे महान नेता ने हमें सिखाया था कि हमें न केवल अपने ध्येयो को न भूलना चाहिये, वल्कि उन तरीकों को भी न भूलना चाहिये,

---

संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा के सामने, पेरिस में, ३ नवम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

जिनसे कि यह ध्येय प्राप्त किया जाय। सदा उन्होने इस वात पर जोर दिया कि अच्छे ध्येय होना ही काफी नही है, यह भी उतने ही महत्व की वात है कि उन ध्येयों को प्राप्त करने के साधन भी अच्छे हो। साधन ध्येय के समान ही महत्व रखते है। आप इसे दुहराने की मुझे आज्ञा दे, क्योकि मेरा विश्वास है कि ध्येय चाहे जितने अच्छे हो, वे चाहे संयुक्त राष्ट्रो के वृहत्तर ध्येय हों, चाहे अपेक्षाकृत छोटे ध्येय हो, जो कि अकेले राष्ट्रो की अथवा राष्ट्रो के वर्ग की हैसियत से हम समय समय पर अपने सामने रखते है, महत्व की वात यह है कि हम याद रक्खे कि अच्छे से अच्छे ध्येय भी सिद्ध न होगे, अगर हमारे नेत्रो मे खून की सुर्खी है और हमारे मस्तिष्क पर आवेग के वादल छाए है ।

इसलिये हमारे लिये, यह आवश्यक हो जाता है कि एक क्षण के लिये हम यह भी सोचे कि हम किस तरह काम करते है, न सिर्फ यह कि हमारा ध्येय क्या है । अगर्चे हमें अपने ध्येय को भी कभी न भूलना चाहिये । यह आवश्यक है कि हम उन सिद्धातो और उद्देश्यो को सदा याद रक्खे, जिनके लिये कि यह महान सभा वनी थी।

अव उन सिद्धातो और उद्देश्यो के दुहराने मात्र से शायद संकेत मिल जाय कि किस तरह कभी कभी आवेग और पक्षपात मे पड़कर, हम उस मार्ग से भटक जाते है। यह सभा दो महायुद्धो के वाद और उन युद्धो के परिणामस्वरूप अस्तित्व मे आई। इन दो युद्धो की क्या शिक्षा रही है ? निश्चय ही इन युद्धो ने सिखाया है कि घृणा और हिंसा द्वारा आप शान्ति का निर्माण नही कर सकते। ये परस्पर विरोधी वातें है । इतिहास के लम्वे दौर की, और विशेषकर पिछले दो महायुद्धो की, जिन्होने कि मानवता का भीषण संहार किया, यह शिक्षा रही है कि घृणा और हिन्सा सदा घृणा और हिंसा को ही जन्म देती है । हम घृणा और हिंसा के कुचक्र में पड़ गये है, और ओजस्वी से ओजस्वी वहसे भी आपको उससे वाहर न निकाल सकेगी, जव तक कि कोई दूसरा रास्ता, दूसरे साधन आप प्राप्त न कर लें। यह स्पष्ट है कि आप इस चक्कर मे पडे रहे और युद्ध होते रहे, जिन्हे कि रोकने और दूर रखने के लिये यह सभा खास तौर पर वनी है, तो इसका नतीजा इतना ही न होगा कि सारी दुनिया पर भयानक तवाही आवेगी, वल्कि यह भी कि कोई भी शक्ति या वर्ग कभी अपने ध्येय को प्राप्त न कर सकेगा ।

तव फिर हम कैसे आगे वढ़े? हो सकता है कि घृणा, पक्षपात और भय को मन से दूर करना कठिन हो। फिर भी, जब तक हम इस तरह आगे वढ़ने की ओर इसी भय को दूर करने की कोशिश नही करते, तव तक हमे सफलता नही मिल सकती। इसका मुझे पूरा विश्वास है।

यहाँ ससार के करीव करीव सभी राष्ट्रो के प्रतिनिधि एकत्र है । अनिवार्य रूप से, आपके सामने और आप के पीछे वर्तमान कालीन वड़ी-वड़ी समस्याएं हैं जो खास तौर पर यूरोप की है, जिसने कि इतने कष्ट झेले है।

क्या मै एशिया के एक प्रतिनिधि की हैसियत से यह कहूं कि हम यूरोप का उसकी संस्कृति के लिये और मानवीय सभ्यता में इसकी महान उन्नति के लिये, आदर करते है ? क्या मैं कहू कि हम यूरोप की समस्याओ के हल में भी उतनी ही दिलचस्पी लेते है ? लेकिन क्या मैं यह भी कहूं कि दुनिया यूरोप से वडी है, और आप अपनी समस्याएं यह समझ कर नही हल कर सकते कि संसार की समस्याए मुख्यतया यूरोप की ही समस्याएं है ? दुनिया के वहुत वड़े ऐसे क्षेत्र है, जिन्होने अभी, कुछ पीढियो से, संसार के मामलो में हिस्सा न लिया था। लेकिन अव वे जाग गये है । अव उनके निवासी गतिशील हैं और वे हरगिज इस वात के लिये तैयार नही कि अपनी उपेक्षा या अपना पीछे छोड़ दिया जाना सहन करें।

यह एक सीधी-सी वात है, जिसे कि मैं समझता हूँ आपको याद रखनी चाहिये । क्योकि जव तक आपके सामने दुनिया की पूरी तस्वीर न हो, आप समस्या को समझ ही न सकेंगे। और अगर आप दुनिया की एक भी समस्या को औरो से अलग करते है, तो आप उस समस्या को समझते ही नही। आज मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि एशिया की दुनिया के मामलों में गिनती है। कल उसकी गिनती आज से भी ज्यादा होगी। एशिया अव से कुछ पहले तक वहुत कुछ साम्राज्य-वाद और औपनिवेशिकता का शिकार वना रहा। उसका एक वडा हिस्सा आज स्वतंत्र है । अव भी कुछ हिस्सा स्वतंत्र नही हुआ है, और यह एक अचरज की वात है कि आज भी कोई देश औपनिवेशिकता के इस सिद्धांत को मानता रहे और उसे पेश करे, चाहे वह प्रत्यक्ष शासन के रूप में हो, चाहे किसी परोक्ष रूप में। जो कुछ हो चुका है, उसके वाद इस पर केवल आपत्ति ही न की जायगी, वल्कि सक्रिय आपत्ति की जायगी; औपनिवेशिकता के हर एक रूप के विरुद्ध, चाहे वह दुनिया के किसी भी भाग में हो, सक्रिय विरोध होगा। यह पहली वात याद रखने की है ।

एशिया में हम लोगो ने, जिन्होने कि औपनिवेशिकता की ये सव वुराइयां झेली है, अनिवार्य रूप से, हर एक औपनिवेशिक देश की आजादी के लिये प्रतिज्ञा कर ली है । एशिया में हमारे कितने ही पडोसी देश है, उनसे हमारी गहरी मित्रता है। हम उन्हे सहानुभूति के साथ देखते हैं, उनकी आजादी की लड़ाई को सहानभूति से देखते है। कोई भी शक्ति, चाहे वडी हो या छोटी, जो कि इस प्रकार इन लोगो की आजादी में वाधा डालती है, वह संसार की शाति के हक में अच्छा नही करती।

भारत जैसा बड़ा देश, जो कि औपनिवेशिकता की अवस्था से निकल चुका है, इसकी संभावना की भी कल्पना नही कर सकता कि और देशो पर औपनिवेशिक शासन का जुआ पड़ा रहे।

हम एशियायी इसे एक महत्व का प्रश्न समझते है, क्योकि यह हमारे लिये सदा एक महत्व का प्रश्न रहा है। एक और प्रश्न भी है, जिस पर मै आप का ध्यान दिलाना चाहता हू। वह प्रश्न जातिगत समानता का है, जो ऐसी बात है कि जिसके विषय में सयुक्त राष्ट्रो के अधिकार पत्र में भी व्यवस्था की गई है। उसे दुहराना ठीक होगा, क्योकि आखिरकार जातिगत समानता के प्रश्न पर अक्सर संयुक्त राष्ट्रो की सभा में विचार हुआ है।

मै नही समझता कि इस प्रश्न के किसी खास पहलू पर मुझे कुछ कहने की आवश्यकता है। लेकिन मै इस सभा को, इस प्रश्न के लोकव्यापी पहलुओ की याद दिलाना चाहूंगा। यह स्पष्ट है कि दुनिया के कई बड़े-बड़े प्रदेश है, जिन्होने कि जातिगत विषमता के प्रश्न के कारण हानि उठाई है। हम यह भी अनुभव करते है कि दुनिया का कोई भी हिस्सा ऐसा नही, जहां कि यह विषमता भविष्य में स्वीकार की जायगी। यह दूसरी बात है कि अधिक बल के सामने किसी को जबरन झुकना पड़े। यदि जातिगत समानता को स्वीकार नही किया जाता, तो साफ तौर पर सघर्ष के बीज बोये जाते है, और संसार की शान्ति को संकट मे डाला जाता है। यह संयुक्त राष्ट्रो के अधिकार पत्र के सिद्धान्तो के भी विपरीत है।

अतीत काल मे इस विषमता के परिणामो को यूरोप की अपेक्षा एशिया, अफ्रीका और दुनिया के दूसरे कई भागों मे कही अधिक अनुभव किया गया है। यह विषमता भविष्य में हमे संघर्ष की ओर ले जा रही है। यह एक प्रश्न है, जिसे यदि ठीक ठीक न समझा गया तो उसका हल न हो सकेगा।

यह एक अजीब सी बात है कि जब दुनिया मे इतनी चीजो की कमी हो, दुनिया के बहुत से हिस्सो में भोजन और जरूरी चीजो की कमी हो, लोग भूखो मर रहे हो, तब राष्ट्रो की इस सभा का ध्यान कुछ राजनैतिक प्रश्नो पर ही केन्द्रित हो। हमारी आर्थिक समस्याए भी है। मै नही जानता कि आप के सामने के राजनीतिक प्रश्नो से कुछ अवकाश ले लेना और तब तक उनके सम्बन्ध में मनुष्यों के विचारों को स्थिर होने देना तथा इस बीच गंभीर और आवश्यक आर्थिक समस्याओ पर ध्यान देना और यह देखना कि दुनिया में कहां खाने की कमी है, इस सभा के लिये कहां तक संभव होगा।

मै अनुभव करता हूं कि दुनिया भय और आशंकाओ से अधिक जकड़ी हुई है, उनमें से कुछ अवश्य ही सकारण भी है। लेकिन जब कोई व्यक्ति भय अनुभव करता है, तो उसके बुरे और अनिष्टकर नतीजे ज़रूर निकलते है। भय अच्छा साथी नही है।

यह आश्चर्य की बात है कि भय की यह भावना बड़े-बड़े देशों पर अधिक व्याप्त दिखाई देती है। भय, और युद्ध का भारी भय, और बहुत सी बातों का भय! अस्तु, मैं समझता हूं कि यह स्वीकार किया जाता है या स्वीकार किया जाना चाहिये कि किसी प्रकार के अनधिकार आक्रमण सहन नही किये जा सकते। क्योकि अनधिकार आक्रमण का विचार ही संतुलन को भंग कर देने वाला और युद्ध की ओर ले जाने वाला है, हमें सभी प्रकार के अनधिकार आक्रमण का मुकाबला करना होगा।

भय के और भी रूप हैं एक युद्ध का भय है। वर्तमान परिस्थिति में लोगो के लिए यह कठिन है कि वे अपनी रक्षा न करेंगे। क्योकि अगर अनधिकार आक्रमण का भय है, तो आदमी को उसके विरुद्ध अपनी रक्षा करनी ही पड़ती है। हमें अपनी रक्षा करनी है, लेकिन अपनी रक्षा करने में भी हमें इस सभा के सामने बिना स्वच्छ हाथों के नही आना चाहिये। लोगो को दोषी ठहराना सहज है। हमें ऐसा नही करना चाहिये। क्योकि कौन निर्दोष ऐसा है, जिसे स्वयं दोषी नहीं ठहराया जा सकता? एक अर्थों में हम सब, जो आज यूरोप के इस महाद्वीप में इकट्ठा हुए हैं, दोषी हैं। क्या हममें से कोई ऐसा है जो अनेक प्रकार से दोषी नहीं है? हम सभी नर और नारी अपराधी हैं। जब कि हम उन स्थलों को ढूढ़ते है, जहां भूल हुई है, तब हमें यह भी न भूलना चाहिये कि हम में से एक भी ऐसा नहीं, जो कि निदोष हो।

अगर हम इस समस्या को लें और शांतिकाल में ही भय की मनोवृत्ति पर विचार-विनिमय कर लें, जो कुछ हो रहा है उसके परिणामो का हम अनुभव कर लें, तो यह संभव है कि भय का यह वातावरण दूर हो जाय। युद्ध का यह भय क्यों हो? हमें किसी भी सभावित आक्रमण से बचने की तैयारी कर लेनी चाहिये, और किसी को यह न समझना चाहिये कि कोई राष्ट्र, कोई समुदाय अनाचार कर सकता है। संयुक्त राष्ट्रो का यह संगठन सभी तरह के भय और क्षति को रोकने के लिये मौजूद है। लेकिन साथ ही हमें आक्रमणकारी मनोवृत्ति को, चाहे वह शब्द द्वारा हो या कार्य द्वारा, एक दम छोड़ देना चाहिये। फिर भी, मै अनुभव करता हूँ कि हममें से बहुत कम इस रुख से बच पाते हैं, वह चाहे इस सभा के समाने विवाद के अवसर पर हो या किसी और जगह। आदमी अपना पक्ष इस तरह के आक्रमणत्मक शब्दो में रखने की कोशिश करता है। विवाद के प्रसंग में अपने पक्ष पर जोर देना सादा सहज है, लेकिन उसमें सदा एक कड़ुआपन रह जाता है, जो कि समस्या को और भी जटिल बना देता है। जैसा मैंने पहले ही कहा है, मै चाहता हूँ कि यह सभा याद रक्खे कि बड़ी समस्याएँ तब तक नही हल हो सकती, जब तक कि हमारी आंखो में खून झलक रहा हो और हमारे मनों पर उन्माद छाया हुआ हो।

मैं इस साधारण सभा से, अपने देशवासियों और अपनी सरकार की ओर से यह कहना चाहूँगा कि हम पूरे और पक्के तौर पर संयुक्त राष्ट्रो के अधिकारपत्र के सिद्धान्तो और उद्देश्यों में आस्था रखते है, और हम अपनी सारी योग्यता से उन सिद्धान्तो और उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करेंगे।

अन्त में, क्या मैं इस साधारण सभा को मेक्सिको के प्रतिनिधि-मंडल द्वारा प्रस्तुत उस प्रस्ताव के लिए, जिसे कि उसने अभी स्वीकार किया है, बधाई दे सकता हूँ? यह निश्चय ही एक बड़ा प्रस्ताव है। यदि साधारण सभा इस प्रस्ताव पर अमल करती है तो वह शान्ति के मार्ग पर और जो समस्याएँ हमारे सामने है उनके हल के मार्ग पर बहुत आगे जा सकेगी। हम इन समस्याओ को भले ही हल न कर पावें। कोई भी इतना आशावादी नही, कि यह समझने लगे कि हमारे भले बनते ही सब समस्याएँ हल हो जाएँगी। मेरे कहने का यह तात्पर्य नही। समस्याएँ कठिन और जटिल है, और उनको हल करने के लिए काफी कोशिश करनी होगी। लेकिन यह भी मै अनुभव करता हूँ कि हमें इन समस्याओं को भय, क्रोध और आवेश से न देखना चाहिये। तब शायद ये धीरे-धीरे भिन्न रूप धारण कर लेंगी और हम विरोधी पक्ष को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। तब शायद एक दूसरे का भय हमारे मनों में कम हो जाएगा और तब कोई हल निकल सकता है। यदि हल भी न निकले तो कम-से-कम भय का यह आवरण, जो हम पर छाया हुआ है, हल्का हो जाएगा, और यह स्वयं संसार की समस्या का एक आंशिक हल होगा।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

सभापति महोदय, और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन के एशियायी कमीशन के सदस्यो ! मै यह ठीक-ठीक नही जानता कि मैं यहाँ क्यो हूँ, अर्थात् इस कान्फ्रेंस में, जहाँ विज्ञान की एक खास शाखा के माने हुए विशेषज्ञ हैं, उपस्थित होने के लिए मुझमें क्या विशेष गुण हैं, सिवाय इसके कि विज्ञान और वैज्ञानिक विकास में मेरी कुछ साधारण रुचि है और उसका कुछ अस्पष्ट ज्ञान है, जैसा कि सम्भवत. एक अर्धशिक्षित व्यक्ति का हो सकता है। मेरी इस विषय की कोई खास जानकारी नही, और इसलिए विशेषज्ञो की इस मंडली में मैं अपने को कुछ छोटा अनुभव करता हूँ।

लेकिन, मै यहाँ अन्तरिक्ष विज्ञान के विषय में, जिसके विषय में आप मुझसे कही अधिक जानते है, बात करने के लिए नही आया हूँ; बल्कि भारत सरकार की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करने आया हूँ, और इस बात पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने आया हूँ कि आप दूर-दूर देशो से, यहां दिल्ली में, आपस में मिलने के लिए और जो समस्याएँ आपके सामने हैं, उनपर, राष्ट्रीय होड़ की भावना से नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना से, विचार करने आए हैं।

आज की दुनिया में हम प्रतिकूल शक्तियों की होड़ के रूप में बड़ा अजीब विरोध पाते हैं। एक ओर हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का एक अनिवार्य विकास देखते हैं। आज की दुनिया इस अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना आगे नहीं चल सकती और, जैसा कि पहले वक्ता ने बताया, इसकी एक मिसाल यह कान्फ्रेंस और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन है। मौसम की अवस्थाएँ या इसी प्रकार की दूसरी चीजें राष्ट्रीय सीमाओं में नही बंध सकती। वे उन्हे पार कर जाती है और उन पर असर डालती है। मौसम सम्बन्धी जो बात किसी दूर देश में होती है उसका प्रभाव हम पर यहाँ पड़ता है; और यदि हम इस क्षेत्र में संकीर्णता से काम लें, जैसा कि दुर्भाग्यवश हम में से अधिकतर लोग दूसरे क्षेत्रों में करते है, और यह सोचने लगें कि कृत्रिम सीमाएँ मनुष्यों को पूरी तरह विभाजित करती है, तो विज्ञान की इस शाखा में या किसी दूसरी शाखा मे कोई उन्नति नही हो सकती।

अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगठन की एशियायी प्रादेशिक कान्फ्रेंस का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली में, १० नवम्बर १९४८, को दिया गया भाषण।

इस प्रकार एक ओर तो हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का यह अनिवार्य विकास पाते हैं और दूसरी ओर राष्ट्रीयता की संकुचित भावना पाते हैं। यद्यपि राष्ट्रीयता के क्षेत्र में लोगों के मस्तिष्क की यह सकीर्णता अनिवार्य रूप से नही पाई जाती, फिर भी दुर्भाग्यवश यह स्पष्ट दिखाई देती है। इनमे से कौन-सी शक्ति अन्त में विजय पाएगी यह कहना ज़रा कठिन है; यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि यह कहा जा सकता है कि अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की शक्ति की ही विजय होगी। यदि इसकी जीत नही होती, तो किसी की जीत नहीं होती। यह बात नहीं, कि दूसरी शक्ति की जीत होती है, बल्कि ऐसी चीज की जीत होती है जो निश्चय ही नकारात्मक और विनाशकारी है। संसार के बहुत-से कार्य, चाहे वे राष्ट्रीय हों चाहे अन्तर्राष्ट्रीय, उसके परिणाम स्वरूप हानि उठाते हैं।

इसलिए यह एक अच्छी बात है कि हम इन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के अवसरों से लाभ उठाएँ, न केवल इसलिए कि यह एक विशेष कार्य-क्षेत्र में अच्छा है, बल्कि इसलिए कि उनका प्रभाव संसार में मानव-सम्बन्धों के वृहत्तर क्षेत्र पर पड़ता है, और इससे लोग यह अनुभव कर पाते हैं कि आखिरकार यह दुनिया आज बहुत हद तक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बल पर चल रही है। इस प्रसंग में, संचार की प्रणाली अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय हो जाती है, और विज्ञान की बहुत-सी शाखाओं की उन्नति अन्तर्राष्ट्रीय रूप में ही हो सकती है।

इसलिए, मै उन सब प्रतिनिधियों का, जो यहां आए हैं, स्वागत करता हूँ, और आशा करता हूँ कि विज्ञान की इस विशेष शाखा मे आपका प्रयत्न सफल होगा। यह विज्ञान केवल मानव-कल्याण के लिए ही नहीं, मानव सम्बन्धों के वृहत्तर क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण है।

वायुमंडल पर विजय

सभापति जी, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन की कौंसिल के प्रधान जी, और सरकारो तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिनिधिगण ! मैं यहाँ पर भारत सरकार की ओर से इस देश में और दिल्ली के इस अत्यन्त प्राचीन नगर में आपका अत्यन्त हार्दिक स्वागत करने के लिए उपस्थित हूँ। अभी, पिछले कुछ क्षणो में, यहाँ बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि इस प्राचीन नगर ने मानव-इतिहास के प्रवाह में कितने महान् परिवर्तन देखे होंगे। यह नगर संसार के इने-गिने सबसे प्राचीन नगरो में से है—यह वर्तमान नगर नही, बल्कि यह जगह, जहाँ कि स्मरणातीत काल से नगर बसते आए है। मुझे आश्चर्य हुआ कि इसने कितने परिवर्तन देखे होंगे और अब इस हवाई यात्रा के युग में इसकी स्थिति क्या होगी—इस हवाई यात्रा के युग में ही नही, बल्कि इससे भी अधिक, जब कि मनुष्य क्रमशः तीसरे आयतन में प्रवेश कर रहा है, और उस पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न कर रहा है, और उसका भले और बुरे दोनो ही रूपो में उपयोग कर रहा है। इस प्रकार इतिहास का यह विस्तृत पट मेरे सामने आया।

अब, यदि आप एक निजी संस्मरण बताने की आज्ञा दें, तो मुझे याद है कि बहुत समय पहले जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था, उड़ान के प्रथम प्रयासो में मेरी बहुत ही दिलचस्पी थी, और मुझे स्मरण है कि सन् १९०६ में मैंने स्कूल में हवाई उड़ान के विषय पर एक निबन्ध लिखा था। यह बहुत पुरानी बात है। मेरा ख्याल है, यह लगभग उस समय की बात है जब कि राइट बन्धु, लैथम, ब्लेरिओ और अन्य लोग या तो इंग्लिस्तान और फ्रांस के बीच का जलडमरूमध्य पार करने में लगे थे या और जगहो में उड़ान कर रहे थे। मै उनके साहसिक कार्य से बहुत उत्तेजित हुआ था, और उस समय मै स्वयं एक उड़ाका या कुछ इसी प्रकार का व्यक्ति बनने के स्वप्न देखता था।

मुझे स्मरण है कि अब से ४० या ४२ बरस पहले मैंने इंगलैण्ड के एक स्कूल से भारत में अपने पिता जी को लिखा था कि मै शीघ्र ही सप्ताहान्त की छुट्टी बिताने के लिए हवाई जहाज से आपके पास आऊँगा। इस विषय में मैंने समय से

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन की दक्षिण-पूर्व-एशिया प्रादेशिक हवाई यात्रा सभा में, नई दिल्ली में, २३ नवम्बर, १९४८, को दिया गया भाषण।

कुछ पूर्व की वात कही थी। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि सप्ताह के अन्त की छुट्टियाँ होने लगी थी और मै नही कह सकता कि कितने और लोग इग्लिस्तान और भारत के बीच सप्ताह के अन्त की यात्रा का विचार करते थे।

थोड़े ही समय वाद जव पहला जेपलिन वायुयान आया तो मैं वर्लिन मे था। उस अवसर की मुझे अच्छी तरह याद है। इस सदी के उन प्रारम्भिक दिनों में हवाई जहाजो के विविध प्रदर्शन और उड़ाने फ्रैंकफर्ट और पेरिस के वीच हुई। इस तरह एक अर्थ में वायुयात्रा से मेरा सम्वन्ध वहुत पुराना है और शुरू लड़कपन के दिनों का है। तभी से मै इस विज्ञान के विकास में अत्यधिक रुचि रखता रहा हूँ, और यह मुझे वड़ी उल्लासकारी चीज लगी है। मेरा अपना मुख्य खेद यह है कि मै दूसरे धन्धो और कामो में पड़ गया और इतनी आशा करने और स्वप्न देखने के वाद भी उड़ाका न वन सका। पर मेरी आशा अभी टूटी नहीं है।

मै यहाँ आपका स्वागत करने आया हूँ। वायुयात्रा में वड़ी दिलचस्पी रखने के वावजूद, मै उसकी यन्त्र-प्रणाली को या समस्याओं की विस्तार की वातों को, जिन पर कि आप विचार करेंगे, नही जानता। इसलिए उनके विषय में मेरा कुछ कहना मूर्खता और अज्ञान प्रदर्शन होगा। विस्तार की वातों को जाने दीजिए, वायु-मंडल पर विजय मनुष्य-जाति के इतिहास की वड़ी भारी घटना है। केवल इसी एक वात से कल्पना प्रज्वलित हो उठती है।

मै स्वयं अभी नही कह सकता कि अन्तिम विश्लेषण में यह मनुष्य-जाति के लिए अच्छी सिद्ध होगी या वुरी। विज्ञान मानव-जाति के इतिहास में सवसे वड़ी चीज है। विज्ञान के विकास से ही मनुष्य-जाति इतनी उन्नति कर सकी है। परन्तु जिस तरह हर अच्छे आविष्कार का वुरे उद्देश्य के लिए भी उपयोग हो सकता है, उसी तरह विज्ञान का भी वड़ा दुरुपयोग हुआ है। लेकिन यह विज्ञान का दोप नही है। यह मनुष्य का दोष है, जो वुरे काम के लिए उसका उपयोग करता है। पर यह दूसरा ही प्रश्न है। अव मै समझता हूँ कि यदि हम इतिहास को एक लम्वी दृष्टि-परम्परा से देखें, तो वायुमंडल की यह विजय मनुष्य-जाति के इतिहास में परिवर्तन लानेवाली घटनाओं में वस्तुतः एक वड़ी घटना सिद्ध होगी। मैंने अभी तीसरे आयतन की चर्चा की थी। यह वड़ी घटना इसलिए है, कि धरती की सतह पर न्यूनाधिक दो दिशाओं मे रेंगने वाला मनुष्य अचानक तीसरी दिशा में उछल कर पहुँच जाता है। उसका मस्तिष्क भी उसी के साथ उछल कर ऊपर पहुँचा या नही, यह मैं नही जानता; अगर वह भी पहुँचता तो सव ठीक ही होता। लेकिन, किसी तरह, घटनाएँ मनुष्य के मस्तिष्क से आगे चलती हैं और हम वहुत पीछे रह जाते हैं। काम करने के साधन हमें प्राप्त होते हैं। हम तरह-तरह के वड़े काम करते भी है, फिर भी यह

जानने की बुद्धि हमें नही आती कि उन्हें अच्छी तरह से कैसे किया जाय। हममें उन कामो के करने का शैल्पिक ज्ञान हो सकता है, लेकिन बुद्धियुक्त ज्ञान, कि उन्हे मनुष्य जाति के हित के लिए कैसे करना चाहिए, नही हो पाता। यह विषय दार्शनिको के लिए है, इस कान्फ्रेंस के लिए उतना नही है। फिर भी, उसको ध्यान में रखना अच्छा है, क्योकि यद्यपि शिल्प-कौशल बहुत महत्वपूर्ण है, फिर भी, उसका किसी और प्रकार के मानसिक गुण से मेल होना चाहिए, जिससे उसका उचित ध्येयो के लिए उपयोग हो सके।

आपको मालूम होगा कि यहाँ भारत मे थोड़े ही समय के भीतर हमने उड़ान में, जैसा कि स्वाभाविक था, बड़ी तरक्की कर ली है, क्योकि एक मानी में यह देश इसके लिए बहुत ही उपयुक्त है। आप यहाँ एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र पाएँगे, जहाँ कि वर्ष के अधिकाश में ऋतु अनुकूल रहती है और जहाँ हवाई यात्रा प्राय: आवश्यक और अनिवार्य हो जाती है। एक बार आपको इसकी आदत पड़ गई तो फिर इसके बिना आपका काम नही चलता। आपको यह पता रहता है कि देश के बहुत से भागों में ऋतु कैसी होगी। इसलिए हवाई यात्रा और सचार का विकास निश्चय है।

लेकिन मै कहूँगा कि यद्यपि हवाई यात्रा के प्रति मेरे अन्दर इतना उत्साह था, फिर भी मुझे यह आशा न थी कि भारत में वायु-सेवाएँ और वायु-संचार पिछले कुछ वर्षों में इतनी तेजी से बढ़ जाएगा। मेरा ख्याल है कि कुछ साल पहले भारत में हवाई यातायात के विकास के लिए एक दस साल की या कुछ ऐसी ही योजना बनी थी। मै आशा करता हूँ कि मै गलत नही कह रहा हूँ। मेरा ख्याल है कि हमने उस दस साल की योजना को अभी ही दो तीन वर्षों में पूरा कर लिया है। इसके लिए अधिक प्रयत्न नही करना पड़ा। यह काम जल्दी इसलिए पूरा हो गया कि इसके लिए उत्साह था। वह बढ़ा और बराबर बढ़ रहा है। कुछ और बड़े देशों की तरह भारत इस काम के लिए एक आदर्श देश है। और अगर मै कह सकता हूँ तो यह उचित और ठीक ही है कि आप सब महिलाएँ और भद्र पुरुष, जोकि दूर देशों से यहाँ आए हैं, यहाँ एकत्र हो और आपस में इसपर विचार-विनिमय करे, कि इसका और विकास कैसे हो सकता है, जिससे कि हवाई यात्रा तेजी से, कुशलता से, और हिफाजत से हो सके और भविष्य में मनुष्यो के दूसरे कामो में भी आ सके।

आप दक्षिण-पूर्वी एशिया प्रदेश के प्रतिनिधि हैं। भौगोलिक दृष्टि से और अन्य दृष्टियो से भी भारत की स्थिति बड़ी विचित्र है। यह दक्षिण-पूर्वी एशिया का अंग है, यह दक्षिणी एशिया का अंग है, यह पश्चिमी एशिया का भी अंग है। यह

इस बात पर निर्भर है कि आप किस ओर से इसें देखते है, क्योकि यह इन सबके बीच मे है और चाहे आप पूर्वी एशिया की यात्रा का विचार करें, चाहे दक्षिणी एशिया की यात्रा का, भारत बीच मे पड़ता है। सभी अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग या दुनिया के चारों ओर जानेवाले मार्ग प्राय: अनिवार्य रूप से भारत के ऊपर होकर जाते है। फिर जब आप इसे व्यापार, वाणिज्य आदि की दृष्टि से देखते है, या रक्षा की दृष्टि से देखते हैं, तो भारत दक्षिणी, दक्षिणी-पूर्वी और पश्चिमी एशिया का धुरी केन्द्र हो जाता है। भूगोल ने उसे यह स्थिति दी है। और चूंकि भूगोल ने भारत को यह स्थिति दी है और निस्सदेह और कारणो से भी, इतिहास के प्रवाह ने यह दिखाया है कि भारत ने अपने आस-पास के देशो को किस तरह प्रभावित किया है, और वह उनसे किस तरह प्रभावित हुआ है।

किसी को यह कल्पना न करनी चाहिए कि भारत के इतिहास के किसी काल मे यह देश शेष दुनिया से अलग रहा है। उसकी स्थिति को देखते हुए, ऐसा हो नहीं सकता था, और वह ऐसा चाहता भी न था, सिवाय अपने इतिहास के ऐसे काल मे जब कि वह किसी प्रकार के आन्तरिक उपद्रव या कठिनाई का सामना कर रहा हो। डेढ़ सौ वर्ष पीछे तक, पड़ोसी देशों के साथ भारत का सम्पर्क बहुतायत से और अनिवार्य रूप से स्थलमार्ग और समुद्रमार्ग दोनों से रहा है, क्योकि बहुत प्राचीन काल से भारत एक समुद्री शक्ति और व्यापारी देश रहा है। प्राचीन यूनान और रोम के जमाने में, रोम और यूनान से हमारे घनिष्ठ व्यापारिक सम्पर्क थे, और मिस्र से भी थे। पश्चिमी समुद्र-तट के हमारे बड़े बन्दरगाह ऐसे लोगों से भरे रहते थे, जो देश से बाहर आते-जाते रहते थे, भारत का माल बाहर पहुँचाते थे और विदेशो से माल भारत में लाते थे।

लेकिन भारत का इससे भी गहरा सम्पर्क दक्षिण-पूर्वी एशिया से था। यह सांस्कृतिक सम्पर्क था और कुछ हद तक धार्मिक भी था। यह सम्पर्क हज़ारों वर्षो तक कायम रहा। यदि आप दक्षिण-पूर्वी एशिया के किसी भाग में जाये, तो आपको इस सम्पर्क के भाषा, संस्कृति, स्मारक, पुरातत्त्व और स्थापत्य सम्बन्धी प्रमाण मिलेगे। भारत के ये सम्पर्क समुद्र-मार्ग से थे। इसके अतिरिक्त, और कुछ अंशों में इससे भी महत्त्वपूर्ण, उसके सम्पर्क एशिया में स्थलमार्ग से थे। लगभग १५० वर्ष पहले उसका विकास बड़े समुद्र-मार्गो से हुआ। सारे संसार में परिवर्तन हुए, और भारत में भी परिवर्तन हुए, जो कि मुख्यतया राजनीतिक थे।

अँग्रेज लोग भारत मे आए और धीरे-धीरे उन्होंने देश पर आधिपत्य जमा लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ तो जानबूझकर, सुचिन्तित रूप में, और कुछ अनजाने भारत के सम्पर्क उसके पड़ोसी एशियायी देशों से धीरे-धीरे कम होते

गएं। हमारे स्थलमार्ग शिथिल पड़ गये, और कभी-कभी कारवानो या साधारण यात्रियो के आवागमन को छोड़कर प्राय. बन्द ही हो गए। हमारा समुद्री व्यापार इससे पहले ही क्षीण हो चला था, और इस सब के स्थान पर अब नए समुद्री मार्ग से और समुद्री यातायात के नए साधनो से, जो कि वाष्प-यंत्रो के विकास के परिणाम थे, नए सम्पर्क स्थापित हुए।

यूरोप का मार्ग और खासतौर से इंगलैंड का मार्ग खुल गया। इस प्रकार भारत का अपने पड़ोसी एशियायी देशो की अपेक्षा इंग्लिस्तान और पश्चिमी यूरोप से, निकटतर सम्पर्क हो गया और एशिया के देश धीरे-धीरे दूर और अपरिचित होते चले गए, और एक मानी में उन तक पहुँच कठिन हो गई। यह एक बड़ा परिवर्तन था, जिसने भारत पर बहुत गहरा असर डाला। यह स्थिति सौ वर्ष से अधिक रही और अब फिर परिवर्तन हुआ है।

वायुयान का विकास हुआ और पिछली पीढ़ी मे समुद्र-यात्रा से ध्यान हटकर हवाई यात्रा की ओर गया। बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय वायुयान पश्चिमी एशियायी रेगिस्तानों से होकर, बगदाद और तेहरान से और और जगहों से आए, और भारत को पार करके दक्षिण-पूर्वी एशिया पहुँचे। अब भारत से चीन जाना सुगम हो गया—करीब-करीब एक दिन की उड़ान थी। इस तरह जो पुराने सम्पर्क पिछले १५० वर्षों में टूट गए थे, फिर स्थापित हो गए। यातायात के इस विकास का प्रभाव जिस प्रकार और देशो पर पड़ा उसी प्रकार भारत पर भी पड़ा। इससे पुराने सम्पर्कों के पुनः स्थापन मे बहुत सहायता मिली। निश्चय ही हवाई यात्रा का परिणाम यह हुआ कि संसार के देश एक दूसरे के बहुत ही निकट आ गए। कुछ हद तक इतिहास को एक विस्तृत दृष्टि-परम्परा से और कुछ-कुछ काल्पनिक ढग से देखने का अभ्यस्त होने के कारण मुझे ऐसा लगता है कि मेरी कल्पना इन परिवर्तनो से और इससे भी अधिक भविष्य में होने वाले सम्भावित परिवर्तनो से उत्तेजित हो उठी है। इसलिए नागरिक वायु-यात्रा और यातायात के सम्बन्ध में एशिया और दुनिया के कार्यों के समीकरण की कोशिश मुझे आधुनिक संसार के लिए एक बड़ी आवश्यक बात मालूम पड़ती है।

मैं यह कह सकता हूँ कि आप लोग, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनो के प्रतिनिधि हैं, यहाँ पर बैठकर केवल नीरस ढंग से इसकी गतिविधि पर ही विचार नही कर रहे, बल्कि एक अर्थ में आप सभी उस भविष्य की सन्तान हैं जो कि अपना स्वरूप प्रकट करने वाला है। आपके और संसार के आप जैसे लोगो के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बड़ी-बड़ी घटनाएँ होंगी, जो मै आशा करता हूँ, मनुष्य जाति के लिए विशेष हितकर होंगी।
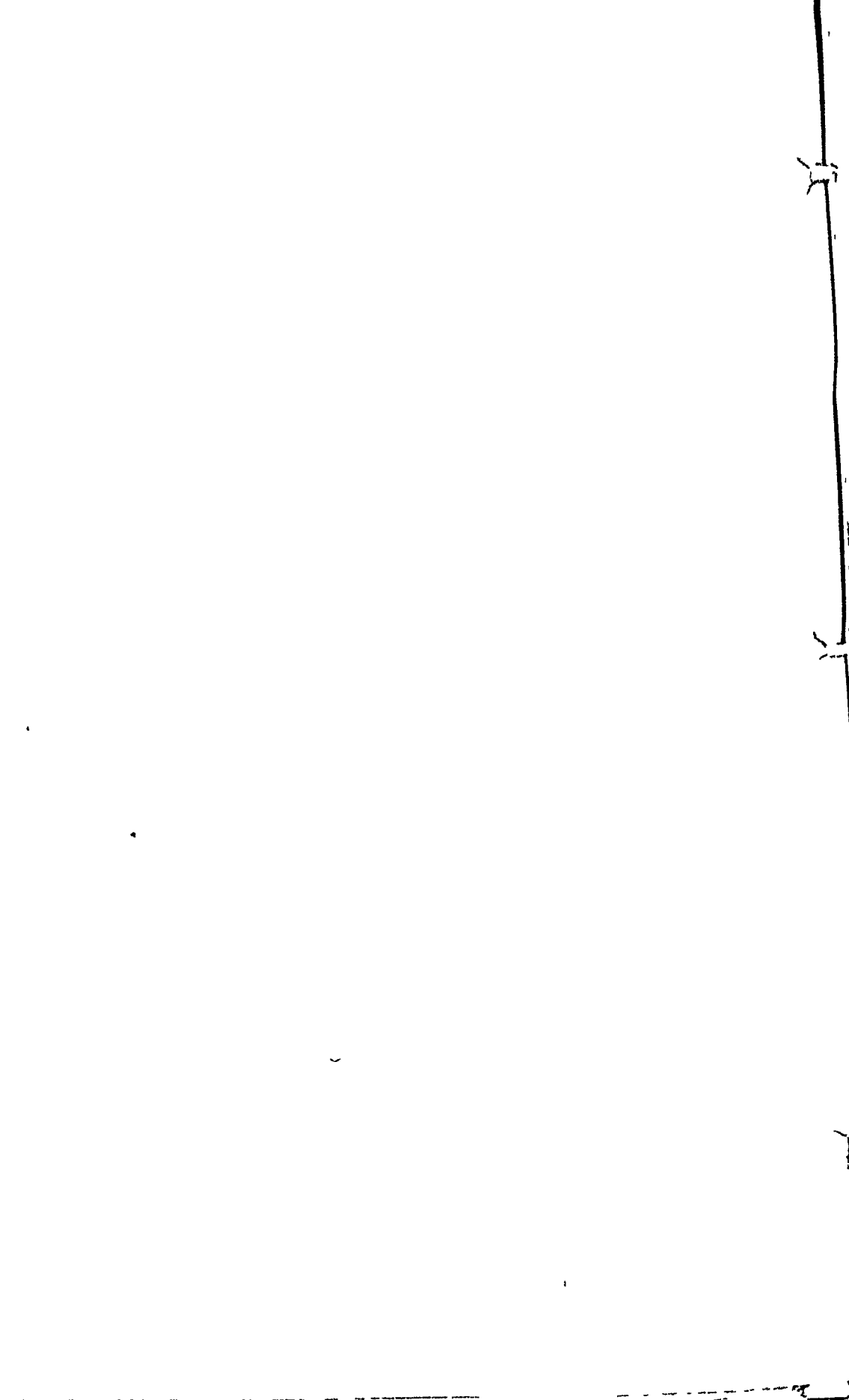
इंडोनीशिया में संकट

महिलाओ और सज्जनो ! भारत सरकार की ओर से और अपनी ओर से मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ, और मैं आपकी सरकारो के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने अल्पकालिक सूचना होते हुए भी हमारे अत्यावश्यक आमंत्रण को स्वीकार किया। यह स्वीकृतिमात्र इस बात की परिचायक है कि सारे एशिया में और संसार के अन्य भागो में इंडोनीशिया में होनेवाली हाल की घटनाओं ने कैसी गहरी भावनाएँ जागृत कर दी है। हम आज इसलिए इकट्ठे हुए है कि हमारे एक संगी देश की स्वतन्त्रता संकट में है, और एक बीते युग की समाप्त होती हुई औपनिवेशिकता ने फिर से सिर उठाया है और उन सभी शक्तियों को, जो कि संसार के एक नए ढाँचे के निर्माण के लिये यत्नशील है, चुनौती दी है। इस चुनौती का एक दूसरा ही अर्थ है, क्योकि यह चुनौती उस नवजागृत एशिया को है, जो औपनिवेशिक शासन के विविध रूपो से बहुत काल से पीड़ित हो रहा है। यह चुनौती मनुष्य की आत्मा को भी है और एक विभाजित और आकुल संसार की सभी प्रगतिशील शक्तियो को भी है। संयुक्त राष्ट्रों की, जो कि 'ऐसे एक संसार' का प्रतीक है, जो विचारशील और सदाशय लोगों का आदर्श है, उपेक्षा हुई है, और उसके व्यक्त उद्देश्य को रद्द किया गया है। अगर इस चुनौती का कारगर ढंग से जवाब नहीं दिया गया, तो उसके परिणामो का प्रभाव इंडोनीशिया और एशिया पर ही नही सारी दुनिया पर पड़ेगा। वह विनाश और विच्छेद की शक्तियों की विजय का प्रतीक होगा और उसका निश्चित परिणाम निरन्तर संघर्ष और जगद्-व्यापी अव्यवस्था होगी।

यद्यपि हम एक तात्कालिक महत्त्व की जरूरी समस्या पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए है, पर मेरा मन इस अपूर्व सम्मेलन के ऐतिहासिक महत्त्व से भरा हुआ है। यहाँ एशिया के स्वतन्त्र राष्ट्रो के प्रतिनिधि जमा है, और आस्ट्रेलिया,

---

इंडोनीशिया विषय पर, नई दिल्ली में २० जनवरी, १९४९ को, १९ राष्ट्रो के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए सभापति-पद से दिया गया भाषण। अफ़ग़ानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, लंका, मिस्र, ईथोपिया, भारत, ईरान, लेबनान, पाकिस्तान, फिलिपाइन्स, सऊदी अरब, सीरिया और यमन की सरकारो की ओर से इस कान्फ्रेंस में, सचिवों के स्तर पर, प्रतिनिधि सम्मिलित थे, और चीन, नेपाल, न्यूज़ीलैण्ड और स्याम ने अपने प्रेक्षक भेजे थे।

न्यूज़ीलैंड, मिस्र और ईथोपिया के मित्र भी मौजूद हैं, जो कि पहली बार समान रूप से हमसे सम्बन्ध रखनेवाले एक विषय पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। एक ओर आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और फिलिपाइन्स से लेकर दूसरी ओर मिस्र और ईथोपिया तक हम पृथ्वी के आधे भाग के,- और आधी से भी अधिक आबादी के प्रतिनिधि हैं। हम पूर्व की प्राचीन सभ्यता का और पश्चिम की गतिशील सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से हम स्वतन्त्रता और लोक-तन्त्र की भावना के, जो कि नवीन एशिया की इतनी प्रमुख विशेषता है, प्रतीक स्वरूप हैं। इतिहास का यह लम्बा दौर एशियायी देशों की अपनी सारी सुख-दुख की गाथाओं के साथ, मेरी आँखों के सामने से गुजर रहा है, और वर्तमान के छोर पर खड़ा हुआ मैं उस भविष्य को देख रहा हूँ जो धीरे-धीरे खुलता जा रहा है। हम अपने इतिहास के इस लम्बे अतीत के उत्तराधिकारी हैं, लेकिन हम आनेवाले कल के, जो कि अपना रूप धारण कर रहा है, निर्माता भी हैं। उस आनेवाले कल का बोझ हमे संभालना है, और हमें उस बड़ी जिम्मेदारी के योग्य अपने को साबित करना है। यदि इस सम्मेलन का आज महत्त्व है, तो आनेवाले कल की दृष्टि-परम्परा में इसका और भी अधिक महत्त्व होना चाहिए। एशिया, जोकि चिरकाल तक दबा हुआ, अधीन और दूसरे देशो के खेल की वस्तु रहा है, अब अपनी स्वतन्त्रता में कोई हस्तक्षेप सहन न करेगा।

इस सम्मेलन में हम इंडोनीशिया की वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं, और मेरा यह सुझाव है कि हम लोग अपना ध्यान इसी एक प्रश्न पर केन्द्रित करें; अन्य बहुत-से प्रश्नों पर नही, जो कि निश्चय ही विचारणीय हैं। इंडोनीशिया की पिछले तीन वर्षों की कहानी एक अजीब और आँखें खोलने वाली कहानी है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्र राष्ट्रों ने इंडोनीशिया को जापानियों से जीतकर उसे डच लोगों के हवाले कर दिया था। इसलिए मित्र राष्ट्रों पर एक विशेष जिम्मेदारी आती है। पिछले तीस वर्षों में बहुत-सी बड़े मार्के की बातें इंडो-नीशिया में हुई हैं, और इनका ब्यौरा उन पत्रों में दिया हुआ है, जो कि सम्मेलन को दिए गए हैं। यह तोड़े गए वायदों की और इंडोनीशिया के गणराज्य को मिटाने या उसकी ताकत को कम करने की लगातार कोशिशों की एक लम्बी कहानी है।

पिछले वर्ष, १८ दिसम्बर को, जब कि शान्तिपूर्ण समझौते के लिए बातचीत चल रही थी, डच-सेनाओं ने बिना सूचना दिए, गणराज्य पर आक्रमण शुरू कर दिया। संसार के जड़ीभूत और क्लांत अन्त.करण पर भी इसकी एक धक्के जैसी और अचम्भे की प्रतिक्रिया हुई। गणराज्य के नेतागण कैद कर लिए गए और एक दूसरे से अलग कर दिए गए और उनके साथ निर्दयता का व्यवहार किया गया। संयुक्त राष्ट्रों की सुरक्षा परिषद् ने कई प्रस्ताव पास किए, जिनमें प्रजातन्त्र के नेताओं को

मुक्त करने और युद्ध बन्द करने के लिए कहा गया और इसे शान्तिपूर्ण और सम्मानित समझौते की बातचीत फिर से चलाने के लिए एक आवश्यक प्राथमिक शर्त बताया गया। सुरक्षा-परिषद के निर्देशों का अभी तक पालन नही हुआ। डच अधिकारी अपने सम्पूर्ण प्रयत्नो को ऐसी तथाकथित अन्तरिम सरकार के निर्माण में लगाते हुए जान पड़ते है, जिसके सम्बन्ध में वे आशा करते है कि वह उनकी इच्छाओं के अधीन होगी। कोई भी व्यक्ति, जो इंडोनीशिया के निवासियो की या एशिया की भावना से परिचित है, यह जानता है कि इंडोनीशिया की राष्ट्रीयता और इंडोनीशिया के लोगो की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेरणा के दमन का यह प्रयत्न विफल होगा। लेकिन अगर खुल्लमखुल्ला और बेशर्मी से किया गया यह हमला रोका नही जाता और और शक्तियो द्वारा इसका समर्थन होता है, तो आशा ही मिट जाती है, और लोग दूसरे तरीके और दूसरे साधन ग्रहण करेंगे, चाहे इसका परिणाम अधिक-से-अधिक तबाही ही क्यो न हो। एक बात निश्चित है कि हमले के आगे सिर नही झुकाया जाएगा और औपनिवेशिक नियन्त्रण को स्वीकार नही किया जाएगा, और न वह फिर से लादा ही जा सकेगा।

गहरे विचार के और उत्सुकतापूर्ण मनन के बाद ही हमने इस सम्मेलन को करने का निश्चय किया था। यह विश्वास करते हुए कि एक नवीन व्यवस्था के प्रतीक के रूप में संयुक्त राष्ट्रो की पुष्टि होनी चाहिए, हम कोई ऐसा कदम उठाने में संकोच करते थे, जो उसके अधिकार को कम करता प्रतीत होता। जब सुरक्षा परिषद् की इच्छा का ही तिरस्कार किया गया, तब हम लोगो पर यह स्पष्ट हो गया कि हम लोगो को संयुक्त राष्ट्रो को मजबूत बनाने के लिए और भयावह स्थिति को और अधिक बिगड़ने से रोकने के लिए, हमें आपस में परामर्श करना चाहिए। इसलिए हम सयुक्त राष्ट्रो के घेरे के भीतर और उसके प्रतिज्ञा-पत्र के महान शब्दो को सामने रखते हुए मिल रहे है। यह प्रतिज्ञा-पत्र स्वय ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए प्रादेशिक प्रयत्नो की स्वीकृति देता है। इसलिए, हमारा यह एक प्रादेशिक सम्मेलन है, जिसमें हमने आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड को भी आमन्त्रित किया है, क्योकि इंडोनीशिया की शान्ति और सन्तोष में उनकी भी उतनी ही रुचि है जितनी कि हममें से अन्य किसी की। हमारा मुख्य उद्देश्य यह विचार करना है कि हम इडोनीशिया की समस्या का शीघ्र और शान्तिपूर्ण हल प्राप्त करने में सुरक्षा-परिषद् की अधिक-से-अधिक सहायता कैसे कर सकते है। हम सुरक्षा परिषद के प्रयत्नो के समर्थन के लिए मिल रहे है, न कि उसका स्थान लेने के लिए। हम किसी राष्ट्र या राष्ट्रो के समूह से विरोध की भावना रखते हुए यहा एकत्र नही हुए। हमारा प्रयत्न तो स्वतन्त्रता का विस्तार करके शान्ति की वृद्धि करना है। यह समझ लेना चाहिए कि स्वतन्त्रता और शान्ति अविभाज्य है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम इस प्रश्न पर या किसी भी प्रश्न पर जातीयता की भावना

से विचार नही करना चाहते । जातिगत भेद-भाव की नीति कुछ और ही देशों की रही है और आज भी है। एशिया मे हम लोग जो कि इसके वहुत ,शिकार हुए हैं, इसको प्रोत्साहन देना नही चाहते । हमें यकीन है कि यह न केवल लोकतन्त्र का उन्मूलन करती है, बल्कि संघर्ष का वीज भी वोती है। इसलिए हम इसका मुकावला करेंगे। हमारे तीन कार्य होगे'—

(१) ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत करना और उन्हे सुरक्षा परिषद् में भेजना, जिनके दोनो सम्वन्धित पक्षों द्वारा स्वीकृत होने पर इंडोनीशिया में तुरन्त शान्ति स्थापित हो जाय और इंडोनीशिया के लोगो को जल्द स्वतन्त्रता प्राप्त होने मे सहायता मिल सके ;

(२) सुरक्षा-परिषद् को यह भी सुझाव देना कि यदि इस झगड़े के दोनों पक्षों में से कोई पक्ष उसकी सिफारिशो पर अमल न करे, तो उसे क्या कार्रवाई करनी चाहिए;

(३) ऐसे संगठन का निर्माण करना, और उसके लिए ऐसी कार्य-पद्धति स्थिर करना, जिससे कि वे सरकारें, जिनका आज यहाँ प्रतिनिधित्व है, आपस में विचार-विनिमय और इस सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलजुल कर कार्यवाही करने के लिए एक दूसरे से सम्पर्क रख सके।

मै नही समझता कि इस स्थिति में मेरे लिए कोई विस्तृत प्रस्ताव पेश करना उचित होगा। यह तो सम्मेलन के विचार करने की वात है। लेकिन यह बात मुझे स्पष्ट जान पड़ती है कि हमारा तात्कालिक ध्येय यह होना चाहिए कि जहां तक सम्भव हो, डच हमले से पूर्व की स्थिति कायम हो जाय, जिससे कि गणराज्य स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके और एक स्वतन्त्र सरकार के रूप में, विना फौजी या आर्थिक दवाव के, समझौते की वात-चीत में लग सके। दूसरा कदम यह होना चाहिए कि औपनिवेशिक राज्य का अन्त हो। इस वात को समझ लेना चाहिए कि जव तक एशिया में या कही औपनिवेशिकता किसी रूप में शेष रहती है तब तक संघर्ष होगा और शान्ति के लिए भय वना रहेगा। इंडोनीशिया की स्थिति भयंकर सम्भावनाओं से परिपूर्ण है और इसके लिए तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता है। इसलिए हमारा उद्देश्य अपने कार्य को जल्दी-से-जल्दी समाप्त करना होना चाहिए, जिससे कि सुरक्षा-परिखद्, जो कि अव भी इस कठिन समस्या पर विचार कर रही है, हमारे विचारो को अगले कुछ दिनो के भीतर जान सके। मुझे विश्वास है कि हम सभी लोग, जो यहाँ मिल रहे है, समान दृष्टिकोण रखते हैं और हमारे निर्णयों का शीघ्र फल निकलना चाहिए।

हम परिवर्तन के एक क्रान्तिकारी युग में रह रहे है। एक तरफ हम विभक्त और विच्छिन्न होती हुई दुनिया, तरह-तरह के सघर्ष और विश्वव्यापी युद्ध का निरन्तर बना हुआ भय देखते है। दूसरी तरफ हम रचनात्मक और सहयोगात्मक प्रेरणाओ को नये समन्वय और नई एकता की खोज करते हुए देखते है। रोज-रोज नई-नई समस्याएँ उठती है जिनका लगाव हम सबसे या हम में से बहुतो से होता है। अमेरिकावालो ने कुछ समान हितो की मान्यता कर ली है, और उन समान हितो की रक्षा और वृद्धि के लिए संगठन बना लिया है। इसी तरह का एक आन्दोलन यूरोप में चालू है। क्या यह स्वाभाविक नही, कि एशिया के स्वतन्त्र देश किसी ऐसे सगठन की बात सोचे जो इस सम्मेलन से अधिक स्थायी हो, जिससे आपस में अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से परामर्श हो सके और समान ध्येयो की प्राप्ति के लिए मिलजुल कर प्रयत्न किया जा सके---स्वार्थ या किसी राष्ट्र या राष्ट्रसमूह से विरोध की भावना से नही, बल्कि संयुक्त राष्ट्रो के प्रतिज्ञापत्र में निर्दिष्ट उद्देश्यो और आदर्शों के समर्थन और उनकी पूर्ति के लिए घृणा, संघर्ष और हिंसा की इस दुनिया में, हमें मिल जुलकर और अन्य भले लोगों के साथ सहयोग करते हुए, शान्ति, सहिष्णुता और स्वतन्त्रता के हित को अग्रसर करने के काम में लगना चाहिए। यदि हम हिंसा का मार्ग ग्रहण करेंगे और संसार को और अधिक विभाजित करेंगे तो हम अपने ध्येय में सफल न हो सकेंगे। लेकिन यदि हम एशिया की प्राचीन भावना के अनुकूल अपने को बनाएँ और इस युद्ध-विक्षिप्त दुनिया को शान्ति और सत्य का प्रकाश दिखाएँ तो, सम्भव है, हम ससार में कोई अच्छा परिवर्तन कर सकें। क्या मै बहुत विनम्रतापूर्वक, लेकिन गर्व के साथ, इस सम्मेलन को अपने उस राष्ट्र-पिता के सदेश की याद दिलाऊँ, जिसने हमारी पराधीनता की लम्बी रात्रि मे हमारा नेतृत्व करके हमे स्वतन्त्रता का उषाकाल दिखाया ? उन्होंने हमें बताया कि घृणा या हिंसा या एक दूसरे के प्रति असहिष्णुता की भावना से राष्ट्र बडे नही होते और न स्वतन्त्रता ही प्राप्त कर सकते है। कुछ हद तक उनके पीछे चल कर ही हमने अपनी स्वतन्त्रता शान्तिपूर्ण ढग से प्राप्त की। दुनिया भय, घृणा और हिंसा के कुचक्र में पड़ गई है। जब तक यह दूसरे तरीके नही अपनाएगी और दूसरे साधनो को अमल मे नही लाएगी, तब तक यह इस कुचक्र से बाहर न आ सकेगी। इसलिए हमें ठीक साधनो को ग्रहण किए रहना चाहिए और यह विश्वास रखना चाहिए कि सही साधन ही हमें अनिवार्य रूप से सही ध्येय पर पहुँचाएँगे। इस प्रकार हम एकी-करण और समन्वय के क्रम में, जिसकी कि आज दुनिया को इतनी अधिक आवश्य-कता है, सहायक होगे।

प्रकीर्ण प्रकरण

अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार

मित्रो और साथियो ! जय हिन्द ! छ. दिन हुए, मेरे सहयोगी और मै भारत सरकार के उच्च पदो की कुर्सियो पर बैठे। इस प्राचीन देश में एक नई सरकार का अस्तित्व हुआ, जिसे कि हमने अन्तरिम या अस्थायी सरकार नाम दिया। यह भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए एक सीढी थी। हमारे पास कई हजार सदेश, अभिवादन और शुभ कामना के पत्र दुनिया के सभी भागो से और भारत के कोने-कोने से आए। फिर भी हमने इस ऐतिहासिक घटना के अवसर पर उत्सव मनाने के लिए नही कहा, बल्कि लोगो के उत्साह को दबाया। हम चाहते थे कि वे यह अनुभव करें कि हम अब भी यात्रापथ पर है, और हमें अपने लक्ष्य पर पहुँचना बाकी है। मार्ग में अनेक कठिनाइया और रुकावटें थी, और हमारी यात्रा का अन्त उतना निकट न था जितना कि लोगों ने समझ रखा था। इस अवसर पर कोई भी कमजोरी, किसी प्रकार का आत्मतोष, हमारे उद्देश्य के लिए घातक होता।

कलकत्ते की भीषण दुर्घटना के कारण और भाई-भाई के मूर्खतापूर्ण झगड़ो के कारण हमारे हृदय भी भरे हुए थे। जिस आजादी की हमने कल्पना की थी, और जिसके लिए हमने पीढ़ियो की परीक्षा और यातना के बीच परिश्रम किया था, वह सभी लोगो के लिए थी; किसी एक वर्ग या दल या किसी धर्म के अनुयायियो के लिए नही। हमारा ध्येय एक ऐसे सहयोग प्रधान कामनवेल्थ का था, जिसमें कि अवसर के तथा उन सभी चीजो के, जो कि जीवन को मूल्यवान बनाती है, सभी लोग बराबर के साझीदार हो। फिर यह झगड़ा, यह भय, और एक दूसरे पर यह सदेह क्यो ?

आज मै ऊँची नीति या अपने भविष्य के कार्यक्रम के विषय में अधिक न कहूँगा। उसे कुछ समय तक रुकना पड़ेगा। आज तो मुझे आपको उस प्रेम और स्नेह के लिए धन्यवाद देना है जो आपने इतनी बड़ी मात्रा में हमारे प्रति प्रदर्शित किया है। इस प्रेम और सहयोग का मै सदा स्वागत करता हूँ, लेकिन आगे आनेवाले कठिन दिनो में उनकी अधिकाधिक आवश्यकता पड़ेगी। एक मित्र ने मुझे यह संदेश भेजा है : "राज्य के जहाज के प्रथम कर्णधार ! तुम सभी तूफानो को पार कर सको, तुम्हारी यात्रा सकुशल हो।" यह एक उत्साहित करनेवाला संदेश

नई दिल्ली से ७ सितम्बर, १९४६ को प्रसारित एक भाषण।

हैं, लेकिन आगे वहुत से तूफान हैं, और हमारा राज्य का जहाज पुराना, क्षत-विक्षत, मंदगामी और इस तेजी से वदलनेवाले युग के लिए अनुपयुक्त है। इसे अलग करना होगा और इसके स्थान पर दूसरा लाना पड़ेगा। लेकिन जहाज चाहे जितना पुराना हो और कर्णधार चाहे जितना निर्वल हो, जव सहायता के लिए करोड़ो हृदय और हाथ हो, तो हम प्रचड सागर मे आगे वढ सकते है और भविष्य का विश्वासपूर्वक सामना कर सकते हैं।

उस भविष्य का निर्माण होने भी लगा है, और हमारी प्राचीन और प्रिय भारत-भूमि फिर पीड़ा और वेदना का अनुभव करने लगी है। वह पुनः नवीन है और उसके नेत्रो में साहस की झलक है। उसे अपने पर विश्वास है और अपने ध्येय के प्रति भी विश्वास है। वहुत वर्षो से वह कठोर वन्धन में थी और चिन्ता मे डूवी हुई थी। लेकिन अव वह इस विस्तृत संसार पर दृष्टि डालती है और यद्यपि ससार अव भी संघर्ष और युद्ध के विचारो से पूर्ण है, वह अन्य राष्ट्रो के साथ मित्रता के लिए अपना हाथ आगे वढाती है। यह अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार एक वृहत्तर योजना का अग है, जिसके अन्तर्गत संविधान परिषद् भी है। शीघ्र ही स्वतन्त्र और स्वाधीन भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए इस परिषद का अधिवेशन होगा। पूर्ण स्वराज्य की शीघ्र प्राप्ति की इस आशा से ही हम इस सरकार में शरीक हुए हैं, और इस रूप में कार्य करना चाहते है, कि आन्तरिक मामलों और वैदेशिक सम्वन्धों दोनो में ही हम धीरे-धीरे सक्रिय स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले। हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो में स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से पूरा भाग लेंगे, हमारी अपनी स्वतन्त्र नीति होगी, हम किसी राष्ट्र के उपग्रह के रूप में न रहेंगे। हम और राष्ट्रो के साथ अपने इन निकट के और सीधे सम्पर्क स्थापित करने की और विश्वव्यापी शान्ति और स्वतन्त्रता को अग्रसर करने मे उनके साथ सहयोग करने की आशा रखते हैं।

जहां तक सम्भव हो, हम विरोधी दलों की शक्ति-लालसा-प्रेरित राजनीति से अलग रहना चाहते हैं। ऐसी राजनीति के कारण ही अतीत में विश्वव्यापी युद्ध हुए हैं और यह आगे और भी वडे पैमाने पर विनाश की ओर ले जा सकती है। हमारा विश्वास है कि शान्ति और स्वतन्त्रता अविभाज्य है, और यदि एक स्थान पर स्वतन्त्रता का अपहरण होता है तो दूसरे स्थान की स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ जाती है, और संघर्ष और युद्ध होते है। उपनिवेशो की और परतन्त्र देशो और राष्ट्रो की स्वतन्त्रता में और सैद्धान्तिक रूप से तथा क्रियात्मक रूप से सभी जातियों के लिए समान अवसरो की मान्यता में हम विशेष दिलचस्पी रखते हैं। हम जातिगत भेद-भाव के समर्थक नात्सी सिद्धान्त का घोर प्रतिवाद करते है, वह चाहे जहाँ और चाहे जिस रूप में व्यवहार में क्यो न हो। हम दूसरों पर आधिपत्य प्राप्त करने के भूखे नही

है और दूसरे लोगो के मुकावले में हम अपने लिए किसी विशिष्ट स्थिति का दावा भी नही पेश करते । लेकिन हम यह मांग अवश्य करते है कि हमारे नागरिक जहा भी जाएँ, उनके साथ वरावरी का और आदर का व्यवहार हो। हम उनके साथ भेद-भाव का वर्ताव किया जाना स्वीकार नही कर सकते ।

प्रतिद्वंद्विताओ, द्वेषो और आन्तरिक सघर्ष के वावजूद भी, संसार अनिवार्य रूप से निकटतर सहयोग और एक लोकव्यापी समानतन्त्र के निर्माण की दिशाओं मे आगे वढ रहा है । इस 'एक संसार' के ही पक्ष में स्वतन्त्र भारत उद्योग करेगा, ऐसे संसार के पक्ष में, जहा कि स्वतन्त्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र सहयोग होता हो और कोई वर्ग या दल किसी दूसरे का शोषण न करता हो।

संघर्ष के अपने पिछले इतिहास के वावजूद भी, हम आशा करते है कि स्वतन्त्र भारत के, इग्लिस्तान और ब्रिटिश कामनवेल्थ के देशो से मैत्री और सहयोगिता पूर्ण सम्बन्ध होगे । लेकिन यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कामनवेल्थ के एक भाग में आजकल क्या हो रहा है । दक्षिण अफ्रीका में जातिगत भेद-भाव ने सरकारी सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया है और हमारे नागरिक वहां एक अल्पसंख्यक जाति के अत्याचारो के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ रहे है । यदि यह जातिगत भेद-भाव का सिद्धान्त सहन कर लिया जाय, तो यह हमें अनिवार्य रूप से महान संघर्षों और लोकव्यापी अनर्थ की ओर ले जाएगा ।

अमेरिका के लोगो के प्रति, जिन्हे भाग्य ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलो में एक विशेष स्थान दिया है, हम अपना अभिवादन भेजते है । हमे विश्वास है कि इस महान जिम्मेदारी का शान्ति और मानवी स्वतन्त्रता को सर्वत्र अग्रसर करने में सदुपयोग किया जाएगा ।

आधुनिक ससार के उस वड़े राष्ट्र सोवियट सघ के प्रति, जिसके ऊपर भी लोक-महत्त्व की घटनाओ को स्वरूप देने की महान जिम्मेदारी है, हम अपना अभिवादन भेजते हैं। एशिया में वह हमारा पड़ोसी है और अनिवार्य रूप से हम और वह अनेक समान कार्यो को उठाएंगे और एक दूसरे से अनेक प्रकार के सम्पर्क रखेंगे ।

हम एशिया के है और एशिया के लोग दूसरो की अपेक्षा हमारे अधिक निकट और अधिक घनिष्ठ है । अपनी स्थिति के कारण भारत पश्चिमी, दक्षिणी, और दक्षिणी-पूर्वी एशिया की धुरी वन गया है । अतीत मे उसकी संस्कृति इन सभी देशो में फैली और वे भी उसके पास अनेक उद्देश्यो से आए । उन सम्पर्कों को पुनर्नवीन किया जा

रहा है और भविष्य मे निश्चय ही एक ओर भारत का दक्षिण-पूर्वी एशिया से और दूसरी ओर अफ़गानिस्तान, ईरान और अरब देशो से घनिष्ठ सम्पर्क हो जाएगा। स्वतन्त्र देशो के इस निकट सम्पर्क को आगे बढाने के कार्य में हमें लगना चाहिए। भारत इंडोनीशिया-वासियो के स्वतन्त्रता-संग्राम मे चिन्ता के साथ दिलचस्पी लेता रहा है, और उन्हे हम अपनी शुभ कामनाएँ भेजते है।

चीन एक विशाल अतीतवाला महान देश है, जो हमारा पड़ोसी है। वह युगो से हमारा मित्र रहा है। यह मित्रता बनी रहेगी और बढेगी भी। हम हृदय से आशा करते है कि उसकी वर्तमान कठिनाइयो का शीघ्र ही अन्त होगा और एक संयुक्त और लोकतन्त्र चीन का आविर्भाव होगा, जो कि विश्व-शान्ति और प्रगति को आगे बढाने में एक बडा भाग लेगा।

मैंने अपनी घरेलू नीति के विषय में कुछ नही कहा है और न इस स्थिति में मै कुछ कहना ही चाहता हूँ। लेकिन अनिवार्य रूप से वह नीति उन सिद्धान्तों से शासित होगी जिन्हे कि हमने इतने वर्षो से अपनाया है। हम भारत के साधारण और भुलाए हुए मनुष्य की ओर ध्यान देंगे और उसकी कठिनाइयो के निवारण का और उसके रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेंगे। अस्पृश्यता के अभि-शाप के और हठात् लादी गई दूसरे प्रकार की विषमताओ के विरुद्ध हम अपनी लड़ाई जारी रखेंगे, और विशेष रूप से उनकी सहायता करेंगे जो कि आर्थिक दृष्टि से या दूसरे प्रकार से पिछड़े हुए है। आज करोड़ो व्यक्तियो को भोजन, वस्त्र और मकान की आवश्यकता है, और बहुत से भूख से मरने की दशा मे पहुँच चुके है। इस तात्का-लिक आवश्यकता को पूरा करना एक जरूरी और कठिन कार्य है, और हम आशा करते है कि दूसरे देश अन्न भेज कर हमारी सहायता करेंगे।

हमारे लिए उतना ही आवश्यक और गहन कार्य फूट की उस भावना पर विजय पाना है, जो कि भारत में फैली हुई है। आपसी संघर्ष के कारण हम भारतीय स्वतन्त्रता के उस भवन का निर्माण न कर सकेंगे, जिसका स्वप्न हम इतने दिनों से देख रहे थे। चाहे जैसी राजनीतिक घटनाएँ घटे, इस देश मे हम सभी को मिल-जुल कर रहना और काम करना है। द्वेष और हिंसा इस बुनियादी तथ्य को नही बदल सकते, और न वे उस परिवर्तन को रोक सकते है, जो आज भारत में हो रहा है।

संविधान-परिषद के विभागो और समूहो के सम्बन्ध मे बहुत गर्म बहसें हुई है। हम उन विभागो में बैठने के लिए तैयार है जो समूह बनाने के प्रश्न पर विचार करेंगे। अपने सहयोगियो की तरफ से और अपनी तरफ से मै एक बात स्पष्ट कर

देना चाहता हूँ कि हम सविधान-परिषद् को संघर्ष का या एक के मत पर जबरदस्ती दूसरे का मत लादने का अखाड़ा नही समझते । एक सन्तुष्ट और संयुक्त भारत के निर्माण का यह तरीका न होगा । हम तो ऐसे सर्वसम्मत निर्णय चाहते हैं, जिनके पीछे अधिक-से-अधिक सद्भावना हो । हम सविधान-परिषद में इस दृढ निश्चय के साथ जाएगे कि सभी विवादग्रस्त विषयो पर समझौते का एक समान आधार ढूढ निकाले । जो कुछ भी अव तक हुआ है और जो भी कडे शब्द कहे गए हैं, उनके बावजूद हमने सहयोग का मार्ग खुला रखा है । हम उन लोगो को भी, जिनका कि हम से मतभेद है, बराबरवालो और साथियो के समान, बिना किसी प्रकार की प्रतिज्ञाबद्धता के सविधान-परिषद् में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करते हैं । हो सकता है कि जब हम आपस में मिलें और समान कार्यो कोसा थ-साथ करें, तो हमारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ ।

•

भारत आगे बढ रहा है और पुरानी व्यवस्था बीत रही है । हम लोग बहुत दिनो तक घटनाओ के निष्क्रिय दर्शक और दूसरो के हाथ के खिलौने बने रहे । अब हम लोगो को नेतृत्व का अवसर मिला है, और अब हम अपनी रुचि से इतिहास का निर्माण करेंगे । हम सबको इस महान् कार्य मे लगे रहना चाहिए और अपने हृदय के गर्व, भारत, को राष्ट्रो में महान, और शान्ति और उन्नति की कलाओ मे सर्व-प्रमुख बनाना चाहिए । द्वार खुला हुआ है और भाग्य हमारा आवाहन कर रहा है। इसका प्रश्न नहीं है कि किसकी जीत होती है और किसकी हार, क्योकि हमें साथियो की भाति मिलजुल कर आगे जाना है, और या तो हम सभी जीतेंगे या सभी हारेंगे । लेकिन हम असफल नही हो सकते । हम भारत के ४० करोड लोगो की स्वतंन्त्रता, स्वाधीनना, सफलता और कल्याण की दिशा मे आगे बढेंगे । जय हिन्द !

स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य

यह प्रस्ताव उपस्थित करने की मै अनुमति चाहता हूँ कि:—

(१) यह सविधान परिषद् भारत को एक स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य घोषित करने और उसके भविष्य के शासन के लिए एक ऐसा सविधान प्रस्तुत करने के अपने दृढ़ और गम्भीर निश्चय को प्रकाशित करती है,

(२) जिसके अन्तर्गत वे प्रदेश, जो अब ब्रिटिश इंडिया में समाविष्ट है, वे प्रदेश, जिनसे देशी रियासतें बनी है, और भारत के ऐसे अन्य भाग, जो ब्रिटिश इडिया और रियासतो से बाहर है, और ऐसे अन्य प्रदेश, जो कि स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मक भारत में सम्मिलित होने के इच्छुक है, मिलकर एक सघ कहलाएंगे, और।

(३) जिसके अन्तर्गत उक्त प्रदेश, अपनी वर्तमान सीमाओ के साथ या ऐसी सीमाओ के साथ, जो संविधान परिषद् द्वारा और उसके बाद विधान के नियमो के अनुसार निर्धारित हो, स्वायत्त-शासन इकाइयो का पद प्राप्त करेंगे और उसे धारण करेंगे। उन्हे अवशिष्टाधिकार भी प्राप्त होगे और वे, ऐसे अधिकारों और कर्त्तव्यों को छोड़ कर जो कि सघ में निहित है या उसे मिले है, या स्वत सिद्ध या मिले हुए मान लिए गए है, या सघ से ही उद्भूत हुए है, शासन और प्रबन्ध के सभी अधिकारों और कर्त्तव्यो को काम में लाएगे,

(४) जिसके अन्तर्गत पूर्णसत्तात्मक स्वतन्त्र भारत की समस्त शक्ति और अधिकार, उसके अंगभूत भाग, और शासन के अवयव, जनता से निष्पन्न है,

(५) जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; दर्जे की, अवसर की और विधान के समक्ष समानता; कानून और शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुए विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, पूजा, धधा, सम्पर्क और कार्य की स्वतन्त्रता संरक्षित और प्राप्त होगी,

---

ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते हुए संविधान परिषद्, नई दिल्ली में, १३ दिसम्बर, १९४६, को दिया गया भाषण।

(६) जिसके अन्तर्गत अल्पसख्यको, पिछड़े हुए और आदिवासी क्षेत्रों, और दलित तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिए पर्याप्त संरक्षण होगे,

(७) जिसके द्वारा गणराज्य की सीमा की अखंडता और न्याय, और सभ्य राष्ट्रो के विधान के अनुसार स्थल, समुद्र और वायु में उसके पूर्णसत्तात्मक अधिकार स्थिर रखे जाएँगे, और

(८) यह प्राचीन देश संसार में अपना न्यायसंगत और सम्मानित स्थान प्राप्त करेगा और विश्वशान्ति तथा मानव-कल्याण की अभिवृद्धि के लिए स्वेच्छा से अपना पूरा योग देगा।

सविधान परिषद् के पहले अधिवेशन का यह पाचवाँ दिन है। अब तक हमने कार्य-पद्धति सम्बन्धी कुछ आवश्यक विषयों पर विचार किया है। काम करने के लिए साफ मैदान मिला हुआ है। हमें जमीन तैयार करनी है, और यही हम कुछ दिनो से कर रहे है। हमे अब भी बहुत कुछ करना है। हमे कार्यविधि के नियम पास करने है और समितियां आदि बनानी है। इसके बाद ही हम वास्तविक पग आगे रख सकते है—यानी इस सविधान परिषद् का वास्तविक कार्य, अर्थात् एक राष्ट्र के स्वप्न और आकाक्षा को मुद्रित और लिखित रूप देने का महान साहसिक कार्य आरम्भ कर सकते है। लेकिन इस स्थिति में भी यह निश्चय ही वाछनीय है कि हम अपने को और उन लोगों को जो इस परिषद की ओर देख रहे हैं, और इस देश के करोड़ो व्यक्तियो को जो हमे देख रहे है और ससार को देख रहे है, इस बात का संकेत दे कि हम क्या करने जा रहे हैं, हमारा ध्येय क्या है, और हम किधर जा रहे है। इसी उद्देश्य से मैंने यह प्रस्ताव इस सभा के सामने रखा है। यह एक प्रस्ताव है, फिर भी यह एक प्रस्ताव से बहुत बढ़ कर है। यह एक घोषणा है। यह एक दृढ निश्चय है। यह एक प्रतिज्ञा है, और एक विशेषकार्य है, और मैं आशा करता हूँ कि यह हम सब के लिए एक उत्सर्ग का कार्य है। मैं चाहता हूँ कि यह सभा इस प्रस्ताव पर सकीर्ण कानूनी शब्दावली के रूप मे नही बल्कि इस प्रस्ताव के पीछे जो भावना छिपी है उस को ध्यान में रखकर विचार करे। शब्दो में अक्सर जादू होता है, लेकिन शब्दो का जादू भी कभी-कभी मानवी भावना और एक राष्ट्र के तीव्र मनोवेगो के जादू को प्रकट करने में असमर्थ होता है। इसलिए मैं नही कह सकता कि यह प्रस्ताव भारतीय जनता के हृदयों और मनो में जो भावना है उसे प्रकट करता है या नही, यह बड़े निर्बल ढंग से ससार से यह कहने का प्रयत्न करता है कि हमने इतने समय तक क्या विचार किए है, क्या स्वप्न देखे है, और अब निकट भविष्य मे हम क्या प्राप्त करने की आशा करते है। इसी भावना के साथ मैं इस सभा के सामने यह प्रस्ताव रखने का साहस करता हूँ, और मुझे विश्वास है कि इसी

भावना से यह सभा इसे ग्रहण करेगी और अन्त मे स्वीकार करेगी। और, महोदय, क्या मै आदरपूर्वक आपको और इस सभा को यह सुझाव दू कि जब इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का समय आये, तो हम इसे औपचारिक ढग से हाथ उठाकर स्वीकार न करें, बल्कि अधिक गम्भीरता के साथ खडे होकर स्वीकार करे और इस प्रकार नए रूप से यह प्रतिज्ञा करे।

यह सभा जानती है कि यहा बहुत से लोग अनुपस्थित है, और बहुत से सदस्य, जिन्हे यहा उपस्थित होने का अधिकार है, नही आए है। इस बात का हमें खेद है, क्योकि हम चाहते है कि हमारे साथ जितने भी लोग, भारत के विभिन्न भागो के जितने भी प्रतिनिधि, सम्मिलित हो सकें अच्छा है। हमने एक महान कार्य हाथ में लिया है, और हम इस कार्य में सभी लोगो का सहयोग चाहते है, क्योकि भारत के जिस भविष्य की हमने कल्पना की है वह किसी एक दल या वर्ग या प्रान्त तक सीमित नही है, बल्कि वह भारत के सभी चालीस करोड लोगो का है, और इसलिए कुछ बेंचो को खाली देखकर, और कुछ सहयोगियो को, जिन्हे यहा उपस्थित होना चाहिए था, अनुपस्थित देखकर हमें बड़ा खेद होता है। उन्हे अवश्य आना चाहिए था और मै आशा करता हूँ कि वे आएगे, और आगे चलकर इस सभा को सभी के सहयोग का लाभ प्राप्त होगा। इस बीच हमारे ऊपर एक जिम्मेदारी आ जाती है और वह यह कि हम अनुपस्थित लोगो का ध्यान रखें और सदा यह ध्यान रखें कि हम यहां किसी एक दल या वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए नही है, बल्कि हमें समस्त भारत का ध्यान रखना है, और सदा उन चालीस करोड आदमियो के कल्याण का ध्यान रखना है जो भारत में रहते है। इस समय हम सब, अपने अलग अलग क्षेत्रो में दलविशेष के लोग है। कोई इस दल से सम्बन्ध रखता है, कोई उस दल से। और यह मानी हुई बात है कि हम लोग अपने अपने दलो मे काम करते रहेगे। फिर भी एक ऐसा समय आता है, जब कि हमें दल से ऊपर उठकर राष्ट्र का चिन्तन करना पडता है और कभी-कभी व्यापक ससार का ध्यान करना पडता है, जिसका कि हमारा राष्ट्र एक बडा भाग है। जब मै इस सविधान परिषद् के कार्य का विचार करता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि समय आ गया है जब कि हमें यथाशक्ति अपने साधारण व्यक्तित्वो से और दलबन्दी के झगड़ो से ऊपर उठना चाहिए और हमारे सामने जो बड़ी समस्या है उस पर अधिक-से-अधिक व्यापक, अधिक-से-अधिक उदार, अधिक-से-अधिक कारगर ढग से, विचार करना चाहिए, जिससे कि जो चीज़ हम प्रस्तुत करें वह समस्त भारत के योग्य हो और ऐसी हो कि ससार अनुभव करे कि हमने इस महान कार्य में जैसा चाहिए था वैसा योग दिया है।

एक और भी व्यक्ति है जो यहा उपस्थित नही है और जिसका ध्यान हममे से बहुतो के मन में आज होगा। वह है हमारे देशवासियो का महान् नेता, हमारे

राष्ट्र का पिता । इस परिषद् का और इसकी स्थापना से पूर्व जो कुछ हुआ है उसका और इसके बाद जो कुछ होगा उसके अधिकाश का विधाता वही है। वह आज यहां इसलिए नही है, क्योकि वह अपने आदर्शों के अनुसरण मे भारत के एक दूर के कोने मे निरन्तर कार्य में लगा हुआ है। लेकिन मुझे सदेह नही, कि उसकी आत्मा यहा मंडरा रही है और हमारे कार्य में हमे आशीर्वाद दे रही है।

महोदय, यहा पर खड़ा हुआ मै तरह-तरह के विचारो के बोझ का अनुभव कर रहा हूँ। हम एक युग के अन्त पर पहुँच गए है, और सम्भवत· बहुत जल्दी एक नए युग में प्रवेश करेगे। मेरे विचार भारत के गौरवमय अतीत की ओर जाते है—उस अतीत की ओर जो आज से ५००० वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। भारत का इतिहास यही से आरम्भ होता है, और इसे मानवजाति के इतिहास का उषा-काल कह सकते है। यह सारा अतीत एक साथ मेरे सामने आता है और मुझे उल्लसित करता है, और साथ-ही-साथ कुछ दबाता भी है। क्या मै इस अतीत के योग्य हूँ? जब मै भविष्य के विषय में भी सोचता हूँ, और यह समझता हूँ कि वह और भी बड़ा होगा, तो विशाल अतीत और विशालतर भविष्य के बीच, वर्तमान की तलवार की धार पर खडा हुआ, मै कुछ सिहर उठता हूँ और इस महान् कार्य से अपने को किंचित् अभिभूत अनुभव करता हूँ। हम यहां पर भारत के इतिहास के एक विचित्र क्षण में एकत्र हुए है। मै नही जानता, लेकिन मै अनुभव अवश्य करता हूँ, कि प्राचीन से नवीन में परिवर्तन के इस क्षण में कुछ जादू है, कुछ उस तरह का जादू है जो उस समय दिखाई देता है जब रात दिन में बदलती है। दिन चाहे मेघाच्छन्न ही क्यों न हो, फिर भी वह दिन ही है, क्योंकि जब बादल हट जायंगे तो हमें फिर सूर्य के दर्शन होगें। इन सब बातों के कारण, इस सभा के सामने बोलने में और अपने सब विचारो को रखने में मुझे कुछ कठिनाई अनुभव होती है। में यह भी अनुभव करता हूँ कि इन हजारो वर्षो के लम्बे अनुक्रम में, मै उन महान् व्यक्तियो को देखता हूँ जो आए और गए। और अपने उन साथियों की एक लम्बी कतार को भी देखता हूँ, जिन्होने कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए परिश्रम किया। अब हम इस बीतते हुए युग के छोर पर खड़े है और एक नए युग के आवाहन के लिए प्रयत्न और परिश्रम कर रहे है। मुझे विश्वास है कि यह सभा इस क्षण की गम्भीरता का अनुभव करेगी और इस प्रस्ताव पर, जिसे कि प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तदनुरूप गम्भीरता से विचार करेगी। मेरा ख्याल है कि इस प्रस्ताव पर बहुत से संशोधन इस सभा के सामने आयेंगे। उनमें से अधिकतर मैंने नहीं देखे हैं। इस सभा के किसी भी सदस्य को यह अधिकार है कि वह जो भी संशोधन चाहे प्रस्तुत करे। सभा को यह अधिकार है कि वह उस संशोधन को चाहे स्वीकार करे चाहे अस्वीकार। लेकिन में पूरे आदर के साथ यह सुझाव दूंगा कि जब हमें बड़ी बातो का सामना करना है, बड़ी बाते कहनी है, और बडी बातें करनी है, यह छोटी-छोटी

बातों के सम्बन्ध में पारिभाषिक और वैधानिक बारीकियों में जाने का समय नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यह सभा इस प्रस्ताव पर एक उदार दृष्टि से विचार करेगी, और शाब्दिक बारीकियों और बहसों में न पड़ेगी।

मैं उन विविध संविधान-परिषदों का ध्यान करता हूँ जो पहले बन चुकी हैं, और महान् अमरीकी राष्ट्र के निर्माण के समय, जब कि उस राष्ट्र के निर्माताओं ने मिलकर एक ऐसे संविधान की रचना की जो कि डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय की कसौटी पर पूरा उतरा है, जो कुछ हुआ उसका भी ध्यान करता हूँ; तथा मैं उस महान् राष्ट्र का ध्यान करता हूँ जो उस संविधान के परिणामस्वरूप और उसी के आधार पर बना। मेरा ध्यान उस महान् क्रान्ति की ओर भी लौट कर जाता है, जो डेढ़ सौ वर्ष से अधिक पहले हुई और उस संविधान-परिषद की ओर भी, जो कि पेरिस के उस सुन्दर और शोभायमान नगर में हुई, जिसने कि स्वतन्त्रता की अनेक लड़ाइयां लड़ी हैं। मुझे उन सब कठिनाइयों का ध्यान आता है, जो कि राजा और दूसरे अधिकारियों की ओर से परिषद् के मार्ग में डाली गईं, जिनका उसे सामना करना पड़ा और फिर भी वह अपना काम करती रही। इस सभा को याद होगा कि जब ये कठिनाइयां आईं और परिषद् को सभा करने के लिए कमरा तक न दिया गया तो वह खुले टेनिस के मैदान में चली गई। वहां उसने अपनी बैठक की और वह शपथ ली जिसे "टेनिस के मैदान की शपथ" कहते हैं। राजा और दूसरे लोगों द्वारा डाली गई बाधाओं के बावजूद परिषद् उस समय तक अपनी बैठकें करती रही जब तक कि उसका काम पूरा न हुआ। अच्छा, तो मैं विश्वास करता हूँ कि उसी गम्भीर मनोभावना के साथ हम लोग भी यहां मिल रहे हैं, और हम लोग भी, चाहे इस कमरे में अपनी बैठकें करें, चाहे खेतों में या बाजार में, उस समय तक मिलते रहेंगे जब तक कि हम अपना काम पूरा न कर लेंगे।

इसके बाद मेरा ध्यान एक अधिक सन्निकट काल की क्रान्ति की ओर जाता है, जिसने कि एक नए प्रकार के राज्य को जन्म दिया। यह वह क्रान्ति है जो रूस में हुई और जिसके परिणाम स्वरूप सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की स्थापना हुई। यह भी एक महान् देश है जो कि आज के संसार में प्रमुख भाग ले रहा है। यह केवल एक महान् देश ही नहीं है, हम भारतीयों के लिए तो यह एक पड़ोसी देश भी है।

इस तरह हमारा ध्यान इन बड़े उदाहरणों की ओर जाता है और हम उनकी सफलताओं से सीखना और उनकी विफलताओं से बचना चाहते हैं। शायद हम विफलताओं से सर्वथा न बच सकें, क्योंकि मानवी प्रयत्न में कुछ न कुछ विफलता अन्तर्निहित रहती ही है। फिर भी कैसी भी कठिनाइयां और बाधाएँ सामने क्यों

न हों, हम आगे बढेगे, और जो स्वप्न हमने इतने समय से देखा है उसे पूरा करेंगे। यह सभा जानती है कि यह प्रस्ताव बहुत सावधानी से तैयार किया गया है और इसमे बहुत अधिक या बहुत कम कहने से बचने का यत्न किया गया है। इस तरह के प्रस्ताव की रचना करना कठिन होता है। यदि बहुत थोडा कहा जाय तो प्रस्ताव एक "पवित्र निश्चय" मात्र रह जाता है और कुछ नही , और यदि बहुत अधिक कहा जाय तो इसका अर्थ उन लोगो के कार्य में हस्तक्षेप करना समझा जाता है, जो कि सविधान का निर्माण करने जा रहे है, अर्थात् इसका अर्थ होगा इस सभा के कार्य मे हस्तक्षेप करना। यह प्रस्ताव उस सविधान का अग नही है, जिसका निर्माण हम करने जा रहे हैं, और न ऐसा समझना ही चाहिए। इस सभा को उस संविधान के निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता है, जब और लोग इस सभा मे आएगे तो उन्हे भी संविधान के निर्माण की पूरी स्वतन्त्रता होगी। इसलिए यह प्रस्ताव दो दूरतम छोरो से हटकर बीच का मार्ग ग्रहण करता हुआ कुछ मूलभूत बातो को प्रस्तुत करता है, जिन पर मुझे पूरा विश्वास है, किसी वर्ग या दल को या भारत के किसी व्यक्ति को कोई आपत्ति नही हो सकती। हमने कहा है कि हमारा यह दृढ और गम्भीर निश्चय है कि एक स्वतन्त्र पूर्णसत्तात्मिक गणराज्य की स्थापना हो। भारत निश्चय ही पूर्णसत्ताधारी होगा, निश्चय ही स्वतन्त्र होगा और निश्चय ही एक गणराज्य होगा। राजतन्त्र आदि के विवाद मे मै न पडूगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि भारत मे हम शून्य से राजतन्त्र नही उत्पन्न कर सकते। वह यहा है नही। अगर उसे एक स्वतन्त्र और पूर्णसत्तात्मक राज्य बनना है तो हम बाहर से किसी राजा को नही ला सकते और न हम इस बात की ही खोज शुरू करना चाहते है कि स्थानीय राजाओ मे से कौन कानूनी अधिकारी है। इसे अनिवार्यत· एक गणराज्य होना है।

अब कुछ मित्रो ने यह प्रश्न उठाया है कि "आपने इस मे 'लोकतन्त्र' शब्द क्यो नही रखा ?" अच्छा तो मैंने उन्हे बताया कि इसकी कल्पना की जा सकती है कि एक गणराज्य लोकतन्त्रात्मक न हो। लेकिन हमारा सारा अतीत इस बात का साक्षी है कि हम लोकतन्त्रात्मक सस्थाओ के पक्ष में है। यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र ही हमारा उद्देश्य है, इससे कम कुछ नही। लोकतन्त्र किस प्रकार का होगा और उसकी रूप-रेखा कैसी होगी—यह दूसरा प्रश्न है।

यूरोप में और कुछ और जगहों में आजकल जो लोकतन्त्रात्मक राज्य है उन्होंने संसार की उन्नति मे बड़ा भाग लिया है। लेकिन यदि ये राज्य पूरी तरह से लोक-तन्त्र बने रहना चाहते है तो इसमे कोई सन्देह नही कि निकट भविष्य मे ही उनको अपना रूप कुछ-न-कुछ बदलना पड़ेगा। हम किसी लोकतन्त्रात्मक कार्य-पद्धति या किसी तथाकथित लोकतन्त्रात्मक देश की किसी संस्था की केवल नकल करने नही

जा रहे हैं, ऐसी मेरी आशा है। हम उसका और सुधार कर सकते हैं। हर हालत में हम जिस शासन-पद्धति की यहाँ स्थापना करें उसे हमारी जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल होना चाहिए और उसे मान्य होना चाहिए। हम लोकतन्त्र के पक्ष में हैं। यह काम इस सभा का होगा कि वह निर्णय करे कि उस लोकतन्त्र को क्या स्वरूप देना है। मुझे आशा है कि वह पूर्णातिपूर्ण लोकतन्त्र होगा। यह सभा देखेगी कि इस प्रस्ताव में यद्यपि हमने लोकतन्त्र शब्द का व्यवहार नही किया, क्योकि हमने सोचा था कि 'गणराज्य' के अन्तर्गत ही उसका आशय स्पष्ट रूप से आ जाता है, और हम अनावश्यक और फालतू शब्दो के प्रयोग से बचना चाहते थे, फिर भी हमने इस शब्द के प्रयोग से भी कुछ अधिक कर दिया है। हमने इस प्रस्ताव में लोकतन्त्र का सार दे दिया है; लोकतन्त्र का सार ही नही, आर्थिक लोकतंत्र का सार दे दिया है, यह मैं कह सकता हूँ। दूसरे लोग इस प्रस्ताव पर यह कहकर आपत्ति कर सकते है कि हमने यह नही कहा कि इसे समाजवादी राज्य होना चाहिए। मैं समाजवाद के पक्ष में हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि भारत भी समाजवाद के पक्ष में होगा और वह एक समाजवादी राज्य बनेगा और मुझे विश्वास है कि सारे संसार को समाजवादी बनना पड़ेगा। लेकिन वह समाजवाद कैसा होगा यह विषय फिर आपके विचार करने का है। लेकिन मुख्य बात यह है कि इस प्रकार के प्रस्ताव में अगर अपनी निजी इच्छा के अनुसार मैंने यह रख दिया होता कि हम एक समाजवादी राज्य चाहते है, तो कुछ लोगो के लिए तो वह मान्य होता पर कुछ लोगो के लिए मान्य न होता। और हम ऐसे विषयो में इस प्रस्ताव को विवादग्रस्त नही बनाना चाहते थे। इसलिए हमने सैद्धान्तिक शब्दावली और सूत्रो को बचाकर, उस वस्तु का सार रख दिया है जिसे हम चाहते थे। यह आवश्यक है और मैं समझता हूँ इसके सम्बन्ध में किसी को कोई आपत्ति न होगी। कुछ लोगो ने मुझे बताया है कि 'गणराज्य' शब्द का रखना भारतीय रजवाड़ों के शासको को कुछ अप्रिय हो सकता है। सम्भव है इससे वे अप्रसन्न हों। लेकिन इसे मैं व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, और सभा इसे जानती है कि मैं कही भी राजतन्त्र पद्धति के पक्ष में नही हूँ, और आज की दुनिया में यह व्यवस्था तेजी से उठ रही है। फिर भी, यह मेरे व्यक्तिगत विश्वास का विषय नही है। भारतीय रजवाड़ो के विषय में बहुत वर्षों से हमारा दृष्टिकोण यह रहा है, कि सब से प्रथम तो उन रियासतो के लोगों को आनेवाली स्वतंत्रता का पूरा-पूरा हिस्सा मिलना चाहिए। मैं यह कल्पना नही कर सकता कि रियासती जनता और रियासत से बाहर की जनता के बीच स्वतंत्रता के आदर्श और मात्रा के विषय में अन्तर हो। ये रियासतें संघ के अंग किस प्रकार बनेंगी, यह इस सभा में रियासतो के प्रतिनिधियो के साथ मिलकर विचार करने का विषय है। और मै आशा करता हूँ कि रियासतो के सम्बन्ध के सभी मामलो में यह सभा रियासतो के वास्तविक प्रतिनिधियो से बात करेगी। मै मानता हूँ कि हम इस बात के लिए बिल्कुल राजी हैं कि उन विषयो

पर, जिनका कि शासकों से सम्बन्ध है, हम शासको और उनके प्रतिनिधियों से भी बात करें। लेकिन अन्त में, जब संविधान तैयार हो तो उसे रियासती जनता के प्रतिनिधियों द्वारा उसी प्रकार स्वीकृत होना चाहिए जिस प्रकार कि शेष भारत के उपस्थित प्रतिनिधियों द्वारा। हर हालत में हमें यह बता देना चाहिए या स्वीकार कर लेना चाहिए कि स्वतंत्रता की मात्रा रियासतों में वही होगी जो और जगह। इसकी सम्भावना है और व्यक्तिगत रूप से मै यह चाहूँगा कि शासन यंत्र के सम्बन्ध में भी एक हद तक समानता रहे। फिर भी, यह विषय रियासतों से सहयोग और परामर्श के बाद निश्चित करने का है। मै नहीं चाहता, और मेरा ख्याल है कि यह सभा भी न चाहेगी, कि रियासतों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई चीज लादी जाय। यदि किसी रियासत की जनता किसी विशिष्ट प्रकार का शासन चाहती है, चाहे वह राजतंत्र ही हो, तो इसकी उसे स्वतंत्रता होगी। इस सभा को स्मरण होगा कि आयर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत एक गणराज्य है। फिर भी अनेक रूपो में वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य है। इसलिए, ऐसी कल्पना की जा सकती है। होगा क्या, यह मै नही जानता, क्योंकि यह बात कुछ तो इस सभा के और कुछ औरों के निर्णय करने की है। रियासतों में शासन के किसी विशेष रूप के स्थापित होने में न कोई वैषम्य है न असंभावित बात है, शर्त केवल यह है कि वहाँ जनता को पूरी स्वतन्त्रता हो और जो भी शासन हो वह जनता के प्रति उत्तरदायी हो, और जनता वास्तव में उसका संचालन करे। अगर किसी रियासत की जनता यह चाहती है कि शासन के नाममात्र प्रमुख के रूप में राजा लोग बने रहें, तो मैं इसे पसन्द करूँ चाहे न करूँ, मै निश्चय ही इसमें हस्तक्षेप न करूँगा। इसलिए, मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जहां तक इस प्रस्ताव या घोषणा का सम्बन्ध है, यह किसी भी रूप मे उस काम में या बातचीत में हस्तक्षेप नही करती जिसे यह परिषद् भविष्य में करना चाहे या चलाना चाहे। केवल एक अर्थ में यह हमें सीमित करती है—अगर आप उसे सीमित करना कहें—अर्थात् हम कुछ मूल सिद्धान्तों की, जो कि इस घोषणा में अन्तर्निहित हैं, पाबन्दी करते हैं। मै समझता हूँ ये मूल सिद्धान्त किसी वास्तविक अर्थ में विवादग्रस्त नहीं है। भारत में कोई भी इन पर आपत्ति नही करता, और न किसी को आपत्ति करनी चाहिए। लेकिन अगर इन पर कोई आपत्ति करेगा तो हम उसका जवाब देंगे, और अपने पक्ष का समर्थन करेंगे।

हम भारत का एक सविधान तैयार करने जा रहे हैं और यह स्पष्ट है कि हम भारत में जो कुछ करने जा रहे है उसका शेष संसार पर गहरा प्रभाव पड़ेगा, केवल इसलिए नही कि एक नया स्वतंत्र राष्ट्र संसार के रंगमंच पर आ रहा है, बल्कि इसलिए भी कि भारत एक ऐसा देश है जो अपने विस्तार और जनसंख्या के कारण तथा अपने महान साधनों और उन साधनों के उपयोग की योग्यता के कारण, संसार के मामलों में शीघ्र ही एक महत्वपूर्ण भाग ले सकता है। आज भी, स्वतंत्रता

के छोर पर खडा हुआ भारत संसार के मामलों में महत्वपूर्ण भाग लेने लगा है। इसलिए, यह उचित है कि हमारे संविधान के निर्माता इस विशाल अन्तर्राष्ट्रीय पहलू को ध्यान में रखें।

हम संसार के समक्ष एक मैत्रीपूर्ण भाव से आते हैं। हम सभी देशो से मित्रता, रखना चाहते हैं। हम इंग्लिस्तान से भी मैत्री रखना चाहते हैं, बावजूद इसके कि हमारे बीच पिछले संघर्ष का एक लम्बा इतिहास है। यह सभा जानती है कि मैं हाल ही में इंग्लिस्तान गया था। जिन कारणों से मै वहां नही जाना चाहता था, उन्हे भी यह सभा जानती है। लेकिन मैं वहा ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मंत्री के व्यक्तिगत अनुरोध के कारण गया। मै गया और मुझे सर्वत्र सौजन्य प्राप्त हुआ। भारत के इतिहास के इस मनोवैज्ञानिक क्षण में, हम यह चाहते थे और इस बात के भूखे थे कि हमें ससार के सब देशो से उत्साह, मैत्री और सहयोग के संदेश मिले। अपने पुराने सम्पर्क और संघर्ष के कारण हमें यह आशा थी कि इंगलैड से ऐसे सन्देश अवश्य आएंगे। परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि उत्साहवर्द्धक सन्देश तो दूर रहे मै निराशा साथ लेकर लौटा।

मै आशा करता हूँ कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल तथा अन्य अधिकारियो द्वारा दिए गए हाल के वक्तव्यो के कारण, जो नई कठिनाईया उठ खडी हुई हैं, वे हमारे मार्ग में बाधा न डालेंगी और हम अब भी, उन सब लोगो के सहयोग से सफल होंगे, जो यहां है और जो नही आए है। इससे मुझे धक्का पहुँचा है, और तकलीफ हुई है कि ठीक उस समय जब कि हम आगे बढने जा रहे थे हमारे रास्ते में बाधाएँ डाली गईं, ऐसे नए प्रतिबन्ध लगाए गए, जिनकी पहले कोई चर्चा न थी और कार्य-संचालन की नई विधियो का सुझाव दिया गया। मै किसी व्यक्ति की सचाई पर आपत्ति नही करना चाहता, लेकिन मै यह कहना चाहता हूँ कि जब हम किसी ऐसे राष्ट्र के मामले पर विचार करते है जो कि स्वतत्रता की भावना से भरा हो, उस समय कानूनी पहलू जो भी हो, ऐसे क्षण आ जाते है जब कि कानून सहारा नही देता। हम लोगो में से, जो यहां उपस्थित है, अधिकतर ऐसे हैं जिन्होने पिछले वर्षों में एक पीढी या अधिक समय से, अकसर भारत की स्वतन्त्रता की लडाई में भाग लिया है। हम लोग अँधेरी घाटी से होकर गुजरे है। हम इसके अभ्यस्त हो गए है और जरूरत पड़ेगी तो हम फिर उससे गुज़रेंगे। फिर भी, इस सारे लम्बे काल में, हमने ऐसे समय का विचार किया है, जबकि हमें न केवल लड़ाई का और विनाश का, बल्कि निर्माण और रचना का भी अवसर मिलेगा। और अब, जब कि ऐसा जान पड़ता था कि स्वतन्त्र भारत में, जिसकी हम प्रसन्नता से बाट देख रहे थे, रचनात्मक प्रयत्न का अवसर मिलेगा, हमारे मार्ग में नई कठिनाइयां डाली गई। इससे पता चलता है कि इसके पीछे जो भी शक्ति हो, उन लोगो में भी जो कि होशि-

यार, योग्य और बहुत बुद्धिमान् है, उस विचारपूर्ण साहस का अभाव है, जो बड़े अधिकारियों में होना चाहिए। क्योकि अगर आपको किसी राष्ट्र से व्यवहार करना है तो आपको उसे विचार से जानना होगा, भाव से जानना होगा और बुद्धि से भी जानना होगा। अतीत की एक दुर्भाग्यपूर्ण देन यह चली आई है कि भारतीय समस्या को समझने मे कभी विचार से काम नही लिया गया। लोगों ने अकसर हमें परामर्श दिया है या परामर्श देने की धृष्टता दिखाई है और इस बात का अनुभव नही किया है कि भारत, जिस रूप में कि आज वह है, किसी की सलाह नही चाहता और न यह चाहता है कि उसके ऊपर कोई अपना मत लादे। एकमात्र मित्रता, सहयोग और सद्भावना से ही भारत प्रभावित हो सकता है। वह विचारो के लादने के प्रत्येक प्रयत्न और आश्रयदान की गन्ध मात्र का भी विरोध करता है और करेगा। मै समझता हूँ हमने बावजूद उन कठिनाइयो के जो हमारे सामने रही है, पिछले कुछ महीनों में, ईमानदारी से सहयोग का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। हम इस प्रयत्न को जारी रखेंगे। लेकिन मुझे निश्चय ही बहुत भय है कि अगर दूसरों की ओर से पर्याप्त मात्रा मे अनुकूल साहाय्य नही मिलेगा तो यह वातावरण विच्छिन्न हो जाएगा। फिर भी, चूकि हम महान् कार्यों में लगे हुए है, मै आशा और विश्वास करता हूँ कि हम यह प्रयत्न जारी रखेंगे, और मुझे यह भी आशा है कि अगर हमने इसे जारी रखा तो हम सफल होंगे। जहां हमे अपने ही देशवासियो से निबटना है, हम यह प्रयत्न उस दशा में भी जारी रखेगे जब कि हमारी राय में हमारे कुछ देश-वासी गलत मार्ग पर होगे। क्योकि, आखिर, हमें इस देश में एक साथ काम करना है, और हमें अनिवार्य रूप से आपस में सहयोग करना है—आज नही तो कल—कल नही तो परसों। इसलिए हमें इस समय ऐसी हर एक बात से बचना चाहिए, जो कि उस भविष्य के निर्माण मे, जिसके लिए कि हम प्रयत्नशील है, कोई नई कठिनाई उपस्थित करे। इसलिए जहां तक अपने देशवासियो का सम्बन्ध है हमें अपनी शक्ति भर उनका अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन सहयोग का यह अर्थ नही, कि हम उन मूल आदर्शों को छोड़ दें, जिनका समर्थन हमने आज तक किया है और करना चाहिए। जिन चीजो से हमारा जीवन सार्थक हुआ है, उन्हे छोड़ देना सहयोग नही है। इसके अलावा, जैसा कि मैंने कहा, इस स्थिति में भी, जब कि हम एक दूसरे के प्रति संदेह की भावना से भरे हुए है, हम इंग्लैड का सहयोग चाहते है। हम अनुभव करते है कि यदि वह सहयोग प्राप्त न हुआ तो यह भारत के लिए निश्चय ही कुछ हद तक हानिकर होगा। लेकिन कदाचित् इंग्लैड के लिए यह अधिक हानिकर होगा और कुछ हद तक सारी दुनिया के लिए भी। हम अभी एक विश्वव्यापी युद्ध से बाहर निकले है, और लोग अस्पष्ट रूप से और कुछ उतावले ढंग से आनेवाले नए युद्धों की चर्चा करते हैं। ऐसे क्षण में उस नए भारत का जन्म हो रहा है जो कि नवजाग्रत, सजीव और निर्भय है। संसार के इस कोलाहल में, शायद इस नव-जन्म के लिए उचित अवसर है।

लेकिन हमें इस क्षण स्पष्ट आंखों से देखना चाहिए, क्योंकि हमें संविधान-निर्माण का भारी काम करना है। हमें वर्तमान की महान् संभावनाओं का और भविष्य की उससे भी महान संभावनाओं का विचार करना है, और इस अथवा उस वर्ग के लिए छोटे-मोटे लाभों की प्राप्ति के प्रयत्न में अपने को नहीं खो देना है। इस संविधान-परिषद् में, हम संसार के मंच पर काम कर रहे हैं। सारे संसार की आखें हमारी ओर लगी हैं, और समस्त अतीत भी हमको देख रहा है। हमारा अतीत, हम यहां जो कुछ कर रहे हैं, उसका साक्षी है, और यद्यपि भविष्य ने अभी जन्म नहीं लिया है, मैं समझता हूं, वह भी किसी न किसी तरह हमें देख रहा है। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस प्रस्ताव पर हमारे अतीत की, कोलाहल पूर्ण वर्तमान की और शीघ्र आने वाले परन्तु महान और अजात भविष्य की विशाल दृष्टि-परम्परा में विचार करें।

ध्येयों के सम्बन्ध में प्रस्ताव

महोदय, मुझे इस वात का गर्व है कि छः सप्ताह पूर्व, इस प्रस्ताव को इस माननीय सभा के सामने पेश करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उस अवसर की गुरुता और गम्भीरता का अनुभव किया। मैंने इस सभा के सामने एक शब्दावली मात्र नही प्रस्तुत की, यद्यपि वे वहुत सावधानी से चुने हुए शब्द थे, वल्कि वे शब्द और प्रस्ताव एक राष्ट्र की यातनाओ और अन्तत. फलित आशाओं के सूचक थे।

उस अवसर पर जव कि मैं यहाँ खड़ा था तो मैंने अनुभव किया कि अतीत घिरकर मेरे चारो ओर आ रहा है, और मैंने भविष्य को भी साकार होते हुए देखा। हम वर्तमान की असि-धार पर खड़े हैं, और चूँकि मैं न केवल इस माननीय सभा को वल्कि भारत के करोडो निवासियो को जिनको हमारे काम में बड़ी दिलचस्पी है, संवोधन कर रहा था, और चूंकि मैंने अनुभव किया कि हम एक युग की समाप्ति पर पहुँच रहे हैं, मेरी कुछ ऐसी धारणा हुई कि हमारे पूर्वज हमारे इस उद्योग को देख रहे है और यदि हम ठीक रास्ते पर हैं, तो संभवतः इसे आशीर्वाद दे रहे हैं, और वह भविष्य जिसके कि हम न्यासधारी है, मुझे एक जीवित वस्तु-सा और हमारी आंखो के सामने एक आकार ग्रहण करता-सा जान पडा। भविष्य का न्यासधारी वनना एक वड़ा दायित्व था, और महान अतीत का उत्तराधिकारी वनना भी कुछ दायित्वपूर्ण काम था। और एक महान अतीत और हमारी कल्पना के महान भविष्य के बीच हम वर्तमान की धार पर खड़े थे, और मुझे इसमें कोई सदेह नही कि उस अवसर की गुरुता ने इस माननीय सभा को प्रभावित किया।

इसलिए मैंने यह प्रस्ताव इस सभा के सामने रखा, और मैंने आशा की थी कि यह एक या दो दिन के भीतर स्वीकृत हो जायगा और हम अपना और कार्य तुरन्त आरम्भ कर सकेंगे। लेकिन इस सभा ने एक लम्वे विवाद के वाद यह निर्णय किया कि इस प्रस्ताव पर आगे विचार स्थगित रखा जाय। क्या मैं कहूँ कि मुझे किञ्चित् निराशा हुई, क्योकि आगे वढ़ने के लिए मैं अत्यंत उत्सुक था? मैंने ख्याल

ध्येयों के सम्वन्ध में प्रस्ताव पर हुए विवाद को समाप्त करते हुए, संविधान परिषद् में १३ जनवरी, १९४७ को दिया गया भाषण।

किया कि मार्ग मे देर लगाने से, जो प्रतिज्ञाएँ हमने की थी, हम उनके प्रति, सच्चे नही बने हुए थे। यह एक शुभ आरम्भ न था कि हम लोगों को ध्येय-सम्बन्धी ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव को स्थगित करना पड़े। क्या इसका यह तात्पर्य होगा कि हमारा भविष्य का कार्य भी धीमी गति से चलेगा और समय-समय पर स्थगित होता रहेगा ? फिर भी, मुझे कोई संदेह नही कि सभा ने इस प्रस्ताव के स्थगित करने का जो निश्चय किया वह एक ठीक निश्चय था, क्योकि हम सदा दो बातो का सतुलन करते आएँ है—एक तो अपने ध्येय पर शीघ्र पहुँचने की नितांत आवश्यकता का और दूसरे इस बात का कि हम उस तक, उचित समय मे अधिक-से-अधिक संभावित बहुमत के साथ, पहुँचें। इसलिए, यदि मै पूरे आदर के साथ कह सकता हूँ, तो यह उचित था कि यह सभा इस प्रस्ताव पर विचार स्थगित करने का निश्चय करे। इस प्रकार उसने न केवल संसार के आगे हमारी उत्कट इच्छा को प्रकट कर दिया कि हम, जो लोग अब तक यहां नही आ सके है, उन्हे बुलाने के उत्सुक है, बल्कि देश तथा अन्य सब को भी इस बात का आश्वासन दिया कि हम सबका सहयोग प्राप्त करने के कितने उत्सुक है। तब से छः सप्ताह बीत चुके है। और इस बीच उनके लिए, जो आना चाहते थे, पर्याप्त समय था। दुर्भाग्य से उन्होने अब तक आने का निश्चय नही किया और वह अभी तक इस विषय मे कोई निश्चय पर नही पहुँच पाये है, इसका मुझे खेद है, और मेरा केवल यही कहना है कि भविष्य मे जब कभी वह आना चाहें हम उनका स्वागत करेंगे। लेकिन, बिना किसी गलत-फहमी की संभावना के यह स्पष्ट करना उचित होगा कि भविष्य मे चाहे कोई आए चाहे न आए, कोई काम रोका न जायगा। काफी इंतिजार किया जा चुका। न केवल छः सप्ताह तक इंतिजार किया गया, बल्कि इस देश में बहुतो ने अनेकानेक वर्षो तक प्रतीक्षा की है, और इस देश ने अब कई पीढ़ियो तक प्रतीक्षा कर ली है। हम कब तक प्रतीक्षा करे ? और अगर हम, हम में से कुछ, जो कि अधिक समृद्ध है अभी प्रतीक्षा कर सकते है, तो उन क्षुधितो और भूखे मरनेवालो की प्रतीक्षा के लिए क्या कहते है ? यह प्रस्ताव क्षुधितो और भूखे मरनेवालो का पेट नही भर देगा, लेकिन यह अनेक बातो की आशा दिलाता है—यह स्वतंत्रता की आशा दिलाता है, यह भोजन की आशा बँधाता है और सबके लिए समान अवसर की आशा पैदा करता है। इसलिए, जितनी जल्दी हम अपने काम में लग सकें, उतना ही अच्छा है। हमने छः सप्ताह तक इंतिजार किया, और इन छः सप्ताहो के बीच देश ने इस पर विचार किया, खूब गौर किया और दूसरे देशो ने, और अन्य लोगो ने भी जो कि इसमे दिलचस्पी रखते रहे है, इसके विषय मे विचार किया। अब हम, इस प्रस्ताव पर आगे विचार करने के लिए, यहां वापस आए है। इस पर एक लम्बा विवाद हो चुका है और हम इसे स्वीकार करने के निकट है। मै डा० जयकर और श्री सहाय का कृतज्ञ हूँ कि उन्होने अपने संशोधन वापस ले लिए है। डा० जयकर का उद्देश्य प्रस्ताव के स्थगित होने से पूरा हो गया था, और ऐसा जान पड़ता है कि अब इस

पित व्यक्तियो के वीच

दिल्ली में, भारत मे अमेरिकन राजदूत डा० हेनरी ग्रेडी व श्रीमती ग्रेडी को विदाई देते समय

गवर्नमेंट हाउस के स्टाफ द्वारा लार्ड माउन्टबेटन को दिये गये एक विदाई-भोज के सम

दिल्ली के निकट मेहरौली ईदगाह में
मुस्लिम बालिकाओं से बातें करते हुए

सभा मे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इस प्रस्ताव को, जिस रूप मे वह है, पूरा-पूरा स्वीकार नहीं करता हो। यह हो सकता है कि कुछ लोग यह पसंद करेंगे कि इसकी शब्दावली कुछ भिन्न होती, या इस अथवा उस अंश पर अधिक ज़ोर दिया गया होता। लेकिन समग्र रूप से लेते हुए, यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसने कि अभी ही इस सभा की पूरी स्वीकृति प्राप्त कर ली है, और इसमें कोई संदेह नही कि इसे देश की भी पूरी स्वीकृति प्राप्त है।

इसकी कुछ आलोचनाएँ हुई है, विशेषकर कुछ राजाओ की ओर से। उनकी एक आपत्ति यह थी कि रियासतो के प्रतिनिधियो की अनुपस्थिति में ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत नही होना चाहिए। कुछ अंश तक मैं इस आपत्ति से सहमत हूँ, अर्थात् मैं पसन्द करता कि जब कि हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते, सभी रियासतों का, सारे भारत का और भारत के सभी भागो का यहां उचित प्रतिनिधित्व हुआ होता। लेकिन यदि वह यहाँ उपस्थित नहीं हैं तो इसमें हमारा दोष नहीं है: यह अधिकांश में उस योजना का दोष है जिसके अन्तर्गत हम यहां काम कर रहे हैं, और हमारे सामने यह विकल्प है: क्या हम अपना काम इसलिए उठा रखें कि कुछ लोग यहा उपस्थित नही हो सकते? यह बड़ी भयावह बात होगी, यदि हम न केवल इस प्रस्ताव को, बल्कि संभवत: और बहुत सी बातों को केवल इसलिए रोक रखें कि रियासतो के प्रतिनिधि यहाँ नहीं हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, वह यहा शीघ्र से शीघ्र आ सकते है, और अगर वह रियासतो के अधिकारी प्रतिनिधि भेजते हैं तो हम उनका स्वागत करेंगे। इन छः सप्ताह या एक महीने के बीच हमने रियासती शासको की प्रतिनिधि समिति से, इस उद्देश्य से कि उनके उचित प्रतिनिधित्व का मार्ग निकल सके, सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। अगर देर हुई है तो इसमें हमारा दोष नहीं है। हम सभी को, चाहे वह मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि हो, चाहे रियासतों के, चाहे कोई और, यहाँ बुलाने के लिए उत्सुक हैं। हम इस उद्योग को जिसमें कि यह सभा देश की अधिक से अधिक प्रतिनिधि-सभा बन सके, जारी रखेंगे। अतएव हम इस प्रस्ताव को, या और किसी चीज़ को, इसलिए स्थगित नही कर सकते कि कुछ लोग यहा मौजूद नही हैं।

एक और बात उठाई गई है जनता की सर्वसत्ता का विचार, जो कि इस प्रस्ताव में समाविष्ट है, भारतीय रियासतों के कुछ शासको को नहीं भाता। यह एक अद्भुत आपत्ति है, और, अगर मैं कह सकता हूँ, कि यह आपत्ति यदि गम्भीरता-पूर्वक किसी के द्वारा उठाई जाय, वह व्यक्ति चाहे शासक हो या सचिव, तो यह भारतीय रियासती प्रथा को, जिस रूप में वह भारत में मौजूद है, निकम्मा ठहराने के लिए पर्याप्त है। किसी के लिए भी, वह चाहे कितना ही बडा व्यक्ति क्यो न हो, यह कहना कि वह विशेष ईश्वरी न्याय के कारण, यहाँ लोगो पर शासन करने के

लिए आया है, आज एक घोर निन्द्य वात होगी। अगर कोई ऐसा कहे तो यह उसकी असह्य धृष्टता होगी, और यह एक ऐसी वात है जिसे कि यह सभा कभी स्वीकार न करेगी, और अगर यह वात उसके सामने रक्खी गई तो वह उसका प्रतिवाद करेगी। हम, राजाओं के इस दिव्य अधिकार के विषय में वहुत कुछ सुन चुके हैं, पुराने इतिहासों में इसके विषय में हमने वहुत कुछ पढ़ रखा है और हमने समझा था कि अव इसके विषय में आगे कुछ और सुनने को नही मिलेगा, और यह समाप्त हो चुका और युगों पहले धरती की खूव गहराई में दफन किया जा चुका है। अगर भारत में या कही भी कोई व्यक्ति इसका आज दावा करता है, तो वह आज के भारत को विल्कुल नही जानता। इसलिए, इस तरह के लोगों को पूरी गम्भीरता से मै सुझाव दूँगा, कि यदि वह चाहते हैं कि उनका आदर हो और उनके साथ कुछ मैत्री का व्यवहार हो, तो इस तरह के विचार को कभी प्रकट करना तो अलग रहा, उसकी ओर संकेत भी न किया जाय। इस विषय पर कोई समझौता असंभव है।

लेकिन, जैसा कि पहली वार भापण देते हुए मैंने साफ-साफ कह दिया था, यह प्रस्ताव इस वात को स्पष्ट कर देता है कि हम रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करने नही जा रहे है। मैंने यहा तक कहा था कि यदि रियासतो की जनता यही चाहती है तो हम राजतन्त्र प्रथा तक में हस्तक्षेप करने नही जा रहे है। मैंने आयरिश गणराज्य का उदाहरण दिया था जो कि व्रिटिश कामनवेल्थ के अन्तर्गत है, और मै इसकी कल्पना कर सकता हूँ कि यदि जनता ऐसा चाहती है, तो भारतीय गणराज्य के अन्तर्गत राजतंत्र शासन भी हो। यह विल्कुल उसके निर्णय करने की वात है। यह प्रस्ताव, और अनुमानतः वह संविधान जो हम तैयार करने जा रहे है, इसमें हस्तक्षेप नही करेंगे। अनिवार्यतः यह आवश्यक होगा कि भारत के विविध भागो की स्वतंत्रता में समानता लाई जाय, क्योकि मेरे लिए यह कल्पनातीत है कि भारत के कुछ भागो को जनसत्तात्मक स्वतंत्रता प्राप्त हो और दूसरों को नही। यह नही हो सकता। इससे उपद्रव की आशंका है, ठीक उसी तरह जैसे कि आज संसार में उपद्रव मचा हुआ है, क्योकि कुछ देश स्वतंत्र है और कुछ नही। अगर भारत के कुछ हिस्सो में स्वतंत्रता हो और दूसरे हिस्सो में न हो, तो इससे भी अधिक उपद्रव का भय है।

लेकिन हम इस प्रस्ताव में, भारतीय रियासतो के शासन के सम्वन्ध में किसी वंधी हुई प्रथा का निर्देश नही कर रहे हैं। जो कुछ हम कहते है वह यह है कि वे, या उनमें जो इतनी वड़ी है कि संघों का निर्माण कर सकें या छोटे छोटे संघो में सम्मिलित हो सकें, ऐसी रियासतें स्वायत्त इकाइयां होंगी, और उन्हे काफी हद तक जैसा वह चाहें, करने की स्वतंत्रता होगी, शर्त यह है कि केन्द्रीय शासन के जो खास

कार्य निर्धारित हों उनमें इनका सहयोग होगा और इनका केन्द्र में प्रतिनिधित्व होगा, पर इस विषय में नियंत्रण केन्द्र के हाथ में होगा। इसलिए एक प्रकार से यह प्रस्ताव उन इकाइयो के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है। वह स्वायत्त होगी, और जैसा मैंने कहा है, यदि वह चाहेगी कि उनके यहाँ किसी प्रकार का वैधानिक राजतंत्र हो तो ऐसा करने के लिए वह स्वतंत्र होंगी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं भारत में बल्कि सर्वत्र गणराज्य के पक्ष में हूँ। लेकिन मेरे विचार इस विषय पर जो भी हो, मैं दूसरो पर अपनी इच्छा लादना नही चाहता। मैं ख्याल करता हूँ कि इस विषय में सभा के चाहे जो भी विचार हों, पर उसकी यह इच्छा नही कि इन मामलो में अपने विचार वह किसी पर लादे।

इसलिए इस प्रस्ताव पर भारतीय रियासत के शासको द्वारा की गई आपत्ति, जनता में निहित पूर्णसत्ता के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आशयो के विरुद्ध एक सैद्धान्तिक आपत्ति के रूप में रह जाती है। और किसी वात पर किसी को आपत्ति नही है। यह ऐसी आपत्ति है जो एक क्षण भी टिक नही सकती। हम इस प्रस्ताव में पूर्णसत्तात्मक स्वतंत्र भारतीय गणराज्य का—अनिवार्यत. गणराज्य का सविधान निर्माण करने के अधिकार का दावा करते हैं। भारत में इसके अतिरिक्त हो भी क्या सकता है? इस राज्य में और चाहे जो हो, चाहे न हो, यह असम्भव और कल्पना से परे और अवांछनीय है कि हम भारत में गणराज्य के अतिरिक्त दूसरी प्रथा का विचार करें।

अव, इस गणराज्य का संसार के और देशो से, इंग्लिस्तान से, ब्रिटिश कामनवेल्थ से और औरो से कैसा सम्बन्ध रहेगा? वहुत समय से हम स्वतत्रता दिवस पर यह शपथ लेते आए है कि भारत को ग्रेट ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा, क्योकि यह सम्वन्व ब्रिटिश आधिपत्य का एक प्रतीक वन गया है। हमने यह कभी विचार नही किया है कि हम संसार के इस भाग में और देशो से अपने को जुदा करके, या जिन देशो का हम पर आधिपत्य रहा है, उनसे विरोध ठान कर रहेंगे। इस महान अवसर पर, जब कि हम स्वतंत्रता की देहरी पर खड़े हैं, हम अपने साथ किसी देश के प्रति विरोध का पुछल्ला नही लगाना चाहते। हम सवके प्रति मैत्री का भाव रखना चाहते है। हम ब्रिटिश जनता से और ब्रिटिश कामनवेल्थ से मित्रता रखना चाहते हैं।

लेकिन मैं चाहूँगा कि जिस वात पर यह सभा विचार करे, वह यह है: जव कि इन शव्दो और इन लेवुलो के अर्थ में तेजी से परिवर्तन हो रहा है—और आज दुनिया में कोई राष्ट्र अलग-थलग नही—तो आप दूसरो से अलग होकर नही रह सकते। या तो आपको सहयोग करना पड़ेगा, या आपको लड़ना पड़ेगा। कोई वीच

का रास्ता नही है। हम शान्ति चाहते है। जहां तक हो सके हम किसी राष्ट्र से लड़ाई नहीं करना चाहते। और राष्ट्रों के साथ मिल कर हमारा एकमात्र संभावित वास्तविक ध्येय जो हो सकता है वह किसी सहयोगपूर्ण- लोकव्यापी ढाचे का निर्माण करना है—उसे 'एक संसार' कह लीजिए, जो भी कह लीजिए। इस लोकव्यापी ढांचे का आरम्भ संयुक्त राष्ट्रो के संगठन द्वारा हो चुका है। उसमें त्रुटियां भले ही हों, फिर भी वह लोकव्यापी ढांचे का प्रारम्भ है और भारत ने उसके कार्य मे सहयोग करने की प्रतिज्ञा की है।

अब, अगर हम उस ढांचे का और उसे कार्यान्वित करने के उद्देश्य से दूसरे देशों के साथ अपने सहयोग का विचार करें, तो राष्ट्रों के इस दल से या उस दल से मिल जाने का प्रश्न ही कहां उठता है? वास्तव में जितने अधिक दल या गुट्ट वनते हैं, यह ढांचा उतना ही निर्वल हो जायगा।

इसलिए इस बड़े संगठन को सुदृढ करने के लिए, सभी देशो के लिए यह वांछनीय होगा कि वे अलग-अलग दलो और गुट्टो के निर्माण पर जोर न दे। मैं जानता हूँ कि आज इस तरह के अलग-अलग दल या गुट्ट है, और चूंकि आज उनका अस्तित्व है इसलिए उनमें आपस मे विरोध है, और उनके वीच लड़ाई की चर्चा भी है। मै नही जानता कि भविष्य मे क्या होगा, युद्ध होगा या शान्ति रहेगी! हम एक चट्टान की छोर पर खड़े है, और एक ओर ऐसी विविध शक्तियां है जो कि हमे शान्ति और सहयोग की ओर खींच रही है, दूसरी ओर ऐसी विरोधी शक्तियां है है जो युद्ध और विनाश के गड्ढे में ढकेल रही है। मै ऐसा भविष्य वक्ता नही कि वता सकू कि क्या होगा, लेकिन यह मै जानता हूँ कि जो लोग शान्ति के इच्छुक है, उन्हे इन अलग-अलग गुट्टो का प्रतिवाद करना चाहिए, क्योकि यह, हो न हो, एक दूसरे के विरोधी बन जाते है। इसलिए, जहां तक भारत की विदेशी नीति का प्रश्न है, उसने यह घोषित कर दिया है कि वह इन गुट्टो से स्वतंत्र और मुक्त रहना चाहता है, और वह वरावरी के दर्जे पर सभी देशो से सहयोग करना चाहता है। यह एक कठिन स्थिति है, क्योकि जब लोगो के मन मे एक-दूसरे का भय समाया हुआ हो, तो जो व्यक्ति तटस्थ रहता है, उसके विषय मे यह संदेह किया जाता है कि वह दूसरे पक्ष से सहानुभूति रखता है। हम इस वात को भारत मे देख सकते है और इसे हम संसार की राजनीति के विस्तृततर क्षेत्र मे देख सकते है। हाल में, अमेरिका के एक राजनीतिज्ञ ने भारत की आलोचना ऐसे शब्दो मे की, जिनसे पता चलता है कि अमरीकी राजनीतिज्ञ भी भारत के विषय में कितना कम ज्ञान और कितनी कम समझ-बूझ रखते है। चूकि हम एक नीति का अनुसरण करते है, राष्ट्रो का यह वर्ग समझता है कि हम राष्ट्रो के दूसरे वर्ग का पक्ष ले रहे है, और दूसरा वर्ग समझता है कि हम इस वर्ग का पक्ष ले रहे है। यह होगा ही। अगर

हम स्वतंत्र आज़ाद, जनसत्तात्मक गणराज्य बनाना चाहते हैं तो इसलिए नहीं कि और देशों से अलग हो जायें, बल्कि इसलिए कि स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में दूसरे देशों के साथ शान्ति और स्वतंत्रता के लिए पूर्ण रूप से सहयोग कर सकें, ब्रिटेन और ब्रिटिश कामनवेल्थ के देशों के साथ, संयुक्त राज्य अमरीका के साथ, सोवियत संघ के साथ और अन्य छोटे-बड़े देशों के साथ सहयोग कर सकें। लेकिन हमारे और इन राष्ट्रों के बीच सच्चा सहयोग तभी हो सकता है जब हम जानते हो कि हम सहयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं, और हम पर कोई अपने विचार लादता नहीं या हमें सहयोग के लिए मजबूर नहीं करता। जब तक कि दबाव का लेशमात्र भी है, किसी प्रकार का सहयोग असंभव है।

इसलिए, मैं इस प्रस्ताव की सिफारिश न केवल इस सभा से बल्कि सारे संसार से करता हूँ, जिसमें कि यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाय कि यह सभी के प्रति मैत्री का एक संकेत है, और इसके पीछे विरोध की कोई भावना नहीं है। अब तक हमने बहुत कष्ट उठाये हैं। हमने अनेक संघर्ष किये और शायद आगे भी करने पड़ें, लेकिन एक अत्यन्त महान व्यक्ति के नेतृत्व में हमने दूसरो के प्रति, उनके प्रति भी जिन्होंने हमारा विरोध किया, मैत्रीभाव से और सत्कामना के साथ विचार करने का प्रयत्न किया है। यह हम नही कह सकते, कि हम कहां तक सफल हुए हैं, क्योंकि हम लोग दुर्बल मानव है। फिर भी, उस संदेश की छाप इस देश के करोड़ो लोगों के हृदयो पर सजीव है, और हम गलती करें और भटक भले ही जायं, पर हम उसे भुला नही सकते। हममें से कुछ छोटे आदमी हो सकते है, कुछ बड़े आदमी हो सकते है, लेकिन चाहे हम छोटे हों चाहे बड़े, इस समय एक बड़े उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते है और इसलिए बड़प्पन की कुछ छाया हम पर भी पड़ती है। आज इस सभा में हम एक महान उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते है, और यह प्रस्ताव जो मै आपके सामने रख रहा हूँ, उस उद्देश्य का कुछ स्वरूप आपके समक्ष रखता है। हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे, और मै आशा करता हूँ कि इस प्रस्ताव द्वारा हम इसमें बनाए हुए ढंग का एक संविधान तैयार कर सकेंगे। मै आशा करता हूँ कि फिर यह प्रस्ताव स्वयं हमें स्वतंत्रता तक पहुँचाएगा और हमारी भूखी जनता को अन्न प्रदान करेगा और उनके लिए वस्त्र तथा रहने के लिए घर जुटाएगा और सभी प्रकार की उन्नति के लिए अवसर देगा, और यह कि एशिया के दूसरे देशों की स्वतत्रता का कारण बनेगा, क्योंकि हम चाहे जितने अयोग्य हों—हमें मान लेना होगा कि एक अर्थ में, हम एशिया में स्वतत्रता के आन्दोलन के नेता बन गए हैं, और हम जो भी करें, हमें इस विस्तृत दृष्टिकोण से करना चाहिए। जब कि किसी छोटी बात पर हम में मतभेद हो और कठिनाइयां हों या छोटे-छोटे मामलो पर आपस में संघर्ष उत्पन्न हो तो हमें न केवल इस प्रस्ताव को स्मरण रखना चाहिए, बल्कि उस बड़ी जिम्मेदारी को भी, जो हमारे कन्धो पर है भारत की ४० करोड़

जनता की स्वतंत्रता की जिम्मेदारी, एशिया के एक वडे हिस्से के नेतृत्व की जिम्मेदारी और किसी न किसी रूप मे सारे संसार के वहुत से लोगो के पथप्रदर्शन की जिम्मेदारी। यह एक महान उत्तरदायित्व है। यदि हम इसका ध्यान रखें तो शायद हम इस जगह या उस पद के लिए, और इस वर्ग या उस वर्ग के थोड़े नफे के लिए, झगड़ा न करें। एक वात जो हम सवको स्पष्ट रूप से समझनी चाहिए वह यह है कि अगर भारत समृद्ध नही होता तो यहां का कोई वर्ग, कोई दल, कोई धार्मिक सम्प्रदाय उन्नति नही कर सकेगा। भारत गिरता है तो उसके साथ हम सव गिरते हैं, हमारे पास चाहे कुछ कम चाहे अधिक जगहे हो, और हमें चाहे कुछ अधिक सुविधा प्राप्त हो या न हो, लेकिन अगर भारत का कल्याण होता है, अगर भारत एक सप्राण, स्वतंत्र देश के रूप में जीवित रहता है, तो हमारा, हम सवका कल्याण है, चाहे हम जिस सम्प्रदाय या धर्म के क्यों न हों।

हम मंविधान का निर्माण करेंगे, और मै आशा करता हूँ कि यह एक अच्छा सविधान होगा, लेकिन क्या कोई व्यक्ति जो इस सभा में है यह कल्पना करता है कि जव एक स्वतत्र भारत का प्रादुर्भाव होगा तो वह इस सभा द्वारा भी स्वीकृत किसी वस्तु से वँधा हुआ होगा? स्वतंत्र भारत एक वलशाली राष्ट्र की शक्ति का प्रस्फुटन देखेगा। वह क्या करेगा या न करेगा, यह मैं नही जानता, लेकिन इतना मै अवश्य जानता हूँ कि वह किसी चीज से बंध जाना स्वीकार न करेगा। कुछ लोगो की कल्पना है कि हम जो करेंगे उसमें १० या २० वर्षों तक कोई हेर-फेर न हो सकेगा, अगर हम कोई वात आज नही कर लेते तो हम उसे आगे न कर सकेंगे। यह मुझे एक नितान्त भूल जान पडती है। मै इस सभा के सामने यह नही कह रहा हूँ कि मै क्या किया जाना पसंद करता हूँ या क्या नही किया जाना, लेकिन मै चाहूँगा कि यह सभा विचार करे कि हम क्रान्तिकारी परिवर्तनो के ठीक सन्निकट है, जो कि हर एक मानी में क्रान्तिकारी होंगे, क्योकि जव किसी राष्ट्र की आत्मा अपने बंधन तोड़ती है, तो वह विचित्र रूप में कार्य करती है, और उसे विचित्र ढंग से काम करना ही पड़ता है। हो सकता है कि जिस संविधान को यह सभा स्वीकार करती है उससे स्वतंत्र भारत को संतोष न हो। यह सभा अगली पीढ़ी को, या उन्हें, जो नियमित रूप से हमारे वाद आवेंगे, वांध नहीं सकती। इसलिए हम क्या करते हैं उसकी छोटी छोटी विस्तार की वातों में उलझने की आवश्यकता नही। अगर हमने उनको संघर्ष से प्राप्त किया है तो यह विस्तार की वातें अधिक समय तक टिक न सकेंगी। हम लोग जो भी सर्वसम्मति से और सहयोगपूर्ण ढंग से निर्णय करेंगे उसके टिकने की संभावना है। जहां-तहां संघर्ष के वाद, या जिद करके या धमकी देकर हम जो लाभ उठावेंगे वह अधिक समय तक टिक न सकेगा। वह केवल एक कटु स्मृति छोड़ जायगा। अतएव अव मै इस प्रस्ताव की इस सभा से सिफा-रिश करता हूँ, और ऐसा करते हुए क्या मै इस प्रस्ताव का अन्तिम पैराग्राफ पढ़

दूँ ? लेकिन, महोदय, ऐसा करने से पूर्व एक शब्द और कहूँगा ।

भारत एक बड़ा देश है, वह अपने साधनों की दृष्टि से बड़ा है, अपनी जन-शक्ति की दृष्टि से बड़ा है, अपने प्रच्छन्न साधनों की दृष्टि से बड़ा है, अर्थात् सब तरह से बड़ा है । मुझे बिल्कुल संदेह नही कि स्वतंत्र भारत प्रत्येक क्षेत्र में, भौतिक शक्ति के संकीर्णतम क्षेत्र में भी, संसार के रंगमंच पर एक महान कार्य कर दिखावेगा, और मैं चाहूँगा कि इस क्षेत्र में वह एक बड़ा हिस्सा ले । फिर भी, आज संसार में भिन्न भिन्न क्षेत्रो में शक्तियो के बीच आपस में संघर्ष है । हम अणुबम और अणु-शक्ति द्वारा प्रजनित उसके अनेक रूपों के विषय में बहुत सुनते हैं, और मूलतः आज संसार में दो वस्तुओ के बीच सघर्ष है, एक ओर तो अणु बम है और वह सब चीजें हैं जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है, जबकि दूसरी ओर मानवता की भावना है । मैं आशा करता हूँ कि जहां भारत निस्संदेह भौतिक क्षेत्रो में बड़े काम कर दिखाएगा, वहां वह मानवता की भावना पर सदा जोर देगा, और इस बात में मुझे बिल्कुल सदेह नही कि अन्त में इस संघर्ष में जो कि ससार के सामने है, मनुष्य की आत्मा अणु बम के ऊपर विजय पाएगी । यह प्रस्ताव फलीभूत हो, और ऐसा समय आवे, जबकि इस प्रस्ताव के शब्दो में, यह प्राचीन देश ससार में अपना उचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करे और लोकव्यापी शान्ति और मानव-कल्याण की वृद्धि में अपना पूरा और स्वेच्छापूर्ण सहयोग प्रदान कर सके ।
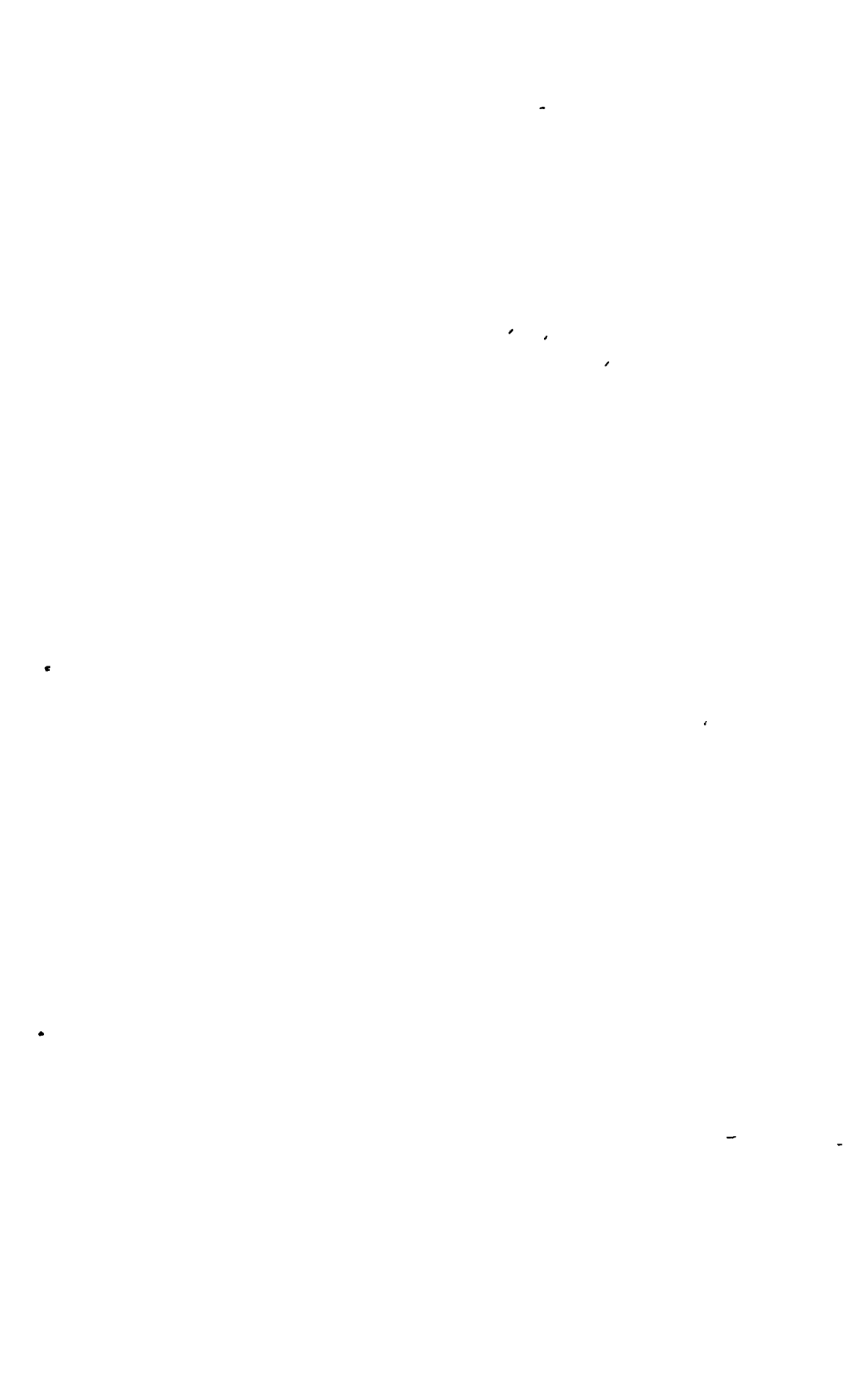
रक्षा सम्बन्धी सेवाओं के प्रति

स्वतंत्र भारत के सैनिको ! जयहिन्द ! कुछ महीने हुए, मैंने सेनापति से कहा था कि भारत की सशस्त्र सेनाओ के अफसरो और जवानों से जितनी बार संभव हो मिलने की, उनकी इकाइयो को, उनके काम और खेल-कूद को देखने की और खासकर उनसे बात करने की मेरी इच्छा है। मैं आपसे परिचित होना और बात-चीत करना चाहता था, क्योंकि यह बहुत जरूरी है कि हम एक दूसरे को समझें। एक स्वतत्र देश में यह बहुत आवश्यक है कि अधिकारीगण, जो कि जनता के प्रतिनिधि हैं, सशस्त्र सेनाओ के लोगो के विचारो को जानें। साधारण जनता और सशस्त्र सेनाओ के बीच कोई दूरी नही होनी चाहिए, सब एक ही है, क्योकि जनता के बीच से ही तो नए सैनिक भरती किए जाते हैं। सेना का कुछ अलग ही अस्तित्व है, इस पुराने विचार का अब महत्त्व नही रहा। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम लोग एक दूसरे को समझें। लेकिन काम की अधिकता के कारण और उन बहुत-सी सजीव समस्याओ के कारण जिनकी ओर तत्काल ध्यान देना जरूरी है, मैं आप लोगो में से अधिकाश से मिल नही सका, अगर्चे कुछ से मिलने और बात करने का मुझे अवसर मिला है। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि रेडियो द्वारा आज शाम को आप लोगो से दो बातें करूँ।

हमारा देश स्वतत्र हो गया है। स्वतंत्रता का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि बिना बाहरी हस्तक्षेप के हमें अब अपना काम करने की आज़ादी है। इसका यह अर्थ नही कि प्रत्येक व्यक्ति मनमानी करने के लिए आजाद है, क्योंकि ऐसी मनमानी से अव्यवस्था उत्पन्न हो जायगी। अगर हर एक आदमी कानून अपने हाथ में ले ले, तो यह तो जंगल का कानून हुआ। इस तरह की आज़ादी सभ्य लोगो को शोभा नही देती।

१७१३

हमारा देश एक प्राचीन देश है, जिसकी सभ्यता हजारो वर्ष पुरानी है। हमारी नव-जात स्वतत्रता ने हम पर बड़ी जिम्मेदारियां डाल दी है। अगर कोई बात बिगड़ती है तो इसके लिये हम ही दोषी होंगे, हम दूसरों को दोष नही दे सकते। अच्छा काम करते है तो हम उसका लाभ उठायेंगे, बुरा काम करते है तो हमें उसके लिए भुगतना पड़ेगा। इसलिए, सशस्त्र सेना के जवानो, आप लोगो को विशेष

नए सैनिक कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए, नई दिल्ली से, आल इण्डिया रेडियो द्वारा प्रसारित, १ दिसम्बर, १९४७ को, सशस्त्र सेनाओ के प्रति दिया गया भाषण।

रूप से इन जिम्मेदारियो का अनुभव करना का चाहिए। अपने देश की और अपने देशवासियों की सेवा करना आपका कर्तव्य है।

लोग मुझे भारत का प्रधानमंत्री कहते है, लेकिन यह अधिक उपयुक्त हो अगर मैं भारत का प्रथम सेवक कहलाऊँ। इस युग में उपाधियो और पदो का मूल्य नही, केवल सेवा का मूल्य है। खास कर आपको सेवा करने का महान् अवसर प्राप्त है, क्योकि आपके हाथ में राज्य की सशस्त्र शक्ति है। आप को ऐसी सावधानी बरतनी चाहिए कि इसका दुरुपयोग न होने पाये।

आप जानते है कि हमारी सेना कश्मीर में उन लोगों को, जिन्होने कि उस रियासत पर आक्रमण किया है, मार भगाने में लगी हुई है। हमारे सैनिक वहाँ क्यो गए? हम दूसरे देशों पर आक्रमण करना और लोगो को गुलाम बनाना नही चाहते। जिस तरह अपने देश के लिए हम स्वतंत्रता चाहते थे, उसी तरह दूसरे देशों के लिए, खास तौर पर एशिया के देशों के लिए स्वतंत्रता चाहते हैं। कश्मीर तो, बेशक, इसी देश का एक हिस्सा है। हमारी सेना वहाँ पर किसी को सताने या विजय के उद्देश्य से नही गई। वह वहां इसलिए गई कि कश्मीर के लोगो पर संकट आया था, और आक्रमणकारियों द्वारा उनकी भूमि का विध्वंस किया जा रहा था। वहां के लोगों ने हमारी सहायता मागी। इसलिए वहां जाना और उनकी सहायता करना हमारा कर्तव्य हो गया। हमने अपने सैनिकों को भेजा, जिन्होंने अपना काम तेज़ी से और साहस के साथ किया। बहुत कुछ काम हो चुका है, लेकिन और भी कठिन काम आगे करने को है, और मुझे विश्वास है कि वह पूरा होगा।

मै वहां गया और अपने जवानो से मैंने बात की। मैंने उनसे कहा कि वे वहां पर कश्मीर के लोगो के मेहमान और दोस्त और सेवको के रूप में है, और भारत की नेकनामी उनके कार्यों पर निर्भर है। यदि कश्मीर में हमारे आदमियो ने कोई बे-समझी का काम किया तो उससे भारत की बदनामी होगी। मुझे इस बात की खुशी है कि वहां पर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उन्होने कश्मीर के लोगो के साथ अच्छे संबन्ध स्थापित कर लिए है। हमें अपने को यह बराबर याद दिलाते रहना चाहिए कि हमारा धर्म या मत चाहे जो भी हो, हम सब एक ही है।

मुझे खेद है कि हाल के उपद्रवो के कारण हमारी बदनामी हुई है। बहुत से लोग इस उपद्रव में शरीक हो गए है। यह नागरिकता नही है। नागरिकता तो इसमें है कि देश की सेवा की जाय। अगर जल-सेना, थल-सेना और हवाई-सेना के आप लोग अपने देशवासियों की, वर्ग या धर्म का विचार किए बिना, सेवा करेंगे तो आप अपने और अपने देश के लिए सम्मान प्राप्त करेंगे। जयहिन्द!

एक जलयान का जलावतरण

इस जलयान को, उसकी पहली यात्रा के लिए जल पर उतारते हुए हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार उठते है, विशेषकर ऐसे अवसर पर जबकि इतने बड़े आकार का पहला भारतीय जलपोत सदियो वाद वना हो और पानी में उतारा गया हो। अनिवार्यतः ध्यान उन युगो पर जाता है, जब कि जहाज वनाना भारत का प्रमुख उद्योग था। हम पुराने और मध्य युगो की सराहना करते है, जबकि हमारे देश की भलाई का बहुत काम किया गया और कुछ बुराई भी हुई, और ये सब काम अब इतिहास का अंग वन चुके है। ऐसा करते समय कुछ तो जहाज वनाने के उद्योग का और अधिकतर स्वय देश के लाभ का ध्यान आता है। जहाज के जल पर उतारने के साथ एक दृष्टान्त मन में उठता है, अर्थात् राज्य रूपी जहाज का, जिसने कुछ ही मास पूर्व अपनी यात्रा आरम्भ की और जिसे वड़े तूफानी मौसम का सामना करना पडा है। हम जीवित रहे और तूफान को पार कर रहे है, लेकिन भारत में हमें बहुत-से तूफानो का सामना करना है। वास्तव में सारे संसार में और बहुत-से तूफान चल रहे है और बहुत-से आगे आने वाले है। लेकिन मेरा ख्याल है कि हमने यह दिखा दिया है कि हम काफी मजबूत है और तूफानो का मुकावला करने के लिए दृढ निश्चय है।

भारत एक पुराना देश है। मैंने भारत की कल्पना सदा पर्वतो और समुद्रो की संतान के रूप में की है। एक ओर से हिमालय और दूसरी ओर से भारतीय समुद्र उसे गले लगाए हुए है। इसलिए मैंने सदा भारत का ख्याल शेष दुनिया से अलग-थलग एक देश के रूप में नही बल्कि एक ऐसे देश के रूप में किया है, जो ससार के और देशो से निकटतम और विस्तृततम व्यवहार के लिए वडा ही उपयुक्त है। दुर्भाग्य से हाल के वर्षों में—२०० वर्षों में, विशेपकर पिछले १५० वर्षो में—पर्वत और समुद्र दोनो ही ने इसे जुदा-सा कर दिया है। ससार के पश्चिमी देशो से, विशेपकर इग्लिस्तान से हमारे सभी सपर्क समुद्र के मार्ग से रहे है। लेकिन

विजगापट्टम् मद्रास में 'जल-उपा' नामक जहाज के, जो कि भारत में बना पहला समुद्र-यात्रा योग्य स्टीमर है, जल पर उतारने के अवसर पर, १४ मार्च, १९४८ को दिया गया भाषण।

और देशों से यथा मध्य एशिया के पर्वती प्रदेशों से और पूर्वी तथा पश्चिमी एशिया से हमारे सम्पर्क प्रायः समाप्त हो गए थे। भारतीय इतिहास बताता है कि समुद्रो और पर्वतों को पार करके हम साहसिक यात्राओ पर जाते थे और उन दिनों हमारा अलग अस्तित्व न था। हम आगे देखते थे, और समुद्र के पार जाते थे, और अपनी वीरता और सस्कृति को लेकर दूर देशो मे पहुँचते थे।

उन दिनो विचारो की सकीर्णता कही सुनी नही जाती थी। लेकिन समय वीतने पर हम में धर्म के नाम पर सकीर्णता विकसित हो गई। पर वह धर्म कैसा जो आदमी को आदमी से मिलने से रोके? धर्म के नाम पर समुद्र-यात्रा करना पाप कहा गया। यह कैसा धर्म है जो आदमी को अपनी मा के पास जाने से और अपनी मा पर भरोसा रखने से, रोकता है। आदमी यदि अपनी मां, वाप, भाई पर विश्वास न करे तो कैसे जिन्दा रहे और कैसे तरक्की करे? धर्म और दृष्टिकोण की यह सकीर्णता वहुत हो ली। हम समुद्र से, अपनी मां से, भय खाते हैं? अगर हम अपनी मां से डरने लगे और उस पर भरोसा न करें तो हम खतरे के समय मे फिर कहां चैन पायेंगे और कहा आराम करेंगे? अव हमे फिर समुद्र मे जाना चाहिए, जो कि हमारी मा है, और निर्भय होकर अपने जहाजो को उसके वक्षस्थल पर भेजना चाहिए। इस समुद्र को भविष्य में हमारे लिए एक प्रतीक वन जाने दीजिए। आइए, हम राज्य के जहाज को, अर्थात् भारत को, हिम्मत के साथ समुद्र में उतारे, और इस तरह न केवल भारत का विकास करे, वल्कि उसकी प्रतिष्ठा को वढायें और दूसरे राष्ट्रो से सहयोग करें और भविष्य मे सुदृढ हृदय के साथ अधिकाधिक साहस के कार्य करे।

भविष्य में अलग रहने के मानी होंगे मृत्यु और देश की वरवादी। हर एक वड़े देश के लिए, वह चाहे जितना वड़ा हो, अलग रहने के मानी हैं वाकी दुनिया से हट कर रहना। इसके मानी हैं संसार की उन्नति मे पिछड़ जाना। हम दूसरे देशो के जीवन मे हस्तक्षेप करने को उत्सुक नही है क्योंकि हम दूसरो पर आधिपत्य नही करना चाहते। हम अन्य देशो की मित्रता और सहयोग प्राप्त करने के इच्छुक हैं। पर साथ ही हम वाहरी हस्तक्षेप को सहन भी नही करेंगे। मैंने इस जहाज को इस भावना से पानी पर उतारा है, कि आप साहस की भावना से अपने व्यापारिक और समुद्री उद्योग को चलाएँ।

विजगापट्टम के इस वन्दरगाह मे, हम न केवल जहाज वनाने के उद्योग का विकास कर रहे है, वल्कि यह एक महत्त्वपूर्ण जहाजी अड्डा भी है। भारत के पूर्वी समुद्र-तट का यह सवसे महत्त्वपूर्ण वन्दरगाह है, और मै चाहता हूँ कि इस जहाजी अड्डे की तरक्की हो और हमारे नवयुवक, होनहार नवयुवक, नौ सेना मे भरती हो। अगर मैं नौजवान होता तो मै स्वय भी नौ-विभाग में भरती होना पसन्द करता।

मगर जहाजरानी से अधिक मेरी दिलचस्पी किसी और में है तो वह है हवाई मार्गो का विकास। लेकिन दुर्भाग्य से जीवन ने मेरे साथ बुरा खेल खेला है और मुझे दफ्तर में मेज पर बैठ कर काम करना पड़ता है, जिसे कि मैं बहुत ही नापसन्द करता हूँ। मुझे बताया गया है कि उड़ीसा के मछुए नौ-विभाग में भरती होना चाहते है। मैं इन प्रार्थनापत्रों का स्वागत करता हूँ, लेकिन इसके पहले कि वे भरती हो सकें, उन्हें कुछ आवश्यक योग्यता प्राप्त करनी होगी। अतएव हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन्हें इस आवश्यक योग्यता को प्राप्त करने की सुविधाएँ दें।

सभापति महोदय, आपके भाषण में एक अजीव और कुछ हैरत में डालने वाले वाक्यांश का प्रयोग हुआ है, वह सरकार और उद्योग के बीच मेल-जोल के सम्बन्धो के विषय में है। क्या उद्योग शासन का प्रतिस्पर्द्धी है? सरकार उद्योग की सब तरह से सहायता करेगी। अगर उद्योग ठीक-ठीक प्रगति नही करता तो सरकार हस्तक्षेप करेगी और उद्योग को अपने हाथ में ले लेगी। अगर उद्योग ने सन्तोषजनक ढग से काम न किया तो वह सौ फीसदी सरकारी नियन्त्रण में ले लिया जायगा। जहाज के धंधे में रुकावट नही पड़नी चाहिए, उसे हर तरह से और सभी तरह से चलाया जायगा। किस तरह वह चल रहा है यह दूसरी बात है। आप विश्वास रखे सरकार को उसे प्रोत्साहन देने में बहुत ही दिलचस्पी है। सिंधिया कंपनी ने जो अब तक साहसपूर्ण उद्योग किया है, उसके लिए हम कृतज्ञ है। उद्योग को सदा प्रोत्साहन मिलेगा। इसने विदेशी निहित स्वार्थों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध किया है। इन महत्त्वपूर्ण उद्योग को अनिवार्य रूप से अधिकाधिक सरकारी नियंत्रण में आना चाहिए। आखिर, जहाजो के निर्माण में लगे लोगोंकी—आपके दफ्तर के चोटी के आदमियो से लेकर उन श्रमिको तक की जो कि वस्तुत. निर्माण कार्य करते है— स्थिति में इससे कोई अन्तर नहीं आता। जो भी हो, मैं भरोसा दिलाता हूँ, कि यंत्र-विभाग और प्रवन्ध-विभाग के कार्यकर्ताओं में कोई परिवर्तन न होगा। वे ज्यो-के-त्यो बने रहेगे। केवल सर्वोच्च स्तर पर नीति सम्बन्धी तथा नफे से सम्बन्ध रखने वाले कुछ परिवर्तन हो जायेंगे। मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आपके जहाज के कारखाने में मालिको और कार्यकर्ताओ के बीच सद्भावना और दोस्ती के भाव वर्तमान है, और आप उस औद्योगिक विराम-संधि के सिद्धान्त का जो कि कुछ समय पहले निर्द्धारित हुआ था, अनुसरण कर रहे है। मैं समझता हूँ आज उन सबसे महत्त्वपूर्ण बातों में जिनका कि हमें अनुभव होना चाहिए, एक यह है कि औद्योगिक झगड़े हमेशा राष्ट्र को हानि पहुँचाते है और उसे कमजोर बनाते है, लेकिन विशेषकर आज, जबकि हमने अपने राज्य के जहाज को अभी-अभी समुद्र में उतारा है, अगर जहाज के नाविक असहयोग आरम्भ कर दें तो जहाज अपनी यात्रा का आरम्भ कैसे करेगा ?

मेरी धारणा है कि मद्रास के अहाते में स्थिति ठीक नहीं है। निश्चय ही, मैं यहां की नहीं, बल्कि और जगहों की बात कर रहा हूँ। इस अशान्ति की

बुराई-भलाई पर प्रकाश डाले बिना मै आप से यह कहना चाहता हूँ कि इस तरह की बात सहन न की जायगी । यह मद्रास सरकार का और भारत सरकार का काम होगा, कि जहां तक उनका सम्बन्ध है, वह इस उपद्रव को रोकें । मै दूर से इसे देखता रहा हूँ और मुझे पता लगा है कि कुछ हड़तालें केवल हड़ताल करने के उद्देश्य से की गई है, और उनसे श्रमिको का कुछ भी भला नही हुआ है । इस तरह की हड़ताले जो केवल हड़ताल करने के उद्देश्य से की जाती है और जिनसे किसी का भी भला नही होता, सहन नही की जा सकती । हिंसा की एक भावना चारो ओर फैली हुई है । इसे भी सहन नही किया जा सकता । हमारा देश एक जन-सत्तावादी देश है, और हम हर एक वर्ग के लोगों को मत प्रगट करने की, कार्य करने की और विचार प्रकट करने की अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता देना चाहते है, हम चाहे उससे असहमत ही क्यो न हो । स्वतंत्रता का अर्थ यह नही कि हिंसा या उसके लिए उत्तेजना फैलाई जाय । अगर हिंसा को उकसाया जाता है, जैसा कि इस अहाते मे हुआ है, तो ऐसा करने वाले के साथ दृढता से पेश आया जायगा । हम नाजुक समय में से गुज़र रहे है, वह समय न केवल इस देश में बल्कि सारे संसार में आया हुआ है । कोई नही कह सकता कि कल क्या होगा । कभी-कभी, जहां भी आवश्यक हुआ, झट कार्यवाही करनी पड़ेगी, जिससे कि राज्य रूपी जहाज, चाहे समुद्र में तूफान आया हो, चलता रहे । सारे संसार में स्थिति अधिकाधिक संकटमय होती जा रही है । इसलिए हमें अपने को संसार की कठिनाइयो और समस्याओ में न उलझा लेना चाहिए । पर हम उनसे बच भी नही सकते । हमें वस्तुओं को उचित दृष्टि-परम्परा में देखना होगा।

हमें देश में शान्ति-स्थापना के प्रश्न को कार्यसाधक दृष्टि से देखना होगा । अगर हम संयमित जीवन व्यतीत करते है और अपनी समस्याओ को हल करते है, चाहे वे समस्याएँ औद्योगिक हो चाहे भिन्न, तो मै आशा करता हूँ कि हमारे देश का उद्योग समृद्धिशाली होगा । उद्योग को आखिरकार अपनी समस्याओं को निश्चय ही सरकार की सहायता से खोजना और हल करना पड़ेगा । मै आशा करता हूँ कि श्रमिक भी यह अनुभव करेंगे कि वर्तमान समय हड़ताल करने के लिये तनिक भी उपयुक्त नही है । सामने बहुत-सी भयावह बातें और खतरे है । हड़ताल का अस्त्र एक मूल्यवान् और उपयोगी अस्त्र है, और इसका ऐसे-वैसे उपयोग नहीं होना चाहिए । अगर हम चाहते है कि राष्ट्र के रूप में हम उन्नति करें तो औद्योगिक सम्बन्धों के अनुशासन के लिए हमें हड़ताल के बजाय दूसरे उचित और स्वस्थ ढंग और तरीके ढूंढ़ निकालने होगे । कोई भी प्रथा, जिसमें कि समय-समय पर झगड़े होते रहे, स्वस्थ और उचित नहीं है । अतएव अब मै आपको इस उद्योग के लिये फिर बधाई देता हूँ । मेरी यह कामना है कि यह जहाज, जिसका हमने जलावतरण किया है, और भी बड़े-छोटे जहाजों का पूर्ववर्ती हो, और यह भारत के संदेश को संसार के कोने-कोने में पहुँचाये ।

माउन्टबेटन परिवार के प्रति

महिलाओ और सज्जनो ! लगभग पन्द्रह महीने हुए जब कि हम में से कुछ पालम के हवाई अड्डे पर नए वाइसराय और उनकी पत्नी का स्वागत करने गए थे। हम में से कुछ कल सवेरे फिर पालम हवाई अड्डे पर उन्हें विदा देने जायेंगे। यह पन्द्रह महीने, का समय एक लम्बा समय जान पड़ता है, फिर भी ऐसा लगता है कि मानो कल ही लार्ड और लेडी माउन्टबैटन और पमेला माउन्टबैटन यहाँ आए हो। पर वास्तकिता यह है कि इन पन्द्रह महीनो में हमें संवेदना, सुख और दुख के इतने अनुभव हुए है कि यदि उन्हें इकट्ठा देखा जाय तो ऐसा जान पड़ता है मानो एक युग बीत गया हो।

इस अवसर पर बोलने में मै कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूँ, क्योकि वे लोग जिनके बारे में मै बोलने जा रहा हूँ, इस अर्से में हमारे बड़े प्रिय और घनिष्ठ मित्र हो गए है, और जो हमारे मित्र है और प्रिय है उनके बारे में कुछ कहना सदा कठिन होता है। यह सम्भव है कि आदमी अत्यधिक कह डाले, या, दूसरी ओर अगर वह बहुत ही सतर्क तो जितना कहना चाहिए उतना भी न कहे। हर हालत में मै नही जानता कि लार्ड और लेडी माउन्टबैटन के बारे में कहने के लिए मेरे पास काफी शब्द है। पिछले कुछ दिनो अनेक प्रीतिभोज हुए जिनमें उनके प्रति प्रशंसा, मैत्री और में समझता हूँ स्वागत के शब्द कहे गए लेकिन मुझ पर उनका विशेष प्रभाव नही पड़ा। अधिकांश रूप में उनमें कुछ शिष्टाचार ही था।

यह मै अवश्य अनुभव करता हूँ कि आज शाम को दिल्ली नगर में जो प्रदर्शन हुआ, उसके बाद मेरा कुछ कहना फीका-सा ही लगेगा। क्योकि तीन-चार घंटे हुए, दिल्ली नगर ने अर्थात् दिल्ली के साधारण लोगो ने इकट्ठा इनका स्वागत किया था या यो कहिए कि इन्हें विदाई दी थी। मैत्री और प्रेम का यह प्रदर्शन इतना आश्चर्यजनक था कि उस घटना के बाद, मेरा कोई शब्द या वाक्य इस अवसर के शायद ही उपयुक्त हो। नही जानता—अधिक से अधिक मै केवल अटकल भर लगा सकता हूँ—कि लार्ड और लेडी माउन्टबैटन ने इस अवसर

लार्ड और लेडी माउटबैटन की भारत से विदाई के पूर्व नई दिल्ली में, २० जून, १९४८ को उनके सम्मान में दिए गए एक भोज के अवसर पर दिया गया भाषण।

पर क्या अनुभव किया। लेकिन यहा इन महान प्रदर्शनों का अभ्यस्त होते हुए भी, मुझ पर बड़ा प्रभाव पडा, और मुझे यह आश्चर्य हुआ कि एक अँग्रेज और एक अँग्रेज महिला भारत में इतने थोड़े समय में इतने स्वल्प काल में इतने लोक-प्रिय कैसे हो सके, और वह स्वल्पकाल भी ऐसा, जिसमें कि निश्चय ही वहुत कुछ सिद्धि और सफलता प्राप्त हुई, लेकिन जो शोक और विपत्ति का काल भी रहा।

वास्तव में, मुझे अक्सर आश्चर्य हुआ है कि भारत के लोग मुझ जैसे लोगों को, जिनका कि भारत के शासन से सम्वन्ध रहा है, पिछले कुछ महीनों में जो कुछ हुआ है उसके वाद, कैसे सहन कर सके। मै कह नही सकता कि यदि मै सरकार का एक अंग न होता तो मै अपनी सरकार के कार्यो को सहन कर लेता। गुण-दोषो का विचार विल्कुल अलग रखा जाय, तो तथ्य यह है कि चाहे जो घटना हो उसके लिए सरकार जरूर जिम्मेदार है और उसे होना चाहिए, और यदि जो कुछ होता है वह ठीक नही होता तो सरकार को जिम्मेदार ठहराना चाहिए। मै समझता हूँ कि आमतौर पर यह एक अच्छी अनुभवोक्ति है। हो सकता है कि इसके लिए काफी वहाने ढूंढ़े जा सकते हो। इसलिए मुझे और भी आश्चर्य हुआ जवकि इस तूफान और वोझ और कठिनाई के काल के वाद, गवर्नर-जनरल और उनकी पत्नी, जिनका कि कुछ अर्थ में इन सव वातों से सम्वन्ध था, फिर भी जनता का इतनी अपार मात्रा मे प्रेम प्राप्त कर सके।

यह स्पष्ट है कि जो कुछ हुआ उससे इसका सम्वन्ध न था, वल्कि इन दोनों की भलाई, मैत्री और भारत के प्रति प्रेम से इसका सम्वन्ध था। लोगो ने इन्हे अदम्य स्फूर्ति से, अध्यवसाय से और सव वाधाओं की अवहेलना करने वाली आशावादिता से कठिन परिश्रम करते देखा और देखने से अधिक उन्होने इनकी भारत के प्रति मैत्री का अनुभव किया, और उन्होने देखा कि ये अपनी पूरी योग्यता से भारत की सेवा में लगे हुए थे।

भारत में हम लोगों में वहुत सी त्रुटियां है और वहुत-सी कमजोरियां है, लेकिन जव हम भारत के प्रति मित्रता देखते है तो हमारे हृदय उन्मुक्त हो जाते है, और जो लोग भारत के मित्र है या जो भारत की सेवा करते है, वे जो भी हों या जहां भी हों, हमारे साथी वन जाते है। और इसलिए, भारत के लोगो ने यह अनुभव करते हुए कि लार्ड और लेडी माउंटवैटन निश्चय ही भारत और उसकी जनता के मित्र है, और उनकी सेवा करते रहे हैं, आपको भारतवासियों ने अपना स्नेह और प्रेम दिया। इससे अधिक वे और कुछ न दे सकते थे। आप को वहुत से उपहार, वहुत सी भेंटें मिल सकती है, लेकिन जनता के स्नेह और प्रेम से अधिक मूल्यवान कुछ भी नहीं। श्रीमान् और श्रीमती जी, आपने स्वयं देख लिया है कि स्नेह और प्रेम

किस रूप में काम करते हैं। मैं यह कह सकता हूं, कि ये सबसे अधिक मूल्यवान् उपहार हैं। इसलिए जब आपने यह सब देख लिया है, तो मुझे अपनी ओर से सिवाय थोड़े से शब्दों के, जो शायद कुछ निजी हैं और कुछ निजी नही भी हैं अधिक नही कहना है।

आप यहां अपनी निजी हैसियत से और एक महान सार्वजनिक हैसियत से रहे हैं। हम में से बहुत से आपके मित्र हो गए है, और हम लोगों का इतिहास के एक अद्भुत क्षण में साथ हुआ है और हम इस ऐतिहासिक दृश्य में अभिनेता भी रहे हैं। मेरे लिए या किसी के लिए भी यह कठिन है कि उस पर निर्णय दे सके। हम उन घटनाओ के अत्यधिक निकट हैं और उनसे हमारा अत्यधिक निकट का संबंध भी रहा है। हो सकता है कि हमने और आपने बहुत-सी गलतियां की हो। पीढी दो-पीढी बाद इतिहासकार शायद यह निर्णय कर सकें कि हमने ठीक किया या गलत किया। फिर भी, हमने ठीक किया या गलत, इसकी सही कसौटी शायद यह है कि हमने ठीक करने का प्रयत्न किया या नही? क्योकि यदि हमने अपनी पूरी सामर्थ्य और शक्ति से ठीक काम करने का प्रयत्न किया तो फिर हमें बहुत ज्यादा परवाह न करनी चाहिए, यद्यपि इस अर्थ में परवाह होती है कि जो कुछ किया गया वह गलत निकला। हम अपने अभिप्रायो के निर्णायक नही हो सकते, लेकिन मैं यह अवश्य विश्वास करता हूँ कि हमने ठीक ही कार्य करने का प्रयत्न किया, और मुझे यह भी विश्वास है कि आपने भारत के प्रति ठीक ही कार्य करने का प्रयत्न किया, और इसलिए हमारे बहुत-से अपराध और हमारी बहुत-सी भूलें क्षम्य हो सकेंगी।

महोदय, आप यहां बड़ी ऊंची प्रतिष्ठा के साथ आए, लेकिन भारत में अनेक प्रतिष्ठाएँ विफल हुई हैं। आप यहां एक बड़े संकट और कठिनाई के काल में रहे, फिर भी आपकी प्रतिष्ठा विफल नही हुई। यह एक बहुत बड़ी बात है। हम में से बहुतों ने, जो इन संकट के दिनों में आप के सम्पर्क में आए आपसे बहुत कुछ सीखा है। जब भी हम जरा विचलित हुए है, हमने विश्वास संचित किया है, और बहुत-से पाठ, जो हमने आपसे सीखे है, कायम रहेगे और उनसे हमारे आगे के काम में सहायता मिलेगी।

श्रीमती, आप से भी मैं स्वयं कुछ कहना चाहूँगा। देवताओं ने या किसी सुन्दर परी ने आपको सौंदर्य, तीव्र बुद्धि, चारुता, आकर्षण और सजीवता प्रदान की। ये बड़े उपहार हैं, और जिसे भी ये प्राप्त है वह जहां भी जायगा महान कहलाएगा। लेकिन जो सम्पन्न हैं उन्हें भगवान से और भी मिलता है, और देवताओं ने आपको जो वस्तु दी है वह इन उपहारो से अधिक मूल्यवान है, उन्होंने आपको मनुष्यता, मानव प्रेम, पीड़ितों और दुखियो की सेवा के प्रति भावना प्रदान की है और गुणों के अद्भुत मेल ने आपको एक उज्ज्वल व्यक्तित्व और घावो को भरने

वाला संस्पर्श प्रदान किया है। जहाँ भी आप गई है, आपने लोगों को सान्त्वना दी है, आशा दिलाई है, और प्रोत्साहित किया है। तब फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि भारत के लोगों को आपसे प्रेम हो, और वे आप को अपना आत्मीय समझें और आपके जाने से उन्हे दुख हो ?...सैकड़ों हजारो ने आपको विविध पड़ावों पर, अस्पतालों में और और जगहों पर देखा है और सैकड़ो-हजारों इस समाचार से दुखी होगे कि आप जा रही है।

पामेला माउंटबैटन के बारे में भी दो शब्द कहूँ ? वह यहां सीधे स्कूल से आई, और उनमें बड़ी मोहनी शक्ति है। उन्होने भारत के इस आन्दोलित वातावरण में जो कार्य किया वह एक अच्छे सयाने व्यक्ति का कार्य था। मै नही कह सकता आप सब लोग, जो उन्होने किया, उससे परिचित है, लेकिन जो उससे परिचित है वे जानते है कि यह काम कितना श्लाघ्य रहा है और कितना पसन्द किया गया है।

मै अधिक नही कहना चाहता, सिवाय इसके कि जो कुछ दूसरो ने कहा है उसी को मै दुहराऊँ कि हम आपसे विदाई लेते है, लेकिन इसे हम सदा के लिए विदाई नही समझते।

हमें माउंटबैटन परिवार से बांधनेवाले बन्धन इतने दृढ़ है कि वे टूट नही सकते और हम यहाँ या अन्यत्र समय समय पर मिलते रहने की आशा रखते है, और चाहे हम मिलें या न मिलें हम आपको सदा याद रखेंगे। दिल्ली की जनता ने—भारत की जनता की ओर से—जो आपको दिया है उससे अधिक मूल्यवान या कीमती कोई भी उपहार हम आपको नही भेंट कर सकते, लेकिन मंत्रिमंडल के मेरे सहयोगियो और भारत के प्रान्तो के गवर्नरों ने मिल कर स्मृति-चिन्ह के रूप में एक छोटा-सा उपहार आपके लिए प्रस्तुत किया है, जिसे आपको भेंट करने का मेरा सौभाग्य है।

यह, जैसा आप देखेंगे, एक तश्तरी या थाल है। इस पर मंत्रिमंडल के सभी सदस्यो और भारत के सभी गवर्नरो के हस्ताक्षर अकित है और इस पर ये शब्द खुदे हुए है :

"माउण्टबैटन परिवार के प्रति
भारत से उनकी विदाई के समय

प्रेम और शुभकामनाओं के साथ और मैत्री के प्रतीक के रूपमें"

महिलाओ और सज्जनो, क्या मैं आपसे कहूँ कि अब आप माउंटबैटन परिवार के स्वास्थ्य और सौभाग्य की कामना के उपलक्ष्य में पान करें ?

राष्ट्र गीत के लिए लय

यह प्रश्न मेरे सहयोगी, गृहसचिव से पूछा गया था। लेकिन इस विषय से मेरा बहुत सम्बन्ध रहा है, इसलिए मैं ही इसका उत्तर देने की स्वतंत्रता ले रहा हूँ। मैं उन माननीय सदस्य का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने यह प्रश्न किया है, क्योंकि इससे सरकार को यह अवसर मिलता है कि वह इस विषय में फैली हुई कुछ भ्रान्तिया दूर कर सके।

१५ अगस्त, १९४७ के तत्काल बाद, ऐसे राष्ट्र गीत का प्रश्न, जिसकी कि वादक मंडलियों और बैंड द्वारा धुन बजाई जाय, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो गया। यह प्रश्न उतने ही महत्त्व का था, जितना कि राष्ट्रीय झंडे का था। हमारी रक्षा सेवाओं, हमारे दूतावासों और प्रतिनिधि मंडलो तथा अन्य संस्थाओं की दृष्टि से यह महत्त्व का प्रश्न था। स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद स्पष्टतया यह उचि त नहीं था कि 'ईश्वर हमारे राजा की रक्षा करे' इस गीत की धुन फौजी बैंडो द्वारा या विदेश में बजाई जाय। हमसे बराबर यह पूछा जाता रहा कि ऐसे अवसरो पर कौन सी धुन बजाई जाय। हम कोई उत्तर नही दे सके, क्योंकि इस विषय में संविधान परिषद् द्वाराकोई अन्तिम निर्णय नहीं हो सका था।

न्यूयार्क में, सयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा के अवसर पर, सन् १९४७ में इस प्रश्न का निर्णय करना आवश्यक हो गया। एक विशेष अवसर पर, वादकमंडली द्वारा धुन बजाई जाने के लिए हमारे प्रतिनिधि-मंडल से हमारे राष्ट्रीय गीत के विषय मे पूछा गया। हमारे प्रतिनिधि—मडल के पास 'जन-गण-मन' का एक रेकार्ड, था। उन्होंने उसे वादकमंडली को दे दिया और वादकमंडली ने उसका अभ्यास किया। जब उन्होंने इसे एक बड़े समारोह के सामने बजाया तो उसको बहुत पसन्द किया गया और बहुत से राष्ट्रों के प्रतिनिधियो ने इस नई लय की, जो कि उन्हे विशिष्ट और गौरवपूर्णवजान पड़ी, स्वर-लिपि मांगी। बजाई गई की वादक मंडली द्वारा 'जन-गण-मन' धुन का रेकार्ड बना कर भारत भेजा गया। हमारी रक्षा सेना के बैंडो को धुन को बजाने का अभ्यास हो गया, और अवसर पड़ने पर विदेशी दूतावासो और प्रतिनिधि मडलो द्वारा भी इसका अभ्यास होने लगा। अनेक देशों से

संविधान (व्यवस्थापिका) परिअद् में नई दिल्ली में २५ अगस्त, १९४८ को थोड़ी सूचना पर प्रस्तुत एक प्रश्न के उत्तर में वक्तव्य।

हमें इस लय पर प्रशंसा और बधाई के संदेश प्राप्त हुए, । विशेषज्ञों द्वारा हमारा राष्ट्रगीत अन्य राष्ट्रीय गीतों की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझा गया । भारत में तथा विदेशो में, बहुत-से कुशल संगीतज्ञो ने, और बहुत से बैंडो और वादक-मडलियो ने इसका अभ्यास किया, और कभी-कभी थोड़ा बहुत परिवर्तन भी करना पड़ा । परिणाम यह हुआ कि आल इंडिया रेडियो ने उसकी विभिन्न धुनो को एकत्र किया ।

इस लिय की आम-पसदगी की बात अलग रखी जाय तो उस समय हमारे सामने चुनाव करने का कोई ढग भी नही था, क्योकि किसी दूसरे राष्ट्रीय गीत की धुन जिसे कि हम विदेशो में भेज सकते, हमारे लिए प्राप्य भी नही थी । उस समय मैंने सभी प्रान्तीय गवर्नरो को लिखा और 'जन-गण-मन या किसी और गीत को राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकार करने के विषय में सम्मति मागी । मैंने उनसे कहा कि अपने अपने प्रधान मत्रियो से परामर्श करके मुझे उत्तर दें । मैंने यह बात उनसे बिल्कुल स्पष्ट कर दी कि अन्तिम निर्णय संविधान परिषद् द्वारा ही हो सकता है । लेकिन विदेशी दूतावासो और रक्षा-सेनाओं को निर्देश भेजने की आवश्यकता को देखते हुए एक अल्पकालिक निर्णय होना जरूरी था । इन गवर्नरो में से एक अर्थात् मध्यप्रदेश के गवर्नर को छोड़ कर सभी ने 'जन-गण-मन' को पसन्द करने की सूचना दी । इसके बाद मन्त्रिमंडल ने इस विषय पर विचार किया और व इस निर्णय पर पहुँचा कि 'जन-गण-मन' की लय को राष्ट्रीय गीत के रूप में अस्थायी तौर पर उस समय तक के लिए स्वीकार किया जाए, जब तक कि संविधान परिषद् अपना अन्तिम निर्णय न दे । इसलिए इसी के अनुसार प्रान्तीय गवर्नरो के पास निर्देश भेज दिए गए । यह बहुत स्पष्ट था कि 'जन-गण-मन' की शब्दावली पूर्णतया उपयुक्त नही है और कुछ परिवर्तन करने पड़ेंगे । जो बात महत्त्व की थी वह यह थी कि किस लय की, शब्दावली की नही, बैंडो और वादक-मंडलियो द्वारा धुन बजाई जाय । बाद में पश्चिमी बगाल के नए प्रधान मंत्री ने सूचित किया कि उनकी और उनकी सरकार की पसन्द 'वन्दे मातरम्' के पक्ष में है । इस समय यह स्थिति है । यह दुर्भाग्य की बात है कि 'वन्दे मातरम्' और 'जन-गण-मन' के बीच एक तरह का विवाद खड़ा हो गया है । 'वन्दे मातरम्' स्पष्ट और निर्विवाद रूप से भारत का प्रधान राष्ट्रा गीत है, और इसकी महान ऐतिहासिक परम्परा है, और यह हमारे स्वतंत्रता के इतिहास के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है । वह स्थान इसे सदा प्राप्त रहेगा और कोई दूसरा गीत उसकी जगह नही ले सकता । यह उस युद्ध की भावनाओ और तीव्रता का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन कदाचित् उसकी परिणति का नही । राष्ट्रीय गीत की लय के सम्बन्ध मे यह अनुभव किया गया कि शब्दावली से अधिक लय का महत्त्व है, और यह लय ऐसी होनी चाहिए कि यह भारतीय संगीत प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करे और कुछ हद तक पाश्चात्य शैली के भी अनुकूल हो, जिसमें कि वादक-मंडलियों

और बैंडो द्वारा भी इसकी धुन बजाई जा सके। राष्ट्रीय गीत का वास्तविक महत्त्व कदाचित् विदेशों में अपने देश की अपेक्षा अधिक है। पिछले अनुभव ने हमें बताया है कि 'जन-गण-मन' की लय को विदेशो में बहुत पसन्द किया गया और उसकी वहा बड़ी प्रशंसा हुई है। वह अपनी बड़ी विपशेता रखता है और उसमें एक विशेप जीवन और गति है। कुछ लोगों ने यह समझा कि 'वन्दे मातरम्' की लय आकर्षक होते हुए भी और उसकी ऐतिहासिक महत्ता होते हुए भी वह सहज में विदेशो में वादक-मंडलियो के उपयुक्त नही और उसमें पर्याप्त गति नही। इसलिए यह जान पड़ा कि जहां भारत में 'वन्दे मातरम्' सर्वोच्च राष्ट्रीय गीत रहेगा, राष्ट्रीय गीत की लय 'जन-गण-मन' वाली हो और 'जन-गण-मन' की शब्दावली में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया जाय।

इस प्रश्न पर संविधान परिषद् में विचार किया जायगा, और वह इस विषय में जो निर्णय करना चाहेगी उसे करने के लिए वह स्वतंत्र होगी। वह एक बिल्कुल नया गीत या लय भी अगर वह प्राप्य हो, चुन सकती है।

हमारी लम्बी यात्रा का अन्तिम चरण

श्रीमान् उप-सभापति महोदय, हम अपनी लम्बी यात्रा के अन्तिम चरण पर पहुँच गए हैं। लगभग दो वर्ष हुए, हम इस भवन में मिले और यह मेरा बड़ा सौभाग्य था कि मैंने उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर वह प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो कि ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह उस प्रस्ताव का किंचित् गद्यमय विवरण है, क्योंकि उस प्रस्ताव मे केवल ध्येयो से कुछ अधिक बात थी, यद्यपि किसी राष्ट्र के जीवन मे ध्येय बहुत महत्त्व रखता है। इसने उस समय भारतीय जनता की जो भावना थी उसे जहाँ तक छापे के शब्दो द्वारा ऐसा करना संभव था, समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। किसी राष्ट्र या जनता की भावना-को एक ऊँचे स्तर पर निरन्तर बनाए रखना कठिन होता है, और मैं नही कह सकता कि हम इसमें सफल हुए हैं। फिर भी, मैं आशा करता हूँ कि हम उसी भावना से इस सविधान के बनाने के काम मे लगेंगे, और उसी भावना से हम इसके विस्तार की बातो को उठायेंगे और उस ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव को मापदड मानते हुए इस संविधान की प्रत्येक धारा और वाक्यांश पर विचार करेंगे। हो सकता है कि हम उस प्रस्ताव में कुछ सुधार कर सकें, और अगर ऐसा सभव हो तो हमे अवश्य करना चाहिए। लेकिन मैं समझता हूँ उस प्रस्ताव ने, अपने कुछ वाक्याशो में, यह निर्धारित कर दिया है कि इस संविधान का मूल और बुनियादी आधार क्या होना चाहिए। कोई भी संविधान अन्तत. सरकारो की प्रणालियो और जनता के जीवन का एक प्रकार का कानूनी स्वरूप है। यदि कोई सविधान जनता के जीवन,ध्येयो और आकाक्षाओ से सम्पर्क नही रख पाता तो वह प्राय: खोखला हो जाता है, और यदि वह उन ध्येयो से विचलित हो जाता है, तो वह जनता को नीचे खीच कर ले आता है। उसे अपने उद्देश्य से कुछ ऊँचा होना चाहिए, जिससे कि जनता की दृष्टि और उसके विचार एक विशिष्ट ऊँचे चिन्ह पर केंद्रित हो। मैं समझता हूँ कि ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव इस दृष्टि से सफल रहा। तब से, एक राष्ट्र की आकाक्षाओं और इच्छाओ को साकार करने के प्रसग में, अनेक वाद-विवादो में, जो अनिवार्यत. कुछ ऐसे विषयो पर, अपेक्षाकृत छोटे और महत्त्वहीन हैं, आवेश जागृत हुए हैं। यह नही कि वे विषय बिल्कुल महत्त्वहीन है क्योंकि एक राष्ट्र के जीवन में प्रत्येक महत्त्व बात रखती है,

---

माननीय डा० बी० आर० अम्बेदकर के प्रस्ताव पर कि सविधान का मसविदा, जिस रूप में ;वह ड्राफ्टिंग कमेटी द्वारा प्रस्तुत हुआ है, विचार के लिए उठाया जाय, सविधान परिषद, नई दिल्ली में, ८ नवम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

फिर भी अपेक्षाकृत महत्त्व का प्रश्न अर्थात् यह प्रश्न रह जाता है कि किसका प्रथम महत्त्व है, और यह प्रश्न भी है कि कौन-सी वात पहले आती है और किसे वाद में आना चाहिए। आखिर कार, यह हो सकता है कि सत्य विविध हो, लेकिन यह जानना महत्त्व की वात है कि प्रथम सत्य क्या है। घट- नाओ के किसी खास प्रसंग मे यह जानना महत्त्व रखता है कि पहली वात, जिसे कि किया जाय, जिस पर कि विचार किया जाय, और जिसे अंकित किया जाय, क्या है? किसी राष्ट्र या जनता की इस वात से परख होती है कि वह प्रथम और द्वितीय महत्त्व की वस्तुओ में भेद कर सकती है या नही। अगर हम द्वितीय महत्त्व की वस्तुओ को पहले रखते है, तो अनिवार्य रूप से सवसे अधिक महत्त्व की वस्तुओ की हानि होती है और उन पर आवरण पड़ जाता है।

अव, महोदय, आपकी आज्ञा से संविधान के मसविदे पर विवाद की प्रारम्भिक अवस्था मे भाग लेने का मैने साहस किया है, लेकिन मेरा इरादा उसके किसी खास भाग के विषय में, पक्ष मे अथवा विपक्ष में, कुछ कहने का नही है, क्योकि इस तरह की वहुत सी वातें कही जा चुकी है और निश्चय ही आगे कही जाएँगी। लेकिन इस वात को विचार में रखते हुए, मै शायद इस विवाद में कुछ उपयोगी भाग इस रूप में ले सकता हूँ कि कुछ मौलिक वातों पर फिर ध्यान दिलाऊँ। मै समझता हूँ कि मै ऐसा और भी अधिक कर सकता हूँ, क्योकि पिछले दिनो और सप्ताहो में मै भारत से वाहर रह चुका हूँ, मैने विदेशो की यात्रा की है, दूसरे देशो के प्रसिद्ध लोगो और राजनीतिज्ञो से मिला हूँ, और अपने इस प्रिय देश को एक फासले से देखने की सुविधा मुझे रही है। यह कुछ सुविधा अवश्य है। यह सही है कि जो लोग दूर से देखते है वे उन वहुत-सी चीजो को नही देख सकते जो कि इस देश में मौजूद है। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि जो लोग इस देश मे है और अपनी अनेक कठिनाइयो और समस्याओ से हर समय घिरे रहते है, कभी-कभी पूरा चित्र नही देख पाते। हमें दोनो ही वातें करनी हैं, अपनी समस्याओ के विस्तार की वारी- कियों को समझने के लिए उन्हे देखना है, और उन्हे एक दृष्टि-परम्परा में भी देखना है, जिससे उनका वह चित्र समग्र रूप मे हमारी दृष्टि में रह सके।

तेजी से वदलते हुए इस युग में जिससे कि हम गुजरे है, यह और भी महत्व की वात है। हम लोग इस परिवर्तन काल मे उसकी विजयो, कीर्तियो, दुखो और तीक्ष्णताओ के वीच रहे है, और हम पर इन सव वातों का प्रभाव पड़ा है। हम स्वयं वदल रहे है, पर हम अपने को और अपने देश को वदलता हुआ उतना जान नही पाते। कुछ समय के लिये इस उथल-पुथल से वाहर रह कर दूर से देखना और कुछ हद तक दूसरे लोगों की दृष्टि से देखना पर्याप्त रूप से सहायक हो सकता है। मुझे ऐसा अवसर मिला है। ऐसा सुअवसर प्राप्त करने की मुझे प्रसन्नता

है, क्योकि एक समय के लिए मै जिम्मेदारी के उस भारी बोझ से मुक्त रहा, जिसे कि हम सभी लोग ढो रहे है, और जिसे कुछ अंशो में उन लोगो को जिन पर शासन के चलाने का काम है और भी अधिक ढोना पड़ता है । कुछ समय के लिये मै उन तात्कालिक जिम्मेदारियों से मुक्त था और अधिक स्वतंत्र मन से उस चित्र को देख सकता था। मैने उस दूरी से भारत के उदय होते हुए नक्षत्र को क्षितिज से बहुत ऊपर, और जो कुछ हुआ है उसके बावजूद ससार के बहुत से देशो पर प्रकाश डालते देखा—उन देशो पर जो उसे आशापूर्वक देखते थे, जो समझते थे कि इस नए स्वतंत्र भारत से विविध शक्तियाँ आएँगी जो एशिया को और कुछ हद तक संसार को ठीक मार्ग पर लाने में सहायता करेंगी, तथा जो अन्य इसी प्रकार की दूसरो जगहो की शक्तियो से सहयोग करेंगी, क्योकि एशिया का यह महाद्वीप और यूरोप और सारा संसार बुरी अवस्था में है, और उसे ऐसी समस्याओ का सामना करना पड़ रहा है जो प्राय. अजेय हैं। कभी-कभी आदमी को ऐसा अनुभव होता है कि हम सभी किसी ऐसे भयानक यूनानी दु.खान्त नाटक के अभिनेता है, जो अपनी विनाशकारी चरम सीमा की ओर अनिवार्य रूप से चला जा रहा है। लेकिन जब मैने इस चित्र को फिर दूर से और यहां से देखा तो मुझे न केवल भारत के कारण बल्कि और बातो के कारण भी जिन्हे मैने देखा इस बात की उम्मीद हुई कि वह दु खान्त घटना जो कि अनिवार्य जान पड़ती थी आवश्यक रूप से अनिवार्य नही है, और यह कि बहुत-सी और शक्तियां काम कर रही हैं और संसार में सद्‌भावना रखनेवाले असंख्य नर-नारी हैं, जो इस विपत्ति और दु खान्त घटना को होने से रोकना चाहते है और इसकी पूरी सभावना है कि इसे रोकने में सफल होगे।

लेकिन भारत की बात फिर लीजिए जब मैने इस सभा के सामने—पूरा एक वर्ष और ग्यारह महीने हुए—यह ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव रखा, तब से हम लोग अद्‌भुत परिवर्तनो और अवस्थाओ से होकर गुजरे हैं। हम उस समय की अपेक्षा आज कार्य करने के लिए अधिक स्वतंत्र है। अब हम एक पूर्ण सत्ता-धारी स्वतत्र राष्ट्र की हैसियत से कार्य कर रहे है। लेकिन हमने इस काल में बहुत कुछ दु ख और तीव्र वेदना काभी अनुभव किया है, और उसका हम सब पर गहरा प्रभाव पड़ा है । जिस देश के लिए हम सविधान बनाने जा रहे थे, उसके दो टुकड़े हो गए । उसके बाद जो कुछ हुआ वह हमारे मन में ताजा है और आनेवाली एक लम्बी अवधि तक अपनी पूर्ण भयानकता के साथ ताजा बना रहेगा। यह सब हुआ, और फिर भी, इन सब बातो के बावजूद, भारत की शक्ति और स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है। निस्संदेह भारत की यह वृद्धि, भारत का एक स्वतंत्र देश के रूप में यह आविर्भाव, इस पीढ़ी की महत्वपूर्ण घटनाओ में हमारे, लिए है।

इस देश मे रहनेवाले हमारे वहुसंख्यक भाई-वहनों के लिए, एशिया के लिये, और संसार के लिये भी यह महत्त्वपूर्ण है। संसार को यह अनुभव होने लगा है—मुख्य-तया मैं ऐसा समझता हूँ और इसकी मुझे प्रसन्नता है—कि एशिया और संसार मे भारत जो पार्ट अदा करेगा वह कल्याण लाने वाला होगा। हो सकता है कि इस विषय मे कुछ भय भी उपजता हो, क्योकि भारत कुछ ऐसे काम भी कर सकता है—जिन्हे कुछ लोग, और कुछ देश, जिनके अलग ही हित हैं विशेप पसन्द न करे। यह सव हो रहा है, लेकिन मुख्य वात यह महत्त्वपूर्ण घटना है कि भारत इतने लम्वे काल तक पराधीन रह कर, एक आजाद, पूर्णसत्ताधारी जन सत्तात्मक स्वतंत्र देश के रूप मे आगे आया है, और यह ऐसी घटना है जो इति-हास मे परिवर्तन लानेवाली है और ला रही है। कहाँ तक यह इतिहास को वदल सकेगी, यह हम पर, इस वर्तमान सभा पर, और भविष्य मे आनेवाली ऐसी और सभाओ पर जो कि भारतीय जनता की संगठित इच्छा का प्रतिनिधित्व करेगी, निर्भर करता है।

यह एक वहुत वड़ी जिम्मेदारी है। स्वतत्रता जिम्मेदारी ले आती है। वास्तव मे विना जिम्मेदारी के स्वतंत्रता नाम की कोई चीज हो ही नही सकती। गैर-जिम्मे-दारी का अर्थ है—स्वतंत्रता का अभाव। इसलिए स्वतंत्रता के साथ जो जिम्मेदारी आई है उसके महान् वोझ का—स्वतंत्रता के संयम का और स्वतंत्रता के उपभोग के संगठित तरीके का—हमे वोध होना चाहिए। इतिहास, परम्परा, साधन, भौगोलिक स्थिति, महान् प्रच्छन्न शक्ति आदि अनेक कारणो से, भारत अनिवार्य रूप से संसार के मामलो में महत्त्वपूर्ण भाग लेने योग्य हुआ है। इस अथवा उस चीज को चुनने का सवाल नही है। भारत जैसा है, और स्वतंत्र भारत को जैसा होना चाहिए, उसका यह अनिवार्य परिणाम है। और चूंकि ससार के मामलों में हमें यह भाग अनिवार्य रूप से लेना है, हमारे ऊपर एक दूसरी और भी वड़ी जिम्मेदारी आती है। कभी कभी अपनी सारी आशावादिता और उम्मीदों और अपने राष्ट्र के प्रति विश्वास के वावजूद, हमारे ऊपर जो जिम्मे-दारियाँ डाली जा रही हैं और जिनसे हम वच नही सकते, उनसे मैं सहम जाता हूँ। अगर हम अपने संकीर्ण वाद-विवादो में फँसे तो हम इनको भूल सकते हैं। पर हम चाहे भूले या न भूले जिम्मेदारियाँ तो वनी ही रहेंगी। अगर हम अपनी जिम्मेदारियो को भूलते हैं तो उस हद तक हम विफल होते है। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि भारत पर, और चूंकि इस तथा अन्य क्षेत्रो मे हम भारत का प्रतिनिधित्व करते है, इसलिए इस सभा के हम सव लोगो पर, जो वड़ी जिम्मेदारियाँ आ पड़ी हैं उन पर हम विचार करें और उन्हे ध्यान में रखते हुए सविधान के निर्माण में मिल-जुलकर लगें। संसार की निगाहे हम पर है और संसार के एक वड़े हिस्से की आशाएँ और आकांक्षाएँ भी हमसे लगी हुई हैं। हम छोटापन दिखाने

की धृष्टता नही कर सकते। अगर हम ऐसा करते हैं तो हम अपने देश की और अपने चारों ओर के देशों की आशाओं और आकांक्षाओं की अवहेलना करते है। मै चाहूँगा कि इस सविधान के विषय में यह सभा इस रूप में विचार करे : सबसे पहले तो ध्येय सम्बन्धी प्रस्ताव को अपने सामने रखे और यह देखे कि हम कहां तक उसके अनुसार कार्य कर सकते हैं और किस प्रकार उसके अनुसार एक ऐसे स्वतंत्र पूर्णसत्तात्मक गणराज्य का निर्माण कर सकते है, जिसके अन्तर्गत पूर्ण सत्तात्मक स्वतंत्र भारत की समस्त शक्ति और अधिकार, उसके अंगभूत भाग और शासन के अवयव जनता से निष्पन्न हों और जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की, पद की, अवसर की और विधान के समक्ष समानता, कानून और शिष्टाचार का ध्यान रखते हुए विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, पूजा, धंधा, सम्पर्क और कार्य की स्वतंत्रता प्राप्त हो, और यह प्राचीन भूमि संसार में अपना न्याय-संगत और सम्मानित स्थान प्राप्त करे और लोक शान्ति की अभिवृद्धि और मानव मात्र के कल्याण के लिए अपना पूरा और स्वेच्छापूर्ण योगदान करे।

मैंने यह अन्तिम उपवाक्य विशेष रूप से पढा है, क्योकि यह हमें संसार के प्रति भारत के कर्तव्य का स्मरण दिलाता है। मैं चाहूँगा कि जब यह सभा विविध विवाद-ग्रस्त बातों पर विचार करे—विवाद-ग्रस्त विषय आयेंगे ही और उन्हे आना चाहिए, क्योंकि हम एक जीवित और प्राणशक्ति रखनेवाले राष्ट्र हैं, और यह ठीक है कि लोग अपने अपने विचार रखें—तो यह अनुभव करे कि जहाँ निर्णय करते समय विभिन्न विचारों का होना उचित है, वहाँ औचित्य इसमें भी है कि निर्णय को कार्यान्वित करते समय मिल जुल कर काम किया जाय। अनेक समस्याएँ है जिनमें कुछ बड़े महत्त्व की हैं जिनके विषय में बहुत कम विवाद है। उन्हे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लेना चाहिये। इनके अलावा कुछ और समस्याएँ हैं जो अपेक्षाकृत कम महत्त्व की हैं। उन पर हम अधिक समय, उत्साह और आवेश व्यय कर सकते है। यह हो सकता है कि जिस भावना से हमें समझौते पर पहुँचना चाहिए उस भावना से हम समझौते पर न पहुँचें। मै केवल एक या दो विषयों की चर्चा करूँगा। आज देश में भाषाओ के आधार पर प्रान्तो के निर्माण की बात चल रही है और इस सभा की और देश की क्या भाषा हो यह विषय भी है। मै इन प्रश्नो के सम्बन्ध में अधिक नही कहना चाहता, सिवाय इसके कि बहुत समय से मुझे यह अनिवार्य-सा लग रहा है कि भारत में प्रान्तो का इस प्रकार पुनर्गठन हो, कि वह जनता की सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक स्थितियो और उनकी इच्छाओ के अधिक अनुकूल हो। इसके प्रति हम बहुत समय से प्रतिज्ञाबद्ध हैं। मैं समझता हूँ कि भाषा पर आधारित प्रान्त मात्र कहना पर्याप्त रूप में उचित नहीं। भाषा एक बड़ा

विचारणीय कारण अवश्य हैं, लेकिन और भी महत्त्व की विचारणीय बातें है। इसलिए इससे पूर्व कि जो कुछ हमारे यहाँ हैं उसे आप तोड़ें, और तब एक नव-निर्माण मे लगें, आपको सम्पूर्ण चित्र पर विचार कर लेना चाहिए। जो मैं इस सभा के सामने रखना चाहूँगा वह यह है कि यद्यपि हमारे भविष्य के जीवन और शासन की दृष्टि से यही प्रश्न महत्त्व का है, मैं इसको इतने प्रमुख महत्त्व का नही समझता कि इस पर यहां और आज ही तत्काल निर्णय किया जाय। यह विशेष रूप से ऐसा प्रश्न है जिसपर कि सद्भावना और शान्ति के वातावरण मे और विषय के विविध पक्षों पर पाण्डित्यपूर्ण विवाद के अनन्तर निश्चय किया जा सकता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि दुर्भाग्य से इसने बड़ी गर्मी और उत्तेजना उत्पन्न कर दी है, और जब गर्मी और उत्तेजना पैदा हो जाती है तो अक्ल मारी जाती है। इसलिए मैं इस सभा से अनुरोध करूँगा कि वह इन विषयो पर जब उचित समझे विचार करे और यह ख्याल रखे कि ये विषय जल्दी में और जब आवेश जागृत हों, निर्णीत न किये जायें बल्कि जब उनके लिए समय परिपक्व हो और उचित क्षण आ जाय तब उन पर विचार होना चाहिए।

यही तर्क, अगर मैं कह सकता हूँ, तो भाषा के प्रश्न पर भी लागू होता है। यह एक जाहिर-सी बात है और महत्त्व की बात है कि किसी देश का, विशेषकर जबकि वह एक आजाद और स्वतंत्र देश हो, काम-काज उस देश की भाषा में ही होना चाहिए। दुर्भाग्य से यही बात कि मैं इस सभा में एक विदेशी भाषा में बोल रहा हूँ और हमारे बहुत-से सहयोगियो को इस सभा में एक विदेशी भाषा मे बोलना पडता है, हमें यह बताती है कि किसी चीज़ की कमी है। कमी है, इसे हमे मान लेना चाहिए। हम इस कमी को निस्सन्देह दूर कर लेंगे। लेकिन अगर हम एक परिवर्तन, तात्कालिक परिवर्तन, पर ज़ोर देने की कोशिश में बहुत से विवादो में पड़ जाते हैं, और सम्भवतः सारे सविधान मे भी विलम्ब डालते हैं, तो मैं इस सभा से निवेदन करूँगा कि यह एक बड़ी बुद्धिमानी की बात नही है। भाषा, व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है और रही है, और चूंकि यह महत्त्वपूर्ण है, हमें इस पर पूरा-पूरा विचार और ध्यान देना चाहिए। महत्त्वपूर्ण होने के कारण यह आवश्यक विषय भी है, अतएव इस मामले में जल्दी करने से हमारा काम बिगड़ सकता है। इसमें कुछ विरोधाभास है। क्योकि अगर हम एक आवश्यक विषय में, हो सकता है बहुमत से, देश के कुछ भागों के विरोधी अल्पसंख्यकों पर, या इस सभा मे ही, कुछ निर्णय लादें, तो वास्तव मे हम जो प्राप्त करने चले हैं उसमें सफल नही होते। इस देश में शक्तिशाली प्रभाव काम कर रहे है, जो कि अनिवार्य रूप से अँग्रेजी भाषा के स्थान पर एक भारतीय भाषा को या जहाँ तक देश के भिन्न-भिन्न भागों का सम्बन्ध है, भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं को विठावेंगे, लेकिन एक अखिल भारतीय भाषा सदा रहेगी। उस अखिल भारतीय

भाषा के निर्माण में भी शक्तिशाली प्रभाव काम कर रहे हैं। भाषा सदा जनता से वृद्धि पाती है। यह बहुत कम होता है कि वह ऊपर से लादी जा सके। भाषा के किसी रूप को लोगो पर हठात् लादने के प्रयत्न का बराबर ज़ोरदार विरोध हुआ है, और जैसा उसके समर्थक चाहते रहे हैं उसका ठीक विपरीत ही परिणाम निकला है। मैं इस सभा से इस बात पर विचार करने का और यदि वह मुझ से सहमत हो तो यह अनुभव करने का अनुरोध करूंगा कि एक स्वाभाविक अखिल-भारतीय भाषा के विकास का सबसे पक्का ढंग यह है कि प्रस्ताव स्वीकृत न किये जायें और कानून न बनाये जायें बल्कि और प्रकार से उस ध्येय की सिद्धि के लिए काम किया जाय। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, अखिल भारतीय भाषा क्या होनी चाहिए, इसकी मेरी एक विशेष कल्पना है। दूसरे लोगो की कल्पना मुझसे भिन्न हो सकती है। मैं अपनी कल्पना को सभा या इस देश पर नही लाद सकता, ठीक उसी तरह, जिस तरह कि कोई दूसरा व्यक्ति अपनी कल्पना, जब तक कि देश उसे स्वीकार न करे देश पर नही लाद सकता। मैं तो अपनी या किसी की कल्पना को लादने के प्रयत्न को बचाना पसन्द करूंगा, और उसके बदले इस ध्येय के लिए सहयोग और मैत्रीभाव से काम करना चाहूंगा और यह देखना चाहूंगा कि जब हम संविधान के विषय में और बड़ी-बड़ी बातें तै कर लें, जब हम और भी अधिक मात्रा में सुदृढ़ता प्राप्त कर लें, तब इन अलग प्रश्नों को उठाया जाय और उन पर एक अधिक अच्छे वातावरण में निर्णय किया जाय।

इस सभा को स्मरण होगा कि जब मैं ध्येय सम्बन्धी यह प्रस्ताव सभा के सामने लाया था, तब मैंने इस बात की चर्चा की थी कि हम इसकी माग कर रहे हैं, बल्कि यह निर्धारित कर रहे हैं कि संविधान एक स्वतंत्र पूर्णसत्ताधारी गणराज्य के लिए बने। मैंने उस समय कहा था और बाद में भी कहा है कि हमारे गणराज्य बनने का विषय एक ऐसा विषय है जो कि निश्चय ही पूर्णतया हमारे निर्णय करने का है। हमारा और देशों से, विशेषकर ब्रिटेन या राष्ट्रमंडल से जो कि ब्रिटिश राष्ट्रमडल के नाम से प्रसिद्ध था, क्या सम्बन्ध हो, उससे इस प्रश्न का लगाव बिल्कुल नही या नगण्य है। वह एक प्रश्न है, जिसे इस सभा को ही निर्णय करना है, किसी और को नही, और संविधान कैसा बनना है, इसे स्वतत्र रूप से निर्णय करना है।

मैं इस सभा को यह सूचित करना चाहता हूँ कि हाल के हफ्तों में, जब कि मैं ब्रिटेन में था, जब कभी यह या इससे मिला-जुला कोई प्रश्न आपस के वाद-विवाद में उठा, तो उस पर कोई खुला विवाद या निर्णय नहीं हो सका क्योकि कामनवेल्थ कांफ्रेंस ने, जिसमें कि मैंने भाग लिया, अपने अधिवेशनो में इस पर बिल्कुल ही विचार नही किया। अनिवार्यतः ये आपस के विवाद थे, क्योकि यह विषय

न केवल हमारे लिए बड़े महत्व का था, वल्कि और देशो के लिए भी, कि अगर हम ब्रिटेन से कोई सम्बन्ध रखें तो वह क्या हो ? हमारा क्या सम्पर्क, क्या कड़ियां इन देशों से हों ? जो पहली बात मै इन विवादो मे वरावर कहता था वह यह थी कि मै व्यक्तिगत रूप से——यद्यपि मै प्रधान मत्री के ऊँचे पद से सम्मानित था——किसी प्रकार या किसी अर्थ में देश को या उस सरकार को, जिसका प्रतिनिधित्व करने का मुझे सम्मान प्राप्त था, वांध नही सकता। यह मूलतया ऐसा विषय था जिसका निर्णय भारत की संविधान परिषद ही कर सकती थी। यह वात मैंने विल्कुल स्पष्ट कर दी थी। यह स्पष्ट करने के वाद मैंने उनका ध्यान संविधान परिषद के ध्येय सम्वन्धी प्रस्ताव की ओर दिलाया। मैंने कहा कि संविधान परिषद इस प्रस्ताव में, जिस तरह कि और वातों मे, परिवर्तन करने के लिए स्वतत्र है, क्योकि वह इस वात में तथा अन्य वातो मे सर्वसत्ताधारी है। यही निर्देश संविधान परिषद ने अपने संविधान का मसविदा तैयार करने वाली समिति को दिया था, और जव तक यह निर्देश बना रहेगा——और मैंने यह भी कहा कि जहा तक मैं जानता हूँ यह बना रहेगा——यह संविधान ध्येय सम्वन्धी प्रस्ताव के अनुसार ही होगा। यह स्पष्ट करने के वाद, मैंने कहा कि हमारी तरफ से अकसर यह कहा गया है कि हमारी इच्छा और देशो के साथ, ब्रिटेन और कामनवेल्थ के साथ, मैत्रीपूर्ण सम्पर्क रखने की है। इस प्रसंग मे, ऐसा किस तरह होगा या हो, यह विषय ध्यानपूर्वक विचार करने और अन्तिम निर्णय करने का है और स्वभावतः जहाँ तक हमारा सम्वन्ध है, इसका निर्णय संविधान परिषद द्वारा होगा और जहां तक ब्रिटेन तथा कामन-वेल्थ के अन्य सदस्यो का सम्वन्ध है, उनकी विविध सरकारो या जनता द्वारा होगा। इस सम्वन्ध में मै केवल इतना ही कहना चाहता हूँ, क्योकि इस अधिवेशन में आगे चलकर यह विषय निःसन्देह इस सभा के सामने अधिक निश्चित रूप में आयेगा। लेकिन जिस रूप मे भी वह अव या वाद में उठे, जिस वात पर मैं जोर देना चाहूँगा वह यह है, कि जिस संविधान पर हम विचार कर रहे है उससे यह वात, अलग और एक अर्थ में स्वतंत्र है। हम एक स्वतंत्र पूर्णसत्ताधारी जनसत्तात्मक भारत के लिए, अगर आप पसन्द करें तो गणराज्य के लिए, संविधान स्वीकार कर लें, और दूसरे प्रश्न पर जव आप उचित समझें, वाद मे विचार किया जा सकता है। यह किसी भी अर्थ में हमारे सविधान को वाँधना या सीमित करना नही है, क्योंकि यह सविधान भारत की जनता के प्रतिनिधियो द्वारा भारत के भविष्य के शासन के विषय में उसकी जनता की स्वतंत्र इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है।

मैंने जो पहले कहा, है क्या मैं उसे फिर दुहराने की अनुमति मांग सकता हूँ ? भाग्य ने इस देश पर एक निश्चित कर्तव्य डाल रखा है। हम लोगो में जो यहां उपस्थित हैं कोई भाग्य-निर्दिष्ट व्यक्ति है या नही, यह मै नही जानता। यह एक वडा शब्द है, जो कि साधारण मनुष्यों के लिए उपयुक्त नही। लेकिन हम

भाग्य द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति हो या न हो, भारत एक भाग्य-निर्दिष्ट देश है। और जहा तक हम इस विशाल देश का प्रतिनिधित्व करते है, जिसके सामने कि यह महत् भविष्य है, हमें भी अपनी समस्याओ को और भविष्य की ओर इस संसार तथा एशिया की परम्परा में देखते हुए उस महान् जिम्मेदारी को, जो कि इस स्वतंत्रता ने और हमारे देश के वडे होनहार ने हम पर डाली है, कभी न भूलते हुए अपने को छोटे-छोटे विवादो और वहसो में, जो कि उपयोगी हो सकती है, लेकिन जो इस प्रसंग में असंगत या वेसुरी है, न खोते हुए भाग्य-निर्दिष्ट व्यक्तियो की तरह काम करना चाहिये। असख्य मानव और अगणित आँखें हमारी ओर देख रही है। हमें उन्हे याद रखना है। अपने ही करोड़ो लोग हमारी ओर आशापूर्वक देख रहे है और करोडो अन्य लोगो की भी आशापूर्ण दृष्टि हम पर लग रही है। स्मरण रखिए कि जहाँ हम इस संविधान को जितना ठोस और स्थायी वनाया जा सकता है, वना सकते है, वहां यह भी ध्यान में रखना होगा कि सविधानो में कोई स्थायित्व नही होता। प्रत्येक संविधान में लचीलापन होना चाहिए। अगर आप किसी वस्तु को कठोर और स्थायी वना देते है तो आप राष्ट्र की वृद्धि को, एक जीवित प्राणवान् सुगठित जनता की वृद्धि को रोकते है। इसलिए इसे लचीला होना ही चाहिए। जव आप इस संविधान को स्वीकार करें, तो कुछ वर्षो की अवधि निर्दिष्ट कर दें—वह अवधि जो भी हो—जिसमें सविधान में परिवर्तन सहज में किए जा सकें। और मै समझता हूँ यह प्रस्ताव आ भी रहा है। कुछ भी हो, कई एक कारणो से यह वडा आवश्यक प्रतिवन्ध है। एक कारण तो यह है कि यद्यपि हम लोग, जो कि इस सभा में एकत्र है, निश्चय ही भारत की जनता का प्रतिनिधित्व करते है; फिर भी मै समझता हूँ यह कहा जा सकता है और सचाई से कहा जा सकता है कि जव एक नई सभा, उसे आप चाहें जो नाम दें, इस सविधान के अनुसार चुनी जायगी और भारत के प्रत्येक वयस्क को—वह स्त्री हो या पुरुष—मत देने का अधिकार होगा, तव जिस रूप में भी सभा का निर्माण होगा वह निश्चय ही जनता के हरएक वर्ग की पूर्ण प्रतिनिधि सभा होगी। इस सविधान के अन्तर्गत उस सभा को सव कुछ करने का अधिकार होगा। और यह उचित ही है कि इस प्रकार चुनी हुई सभा को, जो परिवर्तन वह करना चाहे, कर सकने की सुगमता हो। लेकिन, हर हालत में, हम यह नही चाहते, जैसा कि कुछ और वडे देशो ने किया है, कि हम सविधान को इतना कडा वना दें कि उसे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल न वनाया जा सके। विशेषकर जवकि आज संसार आन्दोलित है और हम एक तेज गति वाले परिवर्तन-काल से होकर गुजर रहे हैं, तो हो सकता है कि हम आज जो भी करें, वह कल की परिस्थितियो में उपयोगी न रह जाय। इसलिए जहां हम ऐसा सविधान तैयार करें जो कि पुष्ट हो और यथा-सम्भव वुनियादी हो, वहां उसे लचीला भी होना चाहिए, और एक अवधि तक हमें ऐसी स्थिति में रहना चाहिए कि हम उसे अपेक्षाकृत सुगमता से वदल सकें

क्या मै देश की कुछ प्रवृत्तियो के विषय मे, जिनका सम्वन्ध आज की परिस्थितियों में अलग-अलग अस्तित्व या विशेष सुविधाओ की वातों से है, फिर कुछ शब्द कहूँ ? इसी ध्येय-सम्वन्धी प्रस्ताव ने अल्पसंख्यको की, आदिवासी इलाको की, दलित और अन्य पिछड़े वर्गो की पर्याप्त रक्षा के लिए उपवंध कर दिए है। ऐसा निस्सदेह किया जाना चाहिए और यह वहुसख्यको का कर्तव्य और दायित्व है कि ऐसा किया जाय, और वे उन सभी अल्पसंख्यको का, जिनके मन में अविश्वास और भय हो, विश्वास प्राप्त करें। यह उचित और महत्वपूर्ण है कि हम भारत के पिछड़े वर्गो का स्तर ऊँचा करें और उन्हे औरो के वरावर ले आवें। लेकिन यह उचित न होगा कि ऐसा करने के प्रयत्न मे हम और रुकावटे खड़ी कर दें, या मौजूदा रुकावटो को ही कायम रखें, क्योकि हमारा अन्तिम उद्देश्य पार्थक्य नही है, वल्कि एक सुघटित राष्ट्र का निर्माण है। यह आवश्यक नही कि इस राष्ट्र में एकरूपता हो, क्योकि हमारे यहां एक विभिन्नतापूर्ण सस्कृति है, और देश के विभिन्न भागो के लोगो के रहन-सहन के ढग, आदतें और सांस्कृतिक परम्पराएँ भिन्न है। इसके विषय में मुझे कहना नही है। अन्ततः आधुनिक संसार मे जो प्रचलित संस्कृति है उसी मे दूसरो को प्रभावित करने की दृढ़ प्रवृत्ति है। लेकिन मै समझता हूँ कि भारत का यही गौरव है कि उसने दो वस्तुओ को इस तरह एक साथ चालू रक्खा है। अर्थात् एक अपार विविधता को और साथ ही उस विविधता मे एकता को। दोनों ही का रहना जरूरी है, क्योकि यदि केवल विविधता है तो उसके मानी होगे पार्थक्य और छिन्न-भिन्नता। अगर किसी प्रकार की आरोपित समानता हम ले आते है तो वह एक जीवित, सुसंगठित शरीर को निर्जीव-सा वना देती है। इस लिए जहां हमारा यह निश्चित कर्तव्य है कि हम हर एक अल्पसंख्यक वर्ग को अवसर दे और हर एक पिछड़े वर्ग को उठायें, वहाँ मै नही समझता कि यह उचित होगा, जैसा कि अव तक इस देश में हुआ है, कि विशेष सरक्षण देकर टट्टियाँ खड़ी की जाये। वास्तव में वहुसंख्यको से पृथक् करने वाली इन टट्टियो से किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग की जितनी कम रक्षा हो सकती है उतनी दूसरी चीज़ से नही। ऐसा करना इस वर्ग को सदैव के लिए अलग कर देता है और उसे देश के और वर्गो के निकट लाने में वाधक होता है।

महोदय, मै विश्वास करता हूँ कि जो कुछ मैने इस सभा में निवेदन करने का साहस किया है, उस पर, जव कि विविध धाराओ पर विचार हो, ध्यान रक्खा जाएगा और अन्त में हम इस संविधान को, उस गम्भीर क्षण की भावना के अनुसार जिसमें कि हमने इस प्रयास को आरम्भ किया, स्वीकार करेंगे।

इस पीढ़ी को कठिन परिश्रम का दंड मिला है

केन्द्रीय सिंचाई वोर्ड के सदस्यो और महाशयो, मुझे आपकी इस सभा के सम्पर्क में आने में प्रसन्नता है, और मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि इस अवसर पर आपने मुझे आमंत्रित किया। पिछले कुछ वर्षों में मैं कई प्रकार के कार्यों में दिलचस्पी रखता रहा हूँ और अपने वर्तमान पद के कारण मुझे वहुत-सी चीजो में रुचि लेनी पड़ती है। व्यक्ति और राष्ट्र के लिये जोवन स्वय एक जटिल और पेचीदा विषय है, और कभी-कभी यह कह सकना कठिन होता है कि किन्ही दो वस्तुओ में कौन अधिक महत्व की है, क्योकि इन दोनो को हम क दूसरे पर निर्भर पाते हैं। फिर भी यह सच है और इसे मैंने अनेक वार पहले कहा है और आपने भी वताया है कि भारत में नदी-घाटियो का विकास एक अत्यन्त वुनियादी और आधारभूत महत्त्व की चीज है। पिछले कई वर्षों से, मैं इस विषय में वहुत रुचि रखता रहा हूँ—इजीनियर की हैसियत से नही, क्योकि मैं इंजीनियर नही हूँ—वल्कि इसके व्यापक सार्वजनिक पहलू में, अर्थात् १ह कि वह भारत में वड़े पैमाने की योजनाओ की नींव है। योजनाओ में मेरी दिलचस्पी इसलिये रही है कि मैं इसे एक विचित्र और दुर्भाग्य की वात मानता रहा हूँ—और यह यह वात एक प्रकार से सारे ससार पर लागू होती है—कि भारत के समस्त प्रच्छन्न साधन हमारी जनता और हमारे राष्ट्र के रहन-सहन के स्तर को उठाने में उपयोग में नही लाए गए हैं।

सुदूर अतीत में एक ऐसा समय भी था जवकि कुछ यथार्थता के साथ यह कहा जा सकता था कि संसार के साधन संसार की आवादी के रहन-सहन के स्तर को उस हद तक ऊँचा उठाने के लिए पर्याप्त नही थे जिस हद तक कि इच्छा की जाती थी। अव, मैं समझता हूँ कि यह वात साधारणतम वुद्धि के व्यक्ति को भी स्पष्ट हो गई होगी कि संसार के वर्तमान साधनो के उचित उपयोग द्वारा—आगे के विकास की वात छोड़ भी दी जाय और आप चाहें तो दुनिया की वात भी छोड़ दें—हम भारत में रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर सकते है। कागज और पेंसिल की सहायता से यह दिखाया जा सकता है। पर यथार्थता यह है कि हमने उनका अच्छे-से अच्छा उपयोग नही किया, वल्कि हमने इन साधनों को विनाशक कार्यों द्वारा नष्ट होने

नई दिल्ली में, केन्द्रीय सिंचाई वोर्ड के नवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर, ५ दिसम्बर, १९४८ को दिया गया भाषण।

दिया है। यह वर्तमान पीढी की एक दुःखद घटना है और पिछली पीढियों से कही अधिक दुखद है ।

इतिहास में निर्माणकारी और विध्वसकारी शक्तियो के वीच संघर्ष वरावर मिलता है, लेकिन आज यह और भी तीव्र रूप मे देखा जाता है। राष्ट्रों के एक-दूसरे के प्रति रुख में, वर्गों के वीच, और अन्त मे शायद मनुष्य की आत्मा में भी यह संघर्ष देखने को मिलता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा भविष्यवक्ता नही हो सकता कि यह वता सके कि क्या होनेवाला है। फिर भी, यदि किसी व्यक्ति में यह विश्वास हो कि निर्माणकारी और रचनात्मक प्रयास की विजय होगी तो वह फलदायक रूप से काम कर सकता है। मुझे कुछ भी संदेह नही कि उसकी विजय होगी, लेकिन मै नही जानता कि विरोधी शक्तियाँ योजना के और मानवता के स्तर को ऊँचा करने के कार्य में विलम्ब डाल कर कितनी क्षति पहुँचायेंगी।

तो, हमे इन विशाल प्रच्छन्न साधनों को काम में लाना है। एशिया और भारत के नक्शे को देखिए। मेरे कमरे मे और मेरे दफ्तर में यह मेरे ऊपर झांकता रहता है, और जव कभी मै उसे देखता हूँ तो तरह-तरह के चित्र मेरे सामने आते है। ये चित्र अपने इतिहास के लम्वे अतीत के, सवसे आरम्भिक अवस्थाओं से लेकर मनुष्य के क्रमिक विकास के, वडे कारखानो के रास्तो के, संस्कृति, सभ्यता और कृषि के आदिकालीन उपक्रम के, और उन प्रारम्भिक दिनो के जवकि शायद पहली नहरे बनी थी और सिंचाई सम्वन्धी निर्माण हुये थे और उनके परिणामस्वरूप होनेवाली वातो के होते है। तव मै भविष्य का विचार करता हूँ। मेरा ध्यान विशाल पर्वतो के उस भीमकाय विस्तार पर जाता है जिसे हिमालय कहते है, जो कि हमारी पूर्वोत्तर सरहद की रक्षा करता है। इन्हे देखिए। इनकी कल्पना कीजिए। क्या आप संसार के और किसी ऐसे भाग की कल्पना कर सकते हैं कि जो विस्तार में इसके समान हो, जो प्रच्छन्न शक्ति और सामर्थ्य का ऐसा ही भंडार हो? मै संसार का कोई ऐसा स्थान नही जानता जहाँ इतनी अपार शक्ति वन्द पड़ी हो जितनी हिमालय में और उससे निकलनेवाली नदियो में है। हम इसका कैसे उपयोग करें? इसके वहुत-से तरीके है। मुख्यतया यह इंजीनियरो का काम है कि वे इस संचित शक्ति का उपयोग जनता के लाभ के लिए करे। आप इंजीनियरों का यह कर्तव्य होता है कि इस काम में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और फलप्रद भाग लें। इस दृष्टि से भारत में इंजीनियर का पेशा और काम वडे ही महत्त्व और मार्के का हो जाता है।

इतिहास के किसी विशेष काल में आप किसी राष्ट्र की वृद्धि का अनुमान यह देख कर कर सकते है कि राष्ट्र के किस वर्ग ने औरों की अपेक्षा उस काल में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। एक समय आप पा सकते है कि जमीदार, जो कि भूमि का स्वामी है, उच्च पदस्थ होता है, और उसकी वडी प्रतिष्ठा होती है। इससे आप

उस समय के समाज की कल्पना कर सकते हैं। इसी तरह आप देखेंगे कि विभिन्न पेशे विभिन्न कालो में सबसे आगे रहे है और आप उस समय की सामाजिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में किसी परिणाम पर पहुँच सकते हैं और यह पता लगा सकते हैं कि वह स्थिर है या रचनात्मक है या उसका विकास गतिशील ढग से निर्माणकारी है। पिछले लम्बे इतिहास क. न भी ले, तो भी कुछ समय पहले अर्थात् पिछली एक-दो पीढ़ियो में भारत के सम्बन्ध में यह बड़ी रोचक और विचारणीय बात है कि दो रास्ते ऐसे थे जिन पर लोगो की दृष्टि रहती थी। एक तो सरकारी नौकरी थी, विशेषकर शासन के महकमो से सम्बन्ध रखनेवाली नौकरी। बेशक किसी राज्य का शासन अच्छी तरह संचालित होना चाहिए, यह आवश्यक है। लेकिन भारत की शासन-सम्बन्धी नौकरी कुछ असाधारण प्रकार की थी। एक हद तक यह अच्छी थी, क्योंकि जो उसका उद्देश्य था उसे वह पूरा करती थी। उसके और उद्देश्य नहीं थे। उसका वास्तव में यह उद्देश्य नहीं था कि सरकार में या जनता मे एक सामाजिक दृष्टिकोण का विकास हो। लेकिन जहां तक उसका अपना काम था, उसने उसे ठीक किया। शायद तीस, चालीस, या पचास वर्ष पहले यह कहा जा सकता था कि हर एक भारतीय की यह आकाक्षा रहती थी कि वह भारत की शासन सम्बन्धी नौकरी का अंग बने, क्योंकि इसमे सम्मान और कुछ मात्रा मे शक्ति प्राप्त होती थी और काफी वेतन मिलता था और रौब-दाब रहता था। लगभग इसी समय एक और कार्य भी प्रमुखता प्राप्त किए हुए था। जो लोग सरकारी सेवा में नही जाते थे, उनके लिए ख्याति, धन आदि की प्राप्ति का साधन वकालत का पेशा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछली दो या तीन पीढ़ियो में नवयुवक भारतीयो की सर्वोच्च आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ये दो चोटियां थी: शासन सम्बन्धी उच्च सरकारी नौकरियो में उन्नति करना और वकालत के पेशे में उन्नति करना। वेशक और देशो में भी ऐसा रहा है। अब ये दोनो अर्थात् वकालत का पेशा और शासन सम्बन्धी सेवाएँ, मेरी समझ से अपने-अपने ढग पर उपयोगी होते हुए भी (यद्यपि वकालत के पेशे के विषय में मुझे कुछ सदेह है), समाज के एक निश्चल दृष्टिकोण का, जो न मूलतया परिवर्तनशील है और न गत्यात्मक, प्रतिनिधित्व करती है। वकील हमेशा नजीरो की बात करता है। शासक परम्परागत परिचलन के आधार पर अपना काम करता है। यह हो सकता है कि शासक या वकील गतिशील रहे हों, लेकिन वे समाज के एक गतिहीन, अपरिवर्तनशील दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते है। लेकिन कोई देश पूर्णतया परिवर्तनहीन नही हो सकता। आप जानते हैं कि वकीलो ने ही राष्ट्रीय आन्दोलनो में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। यह दूसरे देशो में भी इसी रूप में हो सकता है। आज आप देखेंगे कि राष्ट्रीय आन्दोलन में या राष्ट्रीय उद्योग के दूसरे प्रकारो में वकील का भाग एक बढते हुए क्रम से कम हो गया है। अपने विशिष्ट कार्यक्षेत्र में अब भी उसका महत्त्व है, लेकिन वह महत्त्व एक अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से, जैसा कि पहले था, उससे बहुत ही कम हो गया है। भारत में

प्रादेशिक शासको का अब भी महत्त्व है, जैसा कि शासको का होता है। लेकिन उनका पहले जितना महत्त्व था उससे अब बहुत कम हो गया है।

आज के नवयुवक की उच्च अभिलाषा क्या होती है? यह हो सकता है कि आकांक्षाओ में विभिन्नता हो, लेकिन मुझे इसमें सदेह है कि पहले जितने लोग वकालत या शासकीय नौकरियो के अभिलाषी थे उतने अब भी है। अब वे और बातो को भी सोचते है। वे राजनीतिज्ञ के जीवन पर विचार करते है और सचिव पदो या मत्रिपदो आदि के विषय में सोचते है। किसी के लिए यह बहुत सुखद शिक्षा-क्षेत्र नही, लेकिन फिर भी लोग इस दिशा मे देखते है। वे हमारी प्रतिरक्षा-सेवाओं, सेना, हवाई सेना और नौ-सेना में सम्मिलित होने की बात सोचते हैं। वे अर्थशास्त्री होना चाहते है, क्योकि आज की दुनिया में अर्थशास्त्री का महत्त्व है। वे इंजीनियर होने की बात सोचते है, क्योकि इंजीनियर बड़ा प्रभाव रखते है और रखेंगे। आप देखते है कि हमारे समाज की निश्चल प्रवृत्ति अब क्रमशः बदल कर कुछ गतिशील हो रही है, और यह लोगो की अथवा व्यक्ति की इस प्रेरणा में लक्षित होती है कि उसे क्या पेशा अपनाना चाहिए।

आज का संसार जैसा है वह बहुत ही गतिशील है। यह ठीक भी है, और अनिवार्य भी, भले ही हम इस विषय में असफल रहे हो। आज का संसार एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवस्था में है, अतएव आप अपने को बदलने की कोशिश किए बिना रह नही सकते। नही तो आप कठिनाई में पड़ जाएँगे। हम एक ऐसे जमाने से गुजरे है—काफी लम्बे जमाने से—यद्यपि भारत के लम्बे इतिहास को देखते हुए वह बहुत छोटा ही था, जो कि बेशक बदलता हुआ था।

लेकिन एक दूसरे अर्थ मे वह जमाना परिवर्तनहीन भी था—मेरा तात्पर्य है हमारे इतिहास के ब्रिटिश काल से। परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप में भी होते है और अप्रत्यक्ष रूप में भी, लेकिन जब एक बाहरी बड़ी शक्ति किसी स्थिति पर वशवर्ती हो जाती है, तो देश के भीतर काम करने वाली विविध शक्तियां, उस शक्ति द्वारा दबा दी जाती है और वे सहज में परस्पर संतुलन और समन्वय खो बैठती है। यह सतुलन प्राप्त करने का काम एक विकासवादी क्रम मे या एक क्रान्तिकारी क्रम में, शान्तिपूर्ण ढंग से अथवा हिंसात्मक ढंग से होता है। किसी भी मानव-समाज में संतुलन प्राप्त करने का प्रयास सदा होता अवश्य है, और जब तक इसे सफलता नही मिलती तब तक उपद्रव होता रहता है। जब कोई बाहरी माध्यम उस संतुलन की प्राप्ति में बाधक होता है, तो तत्काल परिणाम अच्छा भी हो सकता है। लेकिन होता प्राय- यह है कि समस्याएँ इकट्ठी होती रहती है और उन्हे इतिहास अपने ही ढंग से हल करता है, जो कभी तो शान्तिपूर्ण ढंग से होता है और कभी रक्तपात से।

अगर आप उसे हल नही करते, तो आप उस समस्या को ही समाप्त करके उसका हल प्राप्त करते हैं। राष्ट्रों और वर्गों के साथ भी ऐसा ही होता है। लेकिन जब कोई असाधारण माध्यम इस हल में बाधक होता है, तो समस्याएँ इकट्ठी हो जाती हैं। इस प्रकार, भारत में समस्याएँ इकट्ठी होती रही। भारतीय रियासतो की समस्या निस्सन्देह हल हो गई है। हमारी कृषक समस्याएँ जिन्हे कि बहुत पहले हल हो जाना चाहिए था, खिचती रही, खिचती रहीं, यहां तक कि हमें अब तुरन्त उनका सामना करना पड़ रहा है और उन्हे जल्दी में हल करना पड़ रहा है, जबकि उन्हे क्रमश: और कहीं अच्छे ढंग से हल होना चाहिए था। अब चूकि समस्याएं इकट्ठी हो गई हैं, हमें आज एक नही बल्कि अनेक—समस्याओ का सामना करना पड़ रहा है। यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि आप और समस्याओ को अलग करके केवल एक या दो समस्याएँ पहले उठाएँगे। हम ऐसा कर ही नहीं सकते। क्योकि अगर हम कुछ समस्याओ के हल करने के सम्बन्ध में अपने प्रयत्न में ढील डाल दें और केवल एक या दो समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, तो दूसरी समस्याएँ हमें अभि-भूत कर लेंगी। हम शरणार्थियों की समस्या को ही ले लें। इनकी संख्या करोड़ो में है। परन्तु मूलत. यह कोई आधारभूत समस्या नही है। यह एक स्वल्पकालीन समस्या है। लेकिन है अत्यन्त महत्त्व की, क्योकि इसके साथ बहुसंख्यक मानवो और उनके जीवन का सम्बन्ध है, और जब बहुसंख्यक मानवो के जीवन का प्रश्न हो, तो राष्ट्र के लिए वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या हो जाती है। हम इस मानवीय साधन को नष्ट और विच्छिन्न नही होने दे सकते। इस समस्या के मानवीय पहलू पर ध्यान न देकर अगर हम इसकी अवहेलना करने का प्रयत्न करें तो मामला बिगड़ता ही जायगा और दूसरी समस्याओ के हल करने के मार्ग में भी बाधा पड़ेगी।

हमें इन इकट्ठी समस्याओ का कुछ हद तक एक साथ ही सामना करना होगा। आदमी को विविध मोर्चो पर काम करना पड़ता है और यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक मोर्चे पर ठीक ठीक प्रगति हो रही है। ऐसा हो सकता है कि आप एक मोर्चे पर आगे बढ़ें और दूसरे मोर्चे पर रुकावट आ जाय और आपको रुकना पड़े। ऐसे ही अवसरो के लिए योजनाओं की उपयोगिता है और योजना बनाना आवश्यक हो जाता है।

भारत में योजनाओ के विषय में हम काफी समय से बात करते आए हैं। मेरा स्वयं योजना-व्यवस्था और इसी तरह की बातो से सपर्क रहा है। मुझे यह सोचकर अत्यन्त निराशा की भावना स्वीकार करनी पड़ती है, कि हमारे सभी प्रयत्नो के बाव-जूद परिणाम उतने अच्छे नहीं दिखाई दिए जितने हम चाहते थे। मैं कही अधिक अच्छे परिणामो की आशा करता था और कही अधिक अच्छे परिणाम होने चाहिए थे। अब तक क्या हुआ और इस विषय में हमारी क्या कठिनाइयाँ या विफलताएँ

हमारे लिए रही, यह समझना जरूरी है। और इसके लिए यह जरूरी है कि हममें से कोई व्यक्ति, चाहे वह प्रधान मंत्री हो या सचिव या राज्य के अन्य ऊँचे पद पर स्थित हो, किसी समस्या के विषय मे जिस की उस पर जिम्मेदारी रही हो, यह न समझे कि विफलता की जिम्मेदारी किसी दूसरे पर है या दोष किसी दूसरे का है, बल्कि यह समझे कि यदि कोई विफलता होती है तो उसके लिए वह ही जिम्मेदार है। हम सब में इस बात की अत्यधिक प्रवृत्ति है (और मै फिर कहूँगा कि मै इस श्रेणी मे प्रधान मंत्री तथा अन्य मत्रियो को भी सम्मिलित करता हूँ) कि हम विफलता का आरोप सदा दूसरे पर करे। अगर हर एक व्यक्ति अपने नियत कार्य को सोचे और यह भी सोचे कि वह उसमे विफल रहा है, तो समस्या को हम अधिक अच्छी तरह से निबटा सकेगे। वस्तुस्थिति यह है कि हर एक बड़े कार्य मे ऊपर से लेकर नीचे तक बहुत से लोगो के सहयोग और परिश्रम की आवश्यकता होती है और अगर इस सहयोग का, साथ मिल जुल कर काम करने की इस भावना का, अभाव हुआ तो वह काम ठीक से नही हो पाता या उसमे देर होती है। तब इससे कुछ विशेष लाभ नही कि हम एक दूसरे पर दोषारोपण करें, यद्यपि कभी-कभी यह आवश्यक भी होता है। हमे इस देश मे हर एक क्षेत्र मे विविध काम करने है। किसी ने एक बार कहा था कि हम लोग इतिहास के ऐसे युग मे उत्पन्न हुए है जो कि परिवर्तन-शील भी है और क्रान्तिकारी भी, और बहुत कल्पनातीत बाते घटित हो रही हैं। अब इन कल्पनातीत घटनाओ का उलाहना देने से कोई लाभ नहीं है। चूंकि हमने जन्म लिया है, इसलिए हमे उनका सामना करना है। हम उनसे बच नही सकते। और जब बच नही सकते तो हमे उनका सामना मर्दों की तरह करना चाहिए और कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। मुझे भय है कि हमारी पीढ़ी मे (आने वाली पीढ़ियों के विषय में मै नही जानता) चैन या वास्तविक शान्ति नही मिल सकती। हमारी पीढ़ी के भाग्य मे पिछले श्रम के परिणामस्वरूप प्राप्त अवकाश और शान्ति नही। हमारे सामने तो काम करने और परिश्रम करने का ही दृश्य है। इस पीढ़ी को कठिन परिश्रम का दंड मिला है। यह कठिन परिश्रम निर्माणकारी कार्य के रूप में हो सकता है जो चाहे जितना कठिन हो, समाज को और राष्ट्र को ऊपर उठायेगा, यह परिश्रम फलहीन भी हो सकता है या बुरी दिशा मे भी ले जा सकता है, लेकिन कठिन परिश्रम से आप बच नही सकते। इसलिए हमे चाहिए कि इस कठिन परिश्रम को निर्माणकारी और रचनात्मक दिशाओ मे ले चले, जिससे कम से कम इस पीढ़ी के सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि हमने अपने देश का निर्माण करने मे जहां तक हो सका सहायता दी, जिससे कि बाद की पीढ़ी और उसके बाद आने वाली पीढ़ियो को पूरा अवकाश प्राप्त हो सके—यद्यपि मै यह बात बहुत अधिक नही चाहता कि किसी व्यक्ति को बहुत अवकाश रहे, लेकिन कुछ अवकाश मिलना ही चाहिए। कदाचित् अवकाश की इतनी आवश्यकता नही है। किस प्रकार का कार्य करना पड़ता है, यह अवकाश से अधिक आवश्यक है। जो भी हो मुझे

भय है कि मैं अपने विचारों और कल्पना में कुछ टेढ़े मेढ़े पथ पर चला गया। मैंने श्री खोसला के भाषण को ध्यान से सुना है। मैं कह सकता हूँ कि प्रायः सभी बातों से जो कि उन्होंने अपने भाषण में बताईं, मैं सहमत हूँ। उनके दृष्टिकोण को मैंने पसन्द किया, और मैं आशा करता हूँ कि इस बोर्ड का और भारत के इंजीनियरों और सरकार का दृष्टिकोण भी यही होगा। मैं यह अवश्य चाहूँगा कि जो इंजीनियर यहां उपस्थित हैं वे यह अनुभव करें कि इंजीनियरो पर आज बड़ा दायित्व है और निर्माण-कारी उद्योग की महान् जिम्मेदारी है और भविष्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वे अपने कर्तव्यो का किस तरह पालन करते हैं और किस भावना से वे उनका पालन करते हैं। हम चाहते हैं कि आप अपने कार्यों में प्रथम श्रेणी की कुशलता दिखावें, क्योकि दूसरी श्रेणी का काम कभी अच्छा नही होता। वह राष्ट्र के लिए बुरा होता है। लेकिन उसके अतिरिक्त, हम यह भी चाहते हैं कि आप अपने कार्य में एक उच्चतर भावना का अर्थात् रचनात्मक कार्यों को अत्युत्तम ढंग से पूरा करने की और विशेष ध्येयो और आदर्शों की पूर्ति की भावना का समावेश करें जो कि आपके कार्य को आप लोगो से भी बड़ा बना सके। आप मध्य युगो को या और भी पुराने समय को लौट कर देखें, तो आप पुरानी इमारतो, प्राचीन निर्माणो, मन्दिरो, गिरजाघरो, मसजिदो और इसी तरह की चीज़ो को देखेंगे। कोई नही जानता कि किन लोगो ने उन्हें बनाया; लेकिन जो भी उन्हे देखता है यह कह सकता है कि वे लोग बड़े कुशल निर्माणकर्ता और इंजीनियर ही नही थे, बल्कि वे अपने काम में आस्था रखने वाले भी थे। जब तक यह आस्था न हो तब तक कोई भी व्यक्ति किसी सुन्दर वस्तु का निर्माण नही कर सकता। यूरोप के विशाल गिरजाघरो को देखिये। बहुत कम लोग यह जानते होगे कि उनके बनानेवाले कौन थे, लेकिन हम यह जानते हैं, क्योंकि प्रमाण हमारी आखो के सामने है, कि वे इंजीनियर और निर्माणकर्ता के विश्वास की मूर्ति हैं। यह बात हमारे महान मन्दिरो और मसजिदो और इमारतो के विषय में भी ठीक उतरती है। अब हम एक दूसरे ही युग में रह रहे हैं। हम मसजिदो, गिरजाघरो और मन्दिरो के निर्माण में उतना उत्साह नही दिखाते, बल्कि दूसरे प्रकार के सार्वजनिक निर्माणो में उत्साह रखते हैं। लेकिन इन सार्वजनिक निर्माणो को भी उत्तम और सुन्दर होना चाहिए, क्योकि वह आस्था मौजूद है। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप इस भावना से काम करें और यदि आप इस भावना और इस आस्था से काम करेंगे, तो आपको इससे स्वतः आनन्द प्राप्त होगा।

मैं एक और छोटे से विषय पर कुछ कहना चाहूँगा। श्री खोसला ने पारिभाषिक शब्दो के हिन्दी कोष के विषय में कुछ कहा है। मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई है। लेकिन क्या मैं आपको सतर्क कर दूं कि पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करते हुए आप कुछ ऐसी चीज न तैयार कर ले, जिसे कि साधारण आदमी न समझ सके। आज ऐसा करने की बहुत अधिक प्रवृत्ति है। मेरा अपना खयाल है कि जो विदेशी

शब्द इस देश मे चल निकले है उन्हे बनाए रखना चाहिए, कुछ तो इस लिए कि वे चालू है और कुछ इसलिए कि वे शेष संसार में प्रचलित है और हमारी शब्दावली में वैज्ञानिक और शिल्प सम्बन्धी जितने शब्द समान हो, उतना ही अच्छा है। विज्ञान और शिल्प मे विभाजन करने वाली सरहदें नही होतीं। कोई अँग्रेजी विज्ञान, फ्रांसीसी विज्ञान, अमरीकी विज्ञान, चीनी विज्ञान की बात नही करता और न किसी को करनी चाहिए। भारतीय विज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। यही बात शिल्पकला के विषय मे भी है। इन प्रश्नो को संकीर्ण राष्ट्रीय ढंग से देखने का यह महान धन्धा अन्त में आप के विज्ञान को और शिल्प को संकीर्ण बना देगा। ऐसी विशेष शब्दावली का निर्माण, जो न जनसाधारण को और न संसार में और किसी को मालूम हो, वास्तव में आपको ज्ञान के प्रवाह से अलग कर देगा और साथ ही आपको अपने ही लोगों से पृथक कर देगा जो आपकी पारिभाषिक शब्दावली को न समझेंगे। इस तरह आप अपने को कुछ ऐसा बना लेंगे जिसे न कोई समझता है न जिसकी कोई परवाह करता है।

मनुष्य के आत्मोत्सर्ग का लेखा

मैं यहाँ भारत सरकार की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करने के लिये आया हूँ। सरकार की हैसियत से स्वभावतया हम अनेक कार्यों में रुचि रखते हैं और प्रधान मंत्री की हैसियत से मुझे अनेक मंचों पर आना और विविध विषयो पर कुछ न कुछ कहना होता है। लेकिन मुझे सदेह है कि कोई भी विषय, सुनने के ख्याल से, और कभी कभी बोलने के ख्याल से भी, उतना रोचक होगा जितना कि इतिहास का विषय है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इतिहास का केवल प्रेमी होने के कारण इतनी बड़ी संख्या में विशेषज्ञो से मिलकर मैं किंचित् अभिभूत होता हूँ। पर इतिहास-प्रेमियो का भी अपना एक स्थान होता है, और शायद कभी कभी वे एक झाड़-खड पर समग्र रूप से अधिक अच्छी तरह दृष्टि डाल सकते हैं जब कि विशेषज्ञ अलग-अलग वृक्षो के पर्यवेक्षण में ही व्यस्त रह सकते हैं।

हम इतिहास की बात करते हैं और मैं समझता हूँ कि लोगों का इतिहास को देखने का अलग-अलग ढंग है। आपका जो भी ढंग हो और जो भी दृष्टि-कोण हो, चाहे आप पुराने और बिल्कुल दकियानूसी ढंग से इसे राजाओं के कृत्यो और युद्धो और इस तरह की चीजो का लेखा समझें, चाहे उसे सामाजिक और आर्थिक उन्नति या सांस्कृतिक उन्नति, या समग्र प्रकार से मानवता के विकास के लेखे के रूप में देखें; चाहे वह किसी एक देश या राष्ट्र का इतिहास हो, और चाहे उसे ससार के इतिहास की पृष्ठभूमि में देखा जाय, जैसा कि स्वभावतया उसे देखा जाना चाहिए, अनिवार्य रूप से सब का आधार तथ्यो का एकत्रीकरण और आलेख और मान्य तत्त्व हैं। आदमी इतिहास के विषय में अपने विचार यत्र-तत्र एकत्रित ज्ञान और मान्यताहीन तत्वों के आधार पर बनाता है। इसलिए ऐतिहासिक आलेखो के विषय में एक शोधमंडल इतिहास के उचित निर्माण के लिए बहुत ही आवश्यक है। यह हिस्टारिकल रेकार्ड्स कमिशन अपनी रजत जयन्ती मना रहा है। इस अवसर पर जो कुछ कार्य इसने अब तक किया है और जो मैं आशा करता हूँ यह भविष्य में और भी उत्साह के साथ करने जा रहा है, उसके लिए यह बधाई का पात्र है।

मैं नहीं जानता कि आप लोगो में से बहुत से लोग जब किसी ऐतिहासिक विषय

'इंडियन हिस्टारिकल रेकार्ड कमिशन' के रजत जयन्ती अधिवेशन का उदघाटन करते हुए नई दिल्ली में, २३ दिसम्बर १९४८ को दिया गया भाषण।

पर विचार करते है तो क्या अनुभव करते है। मै अपने लिए कह सकता हूँ कि इतिहास के विषय में मेरी वेहद दिलचस्पी है और उसके लिए आकर्षण है, और जब मै इस लम्बे प्रवाह पर विचार करता हूँ तो मेरा मन कुछ ऊँचा लगता है। और मै न केवल दिलचस्पी वल्कि ज्ञान की प्रेरणा या ज्ञान या यह सब कुछ ग्रहण करता हूँ। मै नही जानता कि आदमी इससे समग्ररूप से सदा प्रेरणा प्राप्त करने में सफल होता है। उसे अकसर इसके ऐसे दूसरे पहलू मिलते है जो प्रेरणा देने से बहुत दूर है। हर हालत मे आदमी को वर्तमान को समझने के लिए और भविष्य कैसा हो इसको समझने का प्रयत्न करने के लिए, इसकी शरण मे जाना पड़ता है। लोग कहते है कि इतिहास अपने को दुहराता नहीं। मै समझता हूँ यह सही है। फिर भी किसी वात को समझने के लिए, उन शक्तियो और उन घटनाओं की जड़ो तक पहुँचने के लिए जो आज हो रही हैं, यही एक आधारभूत तत्व है जो आपको प्राप्य है, नही तो आपको अपनी कल्पना का आधार ग्रहण करना पड़ता है।

इतिहास, जैसा कि एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, 'मनुष्य के आत्मोत्सर्ग का लेखा' है। शायद सत्य यही है। यह प्रत्येक आत्मोत्सर्ग के सूली पर चढने के अनन्तर पुनर्जीवन प्राप्त करने का भी लेखा है। इस तरह आप आत्मोत्सर्ग और सूली पर चढ़ने की क्रिया के अनन्तर नवजीवन प्राप्त करने का क्रम वरावर चलता हुआ देखते है। आप इतिहास को मानवता की, मनुष्य की आत्मा की आगे वढती हुई यात्रा समझ सकते है। फिर भी हम यह देख कर ठिठक जाते है कि किस तरह इस अग्रगामी यात्रा मे व्यवधान होता है, और हमें पीछे फेक दिया जाता है।

मै समझता हूँ कि प्रत्येक युग अपने को परिवर्तन का युग समझता है। फिर भी, मै अनुमान करता हूँ कि हमारे इस विचार में कि वर्तमान युग, जिसमे हम रह रहे है, विशेष रूप से एक परिवर्तन और तवदीली का युग है, सचाई का कुछ अश है। कम से कम, जिन समस्याओं का सामना हमें करना पड़ता है, वे और समस्याओ की अपेक्षा कही वड़ी और कही तीव्र जान पड़ती है। यह कुछ तो इसलिए भी है कि इनका विस्तार वढ़ गया है। आज की प्रत्येक समस्या लोकव्यापी समस्या वन जाती है। आधुनिक घटनाओ को या उस इतिहास को, जिसका कि निर्माण हो रहा है, किसी एक देश या राष्ट्र या इलाके के इतिहास के रूप में समझना आज विल्कुल असम्भव है। आज आप को अनिवार्यत. समग्र संसार की वात सोचनी पड़ती है। वेशक इस वड़ी तस्वीर के प्रत्येक छोटे पहलू को आप देख सकते है, और आपको देखना चाहिए। आप उन्हे ज्यादा नज़दीक से देख सकते है। लेकिन एक विशिष्ट देश के इतिहास की ऐसी कल्पना, जिसके अन्तर्गत राजाओं और सम्राटो के नामों को रट लेने का क्रम आता है, मेरी समझ से वहुत पहले समाप्त हो चुकी है। मै नही कह सकता कि भारत के स्कूलो और कालिजो से भी यह क्रम उठ गया है या

नहीं, लेकिन कम से कम मैं आशा करता हूँ कि वह समाप्त हो चुकी है, क्योंकि बच्चों के लिए राजाओं के शासन और युद्धो के विवरण पढ़ने से अधिक निरर्थक वस्तु की कल्पना मैं नहीं कर सकता।

इतिहास का दूसरा पहलू अर्थात् सामाजिक पहलू या सामाजिक संगठन का विकास अब कहीं अधिक सामने आएगा। पर साधारण मनुष्यो के जीवन के विषय में हमें अपेक्षाकृत कही गहरी खोज करने की आवश्यकता है। हो सकता है कि सौ या हजार वर्ष पहले के घरेलू आय-व्यय के लेखे में एक सौ या एक हजार एक बातें हमें मिल जायें जिससे कि हमें इस बात का कुछ अनुभव हो सके कि पिछले युग में मनुष्य का जीवन कैसा था। तभी हम इतिहास के शुष्क ढाँचे पर जीवन और मांस-रक्त का आवरण चढा सकते हैं। मैं स्वीकार करूँगा कि अब भी बावजूद इस माने हुए नए दृष्टिकोण के, इतिहास की अधिकतर पुस्तकें, और इतिहास सम्बन्धी अधिकतर निबन्ध जो प्रकाशित होते हैं, उनका विषय भले ही रोचक हो, मुझे अद्भुत रूप से निर्जीव और प्राणहीन जान पड़ते हैं। वे केवल शुष्क ठठरियाँ हैं, उनमें रक्त और मास नही। मैं अनुमान करता हूँ कि इतिहास के पढने, लिखने और समझने का एक ही वास्तविक तरीका है, वह यह कि मन में एक ऐसे सजीव समाज का चित्र जागृत किया जाय जो कि अपने काम में लगा हुआ है, विचार कर रहा है, जिसमें मनुष्यो के सभी गुण-दोष देखने को मिलते हैं और जो क्रमश. उन्नति की दिशा में या किसी दूसरी दिशा में चढ़ रहा है। उसके लिए भी, मैं अनुमान करता हूँ दो बातें आवश्यक हैं, एक तो यह कि विस्तार की बातो का अधिक घनिष्ठ ज्ञान हो, जिसे कि इस कमिशन को एकत्र करना और लोगो तक पहुँचाना चाहिए, और दूसरी यह कि इस प्रकार के मस्तिष्क की आवश्यकता है जो इन विस्तार की बातो को जामा पहना सके और उन्हें जीवन का सादृश्य प्रदान कर सके। मैं आशा करता हूँ कि यह हिस्टोरिकल रेकार्ड्स कमिशन और इससे सम्बन्धित विख्यात इतिहासकार जो कि सामग्री एकत्र करेंगे और उस पर प्रबन्ध और निबन्ध और पुस्तकें लिखेंगे, सदा इन दो बातो का ध्यान भी रखेंगे। एक तो यह कि उन्हे सदा एकमात्र अपने साथी इतिहासकारो के लिए ही नही लिखना चाहिए। उनकी मोहक परिधि के बाहर भी और लोग हैं जिन तक उनकी पहुँच होनी चाहिए। मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि साधारण पारिभाषिक या वैज्ञानिक निबन्ध इस हद तक उस मोहक परिधि के भीतर के लोगो के ही लिए या उन के लिए जिनकी कि विषय के किसी विशिष्ट संकीर्ण पहलू में रुचि है लिखा गया होता है या कम से कम लिखा गया जान पड़ता है कि जनता के अपेक्षाकृत बड़े भाग को उसमें रुचि नही हो पाती। अतः इस प्रकार के कमिशन को, निश्चय ही, एक अधिक विस्तृत वातावरण में कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए और एक ज्यादा बड़े जन-समुदाय के मस्तिष्क के लिए रोचक बनने का प्रयत्न करना चाहिए—ऐसे सम्प्रदाय के लिए जो कि बुद्धि या थोड़ी बहुत समझ

रखता है। लोक-प्रियता के उद्देश्य से लिखना अर्थात् पांडित्य से हट कर लिखना एक नए ही प्रकार का दृष्टिकोण जान पड़ता है। मै नही समझता कि वास्तविक पांडित्य और इस लोकप्रिय दृष्टिकोण के बीच अनिवार्यतः कोई पारस्परिक विरोध है। ऐसे निबन्धों और लेखो मे, जिन्हें मै कभी-कभी देखता हूँ, अचेतन रूप से, इस तथ्य को भुलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है, कि एक अपेक्षाकृत बड़ा जन-समुदाय है जिसे सम्बोधित करना है या करना चाहिए। मेरी समझ मे यह ठीक नही, क्योकि इससे आप अपने को उस वृहत्तर जन-समुदाय से अलग कर लेते है। आपको उसका समर्थन प्राप्त नही होता, और वह अपेक्षाकृत बडा जन-समुदाय आपके परिश्रम का लाभ नही उठा पाता। दूसरी यह कि जिस विषय में भी आप अनुसन्धान करें, यद्यपि अनिवार्य रूप से आप एक विशिष्ट विषय पर अनुसंधान करेंगे, उस विषय पर इस रूप में साधारणतः विचार होना चाहिए कि वह एक वृहत्तर और व्यापक विषय से संबंधित है। नही तो, आपकी रुचि के एक फुटकर प्रसंग से अधिक उसका कोई वास्तविक मूल्य नही रह जाता, क्योंकि यदि किसी बात को समझा जाता है, तो उससे संबंधित सभी बातों को समझने की आवश्यकता होती है। नही तो उसका कोई अर्थ नही रह जाता। जब हम घटनाओ के एक-दूसरे से सबधित होने के प्रश्न पर विचार करते है, तो सामने एक विशाल क्षेत्र खुल जाता है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक अन्य वस्तु से संबंधित है, कोई वस्तु अलग-थलग न हीं। जीवन का प्रत्येक पहलू किसी न किसी रूप मे दूसरे पहलू से लगाव रखता है और एक राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक पहलू का दूसरे राष्ट्रो के जीवन से लगाव है। कुछ हद तक ऐसा पहले भी रहा है। लेकिन इस युग में यह बहुत स्पष्ट हो गया है, क्योकि सभी तरह की बाते है जो कि राष्ट्रो को एक दूसरे के सन्निकट ले आती हैं, चाहे वे परस्पर प्रेम न रखते हो। इसलिए इस बात का ध्यान रखते हुए हर एक छोटे विषय को देखना चाहिए। मै यह भी कहूँगा, यद्यपि कदाचित् यह कही अधिक कठिन कार्य होगा कि इसका समन्वित ऐतिहासिक दृष्टिकोण से क्या सम्बन्ध होगा, इस पर भी विचार करना चाहिए। इतिहास को इस रूप में देखा जा सकता है या नही, मै नही कह सकता। लेकिन मानवीय मस्तिष्क वस्तुओ को समन्वित रीति से समझने का प्रयत्न करता है। नही तो उनका कोई महत्त्व नही रह जाता, और हमे इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि जो घटनाएँ घटती है उनका एक दूसरे से सम्बन्ध नही होता। वे आकस्मिक, और अनियमित ढग से घटती है। इस विषय को इस रूप में देखते हुए, आदमी को यह विचार करना होगा कि इतिहास क्या है ? क्या मै कहूँ कि वह मानवीय उन्नति का एक लेखा है, मनुष्य के मस्तिष्क, मनुष्य की आत्मा के किसी ज्ञात या अज्ञात ध्येय की ओर अग्रसर होने के संघर्ष का लेखा है। इस रूप में यह एक बहुत ही रोचक अध्ययन हो जाता है। अन्ततः यह सत्य हो या न हो, फिर भी यह एक सूत्र हमें दे देता है जिससे कि अलग-अलग घटनाओं को एक साथ पिरोया जा सके। शुरू में, मै अनुमान करता हूँ कि इतिहास एक मात्र राजनीतिक लीक पर लिखागा जाता था, और उनके

साथ, बहुत से और पहलू संबंधित होते थे—धार्मिक और कुछ हद तक सांस्कृतिक भी।

फिर आर्थिक पहलू पर बड़ा जोर दिया गया और निश्चय ही यह बड़े महत्व का पहलू है। किसी ने यह कभी नही कहा कि आर्थिक पहलू ही एक मात्र पहलू है—यह बेतुकी बात होगी—लेकिन यह एक महत्वपूर्ण पहलू है, और एक विस्तृत अर्थ में इसमें सांस्कृतिक पहलू भी आ जाता है। लेकिन इतिहास के इन जुदा-जुदा और विभिन्न पहलुओ से अलग, मै समझता हूँ, कुछ ऐसी चीज़ है, जिसकी मै परिभाषा नही कर सकता। कह लीजिए कुछ ऐसा समझने का प्रयत्न है कि इतिहास के इस सारे प्रवाह का अर्थ क्या है, वह किधर जा रहा है और स्वयं उसके कोई मानी है या नही। मै अनुमान करता हूँ कि अन्ततः प्रायः सभी समस्याओं को, जिनका कि सामना हमें संसार में करना पड़ता है, एक या दो वाक्यों में रखा जा सकता है। ये समस्याएँ व्यक्ति के व्यक्ति से सम्बन्ध की, व्यक्ति के वर्ग से सम्बन्ध की, और वर्गो के आपस के सम्बन्ध की समस्याएँ हैं। प्रायः हर एक राजनीतिक, सांस्कृतिक या व्यक्तिगत समस्या इस वाक्य के अन्तर्गत लाई जा सकती है, और ये क्रमश बदलते हुए सम्बन्ध ही हैं, जो समाज के सुसंगठित शरीर को, जिसे कि हम अपने चारो ओर देखते है, सार्थक बनाते हैं।

मै कुछ अनियमित ढंग से इस उच्च विद्वन्मंडली के सामने विचारो को उँडेल रहा हूँ, जिससे कि यह हिस्टारिकल रेकार्ड्स कमिशन, जहा तक संभव हो, अपने कार्य को विस्तृततर मानसिक दृश्यों और ऐतिहासिक विचार के साथ समन्वित कर सके, क्योकि बिना ऐसा किए वह अपने क्षेत्र को सीमित करेगा और साधारण विचारवालो की अनुकूल प्रतिक्रिया न प्राप्त कर सकेगा। हम सभी लोग अधिक या कम इतिहास का निर्माण करते हैं। इतिहास, अन्त में, करोड़ो मानवो के जीवन का एक प्रकार का परिणाम है। लेकिन यह सच है कि शायद कुछ व्यक्ति इतिहास के निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक भाग लेते हैं। वर्तमान युग में इतिहास के निर्माण में कुछ भाग ले सकने का हमें अवसर मिला है, और जो व्यक्ति ऐसा करता है, उसके लिए इतिहास की क्रियाओ को समझना एक और आवश्यक बात हो जाती है, जिससे कि वह अपने को विस्तार की बातो में खो न दे और उसके मुख्य प्रवाह को भूले नहीं। भाग्य और परिस्थिति ने भारतीय इतिहास के प्रवाह में मुझे एक अभिनेता के रूप में पिछले बीस तीस वर्षो से अपने अन्य साथियों के समान ही डाल रखा है। इतिहास में बीती हुई या दूर अतीत की बातो में मेरी रुचि केवल शास्त्रीय ढंग की नही रह गई, बल्कि मेरे लिए यह एक निजी गहरी दिलचस्पी की चीज बन गया है। मैंने उन घटनाओं को आज की घटनाओ से सम्बन्धित करके समझना चाहा, और आज

की घटनाओं को जो कुछ हो चुका है उसकी पृष्ठभूमि में समझना चाहा, और चाहे जितने धूमिल रूप में हो, उस ज्ञान की सहायता से भविष्य में झांकने का यत्न किया। मैं यह नही कह सकता कि उस खोज ने वस्तुओ को ठीक-ठीक समझने में मेरी मदद की या नही, क्योकि पिछले कुछ वर्षों मे युद्ध आदि ऐसी घटनाएँ घटी है, जिनके विषय में मै यही कह सकता हूँ कि वे समझ के विलकुल वाहर है, और हमारी मानवता की सुविहित उन्नति की सारी कल्पना उनके कारण हिल उठी है। इन अध्ययनो ने समझने मे मदद दी हो या नही यह निश्चय ही एक वड़ा रोचक कार्य रहा है, और कभी-कभी मै ख्याल करता हूँ कि यह कार्य किसी विश्वविद्यालय या सस्था के शान्ततर वातावरण मे, जिस प्रकार का जीवन मै विताता हूँ उसकी उत्तेजनाओ और विघ्नो से दूर रह कर विशेष चलाया जाय तो आनन्ददायक हो! लेकिन यह भी एक प्रकार का गृह-विरह है, जिससे मै अनुमान करता हूँ, वे सभी लोग पीडित होते है जो उस विशिष्ट कार्य को जिसमे कि वे लगे हुए है, पसन्द नही करते।

मै आप सवका यहाँ स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप का परिश्रम सफल होगा, न केवल सच्चे इतिहास के निर्माण मे, जो कि घटनाओ और तिथियो से ऊपर उठकर एक वस्तु है—वल्कि यदि मै कहूँ तो लोगो को एक सूत्र मे वाधने में भी। इतिहास हमें वाधने वाली और विच्छिन्न करने वाली दो प्रकार की क्रियाओ का लेखा प्रस्तुत करता है, और संसार में जैसा सदा होता आया है, आज भी यही हो रहा है कि वांधने और निर्माण करने वाली शक्तिया अधिक स्पष्ट रूप से काम कर रही है, और उसी प्रकार विदारक और विच्छिन्न करने वाली शक्तियाँ भी काम कर रही है, और हम जो भी काम करें उसमें हम चाहे तो वाधने वाले और निर्माण करने वाले पहलुओ पर या इससे विपरीत पहलुओ पर जोर डाल सकते है। वेशक हमें इच्छा-प्रेरित विचारो के वश मे नही होना चाहिए, और इस प्रकार उन वातो पर जोर नही देना चाहिए जिनका कि वस्तुस्थिति से कोई लगाव न हो। फिर भी, मै समझता हूँ कि यह सम्भव है कि पांडित्य और यथार्थता और सत्य की सीमा में रहते हुए, वांधने वाले और निर्माणकारी पहलू पर, न कि इस के विरोधी पहलू पर, जोर दिया जाय, और मै आशा करता हूँ कि इतिहासकारो के और इस कमिशन के कार्य इसी ध्येय से प्रेरित होगे। मै आपका एक वार फिर स्वागत करता हूँ।

सरोजिनी नायडू

महोदय, इस भवन के नेता की हैसियत से समय-समय पर यह मेरा दुखद कर्तव्य रहा है कि मैं भारत के विख्यात पुत्रो और पुत्रियो के निधन की चर्चा करूँ। अभी हाल में, मैंने भारत के एक बड़े प्रख्यात पुत्र, सर तेज बहादुर सप्रू के निधन की चर्चा की थी। इसके बाद एक प्रान्त के गवर्नर की आकस्मिक मृत्यु हो गई। वे राज्य के एक प्रतिष्ठित जनसेवक थे। जब हम देश के इन प्रतिष्ठित व्यक्तियो की चर्चा करते है तो हम प्रायः यह कहते है कि उनके स्थान की पूर्ति कठिनता से होगी, और उनकी जगह कोई नही ले सकता, जो कि आंशिक रूप में सत्य हो सकता है। लेकिन आज, मै आपकी अनुमति से एक ऐसे व्यक्ति के कल बहुत सवेरे हुए निधन की चर्चा करूँगा, जिनके विषय में पूरी सचाई से यह कहा जा सकता है, कि उनके स्थान की पूर्ति करना या उनके समान दूसरा व्यक्ति पाना असंभव है।

वे पिछले डेढ़ साल या कुछ अधिक समय से एक ऐसे बड़े प्रान्त की गवर्नर थी, जिसकी अनेक समस्याएँ है, और उन्होंने बड़ी ही योग्यता और बड़ी ही सफलता से गवर्नरी का काम निभाया। इसका अनुमान यो हो सकता है कि उस सूबे में प्रधान मंत्री और उनके मत्रिमंडल और सरकार और विविध दलो और वर्गों और धार्मिक सम्प्रदायों से लेकर मजदूर और खेतिहर तक सभी उनके प्रति आकर्षित थे और उनके हृदय में इन सब ने स्थान पाया था। गवर्नर और राज्य की उच्चासीन एक प्रमुख सेविका के रूप में उन्होने बड़ी सफलता पाई थी। लेकिन गवर्नर के रूप में उनके विषय में मै अधिक न कहूँगा, क्योकि गवर्नरों में साधारणत. जितना बड़प्पन अपेक्षित है, उससे वे कही बड़ी थी। वे क्या थी, यह कहना मेरे लिए कुछ कठिन है, क्योकि वे हम लोगो का एक अग बन गई थीं। वे हमारी आज की राष्ट्रीय दाय का एक अंग थी, और हम जैसे व्यक्तियों से अभिन्न रूप से सम्बन्धित थी, क्योकि हमें उनके साथ बहुत वर्षों तक अपनी स्वतंत्रता के युद्ध में तथा अन्य कार्यो में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

महोदय, जिन व्यक्तियो से अपना इतना घनिष्ठ संपर्क रहा हो, उनका ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकना कठिन होता है। फिर भी आदमी इसका कुछ हद तक अनुभव

श्रीमती सरोजिनी नायडू की निधन स्मृति में, सविधान परिषद (व्यवस्थापिका) में, नई दिल्ली में, ३ मार्च, १९४९ को दिया गया भाषण।

कर सकता हूँ; और उनका ध्यान करते हुए हमारे सामने एक ऐसा चित्र आता है, जिसके सम्वन्ध में अनेक गुणवाचक शब्द और विशेषण लगाए जा सकते हैं। वे अत्यन्त प्रतिभाशालिनी थी। वे सजीव और सप्राण थी। वे अनेक गुणों से सम्पन्न थी, लेकिन उनमे कुछ अद्वितीय गुण थे। उन्होने कवि के रूप मे जीवन आरम्भ किया। वाद के वर्षो में जव कि घटनाओ ने उन्हे राष्ट्रीय संग्राम में उतरने के लिए विवश किया, और उन्होने अपने को पूरे उत्साह और सरगर्मी के साथ राष्ट्रीय युद्ध में लगा दिया, उन्होने कागज और कलम से अधिक कविताएँ नही लिखी, वल्कि उनका सारा जीवन ही एक कविता, एक संगीत वन गया। और उन्होने एक अद्भुत कार्य किया, अर्थात् उन्होने हमारे राष्ट्रीय युद्ध में कला और कवित्व का पुट दिया। जिस प्रकार कि राष्ट्र-पिता ने इस युद्ध को एक नैतिक विशालता और महानता प्रदान की उसी प्रकार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उसे कलात्मकता और कवित्व प्रदान किया, और जीवन के प्रति वह उत्साह और वह अजेय भावना प्रदान की, जिसने कि विपत्ति और अनर्थ का सामना डट कर किया, ओठों पर गीत और मुखाकृति पर मुसकान के साथ किया। मै स्वयं राजनीतिज्ञ हूँ, जैसा कि प्रायः हम सभी है, और मै नही जानता कि हमारे राष्ट्रीय जीवन को इससे अधिक मूल्यवान कोई भेंट प्राप्त हो सकती है कि उसे विशुद्ध राजनीतिक स्तर से उठा कर एक उच्चतर कलात्मक स्तर पर रखा जाय। इसी कार्य में सरोजिनी नायडू को एक हद तक सफलता प्राप्त हुई।

उनके जीवन पर दृष्टि डालते हुए, हम उसमें अनेक गुणों का एक अद्भुत समन्वय पाते है। एक ओर तो हम सजीवता पाते हैं, और दूसरी ओर ५० वर्षो का ऐसा सप्राण और सक्रिय व्यक्तित्व पाते है जो कि हमारे जीवन के अनेक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पहलुओं को स्पर्श करता है। जिस वस्तु का भी उन्होंने स्पर्श किया, उसमें उन्होंने कुछ अपनी ज्वाला भर दी। वे वास्तव में एक अग्नि-स्तम्भ थीं। साथ ही वे उस ठंडी प्रवाहिनी जलधारा की भांति भी थी, जो शान्ति देती है। वे अपनी राजनीति के आवेश को मनुष्यों के अपेक्षाकृत ठंडे स्तरों पर ले आती थीं। इसलिए उनके विषय में किसी के लिए कुछ कहना कठिन है, सिवाय इसके कि आदमी इस वात का अनुभव करता था कि वह एक ज्वलन्त आत्मा थी, जो अव नही रही।

हम निस्सन्देह उन्हे आने वाली अनेक पीढ़ियो तक स्मरण रखेंगे। लेकिन जो लोग हमारे वाद आयेंगे और जिनका उनसे इतना घनिष्ठ संपर्क नही रहा है, वे उस व्यक्तित्व की संपदा का, जिसे कि लिखे या कहे गए शब्दों में सहज में नही उतारा जा सकता, ठीक-ठीक अनुमान न कर सकेंगे। उन्होने भारत के लिए काम किया। वे काम करना भी जानती थीं और विनोद करना भी। यह एक अद्भुत संयोग था। वे जानती थीं

कि बड़े ध्येयों के लिए किस तरह से त्याग किया जाता है। वे इसे इतने सुन्दर और इतने अच्छे ढंग से करना जानती थी कि ऐसा करना एक सहज-सी बात जान पड़ती थी, और ऐसी नही जिसमें आत्मा को वेदना होती हो। यदि उनका जैसा संवेदनशील व्यक्ति आत्मा की भीषण वेदना से पीड़ित हो सकता है तो निश्चय ही वे पीड़ित हुई थीं—लेकिन उन्होंने उसे ऐसी प्रसन्नता से ग्रहण किया कि ऐसा जान पड़ा कि यह उनके लिए बहुत सहज बात थी। इस तरह उन्होंने हमारे युद्ध को एक ऊँचे स्तर पर उठाया, और उसे ऐसा सस्पर्श दिया, जैसा कि मै समझता हूँ कोई दूसरा नही दे सकता था, न भविष्य में दे सकेगा। महोदय, मैंने कहा है कि वे कितनी ही बातों का एक विचित्र सम्मिश्रण थी। अपने में वे एक समृद्ध संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसमें कि विविध धाराएँ, जिन्होने कि भारतीय संस्कृति को इतना महान बनाया है, आकर मिलती थी। उनमें भारतीय संस्कृति की विविध धाराओं का और साथ ही पूर्व और पश्चिम की संस्कृति की विविध धाराओ का सम्मिश्रण हुआ था। इस तरह उनका एक महान राष्ट्रीय व्यक्तित्व तो था ही, वे वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व से भी सम्पन्न थी, और इस विस्तृत संसार में जहां कही भी वे चली जाती, उन्हे इस रूप में स्वीकार किया जाता था, और संसार के बड़े लोगो में उनकी गिनती थी। यह स्मरण रखना अच्छा होगा, विशेषकर आज, जबकि परिस्थितियो से विवश होकर हम कभी कभी एक सकीर्ण राष्ट्रीयता के मार्ग में भटक कर जा सकते है और उन वृहत्तर ध्येयो को भूल सकते हैं, जिन्होंने कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की नीव रखनेवाली महान आत्माओ को प्रेरित किया था।

हमारे महान राष्ट्रपिता ने और इस महान महिला ने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत जोरदार ढग से स्वरूप दिया है—सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतना नहीं, यद्यपि वे इस क्षेत्र में भी सक्रिय रूप से काम करती थी, बल्कि उन अदृश्य स्तरो पर, जो कि बड़े महत्व के होते हैं, क्योकि वे राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करते हैं, क्योकि अन्त में वे ही उसके मानसिक और कलात्मक और सौन्दर्यग्राही दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, और बिना उस मानसिक, नैतिक, सौंदर्यग्राही और कलात्मक दृष्टिकोण के जो भी सफलता हमें प्राप्त हो वह सारहीन सफलता होगी, क्योकि आखिरकार, हम ऐसी स्वतंत्रता की आकांक्षा करते हैं जो कि स्वतः अच्छी हो, न कि ऐसी की जिससे किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति हो। हम स्वतंत्रता इसलिए चाहते हैं कि हमारी जनता का जीवन अच्छा हो सके। अच्छा जीवन क्या है ? क्या आप किसी ऐसे जीवन को भी अच्छा कह सकते हैं जिसमें कि कलात्मक और सौंदर्यग्राही तत्त्व न हों, या कि जिसमें नैतिक तत्त्व न हों ? यह अच्छा जीवन न होगा। यह अस्तित्व की कोई अस्थायी अवस्था होगी, जो कि शुष्क और कठोर होगी। दुर्भाग्य से संसार शुष्कतर, कठोरतर और अधिक निर्दय होता जा रहा है। पिछले दो वर्षो के हमारे ही अनुभव में राजनीतिक जीवन कुछ अधिक कठोर, निर्मम, असहिष्णु

और संदेहपूर्ण हो गया है, और संसार में हम आज सर्वत्र संदेह और भय का वातावरण पाते हैं। हम इस भावना पर कैसे विजय पावें ? नैतिक ऊँचाइयो के कुछ अनुभव द्वारा ही हम इस पर विजय पा सकते हैं, और यही मार्ग हमें राष्ट्रपिता ने दिखाया था। या फिर सफलता का दूसरा रास्ता मानवतापूर्ण दृष्टिकोण का है, कलात्मक और सौंदर्यग्राही दृष्टिकोण का, और मानवतापूर्ण दृष्टिकोण में क्षमा है, दया और मनुष्यता की सूझबूझ है, उसके गुणो की भी और उसके दोषो की भी सूझबूझ है। और इस प्रकार सरोजिनी देवी मानवता का दृष्टिकोण लेकर आईं, जो सूझबूझ से पूर्ण था, और सभी के प्रति, चाहे वे भारत के हों चाहेबाहर के, दया से पूर्ण था।

इस भवन को विदित है कि भारत के और किसी भी व्यक्ति से अधिक वे भारत की सर्वांगीण एकता, उसकी सास्कृतिक एकता,और उसकी भौगोलिक एकता के पक्ष मे दृढ थी। इसके लिए उन्हे उत्कट अनुराग था। यह उनके जीवन का ताना-वाना था। जव कभी हम संकीर्णतर लीको में पड़ें तो हमारे लिए यह स्मरण रखना उचित होगा कि वड़प्पन मानसिक संकीर्णता के आधार पर कभी नही प्राप्त हो सकता। राष्ट्र और व्यक्ति की महानता एक विस्तृत कल्पना, विस्तृत दृष्टि-परम्परा, सर्वग्राही दृष्टिकोण और जीवन के प्रति मानवतापूर्ण पहुँच द्वारा ही प्राप्त होती है। इस तरह वे भारत में सर्वत्र हमारी समृद्धिपूर्ण सांस्कृतिक विरासत की व्याख्या करने वाली वन गईं। वे भारत में उन वहुत सी चीजों की व्याख्या करने वाली वन गईं जो कि पश्चिम ने उत्पन्न की हैं और संसार के और भागों में उन्होंने भारत की समृद्धिपूर्ण संस्कृति की व्याख्या की। वे पूर्व और पश्चिम के वीच और भारत के विविध वर्गों के वीच एक आदर्श राजदूत और कडी थी। मैं नही देख पाता कि हम उनके जैसा व्यक्ति भविष्य मे फिर कैसे पायेंगे। निस्संदेह हमारे यहा भविष्य में महान पुरुष और महान नारियां होगी, क्योकि अतीत में जव भारत का राजनीतिक दृष्टि से नीचा स्थान था, तव भी उसके पुत्रों में वड़प्पन की कमी नही रही और अव जवकि भारत स्वतंत्र है, मुझे कोई संदेह नही कि अतीत और वर्तमान की ही भाति वह भविष्य मे भी महान नर-नारियो को जन्म देगा। अपनी आखो के सामने हमने इन महान व्यक्तियों को देखा है। फिर भी मुझे सदेह है कि जहां भारत महान पुरुषों और महान नारियो को जन्म देगा, वहाँ वह सरोजिनी जैसा एक दूसरा व्यक्तित्व उत्पन्न कर सकता है या करेगा। इसलिए हम उनका ध्यान करते हैं एक ज्योति और एक विशेष सजीवता और उज्ज्वलता के रूप में; कवित्व के रूप में, जिससे कि जीवन और क्रियाकलाप अनुप्राणित होते हैं, एक वहुत ही महत्वपूर्ण और समृद्ध वस्तु के रूप मे, जो कि भौतिक मापदंड से किंचित् काल्पनिक, अग्राह्य और अवर्णनीय हो; कुछ ऐसी वस्तु के रूप में जो कि केवल अनुभव की जा सकती है, जैसे कि आप सौंदर्य का अनुभव करते हैं, जैसे कि आप जीवन की अन्य उच्चतर चीजों का अनुभव करते हैं। हो सकता है कि

इसकी कुछ स्मृति और पीढ़ियों तक पहुँचेगी, जिन्होने कि उन्हे नहीं देखा है, और उन्हे प्रेरणा प्रदान करेगी। मैं समझता हूँ यह पहुँचेगी, लेकिन मैं नहीं समझता कि इसका वे उस प्रकार अनुभव करेंगी, जैसा कि हम देहधारी करते हैं जिनको कि उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त रहा है।

इसलिए इस भवन में यह चर्चा करते हुए मैं केवल उन विविध विचारो को दुहरा सकता हूँ जो कि मेरे मन में उठते हैं, और कदाचित् मैं उन्हे एक उलझे ढग से दुहरा रहा हूँ, क्योकि मेरा मन दुखी और अव्यवस्थित है, मानो उसका एक घनिष्ठ अंश कट कर अलग हो गया हो, और इसलिए भी कि जिन लोगो के प्रति आदमी का वहुत स्नेह हो उनके विषय में वोलना या निर्णय करना कठिन हो जाता है। यह एकात्मीयता का स्नेह था। यह एक ऐसे आदमी का स्नेह था जिसने कि अपनी युवावस्था में भी उनके भाषण और कार्य से महान प्रेरणा प्राप्त की थी और जो वाद की दशाब्दियो में उनसे अधिकाधिक स्नेह करने लगा था, और उनकी प्रशंसा करने लगा था और उन्हे एक अत्यन्त समृद्ध और दुर्लभ व्यक्तित्व समझने लगा था। वह समृद्ध और दुर्लभ व्यक्तित्व अव नही रहा, और यह हमारे लिए अनिवार्यत: एक दुख की वात है, वल्कि यह दुख से भी कुछ अधिक है। अगर हम दूसरे ही प्रकाश में इसे देखें तो यह हमारे लिये एक आनन्द और उत्कर्ष की वात है कि हमारी पीढी के भारत ने ऐसी दुर्लभ आत्माओ को जन्म दिया, जिन्होने हमें प्रेरणा दी और जो भविष्य में भी हमें प्रेरणा देती रहेगी।

महोदय, इस तरह की चर्चा करते हुए यह प्रथा है कि यह कहा जाय कि इस भवन की सहानुभूति और संवेदना दिवगत व्यक्ति के संवधियो के पास पहुँचा दी जाय। मैं भी यह कहता हूँ, लेकिन वास्तव में वह वंधन जो कि सरोजिनी देवी को यहा हम सभी लोगो से वाधता था, और इस देश के हजारो-लाखो लोगो से वाधता था, इतना घनिष्ठ था, और वंधन के रूप में इतना महान था, जितना कि वह वंधन जो उन्हें अपने तन के वच्चो से और दूसरे सवधियो से वांधता था। इसलिए संवेदना का यह संदेश हम इस भवन की ओर से भेज रहे हैं। अपने हृदयो को शान्त करने के लिए इस संदेश की हम सभी को आवश्यकता है।

1713